रूसी इतिहास का सर्वेक्षण

लेखक

बी० एच० सम्नर

अनुवादक

डा० देवसहाय त्रिवेद

प्राचार्य, रामलखन सिंह यादव-महाविद्यालय, औरंगाबाद (गया)

पुनरीक्षक

डा० विष्णु अनुग्रह नारायण

रीडर, इतिहास विभाग, पटना-विश्वविद्यालय

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

पटना-3

विश्वविद्यालय-स्तरीय ग्रंथ-निर्माण-योजना के अंतर्गत भारत-सरकार (शिक्षा एवं समाज-कल्याण-मंत्रालय) के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार-हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित यह ग्रंथ Gerald Duckworth & Co. Ltd. London द्वारा प्रकाशित तथा बी० एच० सम्नर द्वारा लिखित Survey of Russian History का हिंदी-अनुवाद है।

प्रथम संस्करण : 2000
मार्च,

मूल्य 25.00 (पच्चीस रुपये)

प्रकाशक :
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी,
कदमकुआँ, पटना–3

मुद्रक :
नारायण प्रिन्टर्स, पटना–4
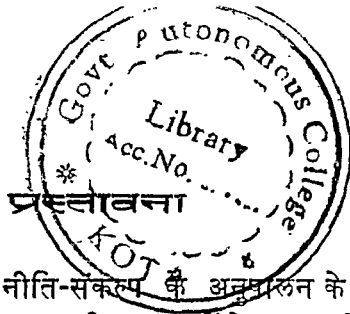
प्रस्तावना

शिक्षा-सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति-संकल्प के अनुपालन के रूप में विश्वविद्यालयों में उच्चतम स्तरों तक भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा के लिए पाठ्य-सामग्री सुलभ करने के उद्देश्य से भारत-सरकार ने इन भाषाओं में विभिन्न विषयों के मानक ग्रंथों के निर्माण, अनुवाद और प्रकाशन की योजना परिचालित की है। इस योजना के अन्तर्गत अंगरेजी और अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रंथ भी लिखाये जा रहे हैं। यह कार्य भारत-सरकार विभिन्न राज्य-सरकारों के माध्यम से तथा अंशतः केन्द्रीय अभिकरण द्वारा करा रही है। हिन्दी-भाषी राज्यों में इस योजना के परिचालन के लिए भारत-सरकार के शत-प्रतिशत अनुदान से राज्य-सरकार द्वारा स्वायत्तशासी निकायों की स्थापना हुई है। बिहार में इस योजना का कार्यान्वियन बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के तत्त्वावधान में हो रहा है।

योजना के अन्तर्गत प्रकाश्य ग्रन्थों में भारत-सरकार द्वारा स्वीकृत मानक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, ताकि भारत की सभी शैक्षणिक संस्थाओं में समान पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

प्रस्तुत ग्रन्थ बी० एच० सम्नर के Survey of Russian History का हिन्दी-अनुवाद है। यह अनुवाद इतिहास के विद्वान् डा० देवसहाय त्रिवेद द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसका पुनरीक्षण डा० विष्णु अनुग्रह नारायण, रीडर, इतिहास-विभाग, पटना-विश्वविद्यालय ने किया है।

आशा है, अकादमी द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन-सम्बन्धी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जायगा।

लक्ष्मीनारायण सुधांशु

पटना
दिनांक १५-३-७२

अध्यक्ष
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

विषय-सूची

★

रूसी इतिहास का सर्वेक्षण

(Survey of Russian History)

प्रथम अध्याय

सीमा

क : सीमा प्रकार :

आकार में यूरोप का चौगुना, किन्तु जनसंख्या में उसके आधे से भी कम; क्षेत्र-फल तथा आबादी दोनों में समस्त उत्तरी अमेरिका के समान विशाल, यह सोवियत संघ जीवन के सभी क्षेत्रों में वृहत् पैमाने पर क्रान्ति का परिणाम है। सोवियत संघ ने अतीत से नाता तोड़ लिया, पर इस सम्बन्ध-विच्छेद की सफलता की व्यापकता के बावजूद इसने रूसी साम्राज्य से दो अतिव्याप्त लक्षण विरासत में पाये—अब भी यहाँ विभिन्न प्रकार के लोग बसते हैं और यह आज भी उपनिवेश-भूमि है। रूस के इतिहास में एक विषय हमेशा से ही बहुत जबरदस्त रहा है और वह है इसकी सीमा का प्रश्न—उस अविजित देश की सीमा का प्रश्न, जिसके प्राकृतिक साधनों पर प्रभुत्व पाने के लिए संघर्ष चलते रहे हैं एवं जो रूसी लोगों की सतत परिवर्तनमयी गति-शीलता और दूसरे राष्ट्रों पर इनकी विजय तथा उनके साथ इनके अन्तर्मिश्रण के फल-स्वरूप एक महादेश का विस्तार पा चुका है।

पश्चिमी यूरोप के इतिहास में भी अनेक शतियों तक सीमा ने ठीक यही नाटक खेला। किन्तु, हीनकाय होने के कारण उत्तर-मध्यकाल के बाद वहाँ आन्तरिक उपनिवेशवाद प्रायः समाप्त हो गया। इसके बदले समुद्र-पार उपनिवेश बनने लगे। यूरोप के लोगों ने नई दुनिया में नई सीमा की परिस्थितियों से संघर्ष किया। इसके विपरीत, रूस का विस्तार सदा निकटस्थ भूमि में हुआ है। इस देश के विशाल आकार तथा लोगों के भौतिक स्तर की उच्चता के कारण उराल पर्वत के पश्चिम में भी आन्तरिक उपनिवेश अब भी रूसी जीवन का एक प्रमुख अंग है।

इसकी राजनीतिक सीमा लगातार तीन वर्षों के अत्यन्त कटु एवं थर्रा देनेवाले गृहयुद्ध (1918-20) के पश्चात् बोलशेविक विजय का परिणाम है। इस गृहयुद्ध की समाप्ति पर नये सोवियत-राज्य ने पश्चिम को छोड़कर, प्रायः ठीक वही सीमाएँ

प्राप्त कर लीं, जो प्रथम विश्वयुद्ध में विघटन के पूर्व रोमानव-साम्राज्य की थीं। पश्चिम में बोलशेविक अपनी पूर्व-सीमा तक पहुँचने में असफल रहा। फिनलैण्ड और तीन बाल्टिक राज्यों (एस्तोनिया, लताविया एवं लिथुआनिया) के सर्वप्रथम स्वतन्त्र रूप में उदय तथा एक शती से अधिक के पश्चात् स्वतन्त्र पोलैण्ड के जन्म ने पश्चिम में--हिमाच्छन्न लेनिनग्राद के विवर को छोड़कर--सोवियत संघ का मार्ग अवरुद्ध कर दिया, बहुत कुछ उसी तरह जिस तरह सत्रहवीं शती में रूस को रुक जाना पड़ा था। दक्षिण में बेसरबिया, जो 1812 से रूसी शासन के अधीन था, रूमानियों के हाथ में ही रहा और डेन्यूब नदी तक उनकी पहुँच नहीं हो सकी। द्वितीय विश्वयुद्ध ने मास्को को बेसरबिया, पूर्वी पोलैण्ड, बाल्टिक राज्य तथा फिनलैण्ड के एक छोटे भाग को जीत लेने का अवसर (1939-40) दिया। फिनलैण्ड के बाकी भाग, जो 1809 से रूस के हाथ में था और पोलैण्ड के मध्यवर्ती क्षेत्रों, जो 1815 में सर्वप्रथम रूस के अधीन हुए, को छोड़कर सोवियत संघ ने उसके द्वारा महान् पीटर, महती कैथेरीन और अलेक्जेण्डर प्रथम के द्वारा पश्चिम में अर्जित (1700-1812) सभी भूभागों को प्राप्त कर लिया एवं इसके अतिरिक्त पूर्वी गैलेशिया में कार्पेथियन पर्वत तक सर्वप्रथम अपना विस्तार किया। इन पश्चिमी प्रदेशों के सिवा रोमानव-साम्राज्य की विरासत का अर्थ था तीन शतियों से अधिक समय से रूस का जो विस्तार चला आ रहा था, उसकी विरासत। यथासाध्य मध्य एशिया में अब कजकिस्तान, तुर्कमिनस्तान, उजबेकिस्तान, किरघिजिया तथा ताज्हिकिस्तान के सोवियत-गणराज्य है। इनमें अन्तिम चार को तो रूस ने सबसे अन्त में 1864 और 1885 ई० के मध्य जीता तथा प्रथम कजकिस्तान को इसके पहले ही एक सौ वर्ष के भीतर हड़प लिया था। ट्रान्सकाकेशिया में अब जार्जिया, आरमेनिया तथा अजरबइजान नामक रूसी गणराज्य हैं, जो 1801 से 1829 के मध्य जीते गये या समर्पित कर दिये। उक्रेण, जो उपनिवेश के रूप में जीता गया था, 1650—1793 ई० के मध्य हथिया लिया गया। श्वेत रूस 1772 और 1793 के मध्य अधिकृत कर लिया गया। रूसी गणराज्यों में श्वेत रूस तथा मध्य एशिया के गणराज्य सर्वविशाल हैं, जो लेनिनग्राद से ब्लाडिवोस्तक तथा काकेशश से उत्तरी ध्रुवसागर तक फैले हैं। इन प्रदेशों में रूस का तीन-चौथाई क्षेत्र है तथा संघ की दो तिहाई जनता का आवास है। यह रूसी सोवियत-संघीय समाजवादी गणराज्य है। यह मास्कोवी तथा मास्कोवित साम्राज्य का उत्तराधिकारी है, जो महान् पीटर के काल से रूसी साम्राज्य के रूप में फैलता रहा।

जो प्रदेश रूसी सोवियत-संघीय समाजवादी गणराज्य में सन्निहित हैं, वे मास्कोवी के क्रोड हैं। यह क्षेत्र ओका से उत्तर में डीना तक फैला हुआ है। सन् 1500 ई० तक यह सारा प्रदेश एक राष्ट्र के रूप में मास्कोवित साम्राज्य का अंग बन चुका था। सुदूर के प्रदेशों को 1550 और 1650 ई० के मध्य जीतकर अपना लिया। कालान्तर में कुछ अन्य प्रदेश भी जीते गये; यथा सन्त पीटरबर्ग (1703 ई०), उत्तरी

काकेशश स्टेपीज तथा काकेशश-पर्वतमाला (1700–1860 ई०) आमूर-प्रदेश तथा सुदूर पूर्व में व्लाडिवोस्तक (1860 ई०) । किन्तु, ये प्रदेश अपेक्षाकृत छोटे हैं ।

पोलैण्ड और स्वेडन के मूल्य पर पश्चिम की ओर मास्कोवी-साम्राज्य के महान् विस्तार, जिसका अधिकांश श्रेय महान् पीटर और उसके उत्तराधिकारियों को है, के पहले इसने सन् 1550 ई० के बाद सौ वर्षों में पूर्व और दक्षिण-पूर्व में अपने राक्षसी पंजे फैलाये । पाश्चात्य की ओर झुके हुए रूसी साम्राज्य में रूपान्तरण के पहले मास्कोवित-साम्राज्य, जो तातर-खानवंश का उत्तराधिकारी है, बहुत अंशों तक एक एशियाई देश था । इस प्रकार, मास्को से केवल दो सौ मील पश्चिम-स्थित स्मोलेंस्क और कीव सन् 1667 ई० तक अन्तिम रूप से नहीं जीते जा सके थे, यद्यपि इस समय तक कजान और अस्त्रखान सौ वर्ष से अधिक से मास्कोवित-साम्राज्य के अंग रह चुके थे और करीब बीस वर्षों से प्रशान्त महासागर के तट से चार हजार मील की दूरी पर एक मास्कोवित चौकी रह चुकी थी।

यदि सीमा को यूरोपीय राजनीतिक अर्थ में एक नियमित सफल शासन के कार्य-क्षेत्र को निर्धारित करनेवाली रेखा मानें, तो यह सीमा उन्नीसवीं शती तक तीव्र गति से बढ़ती रही । जहाँतक यह राजनीतिक सीमा थी सामान्यत: यह करद या चरागाही सीमा थी । खानाबदोशों का यह चरागाह घटता-बढ़ता रहता था तथा वहाँ के लोग यदा-कदा मास्को या सन्त पीटरबर्ग को मनमानी करने दिया करते थे । रूस के विकास को जिन प्रभावों ने अधिक अंशों तक रूपरेखा दी, उसके लिए अन्य कारण साधक हुए; यथा भाषा, राष्ट्र धर्म, भूमि तथा वनस्पति-सीमा, शिकारी, व्यापारी, किसान और खनकों की सीमा । यहाँ भी सीमा को साधारण अर्थ में एक निश्चित रेखा समझना भूल है । परस्परव्यापी प्रदेश, मरुद्यान, फन्नी तथा अन्तर्वेशी मार्गों के कारण इस सीमा का अर्थ बदलता रहा ।

सर्वप्रथम भाषागत या राष्ट्रीय सीमाओं पर विचार किया जाय । अब ये सीमाएँ पूर्णरूपेण सोवियत-अधिकार में ठोस हो गई हैं और इनके अन्दर विभिन्न संघटकगण तथा सर्वतन्त्रस्वतन्त्र राज्य हैं, जो स्पष्टत: मास्कोवित तथा नानावर्ण रूसी साम्राज्य के सोवियत उत्तराधिकारी हैं । संक्षिप्त रूप में, ये उपान्त ही पूर्णरूपेण गैर-रूसी हैं— मध्य एशिया के गणराज्य (कजविस्तान को छोड़कर, जो अब आधा रूसी है) ट्रान्सकाकेशियन गणराज्य (बाकू के तैलक्षेत्र को छोड़कर), तथा बाल्टिक तट और मोल्डवियन के नये गणराज्य । श्वेत रूस सदा से ही सोलहों आने श्वेत रूस रहा है । उक्रेन में उर्कणी अधिकांश संख्या में हैं । ये रूसियों से एकदम घुलमिल गये हैं तथा उनके साथ मिलकर ये स्लाव की पूर्वी शाखा बनाते हैं । अन्य स्थानों में, अधिकांशत: फिनिश या तातारवंशी गैर-रूसी भी शतियों से इस प्रकार रूसियों से बहुत बड़ी संख्या में घुल-मिल गये हैं, मानो रूस का समुद्र उन्हें निगल गया हो या उनके ऊपर रूस की बाढ़ छा गई हो । रूसी सोवियत संघ की भाषाओं का मानचित्र एक

प्रकार की पच्चीकारी है; किन्तु उनका रंग केवल एक है–रूसी जो सर्वत्र व्याप्त हैं। ये भाषाएँ प्राचीन मास्कोवी के केन्द्रीय स्थल से बाहर की हैं। जो रूसी भाषा नहीं बोलते और जो सुगठित हैं, वे द्वीपों में या प्रायद्वीपों में बसे हैं। केवल काकेशश-प्रदेश और मध्यवॉल्गा-कामा-उरल के जंगली तथा वनज स्टेपीजों में गैर-रूसी भाषा बोलने वाले बहुसंख्यक हैं और वे आपस में संलग्न हैं। अतः, उन्नीसवीं शती के प्रथम साठ वर्षों तक रूस काकेशिया की इन पहाड़ियों का दमन करने में लगा रहा, जिनकी तुलना भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर सीमा से की जा सकती है। मध्यवॉल्गा-कामा-उरल के विशाल क्षेत्र में दो-तीन शतियों तक आन्तरायिक युद्ध चलता रहा। यह युद्ध रूसी विजेताओं और उपनिवेशकारों तथा फिनिश-तातारों के बीच चलता था; जिनका अन्त पुगचोव-विप्लव (1773–75) के समय वृहत् पैमाने पर होनेवाले बश्कीर-आन्दोलन की समाप्ति तक नहीं हुआ था।

रूसी लोगों की बढ़ती हुई और अन्ततः आत्मसात् कर लेनेवाली संख्यात्मक उत्कृष्टता ने, जो अधिकांशतः गुणात्मक उत्कृष्टता भी थी, विगत सौ वर्षों में राष्ट्रीयता की समस्या को अन्य देशों से एकदम भिन्न ही बना दिया। आस्ट्रिया-हंगरी का उदाहरण स्पष्ट है। अपितु, रूसी साम्राज्य में स्यात् ही किसी गैर-रूसी जनता का स्वतन्त्र राज्य था, जिसके समदेशी राजनीतिक सीमा के बाहर अखण्ड राज्य करते हों। केवल पोलैण्डवालों की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के अस्तित्व की परम्परा जीवित थी। सोवियत संघ की तरह रूसी साम्राज्य भी अनेक राष्ट्रों का योग था। किन्तु, 1900 ई० तक सारे देश की प्रजा में दो-तिहाई लोग रूसी भाषा बोलते थे, यदि इनमें संलग्न गैर-रूसी उपान्तों को भी शामिल कर लिया जाय। यह अनुपात क्रान्ति के पश्चात् तथा पश्चिमी उपान्तों के हाथ से चले जाने के बाद भी बढ़ता ही गया।

अब सामाजिक सीमाओं पर विचार करें। रूस की सीमा धीरे-धीरे कृषि-विस्तार और कालान्तर में खनिज तथा उद्योग-विस्तार के साथ नदियों और बन्दरगाहों का अनुसरण करती हुई केन्द्रक के रूप में फैलती गई है। ये आवास के दृढ़ प्रदेश बन गये हैं। रूसी धीरे-धीरे प्राकृतिक परिस्थिति और गैर-रूसी पड़ोसों पर अपना प्रभुत्व बढ़ाते गये हैं। अतः, इनका आवास-स्थान बदलता गया है।

अमेरिका के समान ही रूसी विस्तार में उत्तर के अधिकांश तथा साइबेरिया में बढ़ते हुए आवेग का बाहरी कोर नृशंसता और सभ्यता का मिलन-विन्दु था। किन्तु, दक्षिण की ओर बढ़ने में उस सीमा तक ऐसी बात नहीं है। अमेरिका के समान ही रूस का विकास केवल एक दिशा में अग्रगति से नहीं, बल्कि सतत बढ़ती हुई सीमा पर आदिम स्थितियों की ओर वापसी भी दिखाता है .....सीमा पर सामाजिक विकास पुनः-पुनः शुरू होता रहा है। दोनों देशों में उपनिवेशियों की सीमा का विस्तार विषम था; क्योंकि मिट्टी और जंगलों की विभिन्नता नदियों और झीलों के मार्ग एवं प्रकृति, बन्दरगाहों, रास्तों और बहुत बाद में रेलवे लाइनों की बनावट लवण अथवा खनिजों की उपस्थिति, सैन्य-चौकियों अथवा सुरक्षा-रेखाओं की

मानचित्र 1

यू० एस० एस० आर० (पश्चिमी भाग)

- - - — Western boundary of U. S. S. R , August 1939.

× × × × Boundaries of U. S. S. R., June 1941.

.... Boundaries of constituent republics of U. S. S. R., June 1941.

K. F. = KARELIAN-FINNISH SOVIET SOCIALIST REPUBLIC.

Es. = ESTIONIAN S. S. R.

La. = LATVIAN S. S. R.

Li. = LITHUANIAN S. S. R.

W. R. = WHITE RUSSIAN S. S. R.

Ukr. = UKRAINIAN S. S. R.

Mo. = MOLDAVIAN S. S. R.

Ge. = GEORGIAN S. S. R.

Ar. = ARMENIAN S. S. R.

Az. = AZERBAIDZHAN S. S. R.

Principal national autonomous republics within the Russian Soviet Federated Socialist Republic :

Ba. = Bashkirs.

Ud. = Udmurty.

K. T. = Kazan Tatars.

Ma. = Mari.

Ch. = Chuvash.

Mo. = Mordva.

V. G. = Volga Germans (until 1941).

Ka. = Kalmuks

C. M. P. = Caucasian mountaineer peoples.

Cr. = Crimean Tatars.

D. B. = Donets Basin.

MAP 1.

U.S.S.R. (Western Portion).

मानचित्र 2

सोवियत एशिया

+ + + + Principal Railways.

– — - — Approximate southern line of zone of conifer forests. Approximate northern line is shown by the Arctic Circle.

× × × × International boundary of U. S. S. R.

.... Boundaries of constituent republics of U. S. S. R.

R. S. F. S. R. = Russian Soviet Federated Socialist Republic.

Tu. = Turkoman S. S. R.

Uz. = Uzbek S. S. R.

Ki. = Kirghiz S. S R.

Ta. = Tadzhik S. S. R.

B M = Buryat Mongols.

Kz. B. = Kuznetsk Basin.

MAP 2
SOVIET ASIA
Scale :- English Miles
0 100 200 400 600 800 1000
R S F S R
Arctic Circle
Bering Strait
Kamchatka
Sakhalin
Stanovoi Mountains
Komsomolsk
Amur
Vladivostok
Tokyo
Tsushima Strait
Korea
Yellow Sea
Port Arthur
Weihaiwei
Kiaochow
Pekin
Mukden
MANCHURIA
INNER MONGOLIA
OUTER MONGOLIA
Lake Baikal
B M
R Lena
R Yenisei
Mangazeya
R Ob
Novosibirsk
KzB
Stalinsk
Mountains
Altai
SIN KIANG
PAMIRS
KAZAKHSTAN
Magnitogorsk
Chkalov (Orenburg)
Caspian Sea
Aral Sea
Bokhara
Tashkent
Uz
Ki
Ta
Tu
PERSIA
AFGHANISTAN

स्थिति और गैर-रूसियों अथवा (लाल) हिन्दियों की परिवर्त्तनशील प्रतिरोधी शक्तियों के कारण बस्तियाँ वीरान प्रदेश में दन्तुर हुईं और जिह्वाकार में आगे बढ़ीं। रूस तथा अमेरिका दोनों देशों में सबसे अधिक कृषक ही जंगल तथा समतल के खानाबदोशों को खदेड़कर आगे बढ़े। गत शती में उत्तरी अमेरिका में सर्वप्रथम हल से चारागाहों को जोता गया। इस कारण भूमि का शोषण बहुत तेजी से बढ़ने लगा और यह अपरदन अब अव्वल दरजे की राष्ट्रीय समस्या बन गई है। किन्तु, रूस में यह सब गम्भीर, पर कम विनाशक रूप में हुआ, क्योंकि यहाँ विकास की गति कुछ मन्द थी और पिछले बारह वर्षों के पहले भूमि पर यन्त्रों का प्रयोग कुछ कम ही हुआ।

बहुत प्राचीन काल से ही रूस के शिकारी, मछुए तथा मधुपालक कृपकों से आगे रहे। समूर, शिकार मत्स्य, मधु एवं मोम से आच्छादन, भोजन तथा प्रकाश का काम चल जाता था। साथ ही, इन्हीं से करों का भुगतान हो जाता था रईसों के लिए विलास-सामग्री जुट जाती थी तथा प्रारम्भ में रूसी निर्यात के लिए प्रधान वस्तुएँ मिल जाती थीं। शिकारी तथा व्यापारी प्रायः वही होते थे। कभी-कभी ये नदियों में डकैती करते तथा लुटेरे सवार भी बन जाते थे। निश्चय ही, इन लफन्दरों की छोटी टोलियों के आखेट-क्षेत्र भी अनिश्चित थे और सदा बदलते रहते थे। देश विशाल था। लोग कम थे। वन्य जन्तु के स्थानान्तरण तथा आगे जो कुछ अशोषित पड़ा था, उसकी कहानियों पर ही इनका संचालन भी निर्भर था। संघर्ष, अर्थलिप्सा, साहस, फन्द और नैपुण्य का अभिमान, जाल, धनुष, डोंगी तथा कुठार ने मिलकर सीमा को पूर्व और उत्तर में आगे ढकेल दिया। कालान्तर में वॉल्गा के कनीय राजकुमारों ने तथा नवगोरोद के साहसी व्यापारियों ने मिलकर इस सीमा को बढ़ाने में और सहयोग दिया। दक्षिण की बात दूसरी रही। वहाँ स्टेपीज के तातार लोग मजबूत थे और रूसी सीमान्तवासी चिरकाल तक अपने बचाव में ही लगे रहे, किन्तु अन्ततः सोलहवीं शती में कजाक वहाँ भी पहुँच ही गये। वे कजाक रूस के सर्वप्रसिद्ध सीमान्तवासी शिकारी थे।

लकड़हारों ने अपने तरीके की एक नई ही अग्रसीमा निर्मित की। इस क्षेत्र में उन्होंने किसी हद तक केवल गत सौ वर्षों में ही दक्षता प्राप्त की। खनकों की सीमा और भी नूतन है और स्थान 1700 ई० के पूर्व की न हो सकेगी, जब महान् पीटर ने बहुत अंशों में एक नये लौह तथा ताम्र-उद्योग की स्थापना प्रधानतः उरल-प्रदेश में किया था एवं निश्चयात्मक ढग से साइबेरिया में स्वर्ण और रजत की खोज में आगे बढ़ा था। स्वर्ण-लिप्सा के कारण एक नये प्रकार की खनक-सीमा बनने लगी और इसका अपना विशेष इतिहास है। यद्यपि सोवियत विकास से संघ को दक्षिण अफ्रीका के बाद संसार में स्वर्ण का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक (देश) बना दिया है, फिर भी सोने का उतना महत्त्व नहीं रहा है, जितना कम मूल्यवाले धातुओं का। पीटर के समय से ही राज्य ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृपक दासों

और निर्वासितों को खनन-उपनिवेशों में बसाना आरम्भ किया। इन्हीं के कारण अट्ठारहवीं सती के यूरोप में रूस ही कच्चे लोहे का सबसे बड़ा उत्पादक बन गया। साथ ही, इन्होंने जंगलों को काटकर कोयला और कृषि का साधन बनाया और इस प्रकार बश्कीर तथा साइबेरिया की जनजातियों के जीवन को एक नया मोड़ दिया।

लोहे और कोयले ने मिलकर उपनिवेशों के बसाने में तब और भी अधिक सफलता दिलाई, जब उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में डोनेट कोयला-क्षेत्र तथा क्रिवोई रोग लौहधातुक क्षेत्र में बड़े पमाने पर कार्य होने लगे और उक्रेण तथा महारूसी कृपक नूतन खनक-ग्राम और औद्योगिक केन्द्रों में उमड़ पड़े। दक्षिण रूस के कोयला-क्षेत्र में दौड़ मच गई और भारी उद्योग खुलने लगे। अब तो गत बीस वर्षों में उनका विस्तार बहुत अधिक हो गया है। इसी प्रकार, अन्य स्थानों में भी गत सत्तर वर्षों में कोयला, लोहा, ताँबा, शीशा तथा तैलक्षेत्रों में कर्मकों ने तथा सोवियत-शासनकाल के अन्य कर्मकों ने नये प्रकार की खनन-सीमा का निर्माण किया और उपनिवेश-मानचित्र का रूप ही बदल दिया। सोवियत औद्योगीकरण बहुत तेजी से आगे बढ़ रहा है। सबसे अधिक सुदूर, उत्तर, उरल-क्षेत्र, कजकिस्तान तथा मध्य साइबेरिया के कुजनेटस्कद्रोणी में तो खनकों की सीमा में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हो गया। इन क्षेत्रों में विशालकाय उद्योग स्थापित होने के कारण सभी रूसी जनता बहुत बड़े पैमाने पर आपस में घुल-मिल जाती है।

ख : जंगल तथा स्टेपीज[1]

रूसी इतिहास के अधिकतर भाग का निबटारा पाँच महाक्षेत्रों या कटिबन्धों में हुआ है। ये क्षेत्र दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व तक फैले हैं। इन क्षेत्रों की भूमि निम्न है तथा कुछ अंशों में जलवायु भी समान हैं, किन्तु इनकी आर्द्रता, धरती तथा भौतिकी बनावट में महान् अन्तर है। सामान्यतः ये प्रदेश परस्परव्यापी हैं। ये एक दूसरे के साये में हैं तथा इनकी कोई स्पष्ट चिह्नित सीमा नहीं है। केवल प्रथम (कटिबन्ध) को छोड़कर ये प्रदेश न तो यूरोपियन हैं, न एशियाई, किन्तु दोनों के मिश्रण हैं। अतः, कुछ आधुनिक इतिहासकारों ने रूसी साम्राज्य या सोवियत संघ के विपुल भाग की एकता सूचित करने के लिए एक नये भौगोलिक शब्द का प्रयोग आरम्भ कर दिया है। वे उसे यूरेसिया के नाम से पुकारते हैं।

1. मिश्रवन कटिबन्ध—यह मिश्रित जंगल का कटिबन्ध है। इसमें पर्णपाती और शंकुवृक्ष, स्प्रूस तथा स्काट देवदारु, लार्च (एक बबूल-श्रेणी); भूर्जपत्र तथा अस्पेन, बलूत तथा जम्मीरी अखरोट तथा एल्म वृक्ष मिलते हैं। किन्तु, खास रूस

---

1. स्टेपी (Steppe) रूसी भाषा का शब्द है। यह एशिया तथा यूरोप के अग्निकोण पर विशाल विस्तीर्ण मैदान के लिए प्रयुक्त होता है, जो कृषि के काम में नहीं आता।

में बीच, यू (सदाहरित वृक्ष) या हाल्ली वृक्ष नहीं पाये जाते। यह अधिकांशत: तथाकथित भस्मी मिट्टी, भूरी बालू तथा निम्न श्रेणी की खादर मिट्टी का बना है। इसमें अनेक दलदल तथा झीलें हैं। यह कटिबन्ध एक प्रकार का विशाल त्रिभुज है, जो प्रिपेट दलदलों के दक्षिण भाग में है। इसे लडोगा-कजान झील कहते हैं। यही मास्कोवी का अन्त:स्थल बन गया।

2. शंकु जंगलों का कटिबन्ध—यह टुण्ड्रा के उतर में विस्तृत है। इस स्टेपीज का उत्तरी रूप कह सकते हैं। यह पूर्व में सैकड़ों मील प्रसान्त महासागर तक फैला है और भूमण्डल के चारों ओर घूमनेवाले मार्ग में एक-तिहाई भाग से अधिक है।

3. जंगली स्टेपीज या उद्यान-चारागाह स्टेपीज का कटिबन्ध–यह नगर तथा द्वितीय कटिबन्ध के दक्षिण है। यह स्प्रूस रेखा के दक्षिण है। जंगल और असल स्टेपीज के मध्य विस्तृत यह विवादयोग्य घासवाला एवं विना वृक्ष का मैदान है। यहाँ विभिन्न प्रकार की काली मिट्टी बहुत उर्वर है। अट्ठारहवीं शती तक इस क्षेत्र में आज की अपेक्षा वहुत अधिक वृक्ष थे। यह तुर्गनेव के उपन्यासों का प्रिय विन्यास था।

4. पंख-घास स्टेपीज कटिबन्ध—सौ वर्ष पूर्व हल-प्रयोग के पहले शुतुरमुर्गों के भूरे कलँगी के समान थह घास का मैदान चमकता था। यह कीव-खरकव-कूवीशेव (समर) साइबेरिया के पार दक्षिण में है। यहाँ की मिट्टी काली है। घाटियों तथा गहरी खोहों के सिवा यह सर्वत्र वृक्ष-रहित है। हरित-पीत समुद्र इस भूमि का आलिंगन करता है। यहाँ वसन्त ऋतु में कोटिपुष्प बिखरते हैं। हरित-समुद्र के समान विस्तृत चरागाह खिसकते-खिसकते क्षितिज तक पहुँच जाते हैं।

.5 चिरायता स्टेपी कटिबन्ध—यह कृष्णसागर के किनारे तंग भूमि है। पूर्व में क्षर स्टेपी और अन्तत: मध्य एशिया की रेत या प्रस्तर-मरु के रूप में यह छा गया है। ऊसर पशुशाला एवं अखरोट के पम्पाज और पीले तथा भूरे रंग की यहाँ की भूमि प्रधानत: सदा की तरह आज भी गड़ेरिये खानाबदोशों की सुरक्षित भूमि है।

गत सहस्र वर्षों में मनुष्य कुल्हाड़ा, आग और हल की सहायता से मिश्रित वन का स्वामी बन गया है। किन्तु, दलदल अभी शेष है। शंकुवृक्ष के जंगलों में उसने सुदूर तक प्रवेश पा लिया है। सत्रहवीं शती से उसने जंगली स्टेपी को हल चलाने के योग्य बना लिया है, किन्तु पंख-घास के स्टेपी को केवल गत शती में ही। विज्ञान की सहायता से अब वह ऊसर तथा अर्द्धमरु स्टेपी को वशीभूत करने ही वाला है। यह वशीकरण अभी पूर्ण नहीं हो पाया है। आस्ट्रेलिया, कनाडा या अमेरिका की प्रगति की अपेक्षा यह कुछ मन्द ही है। फिर भी, अबतक रूसी जनता की ये महान् ऐतिहासिक लब्धियाँ हैं। गत पचास वर्ष तक इनका भौतिक साधन दयनीय था, किन्तु आत्मबल विशाल। इनके विषय में सच्चे अभिमान के साथ लिखा

गया है—आप इनका कील-कांटा बना सकते हैं। इनसे अधिक मजबूत कोई कील कांटा नहीं हो सकेगा। आप इस जनता को किसी भी रूप में परिवर्त्तित कर सकते हैं; यथा कील, टैंक (फौजी मोटरगाड़ी) काव्य, जय।

१. मिश्रवन कटिबन्ध

महात्रिभुज का पश्चिमी भाग मिश्रवन का प्रदेश है। यह पश्चिम में प्रिपेट कच्छ के पार विश्चुला के क्षेत्र तक तथा दक्षिण-पश्चिम में कारपेथियन पर्वत तक जाता है। पहले यह पूर्वी स्लावों का केन्द्र था। कम-से-कम 1500 वर्ष पहले ये स्लाव डिंस्टर, डैनपियर, नारमेन, ड्वीना तथा वॉल्गा नदियों के ऊपरी तट पर जमे हुए थे तथा नरगोरद झील की ओर बढ़ रहे थे। जंगलों में जीवन बिताते हुए उन्होंने पशु-पालन तथा कृषि-दोनों को सफलता के साथ निबाहा, किन्तु शिकारी और मछुए के समान अर्द्ध खानाबदोश जीवन-यापन करते हुए भी वे जंगली न हुए। जमीन प्रायः ऊसर तथा ऊबड़-खाबड़ थी, जलवायु कठोर था। इनके औजार, कृषि-उपज तथा पशुपालन-पद्धति प्रारम्भिक अवस्था में थी, जिनपर जंगल, झाड़ और दलदल का प्रभाव था। अतः पूर्व दिशा की ओर जंगलों को जीतने में पूर्वी स्लावों की महान् उपनिवेशन-प्रगति, जो बहुत कुछ एल्ब और मेन नदियों से पूर्व की ओर होनेवाली जर्मनों की उसी प्रकार की प्रगति, जो बाद में दसवीं शती में पश्चिमी स्लावों के मूल्य पर शुरू हुई, की अपेक्षा काफी मन्द थी। स्लावों की आर्थिक व्यवस्था खूब फैलकर रहने की है। सुन्दर स्थली का जहाँ प्रायः अभाव है और स्वाभाविक निकास है। अतः, वे आगे खास कर नदियों के किनारे-किनारे बढ़ते गये और टोलियों में विभिन्न स्थलों में बसने लगे। शिकार तथा लोमश पशु की गति के सिवा कृषि की परिवर्त्तनशील प्रकृति ने गति को बढ़ावा दिया और जीवन-यापन के विस्तृत तरीकों की दीर्घ स्थिरता ने रूसियों में भूमि-प्रेम उत्पन्न किया, किन्तु यह भूमि-प्रेम किसी इस या उस भूमि-क्षेत्र से न था।

रूसी कीव-स्मोलेस्क-नवगोरद की मोटी रेखा से जंगली स्टेपी की ओर बढ़े। पूर्व में ओका तथा वॉल्गा नदियों की अन्तर्वेदी के मिश्रवन कटिबन्धों में ही विचरते रहे, किन्तु उत्तर की ओर उडोगा तथा ओमेगा झीलों के पार लात मारकर डोंगी चलाते हुए ये सघन देवदारु के जंगलों में पहुँचे। सन् 1000 ई० से राजनीतिक अवस्थाओं और कुछ हद तक ईसाई पादरियों ने, जो बाइजण्टियम से आये थे, उपनिवेशन की प्रगति को बढ़ावा देने लगे।

रूसियों द्वारा ईसाई धर्म ग्रहण करने के अतिरिक्त, ओका तथा वॉल्गा की अन्तर्वेदी का बसाया जाना 1000 ई० और 13वीं शती में होनेवाली मंगोल-विजय के बीच की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। आगे चलकर यही मास्कोवी का मर्मस्थल बना। पहले इस क्षेत्र में फिनिश जनजाति रहती थी। वे क्रमशः जीत लिये गये और वशंवद बना लिये गये या उन्हें मारकर बाहर भगा दिया गया। फिर भी, नदियों

MAP 3.
FOREST AND STEPPE.
I = Zone of mixed forest.
II = " " conifer forest.
III = " " wooded steppe.
IV = " " feather-grass steppe
V = " " arid steppe
Tv = Tver (Kalinin).
T-S = Troitsko-Sergievsky Monastery.
NN = Nizhni-Novgorod (Gorki).
Scale — English Miles
0 100 200 300 400 500
Tundra
Tundra
R. Pechora
R. Obi
White Sea
Solovetsky Monastery
Arkhangel
R. Dvina
Urals
II
II
Lake Onega
Perm
Lake Ladoga
Byelozero
Vyatka (Kirov)
Vologda
R. Kama
Novgorod
Yaroslavl
N.N
Kazan
III
I
R. Volga
T-S
Vladimir
Tv
Moscow
R. Oka
R. Dvina
Smolensk
Polotsk
R. Ural
III
IV
R. Niemen
I
Pripet Marshes
R. Volga
Kiev
R. Don
R. Donets
R. Dnieper
IV
Sarai
Lvov
III
R. Dniester
Cataracts
V
V
Carpathians
IV
Caspian Sea
Crimea
Caucasus
R. Danube
Black Sea
Constantinople

MAP 4.
THE STEPPE LANDS

Scale :— English Miles.

0 50 100 200 300 400 500
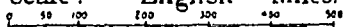
Dates of foundation or re-foundation are given in brackets.
Dates of conquest or cession are given without brackets.

— · — · — = Approximate lines of division between mixed forest, wooded steppe, and open steppe zones

xxxxxxxxxx = Main defence lines, with approximate dates of construction

SLOB. UKR. = SLOBODSKAYA UKRAINE.
KT. = KAZAN TARTARS
CH = CHUVASH
V.G. = VOLGA GERMANS.

तथा अन्य स्थानों के उन्हीं के द्वारा दिये गये नाम नक्शों में बहुत मिलेंगे। पूर्व में फीनिश मारडवा के साथ तथा वॉल्गा और कामा नदियों के संगम के इर्द-गिर्द सुदृढ़ मुस्लिम बल्गरों से भी जबरदस्त संघर्ष लगातार करना पड़ा। दक्षिण दिशा में स्टेपी की ओर खानाबदोशों के विरुद्ध प्रगति नहीं हो सकी। इसका खुलासा आगे हो जायगा। सन् 1237–40 ई० में होनेवाले मंगोल-आक्रमण ने स्टेपी की विजय पर मुहर लगा दी। आगामी दो शतियों तक रूसी मोटे तौर पर जंगलों में ही सीमित रहे।

ये बस्तियाँ हिम-सरिताओं द्वारा लाये गये कतवारों के प्रदेश में जमने लगीं। कुछ बस्तियाँ सुसिंचित निम्नभूमि में बसीं। कुछ नौका द्वारा झीलों या नदियों के तट पर जा बसीं, जहाँ मछलियाँ खूब मिलती थीं। कुछ लोग स्वाभाविक सुरम्य स्थली में, विशेषकर दक्षिण-पश्चिम में और पुनः कुछ ओका तथा वॉल्गा की अन्तर्वेदी में चले गये, जहाँ भूमि उर्वरा थी और कृषि की सुन्दर सुविधा थी। किन्तु, जंगलों से इनका घना सम्बन्ध सदा बना रहा। वहाँ से ये विभिन्न सामग्री प्राप्त करते रहे। यथा : मधुमक्खी, लोम, शिकार, विरोजा तथा काष्ठ। बस्तियाँ बिखरीं थीं। परिवार संयुक्त तथा विशाल था। सामान्यतः छोटी-छोटी झोपड़ियाँ ही मिलती थीं, न कि सघन ग्राम। कीव, स्मोलेंस्क, पोलोतस्क तथा नवगोरद नगरों की वृद्धि के कारण हैं–व्यापार, शुल्क या मुख्य नदी-मार्गों और तटों पर कटघरों के बांध के हेतु स्थान। प्राचीन काल से पूर्वी देशों के साथ व्यापार इन्हीं मार्गों से होता था, जो कृष्णसागर से ऊपरी वॉल्गा नदी के किनारे होते हुए बाल्टीक सागर तक पहुँचते थे।

नवीं शती में, जबकि पश्चिमी यूरोप तथा ब्रिटिश-द्वीपपुंज पर नौर्समेन धावा बोलकर विजय कर रहे थे इधर स्वीडेन के उनके विकिंग-सम्बन्धी बारंगी बाल्टीक तथा कृष्णसागर में नदियों के मार्ग से घुसकर रूस में कीव के स्वामी बन गये, जो उस समय अनेक जिलों का एक ढीला-ढाला समूह था और जिसका जनजातीय संगठन उस समय तक काफी हो चुका था। प्रायः सन् 1200 ई० तक व्यापार बढ़ा और खूब चला। इससे कीव-रूस की सांस्कृतिक और राजनीतिक उन्नति खूब तेजी से हुई। रूस सुदूर मार्ग से होनेवाले व्यापार के अलावा समूर, मोम, मधु, खाल, वसा, तथा दास बाहर भेजता था। इनके बदले वे पाते थे—विलास-सामग्री तथा शस्त्र, जो प्रत्यक्षतः समाज के केवल उच्च स्तर के लोगों के काम आता था। कीव-रूस का सम्बन्ध विदेशों से, खासकर बाइजेण्टाइन-साम्राज्य से होने के कारण, इस देश में ईसाई-धर्म, लेखन तथा कला का अभ्युदय हुआ, जिसका अन्ततः बहुत प्रभाव पड़ा। किन्तु, समृद्ध व्यापार और कीव के समान कुछ नगरों की चमक-दमक से आबादी के बहुसंख्यक लोगों की जीविका के प्रधान आधार कृषि और वन-जीवन में कोई परिवर्त्तन नहीं आया।

जलाये गये जंगल एवं झाड़ की खाक पर तथा जंगली चरागाहों के खुले मैदानों

में कृषि की प्रचलित प्रणाली थी अस्थायी तौर पर फसल उगाना। कुछ वर्षों तक लगातार खेती के बाद इन खेतों को या तो चौमास छोड़ दिया जाता था या पूर्ण-रूपेण बेकाम होने के लिए छोड़ देते थे, जिससे उनमें फिर से उर्वरता आ जाय। धीरे-धीरे सकोटर कुठार ने अपने पूर्वकुण्ठित कुल्हाड़े का स्थान ले लिया तथा हल-दण्ड का स्थान काष्ठनिर्मित, अश्वचालित कुलावा हल ने लिया, जो सन् 1000 ई० के आस-पास सामान्य बन गया। अन्ततः, सोलहवीं शती तक इससे बिना पहिये के काष्ठहल का विकास हुआ, जिसमें कोल्टर, चचक तथा लौह-फाल लगते थे। इसका क्रमिक विकास अनेक प्रकार से हुआ और गत शती तक सारे रूस के किसान कृष्ण मृत्तिका-क्षेत्र के बाहर) इसी प्रकार के हल का प्रयोग करते रहे।

पहले खेत तितर-बितर थे और यन्त्रकला प्रारम्भिक दशा में थी। किन्तु, सोलहवीं शती तक बड़े भूमिपतियों की रियासतों में सघन कृषि का प्रारम्भ दो या तीन खेतों के आधार पर होने लगा था। उनमें गोबर की खाद पड़ती थी और ये ग्राम केन्द्रबिन्दु बन गये। किन्तु सन् 1604—13 ई० के विपत्-काल के बाद खुली, तीन खेतवाली सामुदायिक प्रणाली पर खेती का विकास बड़ी तेजी से हुआ। हाँ, व्यक्ति के लिए छिटपुट खेती भी थी। मध्यकालीन पश्चिमी यूरोप की यही प्रणाली थी। और, रूस में भी यही प्रणाली क्रान्तिकाल तक बनी रही। राई (rye) प्रधान उपज थी। जव, जई तथा गेहूँ भी पैदा होते थे, किन्तु मिश्रवन-क्षेत्र का अन्न-उत्पादन अनिश्चित था। उत्तर-पश्चिम सदा आयात पर निर्भर था। जनसंख्या की वृद्धि होने पर इस सारे प्रदेश तथा उत्तरी भाग को जहाँ देवदारु के जंगल हैं, उपभोक्ता प्रान्तों के नाम से गत दो शतियों से पुकारा जाने लगा।

नवगोरद के आसपास तथा वॉल्गा के ऊपरी भाग में पटुआ और सन की खेती प्राचीन काल से होती थी। हस्तशिल्प भी इनपर निर्भर था। अतः धीरे-धीरे इनकी महत्ता बढ़ती गई। अट्ठारहवीं शती में यह रूसी निर्यात की प्रमुख वस्तुओं में आ गया और विशाल पैमाने पर इसके आधुनिक उद्योग का विकास हुआ। आधुनिक शतियों की अपेक्षा पहले, जबकि मस्कोवी दक्षिण में स्टेपी पर निर्भर था, पशुपालन का अधिक महत्त्व था; क्योंकि इनसे भारवाही पशु, खाल तथा वसा मिलती थी।

सोलहवीं शती तक बहुत जंगल काट दिये गये। अतः, उनसे लोम-प्राप्ति में कमी हो गई। तब भी कृषि के साथ उनका सदा की तरह चोली-दामन का सम्बन्ध बना रहा; क्योंकि इन्हीं जंगलों से सब प्रकार के औजारों तथा परिवहन के साधन प्राप्त होते थे। इनके सिवा ईन्धन, मकान बनाने की सामग्री, बिरोजा तथा अन्य उद्योग की समस्त सामग्री इन्हीं से मिलती थी। आगे चलकर ये उद्योग विशिष्ट ग्रामों में सीमित हो गये, जो केवल अर्द्धशती पहले तक काफी प्रसिद्ध और सम्पन्न थे। अतः प्राचीन काल से ही मिश्रवन कटिबन्ध के रूस का निर्माण विभिन्न आर्थिक

व्यवस्था के आधार पर हुआ है। मास्को में सूती कपड़ों के उद्योग की शीघ्र प्रगति तथा सन्त पीटर्सबर्ग की शिल्पकार्य के केन्द्र के रूप में परिणति बहुत बाद, नेपोलियन के युद्धकाल के समय से हुई। इस क्षेत्र के कर्मकों को उद्योगों में, जंगलों में और कालान्तर में कारखानों में सामयिक या स्थायी मजदूर का काम मिल जाता था, जो इनके लिए भूमि पर के काम का विकल्प अथवा नियमित सहायक काम होता था। अतः, मालिकों के प्रति की जानेवाली कर्मकों की श्रम-सेवाएँ स्वामियों के खेतों पर के काम की अपेक्षा अधिकांशतः लगान के विभिन्न रूपों में की जाने लगीं।

राजनीतिक दृष्टि से सन् 1237—40 ई० की मंगोल-विजय ने मिश्रवन कटिबन्ध को छिन्न-भिन्न कर दिया। इसने कीव-रूस का विघटन पूर्ण कर दिया, जो प्रायः गत एक सौ वर्षों से चला आ रहा था। कीव-प्रदेश बहुत बरबाद हो गया था। अतः, चिरकाल तक अगति की अवस्था में रहा और लिथुनिया में उसी प्रकार मिल गया, जिस प्रकार डाइनेपीयर के पश्चिमी राज्य इसमें आगामी शती में मिल गये थे। उत्तर की ओर नवगोरद के अल्पतन्त्री वणिक्-गणराज्य ने अपना व्यापारिक साम्राज्य उत्तर-पूर्व में फैलाया, यद्यपि वे गोल्डेन होर्ज (स्वर्ण-संघ) को कर देते थे। ये हैनसियाटिक संघ के साथ मिल-जुलकर पन्द्रहवीं शती के आरम्भ में चरम सीमा पर पहुँच गये। ओका तथा वॉल्गा के मध्य पूर्वी प्रदेश खान् के अधीन हो गये और चिरकाल तक परस्पर स्पर्धा से परेशान रहे।

मास्को का उल्लेख सर्वप्रथम सन् 1147 ई० में मिलता है। यह जागीर की चौकी थी। सन् 1325 ई० से यह खूब सशक्त होने लगा। महाराज कुमार इवन महान् (सन् 1462—1505 ई० : राज्यकाल) के राजत्व में इसने दोनों ओला-वॉल्गा राज्यों तथा नवगोरद के ऊपर अपना निश्चित शासन जमा लिया। नवगोरद-प्रदेश के उत्तर में देवदारु के महान् जंगल हैं। वहाँ मछलियाँ खूब होती हैं तथा अष्टभुज पशुलोम मिलते हैं।

२. शंकुवन-कटिबन्ध

सघन शंकुवनों का यह कटिबन्ध किसी भी खुले मैदान में अत्यन्त विरल है। भूमि अनुर्वर है और जलवायु अत्यन्त कठोर। ग्यारहवीं शती से ही रूसी इस प्रदेश को उपनिवेश के रूप में अपनाने लगे। जलमार्ग ने सुदूर पहुँचने में विशेष सहायता पहुँचाई। पहले ये व्यापार-कर वसूल करने के अड्डे थे। बढ़ते-बढ़ते वे क्षीरसागर, उत्तरी ड्वीना तथा उराल पर्वत तक चले गये। फीनिश तथा लाप जातियाँ इन प्रदेशों में छिटफुट बसी थीं। भरसक इन्होंने रुकावट डाली। कई स्थलों पर इनका दुर्दान्त प्रतिरोध हुआ, किन्तु अन्ततः ये घुल-मिल गये, जैसा कि दक्षिण में हुआ था। केवल वॉल्गा तथा ऊपरी कामा नदियों की अन्तर्वेदी में ये लोग रूसी

न बन सके, यद्यपि इनकी संख्या क्षीण होती गई। उत्तर के वन तथा झील॰ को तथा दक्षिण के प्रदेशों को पृथक् करने की कोई स्पष्ट रेखा न थी, किन्तु जलवायु तथा अन्य प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण केवल ड्वीना नदी के ऊपरी तटों को छोड़कर इस प्रदेश में कृषि गौण हो गई। धनी, वणिक्, जमीन्दार वीरों, और नवगोरद के नौजवानों को एकत्र किया जाता था और दृढ़ अनुभवी नाविक इनके अगुआ बनते थे। इन्हें लालच था—लोम, नकुल, मार्टेन, लोमड़ी (जितना ही उत्तर और पूर्व ये जाते थे, अच्छी नस्ल के ये पदार्थ बहुसख्या में मिलते थे) ऊदबिलाव, गिलहरी एवं ओटर का, जिनका मूल्य बहुत कम था; किन्तु सामान्य प्रयोग के लिए ये बहुमूल्य थे। (ऊदबिलाव तो सत्रहवीं शती तक ठीक स्टेपी के उत्तर रूस में सर्वत्र पाये जाते थे)। नीलसागर में मत्स्य, शील तथा तिमियों के आखेट-हेतु लोग छोटी-छोटी झोपड़ियाँ लगाकर तट पर बस गये। ये वहाँ से सुदूर नवगोरद को वालरसदन्त, तिमितैल तथा शीलचर्म भेजते थे। शीलचर्म का रस्सा तथा तसमा मजबूती के लिए प्रसिद्ध हैं। इन वस्तुओं के सिवा, लोम, बिरोजा, राल तथा सज्जी को नवगोरद से बाहर भेजा जाता था। हंसे के व्यापारी इन्हें पश्चिमी देशों में पहुँचाते थे।

समस्त क्षीरसागर-तट पर तथा अन्य स्थानों पर लवण ने एक नई सीमा खड़ी कर दी। पन्द्रहवीं शती से यह उद्योग खूब बढ़ा तथा दक्षिण की ओर इसका निर्यात खूब होने लगा। मुख्यतः, लवणदेव की ही कृपा से दो प्रमुख प्रतिस्पर्धी मठ इस क्षत्र में स्थापित हुए तथा सोलोवेत्स्की मठ सन् 1436 ई० तथा वालेइजीरो मठ सन् 1397 ई० में। धीरे-धीरे ये नमक-उद्योग के अर्द्ध-सरकारी केन्द्र बन गये तथा स्वीडेन से सुरक्षा के मोर्चे। उराल पर्वत की ओर उत्तर-पूर्व में स्ट्रोगनोव-वंश ने लवण का एकाधिकार प्राप्त कर लिया तथा दो-तीन पीढ़ी के बाद सन् 1851 ई० में साइबेरिया जीत लिया।

उत्तरी सीमा की इन विलक्षणताओं के कारण ही नवगोरद के धनी जमीन्दार और व्यापारी बहुसंख्या में आकर यहां बस गये। कालान्तर में विशाल मठ बने, जिनमें व्यय और वांछित संगठन की क्षमता थी। लोग खिसकते-खिसकते वोलोगदा तथा व्यत्का-क्षेत्रों में भी पहुँच गये; क्योंकि वहां प्रवसन की स्वतन्त्रता थी, वॉल्गा से आये राजकुमारों की अर्जित बस्तियाँ थीं तथा चौदहवीं और पन्द्रहवीं शती में गिरजाघरों का फैलाव लगातार उत्तर की ओर होने लगा था। यहां नवगोरद तथा मास्को की उदीयमान शक्ति में संघर्ष होने लगा। इसी समय यहाँ अर्द्ध-स्वतन्त्र समुदाय विकसित होने लगे, जो मौके पर दोनों को अँगूठा दिखा देते। महान् इवन ने सन् 1478 ई० में नवगोरद को पूर्ण वशीभूत कर लिया। अतः, नवगोरद का विषम उपनिवेश-साम्राज्य भी इसके अधीन हो गया। पुनः, उसने व्यत्का तथा ऊपरी

कामा के प्रदेशों को अधिकृत किया, जो अंशतः रूसी थे, किन्तु अधिकतर फीनिश-उग्रियन थे। उसने साइवेरिया के ओवी-द्रोण से व्यापार करने और कर वसूलने के लिए अनेक बार धावा किया।

आगामी दो सौ वर्षों तक, वॉल्गा नदी तथा लडोगा झील से क्षीरसागर तक उत्तर ने खूब समृद्धि की। इसकी महत्ता भी बढ़ गई। यह विकास मस्कोवी से एकदम विभिन्न रहा। अँगरेजों ने मस्कोवी तक क्षीरसागर-मार्ग का आविष्कार किया, जैसा रिचर्ड चांसलर की सन् 1553 ई० की यात्रा से स्पष्ट है। भयावह इवन आगामी २५ वर्षों तक पोल तथा स्वीडेन की रुकावट के कारण बाल्टिक सागर में प्रवेश करने में असफल रहा। अतः, उत्तरी ड्वीना मस्कोवी का फाटक बन गया। इंगलैण्ड तथा हॉलैण्ड के व्यापारी मस्कोवी तथा फारसी व्यापार के लिए आपस में प्रतिस्पर्धा करते थे। अतः, ड्वीन के ऊपर आरखेंजल (सन् 1585 ई० में स्थापित) से वोलोग्दा तथा वहाँ से मास्को का बड़ा मार्ग एक मुख्य धमनी बन गया।

सत्रहवीं शती की चुंगी-बहियों तथा उत्तरी नगरों के स्थापत्य के प्रस्फुटन (या विकास) से उनकी समृद्धि स्पष्ट टपकती है। उदाहरणतः, जहाँ मास्को जानेवाली सड़क वॉल्गा नदी पार करती है, वहीं यारोस्लावल के धनी नागरिकों ने उस शती के बहुत सुन्दर गिरजाघरों का निर्माण रूसी रीति से किया। आकृति में ये अनोखे हैं। इनकी ईंटें बहुत श्रम से (सुन्दर) बनी हैं तथा रंगीन खपरैलों की सजावट देखते ही बनती है। इनके भित्तिचित्र की प्रचुरता स्पष्ट है। बाइबिल के उच्च दृष्टान्त-चित्र तथा पश्चिमी सभ्यता के अन्य प्रभाव इस कला पर स्पष्ट हैं। महान् पीटर की सफलता के कारण उत्तर की अगति होने लगी। भयावह इवन इस क्षेत्र में सफलता न पा सका था, तब सन्त पीटर्सबर्ग तथा रीगा ने शीघ्र ही आरखेंजल का पतन कर दिया और उत्तर को लोग उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे।

उत्तर ने किसी बड़ी सीमा तक दासता की शृंखला का अनुभव न किया, जो केन्द्र में उसी समय लादी जा रही थी। अधिकांश जनता अपेक्षाकृत स्वतन्त्र कृषक थी। ये विभिन्न प्रकार से अपनी जीविका चलाते थे। इनकी सामाजिक संस्थाएँ पृथक् थीं। अतः, कुछ अंश तक इनकी स्वायत्त स्वतंत्रता बनी रही। कालान्तर में ये राज्य-कृषक के रूप में संघटित हुए। इनके ऊपर वे दबाव न पड़ सके, जिन्हें जमीन्दारों ने दासों पर लाद दिया था। अतः, इनके संघटन की शर्तें बहुत सरल थीं। विपत्काल के अन्तिम दिनों (सन् 1611–12 ई०) में उत्तर ने ही मस्कोवी के पुनः स्थापन में पूर्ण योग दिया। उत्तर से ही लोगों ने साइवेरिया को जीता और वहीं से लोग जाकर शुरू में साइवेरिया में बसे।

जिस समय पश्चिमी राष्ट्र सुदूर अमेरिका तथा वेस्ट इण्डीज में घुस रहे थे, उस समय

रूसवासी तेजी के साथ एशिया महादेश में फैल गये। इस काम को 50 वर्षों में ही पूरा करके इन्होंने एक शती पूर्व के स्पेनवासियों (के काम) को मात कर दिया। ये सदा आगे बढ़ते रहे। ये उदयाचल के पूर्व तक महान् जार अलेक्जेण्डर के मार्ग तक पहुँचे तथा सबसे ऊँचे कर्करोर पर्वत तक पहुँचे, जहाँ एकपाद और एकहस्त लोग रहते थे। साइबेरिया की विजय रूस द्वारा उत्तर के अनन्त वनों में प्रवेश की शृंखला है। ये वन उराल-पर्वतश्रेणी के पूर्व हैं जो विभाजित करनेवाले प्रतिरोध नहीं हैं। अट्ठारहवीं शती तक रूसवासी प्राय: जंगलों तथा टुण्ड्रा-प्रदेश में सीमित रहे, साइबेरिया के सुदूर पश्चिम को छोड़कर जहाँ काली मिट्टीवाले वन्य स्टेपी हैं, और जो उत्तर की ओर फन्नी फैलाये हुए हैं।

साइबेरिया के तातारों के अव्यवस्थित खाँ-कुनबों का यही मुख्य केन्द्र था। सन् 1581 ई० के पहले प्राय: सौ वर्षों तक इन्होंने कामा नदी से आगे मस्कोवी के अपरिवर्त्ती प्रसार को क्रम-क्रम से चुनौती दी और उसे नियमित कर दिया। बुखारा के अमीर का पुत्र कुचुम अन्तिम खान था। यह इस्लाम का जबरदस्त प्रचारक था। इसने स्ट्रोगनोव-वंश पर धावा बोल दिया, जिन्हें भयावह इवन ने उराल-सीमावर्त्ती प्रदेशों के व्यापारियों और करवाँ का स्वामी करार दिया था। इसका बदला चुकाने के लिए इन लोगों ने कजाक के एक भाग्यशाली सिपाही येरमक की सेवा में ले लिया, जो रूस के लोककाव्य का प्रसिद्ध नायक है। सन् 1581 ई० में इन्होंने उसे पूर्व-दिग्विजय के लिए भेजा, जिसमें समर करके या बिना समर के लूटना एवं कर वसूल करना था।

येरमक की साइबेरिया-विजय का यही उद्‌गम है। वह मनुष्यों का जन्मजात नेता था और शीघ्र ही उसे अपूर्व सफलता मिली। किन्तु, लोगों ने उसे घेर लिया और सन् 1585 ई० में डुबा दिया। अब स्ट्रोगनोवावालों को उसकी प्रारम्भिक सफलता को सुदृढ़ करने में कठिनाई होने लगी; क्योंकि इनके साधन सीमित थे। मस्कोवी-सरकार पहले तो हिचकिचाई, किन्तु अन्ततः इसने सैन्य-संचालन अपने हाथ में लिया और अनेक सुयोजित अभियानों के बाद उराल-पर्वतमार्ग को सुरक्षित कर लिया, साइबेरिया के तातारों को कुचल दिया और पश्चिमी साइबेरिया को जीत लिया। कुचुम अन्धा हो गया था। लोगों ने उसका साथ छोड़ दिया। वह दक्षिण की ओर भाग गया (सन् 1598 ई०) और स्टेपी में ही मर गया। आगामी 70 वर्षों तक इसके वंशज रूस के मर्मस्थल पर काँटे के समान चुभते रहे। ये तातार, बश्कीर तथा दूसरों को उभाड़ते रहते थे कि वे बगावत करें, जिससे उनका पुराना कुनबा फिर जीवित हो। किन्तु, रूस के लिए साइबेरियन स्टेपी में दखल करने में सबसे अधिक बाधक थे कजाक और कालमूक।

खैर, रूसी जंगल चाहते थे, न कि स्टेपी। लोम का आकर्षण अब भी था। नकुल का पीछा करते-करते ये आगे बढ़े। मानदियों के मार्ग से तथा तटों से ये मानगजेया(सन् 1600 ई० का पोटोसी का साइबेरियन रूप), येनेसी (सन् 1607 ई०),

लीना (सन् 1632 ई०) होते हुए ये एकदम उतर-पूर्व में तथा प्रशान्त महासागर (सन् 1640 ई० के लगभग) पहुँचे, जहाँ बारहसिंघा और कुत्ता पालनेवाली जातियों को अभी तक पीतल या लोहे का ज्ञान न था। केवल बैकाल झील के आसपास रूसवालों को मंगोलिया के बौद्ध बरयातों के घोर प्रतिरोध का सामना करना पड़ा और आमूर-क्षेत्र में ही उनकी जाति को निश्चित रुकावट मिली। यहीं पर पहले-पहल इन्हें एक सभ्य शक्ति की सुव्यवस्थित ठोस सेना से पाला पड़ा। यह था चीन-साम्राज्य, जिसके नये शासक थे मंचु-निग-वंश के राजा। यहीं पर पहले-पहल इन्हें विपक्ष में आग्नेयास्त्र का सामना करना पड़ा। आमूर-क्षेत्र में 25 वर्षों तक भगोड़े निडर होकर खोज करते और उपनिवेश बसाते रहे तथा चीनी सेना से रह-रहकर भयावह युद्ध चलता रहा। तब सन् 1689 ई० में रूस और चीन के बीच प्रथम सन्धि हो गई। आमूर चीन के अधिकार में रहा और जंगली निर्जन स्तानोवी पहाड़ियाँ 170 वर्षों तक दोनों देशों के बीच सीमा बनी रहीं। इनके जो सीमा-स्तम्भ खड़े किये गये, पाँच भाषाओं में लिखे गये : यथा चीन, रूसी, मंचु, मंगोल तथा लातीन। चीनी मध्यस्थ (अगुआ) के साथ एक जेसुयिट पादरी था। चीन ने रूस को केवल रोका ही नहीं, बल्कि उसने रूस को एक राष्ट्रीय पेय भी दिया। 50 वर्ष पहले ही (सन् 1638 ई०) चाय साइबेरिया होते हुए रूस पहुँच चुकी थी।

एशियाई जंगली प्रदेशों की चकित करनेवाली शीघ्र विजय के छह प्रमुख कारण हैं—1. रूसियों की किसी नई भौतिक या जलवायु की परिस्थितियों से विशेष अभ्यस्त न होना पड़ा। रूस का इनका अपना उत्तरी भाग सारतः समान था और शतियों से ये जलमार्ग के प्रयोग में निपुण थे; 2. इनकी विजय-सेना में कुछ सौ ही जवान होते थे, किन्तु इनके अस्त्र और औज़ार, विशेषतः आग्नेयास्त्र, विशिष्ट थे, यद्यपि ये भद्दे थे। कज़ाकों की विभिन्न श्रेणियों को काबू में लाना सरल न था, किन्तु सीमा को आगे बढ़ाने में इन्होंने अद्भुत कार्य किया; 3. उत्तरी एशिया में लोग अल्पसंख्या में थे। वे प्रायः छिटफुट रूप में आदिम तथा आपस में शत्रुता बरतनेवाली शिकारी जातियों में रहते थे। अतः कुछ हद तक रूस की सेना में भरती होकर आपस में लड़ने को तैयार हो जाते थे; 4. मस्कोवी तथा यूरोप में लोम की माँग बढ़ती ही जाती थी, अतः लोग अच्छे चमड़े और प्रचुर सामग्री की खोज में सुदूर पूर्व की ओर बढ़ते गये; 5. रूसी वीर कनाडा में फ्रांसीसियों के समान प्राणों की आहुति देने में तत्पर थे। उनमें अदम्य उत्साह, शक्ति और सहनशीलता थी। विजय के साथ साहस, धैर्य, लुण्ठन-वृत्ति तथा नृशंसता भी लगी रहती थी और 6. इन सबके साथ-साथ मास्को-सरकार भी घोर यत्न करती थी कि किस प्रकार सीमान्त दृढ़ हो। येनेसी नदी के पूर्व तो रूस का विस्तार केवल स्थानीय लोगों के प्रयत्न का फ़ल है किन्तु अन्ततः इस स्थल पर सुदूर केन्द्रीय सरकार से सशस्त्र सेना की सहायता

पहुँच गई। नदी-मार्गों में बाड़े के स्तम्भ क्रमशः सुरक्षित होने लगे और शासन सुदृढ़ होने लगा।

शासन तथा न्याय-व्यवस्था एक ही पुरुष के जिम्मे था, यद्यपि चुंगी पर, जिसका अर्थ था प्रधानतः लोम का व्यापार, इसका कोई अधिकार न था। सत्रहवीं शती में उच्च अधिकारी केवल अल्पकाल के लिए नियुक्त होते थे। वे बहुत लोलुप और क्रूर होते थे। केन्द्रीय नियन्त्रण मास्को का साइबेरिया-विभाग रखता था, जो जहाँ-तक सम्भव था, नौकरशाही सिद्धान्त के अनुसार कार्य करता था, जैसा अन्य विभागों में होता था। सन् 1711 ई० के बाद पश्चिमी साइबेरिया का एक महा शासक (गवर्नर जनरल) नियुक्त हुआ तथा पूर्वी साइबेरिया के लिए दूसरा। किन्तु पहले सुदूर शासन के लिए अनेक प्रशासनिक जिले थे और उनका सम्बन्ध सीधे मास्को से था। राजधानी के इस नियन्त्रण की गति अवश्य ही मन्द हो जाती थी। अनेक रूपों में यह प्रभावहीन हो जाता था। किन्तु, साइबेरिया-विभाग ने स्थानीय अधिकारियों को नियन्त्रण में रखने के लिए कुछ उठा नहीं रखा और अनेक प्रकार के विनियमों को लाद दिया। किन्तु इससे प्रजापीडन कम न हुआ। विभिन्न अधिकारी मिलजुल-कर स्वार्थ-सिद्धि के लिए आदेशों को टाल देते थे, यद्यपि ये अधिकारी एक दूसरे पर निगाह रखने के लिए बहाल किये गये थे। यह आश्चर्य की बात है कि मस्कोवी-सरकार विजय तथा वास की प्रथम शती में दृढ़ता के साथ शासन और व्यवस्था करने में सफल रही। मास्को ने सरकारी व्यवस्था के आधार को दृढ़ किया, जिससे भविष्य में आर्थिक और वैज्ञानिक विकास हो सके। अट्ठारहवीं शती के प्रारम्भ से ही राज्य द्वारा पोषित या प्रत्यक्षतः राज्य द्वारा आरम्भ किये गये अन्वेषण का विकास वैज्ञानिक पद्धति से होने लगा। सोवियतों को उत्तरी ध्रुव के अन्वेषण में महती सफलता मिली है। इसके पीछे 200 वर्षों का निर्भीक श्रम तथा रूस द्वारा आयोजित विजयाभियान है।

सत्रहवीं शती में साइबेरिया का लोम-व्यापार फ्रांसीसी कनाडा से बढ़-चढ़कर था। मस्कोवी-सरकार के लिए लोम राजस्व तथा निर्यात का अचूत स्रोत था। अतः, सरकार की नीति थी कि लोम-व्यापार पर कड़ा नियन्त्रण रहे। गैर रूसियों पर लोम-कर अधिक लगाया जाय तथा वैयक्तिक व्यापार पूर्ण रहे। नियम बहुत पेचीदे थे तथा सदा बदलते रहते थे। लोग इन नियमों का उल्लंघन भी खूब करते थे। देशी लोग प्रायः धनुष-बाण से शिकार करते थे, रूसी फन्दे एवं जाल से। उत्तरी ध्रुव की पिछड़ी जातियों के लिए रूस से टक्कर लेना उसी प्रकार घातक सिद्ध हुआ, जिस प्रकार रेड इण्डियन जनता (लाल हिन्दुस्तानी) को अमेरिका के साथ टकराने से। एक ओर मास्को आदेशों का ढेर लगा देता था कि उन्हें जार की राज्य-सीमा से बाहर न भगाया जाय, तो दूसरी ओर अन्य आदेशों का ताँता था, जिनका सारांश था

कि जनसंख्या तथा पेशे के मुताबिक उतना लोम-कर वसूल किया जाय, जितना सम्भव हो। निःसन्देह स्थानीय अधिकारी इससे खूब लाभ उठाते थे। जो ईसाई-धर्म स्वीकार कर लेते, उन्हें लोम-कर नहीं देना पड़ता था। अतः, साइबेरिया में चिरकाल तक सनातन गिरजाघरों द्वारा धर्म-परिवर्त्तन-कार्यों को प्रोत्साहन न मिल सका। सनातन गिरजाघर केवल रूसवालों के लिए थे। अतः, लोम-कर की प्रणाली पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा।

प्राचीन काल से साइबेरिया में और रूस में प्रथा चली आ रही थी कि देशवासियों (यसाक) से वार्षिक लगान लोम के रूप में लिया जाय। राज्य को लोम से प्राप्त होनेवाला राजस्व इसी प्रकार मिल जाता था। इसके अलावा रूसी शिकारियों तथा व्यापारियों से उनके द्वारा संगृहीत लोम का दशांश राज्य-सरकार कर के रूप में लेती थी। राज्य को पूर्वक्रय का भी अधिकार था। राज्य ने लोम-व्यापार का एकाधिकार अपने हाथ न लिया, यद्यपि रेशम और कवियर (एक स्वादिष्ट भोजन) पर सरकार का एकाधिकार था। सन् 1700 ई० के लगभग चीन तथा अन्य एशियाई देशों के साथ लोम-व्यापार पर राज्य का एकाधिकार करने का यत्न किया गया। सत्रहवीं शती के मध्य में लोम-व्यापार अपनी चोटी पर था। उस समय राज्य के लोम-राजस्व का तिगुना व्यापार निजी व्यक्तियों के हाथ था। साइबेरिया में वैयक्तिक व्यापार केवल रूसियों के हाथ था। विदेशियों को इस व्यापार से कड़ाई के साथ वंचित रखा जाता था। तो भी, मस्कोवी राजस्व के लिए लोम-प्रधान था और भ्रष्टाचार एवं तस्कर-व्यापार के बावजूद राज्य को अच्छे वर्ष में कुल आय की दस प्रतिशत से अधिक आमदनी लोम से ही हो जाती थी; क्योंकि यसाक-नियम, दशांश तथा पूर्वक्रय इन सबका ध्येय था कि राज्य को सर्वोत्तम लोम मिले, खास कर नकुल। लोम-राजस्व के सिवा साइबेरिया से अन्य राजस्व भी आता था। शासन-प्रबन्ध में जो व्यय होता था, उसकी अपेक्षा लोम-राजस्व से आय बहुत ज्यादा थी। यह सामान्य आँकड़ों से पता चल जाता है। साइबेरिया से प्राप्त लोम के लगभग 4/5 भाग का निर्यात होता था (वे आरकँजेल तथा नवगोरद से यूरोप के हौलेण्ड और जर्मनी देशों में पहुँचते थे)।

सन् 1700 ई० के लगभग लोम-व्यापार के परम मूल्य और आपेक्षिक मूल्य दोनों बहुत घट गये और राज्य का लोम-स्वार्थ प्रधानतः चीन के बाजार में केन्द्रित हो गया। यूरोप में उत्तरी अमेरिकन लोम-प्रतियोगिता से गहरा धक्का पहुँचा और साइबेरियन लोम का स्वर्ण-दिन अस्त होने लगा। इस तरह अट्ठारहवीं शती में लोम का व्यापार अपनी प्रधानता खो चुका था। येनेसी नदी के पश्चिम में तब लोम-सीमा पर कृषक और खनक बस चुके थे। सन् 1700 ई० में साइबेरिया में 3, 30,000 से अधिक रूसी थे, जहाँ अमेरिका के तेरह उपनिवेशों में (2, 50,000 से 3,00,000)

ढाई लाख से तीन लाख तक ही लोग थे। इससे अर्द्धशती पूर्व (सन् 1662 ई० में) सरकारी आँकड़े, चाहे उनका जो भी मूल्य हो, के अनुसार इस क्षेत्र में 70,000 लोग रहते थे। महान् पीटर के समय से राज्य ने खनिज-विकास की ओर विशेष ध्यान दिया तथा संगठित रूप में स्वर्ण और रजत की खोज और उपयोग को आगे बढ़ाया, यद्यपि साइबेरिया में स्वर्ण का दौर उन्नीसवीं शती के पूर्व शुरू न हो सका।

सन् 1767 ई० में बिना रोक-टोक के गैर-रूसियों के साथ वैयक्तिक व्यापार की अनुमति मिल गई। इसी के बाद सर्वप्रथम पश्चिमी ढाँचे पर व्यापारिक कम्पनियाँ बनने लगीं। इन कम्पनियों ने लोम और लाह की सीमा प्रशान्त महासागर की ओर बढ़ाने का यत्न किया। विलक्षण साहसी वणिकों और सामुद्रिक कप्तानों के समूह ने रूसी अमेरिकन कम्पनी चलाई, जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अनुरूप थी। इसने रूसी साम्राज्य का नया जाल बेरिंग जलडमरूमध्य के पार अलास्का और उत्तरी अमेरिका-तट तक फैलाया। सन् 1820 ई० तक रूस की फारी दक्षिण में सानफ्रांसिस्को तक पहुँच गई। ये रूसी हवाई द्वीप-पुंज में भी क्रियाशील थे। अतः, ऐसा प्रतीत होता था, मानों उत्तरी प्रशान्त महासागर रूस की एक झील बन जायगा तथा उत्तरी अमेरिका को संयुक्त राष्ट्र, ब्रिटेन तथा रूस आपस में बाँट लेंगे। किन्तु, अमेरिका और ब्रिटेन के दबाव पड़ने पर रूसी शासन अलास्का में खिसक आया। यह सौदा बहुत महँगा पड़ा और अन्ततः सन् 1867 ई० में रूस ने अलास्का को संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के हाथ बेच दिया।

हिमाच्छादित प्रशान्त तट पर रूसियों की संख्या बहुत कम थी तथा यह रूस से बहुत दूर भी था। इनके फैलने की सच्ची रेखा थी आमूर नदी का उर्वर एवं परिवर्त्तनशील क्षेत्र। इसी क्षेत्र में सन् 1689 ई० से ही वे रोक दिये गये थे। टैपिंग-विप्लव के काल में चीनी शासन बहुत ढीला पड़ गया। इधर रूस को एक विशालबुद्धि एपची मूरावियोव अमूरस्की मिल गया। अतः, रूस ने आमूर नदी के समस्त उत्तरी तट और ब्लाडीवोस्टक तक के सारे तट-प्रदेश को सन् 1860 ई० में अधिकृत किया। यह कजाक, अग्रगामी कृषक, खनक तथा कबाड़ियों के लिए विशाल नूतन सीमा थी। इधर साइबेरिया ने अपना रूप ही बदल दिया। अब उसका जीवन-निर्वाह उत्तरी विशाल जंगल पर निर्भर न था, बल्कि दक्षिण के कृष्णमृत्तिकावाले स्टेपी-प्रदेश से संलग्न हो गया।

३. स्टेपीज :

यह पहले कहा जा चुका है कि स्टेपीज विभिन्न प्रकार के हैं और इनके तीन प्रमुख कटिबन्ध हैं, किन्तु इनका इतिहास इतना मिला-जुला है कि उसका एक साथ ही वर्णन करना अच्छा होगा (मानचित्र ३ और ४ देखें)।

स्टेपीज के तथा पूर्वी स्लाव के पूर्वजों के इतिहास का वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है। किन्तु, ध्यान देने की बात है कि कीव-रूस का उदय नवी से बारहवीं शती के मध्य एक महान् राज्य के रूप में हुआ, जिसका श्रेय केवल वरांगियन के युद्ध के नेताओं को ही नहीं है, यह अन्तेज तथा पूर्वी स्लावों के चिरविकास का भी फल है। यह विकास मध्य डाइनेपियर नदी के प्रदेश में विशेष रूप से हुआ।

इसके पश्चिमी किनारे पर प्राचीन काल से चरागाह और आखेट-भूमि का गलियारा फैलते हुए दक्षिण रूस को पार कर ग्रीक-जगत् में पहुँच जाता है। प्राय: दो सहस्र वर्षों से इस क्षेत्र में ईरानी, तुरानी तथा अन्य खानाबदोश जातियाँ बसती थीं। ये जातियाँ अटिला के हूणों के समान जंगली और बर्बर न थीं। चार शतियों में (सन् ८०० ई० के पहले) स्लावों ने जंगली स्टेपी-प्रदेशों के पश्चिमी भाग पर अपना आधिपत्य फैलाया और आगे पूर्व की ओर घुसे। नवीं शती से कीव-रूस के उदीयमान शक्ति ने अपना हाथ-पैर फैलाना शुरू किया। वरांगियन राजकुमार शीघ्र ही स्लाव बन गये और लड़ाकू-दल के साथ कीव-रूस का नेतृत्व करने लगे। इन्होंने बैजन्टाइन-साम्राज्य से लोहा लेना शुरू किया और कृष्णसागर का व्यापार अपने हाथ में कर लिया। इसके सिवा इन्होंने स्टेपीज की दो संगठित शक्तिशाली शक्तियों--खजर तथा वॉल्गा-बलगरों--को चुनौती दी।

खजर लोग इस्लाम तथा यहूदी-धर्म के एक समान मतावलम्बी थे। वे ईसाई-धर्म के प्रति सहिष्णु थे। ये बैजनटाइन तथा पूर्वी देशों से साथ व्यापार करते थे। ये निम्न वॉल्गा तथा दोन नदियों के तट पर बसते थे। सातवीं तथा आठवीं शतियों में ये अपनी पराकाष्ठा पर थे। ये समस्त दक्षिणी स्टेपी-भूमि पर नियन्त्रण रखते तथा सुदूर दक्षिणी स्लाव-वंशों के आधिपत्य की भी घोषणा करते थे। कम-से-कम भाषा की दृष्टि से बलगर आधुनिक चुवाशों के बन्धु कहे जा सकते हैं। बलगर सातवीं शती में ही डैनूब-तट पर पहुँच गये थे। वॉल्गा और कामा नदियों के संगम पर इनका मुख्य अड्डा था। खजरों के समान इनमें से कुछ तो बस्तियों में रहते और कुछ पशुओं को चराते हुए खानाबदोश जीवन बिताते थे। दसवीं शती से ये मुसलमान बनने लगे। ये वॉल्गा के व्यापार-मार्ग से दूर अपनी जीविका चलाते थे तथा ओका, मध्य वॉल्गा तथा उरल पर्वत के बीच मिश्रवन तथा स्टेपी-प्रदेशों के अधिवासी फीनिश और तातारों से कर वसूल करते थे। दसवीं शती में खजर-राज्य एक नई जंगली और खानाबदोश जाति के आक्रमण के कारण धराशायी हो गया। ये थे पेचेनेग, जो पहले रूस के करद थे। किन्तु, बलगर कबीले को रूसी आक्रमण से उतनी क्षति न हुई। तेरहवीं शती में मंगोल-विजय तक इसने अपने अस्तित्व को कायम रखा।

रूसवाले कीव को केन्द्र बनाकर स्टेपीज पर धावा बोलते थे। कीव स्वयं ही मिश्रवन तथा जंगली स्टेपी की सीमा पर है। प्रसिद्ध राजकुमार स्वयतोस्लव (मृत्यु

972 ई०) तेंदुआ के समान इनपर टूट पड़ा। डैनूब तथा कुस्तुन्तुनिया से ये युद्ध के लिए निकलते थे और कास्पियन सागर तथा मध्य वॉल्गा तक पहुँच जाते थे। ये डाइनेपियर-कृष्णसागर डैनूब के स्टेपी-साम्राज्य के नमूने पर एक स्लाव-राज्य स्थापित करना चाहते थे। अगली एक शती तक रूसी अभियान कीव से निकलते रहे और प्रायः सफल भी हुए। इससे वैजनटियम तक नदी-मार्ग साफ हो गया तथा पूर्व की ओर स्टेपी का रास्ता खुल गया। इसके बाद कृष्णसागर के स्टेपीज में अन्तिम तुर्की नवागन्तुक पोलोवत्सी आये, जिनके प्रतिकूल इन्हें कम ही सफलता मिली।

रूसवालों ने कभी स्थायी विजय प्राप्त न की। कुछ अपवादों को छोड़कर इनके बसाये उपनिवेश कीव के पूर्व और दक्षिण में डेढ़ सौ मील के इर्द-गिर्द झूलते रहे। पोलोवत्सी तथा अन्य खानाबदोश जातियों के साथ इनका सम्बन्ध कभी शान्तिपूर्ण और कभी शत्रुतापूर्ण हो जाता था। इनमें कुछ परस्पर विवाह भी हो जाता था। इन ध्वस्त कबीलों को सीमान्त-रक्षक के रूप में भरती कर लिया जाता था। ये व्यापार खूब करते थे। जैसे-जैसे रूसी स्टेपी की ओर बढ़ते गये, समान परिस्थितियों के कारण इन्होंने भी उसी प्रकार का जीवन अपना लिया। अन्ततः, जब मंगोलों ने आक्रमण किया, तब रूसी और पोलोवत्सी दोनों ने मिलकर इन्हें रोकने की चेष्टा की।

सन् 1125 ई० के बाद रूसियों को अपने बचाव की ही पड़ी रही। वैजनटियम[1] के व्यापार का राजमार्ग बहुत डरावना हो गया था। प्रथम धर्मयुद्ध[2] (सन् 1095–99 ई०) के फलस्वरूप वैजनटाइन का व्यापार उत्तर से हटने लगा। स्टेपी की सीमा पर रूसी बहुत कम थे। उत्तरवासी दाक्षिणात्यों से बहुत कम सम्पर्क रखते थे। दक्षिण की फारियाँ खतरे से खाली न थीं। यह सम्भव है कि डाइनेपियर के पश्चिम स्टेपीज को रूसी सदा के लिए अपना लेते, किन्तु रूसी राज्यों के आन्तरिक कलह के कारण ऐसा न हो सका। सन् 1169 ई० में व्लाडिमिर के राजकुमार एण्ड्रयू बोगोल्वूवस्की ने कीव को लूट लिया। यह व्लाडिमिर ओका-वॉल्गा नदियों के बीच सुदूर उत्तर-पूर्व की भूमि है। इससे दक्षिणी स्टेपीज पर उत्तरीय स्लावों की रुचि स्पष्टतः फीकी पड़ने लगी। सत्तर वर्ष बाद इनका घोर बदला लिया गया। बातू की युद्ध-सेना ने कीव की अपेक्षा अधिक बर्बरतापूर्वक और वास्तव में तीन साल (सन् 1237–38 ई०) पहले ही मेसोपोटानियाँ को मटियामेट कर दिया।

---

1. वेजण्ट एक सोने का सिक्का था, जो कुस्तुन्तुनिया में सर्वप्रथम ढाला गया था। बैजनटाइना, पूर्वी या ग्रीक-साम्राज्य सन् 395 से 1453 ई० तक रहा। कुस्तुन्तुनिया इसकी राजधानी थी। स्यात् इसका सम्बन्ध विजयन्त से है।

2. क्रूसेड शब्द क्रॉस + से बना है। यह वीर सैनिकों का झुण्ड था। इनके झण्डे पर क्रॉस का चिह्न था। इनका उद्देश्य था तुर्की से ईसाइयों की पवित्र भूमि को स्वतन्त्र करना।

मंगोल-विजय का यह अर्थ था कि रूसी पराजित होकर दास बन जायँ और मिश्रवन कटिबन्ध में पुनः चले जायँ। दो शतियों तक सीमान्त वस्तियाँ जरा-सा भी दक्षिण की ओर नहीं हट सकीं। ये दोन नदी के उद्गमस्थान तथा ओका नदी के मध्य जंगली स्टेपीज के खतरनाक किनारों पर ही सीमित रह गईं। गोल्डेन होर्ड की भित्ति सैनिक शक्ति थी। गड़ेरियों के शिष्टजन ही इनका राज्य सँभालते थे। इनमें पोलोवत्सी तथा दूसरे तुर्की खानाबदोश अधिक थे। चंगेज खाँ (मृत्यु 1227 ई०) के वंशज गोल्डेन फेमिली (स्वर्णवंश) के अगुवा थे। तेरहवीं शती के अन्त में ये मुसलमान बन गये, किन्तु इनमें धार्मिक सहिष्णुता बनी रही। इन्होंने स्थायी कृषकों और निपुण शिल्पकारों को भरती किया। इन्होंने एजोबसागर के मार्ग द्वारा जेनोआ तक दूरव्यापी व्यापार को प्रोत्साहित किया। इन्होंने सामन्त लोगों से कर वसूलना आरम्भ किया। इन सामन्तों में रूसी भी थे। खान की शक्ति का केन्द्र था निम्न वॉल्गा। उसका साम्राज्य समस्त यूरेशिया के खानाबदोश स्टेपीज में विस्तृत था, जो डेनिस्टर से अरल सागर तक और उरल से काकेशश पर्वत तक फैले थे। इसके सिवा कर वसूल कर, लूट-पाट कर तथा रूसी और अन्य राजकुमारों को अपनी प्रजा बनाकर वह मिश्रवन कटिबन्ध के पूर्वार्द्ध पर नियन्त्रण रखता था।

गोल्डेन होर्ड (स्वर्णमय झुण्ड) में मंगोलों की संख्या बहुत कम थी। चंगेज खाँ के साम्राज्य के दूरवर्ती मौलिक केन्द्र मगोलिया से इसका नाता धीरे-धीरे टूटता गया। किन्तु, मंगोलसाम्राज्य के दो समीपी शाखा, फारस और मध्य एशिया से आर्थिक, सांस्कृतिक और सैनिक दृष्टि से इसका सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ था। अतः, यह होर्ड रूसवालों के लिए पूर्वी सभ्यता तथा रिवाजों की एक प्रकार से मध्यवर्त्ती कड़ी था। इस दिशा में यह दक्षिण स्टेपीज में अपने पूर्ववर्त्तियों का अनुगामी था। रूसी जीवन पर कुछ पूर्वीय प्रभाव—यथा सैनिक साज-सामान, रिवाज, आभूषण तथा सजावट में, मंगोल-विजय के बहुत पूर्व से चले आ रहे थे। उसने इस होर्ड से जो कुछ सीखा, वह विभिन्न भौतिक वस्तुओं तथा प्रणालियों तक सीमित रहा, यद्यपि सैनिक और राज्य-संगठन पर तातारी प्रभाव भी पड़े विना न रहा। दर्शन, साहित्य तथा लोक-गाथा पर मंगोल-काल में इस्फहान या वगदाद का कम ही प्रभाव पड़ा। मुस्लिम-सभ्यता की मध्यवर्त्ती कड़ी के रूप में स्पेन के मूरों की तुलना में तातार नहीं उतर सके।

गोल्डन होर्ड (स्वर्णमय झुण्ड) ने और जो भी उपलब्ध किया हो, किन्तु वह मंगोल द्वारा स्थापित शान्ति चिरकाल तक न तो रूसी प्रदेश को और न स्टेपी भूमि को दे सके, जैसा कुछ लोगों ने मान लिया है। खानाबदोशों की स्वाभाविक घटना थी कि स्थायी ढंग से काम करनेवाले नगरवासी तथा कृषक हीन होते हैं, अपने खानावदोश स्वामी के

आजीवन दास होते हैं और सदा उसी के लाभ के लिए मिहनत करते हैं। शक्ति के लिए गृहयुद्ध तथा खासकर फारस (ईराण)[1] के साथ वहियुद्ध सदा चलता रहा। सन् 1359 ई० के बाद 20 वर्षों में चौदह खान हुए। उत्तराधिकार-युद्ध से होर्ड (कबीला) को बहुत क्षति हुई। उच्च श्रेणी के लोग प्रायः युद्ध और शिकार से जीवन बिताते थे। शिकार में दासों के ऊपर धावा बोलना भी शामिल था। जब केन्द्रीय शक्ति बलहीन होती, जैसा प्रायः होता था, तब तातारों के स्वच्छन्द लूट को रोकना असम्भव था।

तातारों की दासता सचमुच दासता थी, यद्यपि इसका फल केवल विनाशकारी या निषेधार्थक न था। रूसी लोग तातारों को शतियों से जानी दुश्मन के रूप में याद करते थे। उनका विजेता व्लाडिमीर राजकुमार न था, वल्कि स्वतन्त्र किसान वीर इल्या मुरोमेट्स था, जो तातार-समूह पर टूट पड़ता, घोड़े के पांवों के नीचे तातारों को रौंद डालता तथा भाले से धर्महीन को भोंक डालता।

कर मुख्य दायित्व था। तातार-अधिकारियों ने प्रथम पीढ़ी में ही शुल्क को खूब अच्छी तरह संगठित कर दिया था। तब उन्होंने मुस्लिम सौदागरों को उसे वसूल करने का ठीका दे दिया। फिर, यह शुल्क महाराजकुमार द्वारा वसूल होने लगा, आखिर में मास्को के महाराजकुमार द्वारा, किन्तु तातार-दूतों की सहायता से। महाराजकुमार को उपाधि खान देता था। अतः, उसे खान के पास अभिषेक के लिए जाना पड़ता था। इसके विपक्षी अपने प्रदेशों में उसी प्रकार खान के इर्द-गिर्द चक्कर काटते रहते और युद्धाभियानों में प्रायः खान की सेवा करते थे। विद्रोह या विरोध होने पर राजकुमार सुदूर मस्कोवी तक धावा बोल देते थे। डेढ़ सौ वर्षों में (सन् 1259–1408 ई०) कम-से-कम इनके दस धावे हुए। ये तातार ईसाईयों को सदा घास के समान काट डालते थे। कुछ रूसी राजकुमार सहायता देते या उसकाते भी थे।

किन्तु, दो बार ऐसा न हो सका। सन् 1378 ई० में सर्वप्रथम महा-आक्रमण विफल कर दिया गया और तातर ओका नदी पार न कर सके। दो साल बाद दमित्रा दंसकोय, जो मास्को का राजकुमार था, ममाई को कुलिकोवो में हराया। यह ओका के ठीक दक्षिण है। यहां जमकर युद्ध हुआ था, जो रूसी युद्ध-परम्परा में सदा प्रसिद्ध है। यह पराजय ममाई के लिए, न कि तातारों के लिए निर्णायक थी। सन् 1382 ई० में उन्होंने सफल प्रतिद्वन्द्वी तोखतम्यश के नेतृत्व में उत्तर से फिर झपट्टा मारा। मास्को-प्रदेश के अधिकांश को बरबाद कर डाला। नगर को अधिकृत कर लिया, यद्यपि इसके चारों ओर पत्थर का नया किला था, और पुनः शुल्क लाद दिया। दमित्री दंसकोय ने नहीं, किन्तु तमरलेन, लंगड़े तैमूर ने गोल्डेन होर्ड की शक्ति को बरबाद कर दिया,

1. सरकारी घोषणा के अनुसार अब फारस का नाम ईराण हो गया है।

जो चंगेज खाँ (सन् 1395 ई०) के बाद सबसे भारी विजेता हुआ। उसमानी तुर्कों को तो कुछ काल के लिए ही तैमूर ने चित कर दिया था (सन् 1402 ई०), किन्तु गोल्डेन होर्ड की कमर ही टूट गई और वह फिर नहीं उठ सका।

सन् 1450 ई० के करीब जब उसमानी तुर्क कुस्तुन्तुनिया को जीत रहे थे, होर्ड तीन विरोधी कुनबों में बँट गया, यथा—अस्ट्रखान, कजान तथा क्रिमिया। कुछ काल के बाद नोगाई दल वॉल्गा के पूर्व खुले स्टेपीज में सर्वोपरि हो गया तथा साइबेरियन तातार का कुनबा उरल पर्वत के पूर्व स्थापित हो गया। विभाजन के साथ आनेवाले इस मतभेद से महान् इवन ने लाभ उठाया। उसने कर देना बन्द कर दिया तथा सन् 1480 ई० में स्वतन्त्र बन बैठा। जंगल से स्टेपीज में महान् मस्कोवी-प्रसार की यह भूमिका थी। किन्तु, गोल्डेन होर्ड के विध्वंस से कोई विशेष लाभ न हुआ। तातारों के आक्रमण का ताँता बढ़ता ही गया, खास कर कजान की ओर से।

अब रूसी कजान के तातारों के विरुद्ध वॉल्गा नदी के निम्न तट की ओर बढ़ने लगे, न कि डॉन नदी की ओर। ये तातार बहुत पास थे और इन्हीं से अधिक खतरा था, न कि क्रिमिया के तातारों से, जो सुदूर दक्षिण में थे और जिनपर आक्रमण करना कठिन था। भयानक इवन ने अन्ततः सन् 1552 ई० में कजान पर अधिकार कर लिया। इनके कुनबे को मिला लिया गया। मास्को इसके लिए प्रायः एक शती तक यत्न करता रहा। कुछ तो युद्ध द्वारा परास्त हुए और कुछ सहायक तातार खान बना दिये गये। इस प्रकार, हम देखते हैं कि पन्द्रहवीं शती के मध्य से ही रूसी और तातारों के सम्मिश्रण की नीति झलकती है। विद्रोही तातार राजकुमारों को जागीर दे दी जाती थी तथा उन्हें सीमान्त-सेवा में ले लिया जाता था। तातारों को तथा अन्य पूर्वी जातियों को पचाने की यह नीति सदा से रूस का मुख्य ध्येय रहा है।

कजान की विजय बहुत लम्बी और खर्चीली पड़ी। किन्तु, इसकी विजय होते ही रूस ने वॉल्गा के निम्न तट तक सहसा दखल कर लिया और अस्ट्रखान को सन् 1556 ई० में सरलता से हथिया लिया। अब वॉल्गा के व्यापार-मार्ग का सम्पन्न रिवन मास्कोवी के हाथ लगा। यह टेढ़ा-मेढ़ा जलमार्ग स्टेपीज होकर गुजरता था, किन्तु यह स्टेपीज की सर्वकुंजी न था। उस्मानी-साम्राज्य ने अपने सामन्त क्रिमिया के तातारों के साथ चुनौती दी और कुछ दिनों तक नई विजय को (सन् 1569 ई०) खतरे में डाल दिया तथा दूसरी डैनूब नदी के समान वॉल्गा से एक नया मार्ग खोल दिया। किन्तु, यह चुनौती चिरस्थायी न रह सकी; क्योंकि तातारों तथा तुर्कों में अनबन थी। सन् 1571 ई० में लेपान्तो ने भी क्रिमिया के तातारों का साथ दिया। यद्यपि इन्होंने इसी वर्ष आक्रमण किया और मास्को को भस्मसात् कर दिया, किसी तरह इन्होंने वॉल्गा की भूमि की अपेक्षा दोन नदी स्टेपीज पर दावा किया।

किनारों पर सुदृढ सीमा-चौकियों का निर्माण कर मास्कोवी ने बड़े व्यापार-मार्ग को हथियाना शुरू किया। निझनी-नवगोरद (गोर्की) तथा अस्ट्रखान के मध्य अनेक चौकियाँ बनीं, यथा—समर (कुइवेशन), सरातोव तथा जरीवस्टीन (स्तालिन गार्ड)। वॉल्गा के तट पर कजाकों ने मिलकर कभी सिर न उठाया, जैसा कि वे दोन के तट पर करते थे। किन्तु सन् 1800 ई० तक यह कजाक-दलों की सुन्दर आखेट-भूमि तथा शरणस्थल बना रहा। यहाँ अनेक जलदस्यु थे तथा नदी के ऊपरी भाग में अनेक दरिद्र चक्कर काटते रहते थे। ये किसी समय भी भड़क सकते थे और स्टेन्का रेजिन तथा पुगाचोव के विद्रोह इन्हीं के चलते हुए। नोगाई तातारों, जो ढीले ढंग से संगठित थे, के सदा आक्रमण के कारण स्थायी उपनिवेश को बहुत धक्का लगता था। सत्रहवीं शती के शुरू के खानाबदोश नवागन्तुक तथा अधिक सुदृढ रूप से संगठित मंगोलिया के बौद्ध कालमुक और मध्य उरल पर्वत के बश्कीर खानाबदोश मुसलमान अट्ठारहवीं शती के अन्त तक रूसी आधिपत्य के विरुद्ध लड़ते रहे। कजान के तातार वॉल्गा के बलगरों के उत्तराधिकारी थे। उनकी भूमि भी उसी प्रकार सम्मिश्रित थी। इसमें अनेक तातार और फीनिश मिश्रवन तथा मध्य वॉल्गा के सीमान्त स्टेपीज में रहते थे। इन्हें भी मिलाने या अधीन करने में बहुत समय लगा। रूसी उपनिवेशक इनकी मुख्य नदियों की घाटियों को सन् 1650 ई० के पूर्व अच्छी तरह नहीं जीत सके थे।

विजय के डेढ़ सौ वर्ष के बाद तक भी रूस की सुरक्षा-रेखाएँ जो सुरक्षित उपनिवेशन की सीमाएँ निश्चित करती थीं समर (कुइवेशन) के अक्षांश से अधिक दक्षिण न बढ़ सकीं। वॉल्गा के पूर्व में भी अधिक दक्षिण की ओर न जा सकीं। मोटे तौर पर जंगली स्टेपी ही इसकी दक्षिणी सीमा रही। इसके आगे जंगली मैदान था। अट्ठारहवीं शती से (सन् 1725 ई० के बाद) बश्कीर भी डटकर स्थायी जीवन बिताने लगे। उरल में तथा नये सुरक्षा-सीमान्त पर नये खनिज तथा धातु के कारखाने पनपने लगे, जहाँ बश्कीर, कजाक तथा मध्य एशिया के स्टेपीज एक दूसरे से अलग होते हैं। पुगाचोव (सन् 1773–75 ई०) का जो भयानक विद्रोह हुआ, उसमें उरल तथा समस्त-वॉल्गा प्रदेश में निझनी-नवगोरद (गोर्की) तक आग भड़क उठी। किन्तु यह विद्रोह क्षणिक रहा। शती के अन्त होते-होते वॉल्गा तथा उरल के मध्य की सारी कृष्णभूमिवाले स्टेपीज कृषि के योग्य बना लिये गये और कर्म्मी (कमिया) रखनेवाले किसान इसके स्वामी बन बैठे।

इसके और दक्षिण में सारातोव के निम्नभाग में कृषि-उपनिवेशन अधिक सफल न हो सका; क्योंकि न तो सिंचाई का प्रबन्ध था और न सूखी भूमि में खेती करने का इन्तजाम। स्टेपीज की इस ऊसर भूमि में अखरोट खूब होता था। यह वॉल्गा के निम्न-तट तक अर्द्ध मरुस्थल से संलग्न था। जर्मन-कृषक ही यहाँ खूब सफलतापूर्वक बस सके।

महती कैथरीन ने इन्हें विशेष सुविधा देकर आकृष्ट किया और सन् 1914 ई० तक चार लाख जर्मन झुण्ड में आकर इस स्टेपीज में बस गये। ये सदा जर्मन बने रहे, हालांकि जर्मनी से, या रूस के जर्मन-वर्ग, बाल्टिक तट के जर्मन-भूमिपतियों से इनका सम्बन्ध कम ही रहा, कम-से-कम गत बीस वर्षों तक। प्रथम विश्वयुद्ध में उन सभी को पूर्व में भगा देने की धमकी दी गई। द्वितीय विश्वयुद्ध में वे सचमुच भगा दिये गये। वॉल्गा-तट के जर्मनों का सोवियत-गणराज्य स्तालिनगार्ड-महायुद्ध के एक वर्ष पहले ही समाप्त हो गया।

वॉल्गा के पश्चिम दोन और डैनिपियर की निम्नघाटियों में भी यही विशेषता रही। खानाबदोश जीवन के प्रतिकूल संघर्ष चलता रहा। क्रिमिया के तातार ही इसमें अधिक थे। अब मस्कोवी को पश्चिम के सुगठित राज्य पोलैण्ड से तथा उस्मानी-साम्राज्य की शक्ति से मुकाबला करना पड़ा; क्योंकि सन् 1475 ई०से क्रिमिया उस्मानी साम्राज्य का करद था। यहाँ पर वॉल्गा के सदृश कोई समृद्ध व्यापार-मार्ग न था, जिसे मस्कोवी-सरकार हड़प ले। इसके हड़पने के कारण थे स्वच्छन्द कजाक, जो दोन नदी के तट पर फैलकर सन् 1600 ई० से ही इसकी निम्नघाटियों में अपना केन्द्र बना रहे थे और मास्को से अर्द्ध स्वतन्त्र थे। साथ ही, पोलैण्ड की सामाजिक परिस्थिति ने उक्रेन के अग्र-शिकारियों को इस वीरान भूमि में आकर बसने के लिए उत्प्रेरित किया। ये ही डैनिपियर के निम्न भाग में जपोरोभियन कजाक कहलाये, जो दोन के कजाक के सदृश थे। जो भी इनके मार्ग में रोड़ा डालता, उसे वे कुत्ते के समान खदेड़ते थे।

क्रिमिया-कुनबा पशुचारी तातारों का सुगठित प्रदेश था, जहाँ कृषि, शिल्प तथा व्यापार खूब होता था। यद्यपि इनकी संख्या बहुत बताई जाती है, तथापि सत्रहवीं शती में यह 30,000 अश्ववार से किसी भी हालत में अधिक नहीं हो सकती थी। किन्तु, कालान्तर में यह संख्या घटती गई। तातार-खान सेना की कमी अपनी गतिशीलता एवं समरतन्त्र से पूरा कर लेते थे। इस बात से उनकी स्थिति काफी अच्छी थी; क्योंकि इनका लक्ष्य शत्रु को हराना नहीं था। ये यथासम्भव युद्ध टालना चाहते थे। उनका लक्ष्य था दास तथा माल को लूटना।

सत्रह वर्ष के अन्दर (सन् 1521–91 ई०) इन्होंने चार बार ओका के उत्तर मस्कोवी के अन्त:स्थल पर उसी प्रकार धावा किया, जिस प्रकार बन्दर अपने शिकार पर टूट पड़ता है और सन् 1571 ई० में मास्को को ही स्वाहा कर दिया। किन्तु, सन् 1591 ई०के बाद ये ओका नदी पार न कर सके और धीरे-धीरे उत्तर में इनका प्रवेश कम होने लगा। खान के नेतृत्व में भारी संख्या में अभियान विरल होने लगे। अब असली खतरा

भटकते हुए डाकुओं से था। ये कुछ १०० के लगभग थे। ये सीमा पर जंगली जीवन बिताते थे। समय पाते ही बाज के समान झपट्टा मारते और पुनः सुरक्षा-स्थान पर आ जाते। सन् 1676–79ई० में ओरेल के सिपाही को इस प्रकार की छोटी-मोटी घटनाओं की 107 सूचनाएँ मिलीं। महान् पीटर के समय तक खरकोव-क्षेत्र में सन् 1710 ई० और सन् 1718 ई० के मध्य प्रायः प्रतिवर्ष आक्रमण होते रहते थे। एक वर्ष की लूट में तातार 14,000 बन्दी बना ले गये। यह संख्या सन्दिग्ध रूप से अधिक लगती है।

क्रिमिया के तातार तीन शतियों तक रूसी तथा पोलों के समान शत्रु रहे। इसके कारण हैं—उनका सैनिक संगठन, दूरी तथा उनकी मदद करनेवाली तुर्कों की शक्ति तथा उनका कभी तो रूस का साथ देना, कभी पोलों का तथा कभी जपोरोझियन कजाक के साथ मिलकर एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध करना। रूस की सैनिक शक्ति तातारों से तभी बढ़ी, जब इनके आग्नेयास्त्र संख्या और गुण में बढ़-चढ़ गये। यह विशिष्टता भी केवल वन-प्रदेश, दुर्गापहरण तथा कोट की रक्षा में ही काम देती थी, न कि विरल खुले स्टेपीज में, उसी प्रकार, जिस प्रकार अमेरिका में पशुचारी बड़े मैदानों में अश्ववार इण्डियन का पार न पाते थे, जबतक उनके पास पिस्तौल न हुए।

क्रिमिया ओका से सीधे 650 मील दूर है। सवार के रास्ते और भी दूर पड़ेगा। अन्तिम 300 मील की यात्रा पंख, घास तथा चिरायता के स्टेपीज से होकर करनी होती थी, जहाँ जल तथा अन्न बहुत कठिनता से मिलते थे। पोलों ने कभी इस क्षेत्र को विजय करने की चेष्टा न की। मध्य सोलहवीं शती में रूसियों ने कजान और अस्त्रखान को दखल कर क्रिमिया का सत्यानाश करना चाहा, किन्तु भयावह इवन दूरी के कारण इधर से मुख मोड़कर बाल्टिक की ओर बढ़ा।

जबतक रूस की सीमा जंगली स्टेपीज तक नहीं पहुँची, तबतक वे आक्रमण को छोड़कर अपने बचाव में लगे रहे। तब भी सन् 1687 ई० और सन् 1689 ई० में उन्होंने डोनेट तथा क्रिमिया के मध्य विस्तृत खुले मैदान में रसद पहुँचाने में बहुत बुरी तरह से मुँह की खाये। पचास वर्ष बाद (सन् 1736-38 ई०) वे सफलतापूर्वक तातारों के गढ़ तक पहुँच गये। तातारों ने अपनी सम्पत्ति में आग लगाने के समरतन्त्र से आगे बढ़कर बहुत कम प्रतिरोध प्रदर्शित किया। उन्होंने भारी क्षति उठाई; यद्यपि रूसी सेनापति को भी अपनी आधी सेना से, बीमारी के कारण, हाथ धोना पड़ा। प्रथम तुर्की-युद्ध (सन् 1768–74 ई०) में महती कैथरीन की सफलता ने इस कुनबे का अन्त सदा के लिए कर दिया। क्रिमिया गृहकलह का शिकार हो गया और सन् 1783 ई० में उसने स्वयं ही रूसी शासन के सामने समर्पण कर दिया।

रूस कैस्पियन सागर की अपेक्षा कृष्णसागर की ओर धीरे-धीरे किन्तु सफलता के साथ बढ़ा; क्योंकि सामयिक पशुचारी खानाबदोशों को दूर भगाकर लोग लगातार बसते जाते थे। सन् 1500 ई० से जंगली स्टेपी की उत्तरी सीमा पर सदा तातारों और दक्षिण की ओर बढ़नेवाले रूसी सीमान्तवासियों में रगड़ शुरू हुई। वे दक्षिण की कुमारी कृष्णमृत्तिका की छाती पर हल चलाना चाहते थे। ये केन्द्रीय मस्कोवी के किसानों का आवाहन करते थे; क्योंकि भूस्वामी तथा राज्य की ओर से इन किसानों को यातनाएँ सहनी पड़ती थीं। किन्तु, जबतक वे कजाक न हो जायँ, राज्य से उन्हें छुटकारा नहीं मिल सकता था और राज्य-संरक्षण उनके लिए आवश्यक था।

सोलहवीं शती में मस्कोवी-सरकार ने सुरक्षा के लिए श्रम से चतुर्विध प्रणाली बनाई। आदि में इसका उद्देश्य था कि तातार ओका नदी पार न करने पायें, किन्तु साथ ही उपनिवेश के लिए सुरक्षा भी हो। सरकार ने सैनिकों का दुर्ग बना दिया, जो किलों में रहकर उपनिवेश की देखरेख करते थे और उसी शती के अन्तिम बीस साल में सीमा की सुरक्षा में अतीव सफलता हुई। ये बस्तियाँ दोन या ओका की उपशाखाओं के तट पर बसती गईं। इन नदियों में तब छोटी नौका चल सकती थी। घाटियाँ जंगलों से भरी थीं। खुले मैदान की अपेक्षा यहाँ सुरक्षा का प्रबन्ध अच्छी तरह हो सकता था; क्योंकि लकड़ी आसानी से मिलती थी। आगामी 20 वर्षों (सन् 1600-20 ई०) में आपत्तिकाल के कारण सारी सीमा कजाक की हो गई और दुर्व्यवस्था फैल गई। सन् 1633 ई० के बाद ही सुरक्षा का उत्तम प्रबन्ध किया जा सका और लोग नियमित रूप से आगे बढ़ने लगे। सैनिक अड्डे और भी बने तथा आधुनिक उक्रेन की उत्तरी सीमा पर, वोरोनेझ के उत्तर-पूर्व तम्बोव तथा वॉल्गा के तट पर सिमबीर्स्क तक वाइलगोरद की सुरक्षा-सीमा बनी।

सीमान्त चिरकाल तक सेना के अधीन रहा। राज्य ने इसे काबू में रखने तथा रचने का भरसक यत्न किया। यहाँ के लिए अस्त्र तथा घोड़े उतने ही आवश्यक थे जितने हल और कुल्हाड़ा। यहाँ के बाशिन्दे कुछ तो स्वेच्छापूर्वक आकर बसे थे और कुछ जबरदस्ती लाकर बसाये गये थे। ये लोग विभिन्न प्रकार के थे। सैनिक केन्द्रों के स्थान तथा मकान बढ़ते-बढ़ते बाद में महानगर हो गये। यथा : कुर्स्क ओरेल या वोरोनेझ। केन्द्रीय शासन ने इन नगरों का आयोजन प्राय: एक ही ढांचे पर सूक्ष्म रीति से किया। सरकार ने निर्माण तथा सीमा-सुरक्षा के हेतु अनेक आदेश दिये (जंगलों में वृक्षों को गिराकर आड़ किया जाय तथा वृक्षों की शाखाएँ शत्रु की ओर रखी जायँ। खुले मैदान में मिट्टी तथा काठ के घेरे बनाये जायँ तथा स्थान-स्थान पर दुर्ग और गढ़ बनें)। नये बाशिन्दों के लिए विशेष सुविधाएँ तथा बन्धन भी थे।

अनेक आदेश, रक्षा-व्यवस्था कैसे की जाय और तातार-आक्रमण से कैसे बचा जाय आदि से सम्बद्ध थे। इनमें अनेक आदेश तो रद्दी की टोकरी में चले जाते। इन्हें न कोई मानता था और न व्यवहार में लाता था। अज्ञान या भूल के कारण इनसे कभी-कभी बेशुमार आशा की जाती थी। यथा : अस्थायी या स्थायी सेवा एवं सैनिक सेवा के लिए सतत दान, प्राय: दूरवर्त्ती कोनों से भी। किन्तु, टाल-मटोल करते रहने, भागने या विद्रोह करने पर भी मास्को की नौकरशाही तथा स्थानीय अधिकारियों ने दक्षिण के वीर किसानों की सहायता से इन नियमों को कड़ाई तथा धीरता के साथ पालन किया। अन्तत:, सफलता मिली तथा जंगली स्टेपी को जीत लिया गया।

सन् 1650 ई० के बाद मस्कोवी-सीमा पर एक नई शक्ति ही उमड़ रही थी। उक्रेन-वासी पोलों पर टूट पड़े और मास्को की ओर बढ़े। शुरू के उक्रेन-आप्रवासियों को हम पाँच भागों में बाँट सकते हैं। ये मध्य डोनेट-प्रदेश में भूमि लेकर बस गये। इन्होंने खरकोव बसाया और उसके चारों ओर दुर्ग बनाया। इन्होंने अन्य नगरों को भी बसाया तथा आगे बढ़ने की नई रक्षा-सीमा तैयार की। इन्हें विशेष सुविधाएँ प्राप्त थीं। ये बिना कर दिये हुए शराब चुला सकते थे तथा मधुशाला खोल सकते थे। अट्ठारहवीं शती के अन्त तक इन्हें अपने स्लोबोदस्कय उक्रेन में (तुलनात्मक रूप में) आन्तरिक स्वतन्त्रता मिल गई थी। स्वतन्त्र उक्रेन पश्चिम में लघु रूसी प्रदेशों से मिल गया है। वामभाग उक्रेन डैनिपियर के बायें तट पर था। बाध्य होकर पोलों ने इसे मास्को के अधीन (सन् 1667 ई०) मान लिया। सैनिक बस्तियों के बाद असैनिक कृषक, व्यापारी तथा शिल्पी बसे, जिनके पास कुछ सम्पत्ति थी। महारूस की अपेक्षा उक्रेन का उपनिवेश राज्य पर बहुत कम निर्भर था। उत्तर की ओर खारकोव उक्रेनी तथा महारूसी चिरकाल तक विलग रहे, किन्तु अट्ठारहवीं शती से वे आपस में घुलने-मिलने लगे। दक्षिण की बात दूसरी थी। ठोस उक्रेनी उपनिवेश डटा रहा और खुले स्टेपी में फैल गया। महारूसी प्रवेश केवल गत 60 वर्षों से ही वहाँ बृहत् पैमाने पर होने लगा, जब उद्योग तथा खनिज का विकास हुआ।

डोनेट से डैनिपियर तक जंगल और पंख-घास के स्टेपीज की सीमा पर उक्रेन की सन् 1730 ई० की सीमा बनी, जो आखरी किलाबन्दी थी। उस समय तक स्लोबोदस्कय उक्रेन में चार लाख से कम आबादी न थी। इसका सैनिक रूप सीमान्त-प्रदेश के रूप में कम सर्वव्यापी था। उत्तर की ओर सीमान्त परिस्थितियाँ प्राचीन काल के चिह्न-मात्र थे। सामान्य जन कृषक हो चुके थे। दक्षिण की ओर अमीर अपने दासों तथा तीन-फसली प्रणाली के साथ बढ़ते जाते थे और इन्हें हड़पते चले जाते थे।

चालीस वर्ष बाद (सन् 1774 ई०) रूसी कृष्णसागर तक पहुँच गये और डैनिपियर, दोन तथा कूबन नदियों के मुहानों पर नियन्त्रण करने लगे। जपोरोभियन कजाक तितर-बितर कर दिये गये और उन्हें उखाड़कर बसाया गया (सन् 1775 ई०)। क्रिमिया रूस के हाथ चला गया (सन् 1783 ई०)। पचास वर्षों के भीतर तुर्क लोग तीसरी बार बुरी तरह पिट गये (सन् 1787–92 ई०)। उन्हें डैनिपीयर तथा डैनिस्टर नदियों के मध्यतटीय स्टेपीज रूस को सौंपना पड़ा।

अब कृष्णसागर के खुले स्टेपीज (नये रूस) की सीमा हो गये। कृष्णमृत्तिका का जंगली स्टेपीज बहुत ही उर्वर है। इसके जंगल काट दिये गये थे। इसका विकास हुआ और यह दासों तथा अन्न उपजाने की सुन्दर सुरम्य भूमि बन गई। यहाँ महारूस के भूस्वामियों ने भारी जागीर ले ली। उक्रेनी अधिकारियों ने भी इनका अनुकरण किया और वे कम्मीं रखनेवाले अमीर हो गये। पोलैण्ड के भूस्वामियों ने भी अपनी प्रतिष्ठा और कम्मियों को बनाये रखा, जब पोलैण्ड के द्वितीय बँटवारे (सन् 1793 ई०) में डैनिपियर के दक्षिण का भाग उक्रेन रूस को मिल गया।

पोतेम्किन महती कैथेरीन का प्रिय महाशासक (गवर्नर जनरल) था। उसकी देखरेख में तथा उसके योग्य उत्तराधिकारियों के काल में नूतन रूस की खूब उन्नति हुई। यह बड़ी जागीरों का देश था। पहले यहाँ खूब भेड़ें होती थी, पुनः गेहूँ होने लगा। यहाँ यत्र-तत्र स्वतन्त्र किसान तथा राज्य-कृषक थे। यहाँ तुलनात्मक रूप में कम्मीं कम थे, किन्तु भाड़े के सामयिक मजदूर खूब थे। आधुनिक ओडेसा की स्थापना सन् 1794 ई० में हुई। रिचलू ड्यूक के आदेश से पहले यहाँ ग्रीस, इटली तथा अन्य दक्षिण प्रदेशों से लोग आकर बसे। कुछ फ्रांसीसी आगन्तुकों के कारण तथा स्वतन्त्र बन्दरगाह होने के कारण यह स्थान चमक उठा। यह नूतन रूस का प्रमुख व्यापार-केन्द्र हो गया। यहाँ से तथा अन्य बन्दरगाहों से गेहूँ का निर्यात होने लगा।

मोल्डावियनों के सिवा, जर्मन, यूनानी, बलगेरियन आदि अनेक विदेशी इस भूमि पर आकर लगातार बसने लगे। अतः, कृष्णसागर के ये स्टेपीज बहुभाषी क्षेत्र हो गये। अट्ठारहवीं शती के तृतीय पाद में ही सरकार ने आस्ट्रिया के स्लावों और जर्मनों को इस सीमा पर बसाने की व्यर्थ चेष्टा की थी। किन्तु, कालान्तर में इसकी उपनिवेश-नीति सफल हुई। देश का विकास हुआ। इसकी आर्थिक दशा खासकर दक्षिणी बेसरबिया में बहुविध रूप में सुधर गई, जिसे तुर्की से रूस ने सन् 1812 ई० में जीत लिया था। जर्मनों, लुथेन या मेनोनाइटीज ने खासकर ठोस एवं उन्नत उपनिवेश बसाये, किन्तु वे विलग रहे, जैसे वॉल्गा के तट पर थे। इन्होंने न तो उक्रेन के किसानों पर ही अपना प्रभाव डाला और न दूसरों का ही उनके ऊपर कुछ

प्रभाव पड़ा। हाँ, खेती के तरीकों पर इनका थोड़ा प्रभाव अवश्य पड़ा। उक्रेन के किसान इस द्वीप के चारों ओर बसे थे।

उन्नीसवीं शती के मध्य तक नूतन रूस की आबादी 22,50,000 और सन् 1900 ई० तक साठ लाख से अधिक हो गई। यदि बेसरबिया तथा दोन को सम्मिलित किया जाय, तो यह संख्या स्यात् दुगुनी हो जायगी। पशुपालन का स्थान गेहूँ की पैदावार ने ले लिया। विस्तृत रूप में अनेक प्रकार से कृषि होने लगी। तीन-फसली की पद्धति को नहीं अपनाया गया। देहातों की जनसंख्या अब भी विरल थी, जो प्राचीन उक्रेन के कृष्णमृत्तिका-प्रदेशों की सघन आबादी की आधी या तिहाई से कम थी। किन्तु, सन् 1900 ई० तक इसकी जनसंख्या सारे आइओवा (IOWA) की आबादी से, जिसमें सन् 1920 ई० तक शहर भी शामिल हैं, पचास प्रतिशत अधिक हो गई। आइओवा जलवायु तथा भूमिदशा में अनेक प्रकार से इसी के समान हो गया। सन् 1900 ई० तक आधी जमीन पर लोगों का वैयक्तिक अधिकार हो गया, जिसमें प्रायः अमीरों की जागीरें थीं। केवल 40 प्रतिशत भूमि सामूहिक सम्पत्ति के रूप में रह गई। तबतक डोनेट के इर्द-गिर्द कोयले का और क्रिवोई गौर में लौह-धातु का औद्योगीकरण आरम्भ हो रहा था। गेहूँ की पैदावार धीरे-धीरे कम होने लगी, अतः नूतन रूस के खुले स्टेपीज के मैदान और उत्तर के जंगली स्टेपी कटिबन्ध में महान् अन्तर हो गया। इस उत्तरी भाग में कृषि, दास तथा सामुदायिक जीवन बने रहे। यह ठोस महारूसी या उक्रेनी ही रहा।

3. उपनिवेशन-प्रकार :

गत दस शतियों से रूस के विस्तार में लगातार अनिवार्य तत्त्वों एवं अधिकारी और व्यक्ति एवं परिवार में कशमकश चलती रही। अधिकारी कभी धक्का देकर आगे बढ़ाते और कभी पीछे ढकेल देते। व्यक्ति और परिवार कभी तो धीरता से आगे बढ़ते और कभी इच्छा के प्रतिकूल सरकार इन्हें मार-पीटकर आगे बढ़ाती।

प्रचलित कृषि-परिपाटी तथा वन-प्रधान आर्थिक व्यवस्था के कारण चिरकाल तक गतिशीलता या तो आवश्यक हो गई या उसे प्रोत्साहन मिला। प्रारम्भिक शतियों में यह कहना कठिन है कि उपनिवेशों को बसाने में सबसे अधिक हाथ किसका है—राजकुमारों और उनके दासों तथा साहसी व्यापारियों की जबरदस्ती का अथवा स्वतन्त्र किसानों के मनमाने सहयोग का। किन्तु, यह निश्चय है कि मस्कोवी के हृदयस्थल को बसाने में आर्थिक और सैनिक प्रलोभनों ने, जिन्हें राजकुमार तथा साहसी व्यापारी प्रदान करते थे, विशेष योग दिया।

सन् 1350 ई० के बाद दो शतियों तक गिरजाघरों ने विशेषकर वॉल्गा के उत्तर में नई बस्तियों को बसाने में प्रमुख भाग लिया। किन्तु, बाद में इनका कार्य-क्षेत्र

केवल मध्य वाँलगा ही रहा। दखल या विजय के पूर्व धर्म-प्रचारकों का कार्य अपवादस्वरूप ही था। न्यजीलैण्ड में जिस प्रकार गिरजाघर उपनिवेश-कार्य करते थे, उस प्रकार यहाँ कोई काम वाद में नहीं हुआ।

सोलहवीं शती से जार की निरंकुशता एक निर्णायिक और सर्वव्यापी शक्ति बन गई। सत्रहवीं शती से आन्तरिक उपनिवेशन में भूस्वामी एक अन्य सर्वशक्तिशाली साधन के रूप में सन् 1861 ई० में दासों की स्वतन्त्रता के समय तक रहे। रूसी दास वन्धन में थे। उन्हें उनके स्वामी स्वेच्छया जहाँ भेज देते थे, जाना पड़ता था। जार भूमि को दासों के विना, किन्तु आम तौर पर दासों के साथ जागीर में दे देता था। इसी प्रकार, खनिज या कारखानों को जार दान कर देता था। अतः, भूस्वामियों के दासों की संख्या विशाल हो जाती थी। भूस्वामी अपने दासों को वढ़ते सीमान्त के पीछे की जमीन में वसा देते थे। सबसे आगे बढ़े हुए सीमान्त-प्रदेश अग्रगामी व्यक्तियों की आखेट-भूमि थे। राज्य की सैनिक सहायता इनकी पीठ पर थी। ये भूमि को वसाने का यत्न करते थे। ये कृषक सेना का काम करते थे। कालान्तर में ये स्वतन्त्र राज्य-कृषक बनकर आनन्द करने लगे।

जार और दासता के प्रतिकूल सतत घोर प्रतिक्रिया होती रहती थी। चिरकाल तक उपनिवेशन में वैयक्तिक साहस की सर्वप्रचलित अभिव्यक्ति पलायन के रूप में होती थी। सनातन गिरजाघरों के धार्मिक अत्याचारों के साथ लोग लौकिक अत्याचारों से भी बचकर भागने की चेष्टा करते थे। सत्रहवीं शती में गिरजाघरों में फूट पैदा हो गई। इससे अनेक लोगों को यातनाएँ मिलने लगीं और लोगों ने सीमान्त को प्रस्थान किया। जो लोग सरकार द्वारा निश्चित अपने स्थान से भाग खड़े होते, वे भगोड़े कहलाते थे। उन्हें पकड़ने का निरन्तर यत्न किया जाता था। उन्हें वापस लाकर राज्योचित सेवा में पुनः लगाया जाता था, चाहे जैसे हो। अनेक भगोड़े कभी अच्छी तरह काम नहीं करते थे। उन्होंने लूट-खसोट तथा कृषक-उपद्रव में काफी योग दिया। वसने से इन्हें वहुत कम या कोई खास मतलब न था। लेकिन, इनमें से कुछ सीमान्त के लिए सदा अगुआ रहते थे और उन्होंने स्थायी रूसी विस्तार का नेतृत्व किया।

स्वच्छन्द उपनिवेशन का सबसे उत्तम नमूना कजाक है। ये वैयक्तिक उत्साह तथा वर्गशक्ति दोनों पर निर्भर थे। इन्हीं की सहायता से, विशेषतः दोन-कजाकों की सहायता से रूस ने स्टेपीज पर विजय प्राप्त की और क्रमशः स्थानीय सत्ता को कुचलकर राज्य की शक्ति का विस्तार हुआ। सीमान्त-समाज की वनावट धीरे-धीरे वदलती गई।

आरम्भ में कजाक मस्कोवी या पोलैन-उक्रेन के भगोड़े थे। वे स्टेपीज के सीमान्त-वासी थे। सोलहवीं शती में वे मधु निकालते, ऊदबिलाव आदि का शिकार करते, मछली मारते तथा पशुपालन करके जीवन बिताते हुए आगे बढ़ते जाते थे। वे आधे तातार थे। वे पशुशाला खोल देते या स्काउट का काम करते या घुड़सवार बन जाते या डाकू बनकर लूट-खसोट करते। प्राय: वे सब काम बारी-बारी से करते थे। तातार-भाषा में कजाक का अर्थ घुड़सवार होता है। ये कजाक स्वतन्त्रता-प्रिय थे तथा समानता की भावना रखते थे, किन्तु खूँखार थे और सरलता से वश में नहीं रखे जा सकते थे। आपत्काल (सन् 1604–13 ई०) में इन्होंने आतंक मचा दिया तथा घोर विनाश किया। सन् 1600 ई० में, सन् 1900 ई० की अपेक्षा निम्न वर्ग तथा अनियन्त्रित लोगों द्वारा लाई गई सामाजिक क्रान्ति को ये कुछ अंश तक चुनौती देते थे।

सीमान्त पर ये खानाबदोशों को लूटमार में मात कर देते थे। अत:, मस्कोवी के लिए ये बहुमूल्य सम्पत्ति सिद्ध हुए, पोलैण्ड के लिए भले ही न रहे हों। सन् 1600 ई०तक ये बहादुर सुदूर दक्षिण में नदियों के मार्ग से पंख-घास के स्टेपीज तक पहुँच चुके थे। इन्होंने कजाकों के तीन अलग दल स्थापित किये—मध्य और निम्न दोन तट पर, मध्य उरल नदी-तट पर तथा डैनिपियर नदी के निम्न तट पर, जहाँ जपोरोझियन कजाकों ने पोलैण्ड के उक्रेनियों के लिए वैसाही कार्य किया, जैसा अन्य कजाकों ने मास्कोवी के महारूसियों के लिए किया था। ये तीनों दल पक्के सनातनधर्मी थे। पोलैण्ड के प्रतिकूल उक्रेन के कजाकों ने जो युद्ध किया, उसमें यह विशेष महत्त्व की बात थी।

इन तीनों स्वतन्त्र समुदायों के अलावा सरकार कजाकों को हरकारा तथा सैनिक सेवा के लिए प्रयोग करती थी। अट्ठारहवीं शती में राज्य का संगठन एक प्रकार से मौलिक समुदाय के ढाँचे पर था। कजाकों की सेना सीमान्त की रक्षा और उपनिवेश के लिए थी। यथा : उत्तरी काकेशश, दक्षिण उरल, साइबेरिया तथा अन्तत: सुदूर पूर्व में इन्हें विशेष सुविधाएँ मिली हुई थीं। किन्तु, इनका नियन्त्रण सदा युद्ध-मन्त्रालय करता था, यद्यपि दोन, उरल और जपोरोझियन के कजाक इससे मुक्त थे।

दोन के कजाक प्राय: महारूसियों में से भरती किये गये थे। प्राय: 100 वर्ष (सन् 1671 ई०) तक ये समुदाय-रूप में मास्को से अर्द्ध स्वतन्त्र बने रहे। इनका संगठन सैनिक था, किंतु प्रजातान्त्रिक रूप में निर्वाचित समिति तथा अधिकारियों द्वारा शासित थे। दूसरों को अपने दल में सम्मिलित करने या न करने का इन्हें पूर्ण अधिकार था। प्रथम सौ वर्ष तक तो ये श्वेतजार की प्रजा नाममात्र के रहे।

वे कर न देते थे और मुफ्त व्यापार करना इनका हक था। उनकी यह घोषणा कि हम विदोंष कन्या-वंश, मास्को के विचित्र कार्यकर्त्ता, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र जार तथा महान्, लघु और श्वेत रूस के महाराजकुमार, निरंकुश, बहुदलस्वामी जार के लिए युद्ध करते हैं। सचमुच ये भी जार के अन्य दलों के समान लड़ते, लूटते तथा यथावसर सन्धि करते थे; यथा क्रिमियों के तातार तथा दोन डेल्टा के तुर्कों के साथ। तुर्कों ने अजोव में अपना पत्थर का किला बनाया था। उस समय लड़ाके कजाकों की संख्या 10,000 के करीब थी। ये नदी, समुद्र तथा भूमि पर लूटपाट मचाने में एक समान भयावह थे। चिरकाल तक ये कृषि करना हेय और दासता का चिह्न समझते थे। वे शेखी बघारते थे कि हम घास और जल के लिए सेवा करते हैं, न कि भूमि या जागीर के लिए। वे मछली और पशुपालन, व्यापार, शिकार तथा दास एवं लूट-पाट के द्वारा जीवन बिताते थे। वे सुदूर जंगली भूमि में म्लेच्छाच्छादित कृष्णसागर-तट तक धावा मारते थे। वे बाज की तरह वॉल्गा माता, कृष्णसागर तथा कास्पियन सागर तक पहुँच जाते थे।

किन्तु, ये मास्को द्वारा वार्षिक दान—आटा, हथियार तथा वस्त्र पर भी निर्भर रहते थे। यही उनकी कमजोरी थी। दान का वितरण कजाक स्वयं करते थे, किन्तु उसकी मात्रा मास्को द्वारा निश्चित की जाती थी, जिस कारण इनका वर्ग छोटा ही बना रहा। अल्पसंख्यक होने के कारण, अल्पकाल को छोड़कर, ये तुर्कों को अजोव सागर से न हटा सके। इन्हें मस्कोवी-सरकार से सहायता लेना आवश्यक था। प्रजातान्त्रिक संघ में अल्पजन-शासन पनपने लगा। पुनः इसमें वरीय अधिकारियों का अन्तर्दल समृद्धिशाली हो गया। बाहर में घूमक्कड़, अधिकार रहित, अर्द्ध कजाकों की संख्या में वृद्धि होने लगी; क्योंकि उत्तर से अनेक लोग भागकर आ गये। दोन-प्रदेश सदा से सबों को शरण देता आ रहा है।

दोन के निम्नप्रदेशवासी पुराने कजाकों के धनी घरानों और नवागन्तुक दरिद्रों के बीच खाई बढ़ती ही गई। अन्ततः, स्टेनका रेजीन (सन् 1670-71 ई०) और बुलिविन (सन् 1707-8 ई०) ने विद्रोह का नेतृत्व किया, जिन्हें धनिकों ने कुचलना चाहा। मास्को ने कजाक शिष्टजनों की सहायता से विद्रोह को दबा दिया। तबसे (सन् 1671 ई० से) दोन के कजाकों ने जार के प्रति स्वामिभक्ति की शपथ ली। सरकार ने अब शरण देने की परिपाटी को दृढ़ता से चुनौती देना आरम्भ किया। दक्षिण की ओर उपनिवेशों में बसने के लिए लोग मस्कोवी से आने लगे। अतः, केवल दोन-प्रदेश से 'समुदाय' को हाथ धोना पड़ा (सन् 1708 ई०)। पीटर महान् ने राज्य-नियन्त्रण को एक पग और आगे बढ़ाया। इसने सेनानायक (अतामन) के स्वच्छन्द निर्वाचन का अन्त कर दिया और सन् 1723 ई० से उसे स्वयं नियुक्त करने लगा।

इसके बाद से अतामन चिरकाल तक गद्दी धारण करते, किन्तु वंश-परम्परा से न होते थे। वे सन्त पीटर्सबर्ग से मिल-जुलकर काम करते थे, जैसा कि वरीय अधिकारी, जो सन् 1754 ई० के बाद से निर्वाचित होने के बदले युद्ध-मन्त्रालय द्वारा नियुक्त होते थे। साथ मिलकर ये दोनों शासन करनेवाले अल्पवर्ग का निर्माण करते थे। प्राचीन वर्ग-समिति नाममात्र के लिए रह गई थी। कजाकों के अधिकार तथा विशेषत: कर्त्तव्य निश्चित कर दिये गये। अट्ठारहवीं शती के रूसी युद्धों में ये प्रमुख थे और ये देश में आन्तरिक पुलिस का काम करते थे। कृषि का विस्तार हो चुका था; क्योंकि गैर-कजाक मजदूर पर्याप्त मिलते थे। शती के समाप्त होते-होते अधिकारी-वर्ग विशाल भूस्वामी बन चुका था और वह अमीरों में गिना जाने लगा था और फलत: दास भी रखने लगा था। अब सीमान्त कुवन तथा उत्तरी काकेशिया स्टेपीज तक पहुँच चुका था।

आगामी सौ वर्षों तक दोन-प्रदेश का शासन विशेष पद्धतियों से होता रहा, किन्तु विधि (कानून) और प्रशासन में धीरे-धीरे रूस से घुलता-मिलता गया। इसकी जनसंख्या तथा धन में बहुत वृद्धि हुई। सन् 1914 ई० तक दोन के कजाकों ने प्राय: 1,50,000 (डेड़ लाख) अश्ववार दिये। इनके पास कुल 3/5 भाग भूमि थी और उनकी कुल जनसंख्या 20 लाख के करीब थी। इनमें आपसी फूट थी, फिर भी नवागन्तुक, भूतपूर्व दास, स्वतन्त्र कृषक, मजदूर तथा कोयला-मजदूरों का मिलकर विरोध करते थे। रोस्तोव की स्थापना सन् 1761 ई० में हुई। इसमें गैर-कजाक थे। दक्षिण-पूर्व में यह बहुत ही समृद्ध नगर हो गया तथा इसकी आबादी एक लाख से अधिक हो गई।

इस प्रकार, दो शतियों के उपनिवेशन से सीमान्त का रूप बदल गया तथा कजाक-समाज का ढांचा बिलकुल परिवर्तित हो गया। कजाक सदा अपने और रूसियों में महान् विभेद रखते थे। वे अपनी परम्पराजनित रीति तथा हकों की रक्षा करते रहे। अब उन्होंने जार के प्रति स्वामी-भक्ति का भी विकास किया। उन्होंने जार के बाहरी और भीतरी शत्रुओं को अपना शत्रु मानना आरम्भ किया। सन् 1905 ई० की क्रान्ति में दक्षिणपन्थी कजाकों के एक गीत के कुछ शब्दों से उनकी भावना स्पष्ट झलकती है—'हमें संविधान नहीं चाहिए। हमें गणराज्य नहीं चाहिए। हम रूस को धोखा न देंगे। हम जार की गद्दी की रक्षा करेंगे।' और, उन्होंने ऐसा ही किया। किन्तु, कुछ दरिद्र कजाक तथा दोन-तट के गैर-कजाक वामपन्थियों की ओर चले गये। दोनों दलों में महान् अन्तर था। सन् 1918 ई० के गृहयुद्ध में दोन-वासी श्वेत सेना के लिए विश्वसनीय आधार सिद्ध हुए। मृत्यु, प्रवास तथा निर्वासन के कारण कजाकों की संख्या क्षीण होती गई। बोलशेविकों की विजय

और बाद में सामूहिकीकरण के कारण बहुतों का सत्यानाश हो गया। सन् 1936 ई० में क्रेमलिन ने एक नई चाल चली—लाल सेना में कजाकों के विशेष सेना-दल बनाये और कजाकों की प्राचीन युद्ध-परम्परा को नूतन सोवियत राष्ट्रभक्ति में परिणत कर दिया। इससे जर्मनों को छट्ठी का दूध याद आ गया।

उपनिवेशन के एक और भी नमूने पर विचार करना होगा। इसमें ऐच्छिक और अनिवार्य तत्त्वों के साथ राज्य और व्यक्ति अथवा स्वतन्त्र वर्ग का संघर्ष हुआ, जिसे आधुनिक साइबेरिया के विकास में देखा जा सकता है।

यह कहा जा चुका है कि अट्ठारहवीं शती तक रूसी साइबेरिया प्राय: महा शंकुवन-कटिबन्ध में लोम-उपनिवेश रहा। पुन: रूप बदलने लगा। यहाँ खान, कृषि और काष्ठ-व्यापार का विकास हुआ। रूसी कृष्णमृत्तिकावाले जंगली स्टेपी क्षेत्र में बस गये और साइबेरिया के स्टेपीज में कजाकिस्तान की शुष्क घास-भूमि तक फैल गये। पहले यहाँ पशुपालक खानाबदोश रहते आ रहे थे। सन् 1880 ई० के बाद उपनिवेशों की लहर आ गई, किन्तु इसके पहले विकास की प्रगति रूस के स्टेपी-प्रदेशों से बहुत मन्द थी।

यहाँ महान् पीटर ने खनिज और मध्य एशिया तक जानेवाले व्यापार-मार्ग की खोज में सीमान्त को बढ़ाया तथा खानबदोशों की लूटमार को रोकने के लिए कजाकों की चौकियों का ताँता लगा दिया। पीटर के उत्तराधिकारियों ने इस काम को जारी रखा, खासकर साइबेरिया के सुदूर पश्चिम में, जहाँ जल की खूब सुविधा है तथा सुन्दर कृष्णमृत्तिका है। किन्तु, बस्ती विरल थी और वृद्धि की गति मन्द रही। यहाँ खानों में काम करनेवाले दास राज्य द्वारा विशेषकर भार-वाहन के लिए बसाये गये सैनिक कजाक, स्वतन्त्र किसान तथा भगोड़ों का सम्मिश्रण था, जिनमें अनेक धर्मपन्थी धार्मिक अत्याचार से भागकर आये थे। साइबेरिया ने अमीर या बन्धक दास को कभी न जाना, किन्तु वहाँ समुदाय (कम्यून) सामान्य थे, जो सहयोग के आधार पर साफ करने से प्रारम्भ कर विकास की अनेक सीढ़ियों तक से गुजर चुके थे। कानूनी तौर पर सारी भूमि राज्य या साम्राज्य की भूमि थी। अधिकांश अधिकारी जितनी भूमि चाहें, जोतकर आबाद कर सकते थे और उस भूमि पर उनका काश्तकारी अधिकार हो जाता था। किन्तु, प्राकृतिक साधनों पर धीरे-धीरे दबाव पड़ने लगा। अत:, समुदाय (कम्यून) ने यथासमय अनेक प्रकार के रद्दोबदल किये तथा परिवारों की स्वतन्त्रता पर अनेक प्रकार के आर्थिक बंधन लगाये गये। उन्नीसवीं शती के अन्त तक भूमि को मापने की प्रथा न थी।

लगभग उस समूची शती में सरकारी नीति थी कि लोगों को साइबेरिया में जाने से रोका जाय, निरुत्साहित किया जाय। केवल राज्य के कृषक ही राष्ट्र की उदार सहायता से वहाँ जा सकते थे। खानों में मजदूरों का जाना साधारण बात थी। स्वर्ण की दौड़ ने नई व्यवस्था को जन्म दिया; क्योंकि इसपर सरकारी नियन्त्रण नाममात्र का था। अब साइबेरिया में सर्वप्रथम बड़े पैमाने पर लोगों का निर्वासन होने लगा। सन् 1823 और 1881 ई० के मध्य प्रायः सात लाख व्यक्ति उरल पर्वत के पार विवासित या निर्वासित किये गये। इन्हें खानों में, निर्माण-कार्य में, कारा-शिविरों में विजय-सेना या पुलिस-कर्मचारी के रूप में कठिन श्रम करना पड़ता था। कैदियों के सिवा यहाँ अनेक राजनीतिक निर्वासित भी पहुँचे; यथा दिसम्बरी[1] तथा पोलस। इन्होंने कृषि, उद्योग-शिक्षा और विज्ञान में नवीनता ला दी। यह कहना अतिशयोक्ति है कि निर्वासितों ने ही साइबेरिया का निर्माण किया। हाँ, येनेसी नदी के पूर्व में अवश्य ही इनका विशेष हाथ रहा। आस्ट्रेलिया के प्रारम्भिक इतिहास में निर्वासितों का जितना महत्त्व था, यहाँ उससे कम ही महत्त्व रहा। निर्वासकाल पूरा होने के बाद अनेक व्यक्ति रूस को वापस आ जाते थे तथा जो वहीं बस जाते, उन्हें साइबेरियावासी घृणा की दृष्टि से देखते थे।

आधुनिक साइबेरिया के निर्माण में सबसे बड़ा हिस्सा है रूसी किसानों की सतत भूमि-बुभुक्षा तथा रेलवे के आगमन का। लोग सरकारी नियमों को भंग कर भी बसने के लिए अधिक संख्या में आते गये और इनका ताँता लगा रहा। कभी-कभी उसमें कमी भी आ जाती। सरकारी नियन्त्रण क्रमशः भंग होता जाता था, फलतः सन् 1880 ई० में अधिवासियों की बाढ़ आ गई। सन् 1891 ई० में महादुर्भिक्ष पड़ा और इसी साल ट्रान्स-साइबेरियन रेलवे का बनना आरम्भ हुआ। इससे लोगों की बाढ़ आ गई। एक दशक पूर्व बननेवाले कनाडा के प्रशान्त रेलवे की तरह इस रेलवे ने इसमें काफी योग दिया। उथल-पुथल तथा रूस-जापान के युद्ध होते रहने पर भी साइबेरिया और सुदूर पूर्व की जनसंख्या 20 वर्षों में दुगुनी हो गई।

सन् 1800 ई० में दस लाख से अधिक लोग थे, किन्तु सन् 1897 ई० की जनगणना में इनकी संख्या 57,50,000 पहुँच गई तथा सन् 1914 ई० में एक करोड़ से अधिक हो गई। यह संख्या कनाडा की जनसंख्या से डेढ़गुनी है। साइबेरिया की सहयोग-समितियाँ इंगलैण्ड के मक्खन-बाजार को मात कर देती थीं। यह द्रुत विस्तार विशेषतः खास साइबेरिया, अर्थात् बैकाल झील तथा उरल पर्वत के मध्य हुआ।

---

1. जिन्होंने सन् 1825 ई० के दिसम्बर मास में रूसी षड्यन्त्र में भाग लिया और इस कारण निर्वासित किये गये।

सरकारी प्रोत्साहन मिलने पर भी बैकाल झील के पूर्व औपनिवेशिक अधिक नहीं गये, यद्यपि वहाँ कृष्णसागर के बन्दरगाहों से भूमि तथा सामुद्रिक मार्ग से जाने की सुविधा थी। इधर सुदूर पूर्व में चीनी बड़े पैमाने पर बसते जा रहे थे। वे मंचूरिया को रूसी जापानी-साम्राज्य की भूमि बनाना चाहते थे।

ट्रान्स-साइबेरियन रेलवे तथा पूर्व में झुण्ड-के-झुण्ड लोगों की वृद्धि के कारण सरकार को नीति बदलनी पड़ी। सन् 1896 ई० में एक नूतन उपनिवेश-विभाग खुला। इसका काम था देशान्तर-गमन और बस्तियों की देखरेख। भूमिमाप, सस्ता यातायात, कर एवं अन्य सुविधाएँ तथा धन एवं वस्तु के ऋण के सम्बन्ध में अनेक कानून बने। प्राय: आधे नवागन्तुक स्वयं आये। वे थके थे तथा नौकर-शाही की विचित्रता और विलम्ब के कारण शंकालु थे। वे प्राय: सघन उत्तरी तथा मध्य कृष्णमृत्तिका-भूमि से आये। वे झुण्ड-के-झुण्ड आये। वे यहाँ एकदम निर्धन न थे। पहले वे आये, जिन्होंने अच्छा स्थान चुना। कुछ तो साइबेरिया के प्राचीन ग्रामों में बस गये और कुछ नये ग्रामों में। सन् 1914 ई० तक अच्छी भूमि को लोगों ने अपना लिया था। अब रूसी कजाकों की चरागाह-भूमि की ओर बढ़ने लगे; क्योंकि सन् 1916 ई० के अपने विद्रोह से तथा सोवियत-क्रान्ति के प्रभाव से वे बहुत सुधर गये थे।

यह नूतन साइबेरिया बेढंगी आकृतिवाला, ओजस्वी उबड़-खाबड़, नष्टकारी तथा ऊसर था। इसका विकास इतनी शीघ्रता और विभिन्न प्रकार से हुआ कि यहाँ किसी प्रकार की एक साइबेरिया-पद्धति न बन सकी। प्रथम विश्वयुद्ध में इसकी शक्ति क्षीण हो गई। इसमें खून की नदी बह चली, यद्यपि विजयलक्ष्मी साइबेरिया के सिपाहियों के हाथ ही लगी। क्रान्ति और गृहयुद्ध ने साइबेरिया का ढाँचा ही बदल दिया। ट्रान्स-साइबेरियन रेलवे ही गृहयुद्ध में सभी जेक अनावासी, महारथी कोलचक तथा लाल सेना के लिए समान रूप से प्रधान सूत्र थी। कुछ वर्षों में ही साइबेरिया की शक्ति पुन: जाग उठी। इसमें साम्यवादी दल ने दूरदर्शिता और निर्दयता से काम लिया।

सन् 1890—1917 ई० तक के नूतन साइबेरिया के प्रतिकूल सोवियत-साइबेरिया का विकास नये सुविस्तीर्ण खनिज और औद्योगिक सीमान्तों के कारण पंचवर्षीय योजनाओं के आधार पर हुआ। अत्याधुनिक अमेरिकन पैमाने पर नगरों का यहाँ ताँता लग गया; यथा साइबेरिया खास और सुदूर पूर्व में। मगनितोगोरस्क, नोवोसिबिरिस्क, स्तालिनस्क, कोमोसोमोलस्क आदि नगरों का पहले नाम-निशान भी न था या वे बहुत छोटे थे; किन्तु अब वे विश्व के मानचित्र पर देखे जा सकते हैं।

खुले स्टेपीज के सिवा अन्यत्र कृषि का विकास उतना आश्चर्यजनक न हुआ। अब साइबेरिया सन् 1914 ई० की अपेक्षा कहीं अधिक मिश्रित हो गया है, किन्तु अब भी रूसियों की ही प्रधानता है, जैसी पहले थी। बड़े पैमाने पर निर्वासन तथा मजदूरों की बढ़ती माँग के कारण सारे रूसी संघ से पुरुष और स्त्री आकृष्ट होकर यहाँ उमड़ पड़े। सोवियत-साइबेरिया अब भी बेढंगा, उजाड़ तथा ऊसर है, क्रूर तथा हानिप्रद है, किन्तु इसने सोवियत-युवकों की शक्ति और कल्पना को अभूतपूर्व रूप से आकृष्ट किया है।

*

द्वितीय अध्याय

राज्य

1. अक्तूबर-क्रान्ति : दल तथा सोवियत :

सन् 1917 ई० में जारशाही धराशायी हो गई। अक्तूबर क्रान्ति ने एक ऐसे समाज और सरकार की घोषणा की, जिनका आधार और रूप एकदम नया था। एक तो चार वर्षों तक क्रान्तिकारी उथल-पुथल और गृहयुद्ध चलता रहा और इसके बाद दूसरी ओर स्तालिनवादी क्रान्ति ने व्यवस्थित औद्योगीकरण और सामूहिकीकरण को जन्म दिया। इससे रूस का रंग ही बदल गया। इसे समाजवादी गणतान्त्रिक सोवियत-संघ कहा जाने लगा। भावना और संस्थान दोनों में नूतन तथा पुरातन का वैषम्य इससे अधिक नहीं हो सकता था। तब भी कुछ सामान्य लक्षण हैं, जो सोवियत तथा जारशाही सरकार दोनों में साधारण रूप से पाये जाते हैं; यथा शक्ति का व्यापक केन्द्रीकरण, राज्य-कार्य के विशाल क्षेत्र पर पूरी नौकरशाही, सेना पर अधिक-से-अधिक जोर. बल और गुप्त पुलिस का उग्र प्रयोग, नेता या अधिराट् का अर्द्ध-दैवीकरण।

इन समताओं के चार प्रमुख कारण हो सकते हैं—१. विशाल क्षेत्र तथा सापेक्षिक निम्नभौतिक और सांस्कृतिक स्तरवाले विविध लोगों पर शासन की समस्या, २. सुरक्षा-समस्या, ३. अतीत के रीति-रिवाज मानसिक प्रवृत्ति तथा भावना और कार्य-प्रणाली से एकदम विच्छेद की असम्भवनीयता और ४. राज्य की साम्यवादी दृष्टि।

सोवियत-संघ एक समाजवादी राज्य है। इसकी स्थापना केवल सशस्त्र कार्य-कर्त्ताओं की सरकार द्वारा शक्ति-अभिग्रहण तथा मज़दूर-वर्ग के अधिनायकत्व-संस्थापन के कारण सम्भव हो सकी। समाजवाद से दो सिद्धान्तों की सिद्धि होती है। वे हैं—योग्यता के अनुसार प्रत्येक से कार्य लेना तथा उसके कार्य के अनुसार प्रत्येक को

समुचित व्यवस्था करना और जो काम नहीं करेगा, वह भोजन भी न पायगा। साम्यवादी समाज में संक्रमण के साथ ही 'योग्यता के अनुसार प्रत्येक से कार्य लेना तथा आवश्यकता के अनुसार प्रत्येक की व्यवस्था' के सिद्धान्त की उपलब्धि अभी बाकी है। इसकी सिद्धि तभी हो सकती है, जब सभी लोग सामाजिक जीवन के मूल सिद्धान्तों का पालन करने में अभ्यस्त हो जायँ तथा उनका श्रम इतना अर्जक हो कि लोग स्वेच्छा से अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करने लगें। तबतक राज्य खतम नहीं होगा। परन्तु, इसके विपरीत राज्य के लिए आवश्यक होगा कि समाज और राज्य के द्वारा श्रम-परिमाण तथा उपभोग-परिमाण पर कड़ा नियन्त्रण रहे। लेनिन की इस नीति के पुन: प्रवृत्त होने के कारण हैं--पूर्ण आयोजन का आचरण तथा स्तालिन द्वारा सबल राज्यशक्ति की नितान्त आवश्यकता पर विशेष जोर जिसमें वर्त्तमान अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों में पूँजीवाद से घिरे होने के कारण समाजवाद की भूमि इससे उत्पन्न होनेवाले खतरे से दूर रह सके (सन् 1934 ई०)।

लेनिन के साम्यवाद-सिद्धान्त से रूस को सहसा साहस मिला—एक क्रान्तिकारी आदर्श, जो साम्यवाद तथा नये मानव का लक्ष्य है और एक क्रान्तिकारी-प्रणाली, अर्थात् मजदूर-वर्ग के अग्रणी का अधिनायकत्व। इस अधिनायकत्व का संचालन साम्यवादी दल के द्वारा होता था और सोवियतों के द्वारा यह जनसमुदाय से मिला रहता। सन् 1917 ई० में दल और सोवियत दोनों ही रूस के लिए नये विचार थे। किन्तु, इन्हीं दो संस्थानों के आधार पर क्रान्तिकारी शासन का प्रासाद खड़ा हुआ है।

लेनिन ने ऐसे दल की सृष्टि की, जो पाश्चात्य देशों के सामाजिक तथा लोकतान्त्रिक विचारों के संसद्-समूह के विरोध में काम करे। यह द मजदूर-वर्ग के वर्ग-चेतनायुक्त अवयव का प्रशिक्षित केन्द्र था (और फलतः वास्तविक संख्या में लघु था)। यह लेनिन द्वारा स्पष्टीकृत मार्क्स के सिद्धान्तों से फौलादी बना दिया गया था। यह दल सारे रूस के लिए एक केन्द्रीय संगठन द्वारा लड़ाकू सेना के रूप में संगठित था। यह किसान-वर्ग के साथ मिल-जुलकर काम करता और एक ही संकल्प की पूर्ति के लिए अग्रसर था। ऐसा ही दल क्रान्तिकारी आन्दोलन को निर्देश देने, अन्ततः सरकार के वर्त्तमान रूप को तोड़ने और मजदूर-वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित करने में समर्थ हो सकता था। समाजवाद की स्थापना के लिए यह आवश्यक तथा सहवर्त्ती प्रारम्भिक तैयारी थी, जिसे अन्ततः साम्यवाद में परिवर्त्तित हो जाना था।

दल की इस प्रणाली की धारणा रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलनों से सुदूर थी। अबतक के ये आन्दोलन दृढ संगठन और मजबूत केन्द्रीय नियन्त्रण से भागते रहे थे। कहीं यह आन्दोलन अराजकताप्रिय वर्ग का ढीला संघ था, तो कहीं आतंकवादियों की क्लांकी

उथल-पुथल में विश्वास करनेवाले राजविप्लवकारियों की छोटी गुप्त समिति थी। कहीं यह अपनी टोलियों के द्वारा (कम्यून में विशाल कृषक-समुदाय के मध्य अपने विचारों को फैलाती थी, जिससे क्रान्ति का जन्म हो, तो कहीं यह सामाजिक लोकतन्त्र अथवा मार्क्स के विभिन्न मत को माननेवाली थी।

लेनिन के बोलशेविक दल का अभ्युदय इसी अन्तिम विचारधारा से हुआ, जो सन् 1898 ई० में रूसी सामाजिक लोकतन्त्रात्मक कार्यकर्त्ता-दल के रूप में खड़ा हुआ। बीस वर्षों तक यह दल अधिक प्रगति न कर सका; क्योंकि कुछ तो इसलिए कि इसके अधिकांश कार्य अवैध थे और इसलिए वे लुक-छिपकर होते थे और कुछ इसलिए कि विशेषकर संगठन में आन्तरिक फूट थी। अतः, लेनिन ने सन् 1903 ई० में अपने बोलशेविक दल (वर्ग) की स्थापना की। सन् 1912 ई० में उसने अपने प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी सामाजिक लोकतन्त्रवादी मेनशेविक दल से अपने को एकदम विलग कर लिया। बोलशेविकों की संख्या नगण्य थी। इसी कारण सन् 1905 ई० की क्रान्ति में वे अधिक भाग न ले सके, यद्यपि मास्को के विप्लव में वे आगे थे। बोलशेविक का अर्थ है बहुजन और मेनशेविक का अर्थ है अल्पजन। किन्तु, उस समय यह नाम सार्थक न था; क्योंकि मेनशेविकों की अपेक्षा बोलशेविकों के अनुयायियों की संख्या कम थी। इन दोनों दलों के समर्थकों की संख्या सामाजिक क्रान्तिकारी (सोशल-रेवोल्युशनरी) दल से कम थी। यह सामाजिक क्रान्तिकारी दल सदा किसान-वर्ग के हृदय पर राज्य करता था। बोलशेविक इने-गिने थे, किन्तु केवल उन्हीं का संगठन वास्तविक था। वे अपने लक्ष्य के पक्के थे। वे दुर्जेय गुप्त योद्धा थे और वैसाही समान प्रतिभाशाली उनका नेता था।

मार्च, 1917 ई० में क्रान्ति मच जाने के एक मास बाद ही लेनिन पेट्रोग्राड वापस लौटा। वह 11 वर्ष से प्रवास में था। उस समय वह 47 वर्ष का था। लेनिन अथवा मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी से बढ़कर अन्य कोई शरणार्थी नहीं हो सकता था और जन्म तथा प्रारम्भिक शिक्षा से लेनिन वही था। राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय मामलों में उसकी सुदूर सूझ थी। उसका जन्म मध्य वॉल्गा नदी के पास हुआ था। अतः, रूस का उसे पूरा ज्ञान था और उसकी गतिविधि के प्रति गहरी सूझ थी। प्रवास में भी उसने अपने देश से कभी नाता नहीं तोड़ा। वह बोलशेविक दल का निर्विरोध नेता था। उस समय इस दल के 80,000 संगठित कार्यकर्त्ता थे। जो उभरते हुए क्रान्ति के सागर में उत्प्रेरक बूँद की तरह थे। वह प्रारम्भ से ही पेट्रोग्राड का क्रान्तिकारी वीर था। पत्रकारिता में वह पहले से ही निपुण था। अतः, उसने अपने को सुयोग्य सिद्धान्तवादी और अतिमर्मभेदी कुशल पत्रकार सिद्ध किया। महाप्रतिभाशाली वक्ता होने के कारण वह लोगों का मर्मस्पर्श कर लेता था। वह

कठोर परिश्रमी तथा सुयोग्य कार्यकर्त्ता था। अतः, कार्यकर्त्ताओं के नेताओं में सबसे अधिक वज्रहृदय भी था।

नवम्बर, 1917 ई० में (प्राचीन रूसी पंचांग के अनुसार उस समय अक्तूबर मास था, अतः इसे इतिहास में अक्तूबर-क्रान्ति के नाम से पुकारते हैं) लेनिन नूतन क्रान्तिकारी सरकार का प्रधान बना। इस शासन को सोवियत (परिषद्) पिपुल्स (जन) 'कमिसार' के नाम से पुकारते हैं। ट्रॉटस्की वैदेशिक कार्यों का भार सँभालता था और बाद में युद्ध का भी भार सँभाला। स्तालिन ने राष्ट्र की विभिन्न जातियों का भार उठाया और कालान्तर में युद्ध के विभिन्न पदों पर काम किया। बोलशेविकों ने कुछ मास तक किसी प्रकार शासन चलाया; क्योंकि इस समय शासन चलाना टेढ़ी खीर थी। इसमें वामपक्षी सामाजिक क्रान्तिकारियों का सहयोग पाना सरल न था। इसके बाद सभी उच्च पदाधिकारी बोलशेविक ही थे तथा सोवियत-काँगरेस में भी इन्हीं बोलशेविकों की संख्या बहुत अधिक थी। इस प्रकार शुरू से ही इस नूतन शासन की नींव मुख्यतः एक दल के आधार पर पड़ी। लेनिन ने वास्तव में इसी प्रकार के दल के द्वारा शासन की स्थापना का संकल्प किया था।

सन् 1920 ई० तक इस दल की संख्या 6 लाख से अधिक हो गई। गृहयुद्ध मित्रराष्ट्रों के हस्तक्षेप, तथा साम्यवाद-युद्ध के घोर कोलाहल में यही दल खूनी लड़ाकों का मर्मस्थल था तथा सामान्य सेना का काम देता था। सन् 1921 ई० में यह दल विजयी सिद्ध हुआ, किन्तु देश एकदम परास्त हो गया था। उसी वर्ष महा-दुर्भिक्ष ने देश को और भी मिट्टी में मिला दिया; क्योंकि गत 30 वर्षों के अन्दर ऐसा अकाल (दुर्भिक्ष) न हुआ था। लेनिन ने नूतन आर्थिक नीति (न्यू एकोनॉमिक पॉलिसी) को अस्थायी रूप में अपनाकर किसानों से समझौता किया, जिससे देश और दल का सर्वांग-संगठन हो सके।

सन् 1918—21 ई० में देश की दुर्व्यवस्था और भी बढ़ गई; क्योंकि बोलशेविकों ने पुरानी सेना, स्थानीय सरकारी संस्था, न्यायपद्धति एवं नागरिक सेवा को एकदम समाप्त कर दिया।[1] किन्तु, क्रान्ति की अन्तिम विजय का यही एक प्रमुख कारण भी था। विनाश के बाद आवश्यकताओं की पूर्ति अपरिहार्य थी। नई सेना, गुप्त पुलिस तथा नूतन कचहरी और नूतन नागरिक सेवा के शनैः-शनैः

1. ये संस्थाएँ इस अर्थ में नूतन थीं कि प्राचीन सेना और पुलिस विघटित कर दी गईं तथा नूतन क्रान्तिकारी संगठन बने; यथा लाल रक्षक, लाल सेना तथा चेक (जी० पी० यू० के पूर्ववर्त्ती)। इन सभी संस्थाओं के मूर्द्धन्य बोलशेविक थे या क्रान्तिकारी, जो बोलशेविकों से मिलजुलकर काम करते थे। इन सस्थाओं में अधिकांश लोग पुनः भरती हुए हैं, जो पहले इन्हीं के अंग थे। ये संस्याएँ इस अर्थ में नूतन न थीं कि इन संस्थाओं के सभी लोग नये ही थे।

निर्माण में अपूर्व सफलता मिली। इन सभी विभागों के मूलपदों का नियन्त्रण वे स्वयं करते थे। किन्तु, स्थानीय प्रशासन में नवीन सोवियतों के द्वारा वे अव्यवस्थित रूप से काम चलाते रहे।

सन् 1921—28 ई० के अन्तकाल में नूतन आर्थिक नीति लागू हुई। इसी काल में संघ (Union) का निर्माण हुआ। दल की देखरेख में नूतन प्रशासन सुदृढ हुआ तथा व्यापार-संघों और सहयोग-समितियों पर भी इसका नियन्त्रण बढ़ा। सन् 1924ई० में लेनिन की मृत्यु के बाद इसी अन्त:काल में, विशेषत: स्तालिन और ट्रॉटस्की में दल के अन्दर खुल्लम-खुल्ला संघर्ष छिड़ गया; क्योंकि ये दोनों स्वभाव, योग्यता और नीति में एक दूसरे के एकदम प्रतिकूल थे। अतीत में भी ये दोनों कटु अनुभवों के भुक्तभोगी थे।

स्तालिन जॉर्जिया का रहनेवाला था। इसका जन्म सन् 1876 ई० में जुगस्विली में हुआ। 20 वर्षों तक इसने लुक-छिपकर क्रान्तिकारी संघर्ष में काम किया। बोलशेविक होने के कारण यह सतत कैद या (सदा देश के अन्दर ही) प्रवास में रहा। अत:, यह 'लौहपुरुष' के नाम से विख्यात हो चुका था। गृहयुद्ध में इसने जारिस्तान की विशेष सुरक्षा की, प्राय: ट्रॉटस्की के विरोध में। इसी हेतु इसकी प्रतिष्ठा में उस नगर का नाम स्तालिनग्राड पड़ा।

ट्रॉटस्की यहूदी था। इसका जन्म व्रांस्तेन में उसी वर्ष हुआ, जिस वर्ष स्तालिन का, अर्थात् सन् 1879 ई० में। केवल पेशेवर क्रान्तिकारी के रूप में ही यह स्तालिन के समान था। सन् 1902 से 1917 ई० तक यह प्राय: लगातार रूस से बाहर प्रवास में रहा। लेनिन के सिद्धान्तों के प्रतिकूल भी यह अनेक काम करता था। अत:, लोग इसे सिद्धान्तभ्रष्ट समझते थे। जर्मनी के साथ जब ब्रेस्ट-लितोव्स्क में शान्ति के लिए वाक्-संग्राम छिड़ा, तब यह ट्रॉटस्की सहसा प्रसिद्ध हो गया। यह सहसा लाल सेना के निर्माण में लग गया। ट्रॉटस्की वाणी और लेखनी में निपुण था। अत:, वह सदा बौद्धिक जगत् में अन्तरराष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व करता था और इसके लिए रूस विश्व की क्रान्ति का विशेष कमानी-फलक (स्प्रिंग बोर्ड) बन गया।

सन् 1922 ई० से ही स्तालिन दल का महासचिव था। अत:, उसने केन्द्र में अपनी जड़ जमा ली थी। स्तालिन ने स्थायी (विश्व) क्रान्ति के विरुद्ध देश में समाजवाद का झण्डा फहराया। ट्रॉटस्की तथा कुछ अन्य नेता दल से निकाल बाहर कर दिये गये। सन् 1929 ई० में ट्रॉटस्की रूस देश से बाहर निकाल दिया गया। इसके एक वर्ष पहले ही सन् 1928 ई० में स्तालिन ने द्वितीय क्रान्ति का सूत्रपात किया। उसने विशालकाय औद्योगीकरण और कृषि का सामूहिकीकरण

शीघ्रता से आरम्भ किया, जिससे आर्थिक और वित्तीय आयोजन के सम्पूर्ण क्षेत्र का सर्वांग विकास हो सके।

सन् 1930 ई० से लोग स्तालिन को नेता की उपाधि से उद्घोषित करने लगे थे। हिटलर को यह उपाधि तीन वर्ष बाद मिली, यद्यपि मुसोलिनी ने नेता की उपाधि आठ वर्ष पहले ही सन् 1922 ई० में पा ली थी। रूसी भाषा में नेता के लिए वही धातु और शाब्दिक अर्थ है, जो जर्मन में फुहरेर तथा लातिन में ड्यूस के लिए। लेनिन सरकार या शासन का प्रधान था. किन्तु स्तालिन ने इस पद को स्वीकार न किया। वह दल का केवल महासचिव ही बना रहा। जनरसद (कमिसार)-परिषद् (काउंसिल ऑव पिपुल्स कमिसार) मई, 1941 ई० तक बनी रही, किन्तु स्तालिन इस परिषद् का कभी प्रधान न बना। सन् 1923 ई० के बाद तो वह इस परिषद् का सदस्य भी नहीं था। वह आरम्भ से ही दल (पोलित ब्यूरो) की केन्द्रीय समिति के राजनीतिक कार्यालय का सदस्य था और सदा सदस्य बना रहा। किन्तु, यह केन्द्रीय समिति शक्ति का आन्तरिक दुर्ग थी। शासन का वास्तविक केन्द्र नई समिति थी। इस समिति के सदस्य नाम के लिए केन्द्रीय समिति से निर्वाचित होते थे, किन्तु वास्तव में ये सदस्य समिति में रख लिये जाते थे। जनरसद (कमिसार)–परिषद् के सभी सदस्य बोलशेविक दल के ही सदस्य होते थे, किन्तु सरकारी तौर पर बोलशेविक दल के ये सभी सदस्य सोवियत-कांगरेस के सेवक थे। अतः, शासन का केन्द्र दल ही था, न कि जनरसद (कमिसार)-परिषद्।

सन् 1928 ई० से यह दल ही केन्द्रीय तथा स्थानीय संस्थाओं के संचालन-हेतु सामान्य साधन हो गया। विभिन्न समितियों में इस दल के लोगों की संख्या क्रमशः बढ़ती ही गई और सभी समितियों का समूह बन गया। यही दल पंचवर्षीय योजनाओं, सामूहिकीकरण और सर्वांग-सुरक्षा के साधनों का संचालन करता था। किन्तु, सरकारी तौर पर इस दल को सन् 1936 ई० के पहले मान्यता न मिल सकी। सर्वप्रथम सन् 1936 ई० के ही संविधान में दल की नियन्त्रक स्थिति को कुछ अंश तक मान्यता मिली। इसे संविधान ने मजदूरों की सामाजिक और राजकीय सभी संस्थाओं का निर्देशक नाभि-बिन्दु करार दिया। किन्तु, पोलित ब्यूरो तथा दल, अर्थात् रसद-परिषद् और सोवियत की वरिष्ठ परिषद् को, जो सरकार में प्रायः बराबरी का काम करते थे, अभी तक कोई मान्यता न मिली थी।

इस तरह दल पहले की अपेक्षा राज्यतन्त्र का संचालन-केन्द्र हो गया। किन्तु, सामूहिक निष्कासन, परीक्षण और प्रथम बार पुराने बोलशेविकों और उच्च सेनाधिकारियों की हत्या के कारण गत दस वर्षों के अन्दर (सन् 1928–1938 ई०) इस

सोवियत-दल का ढाँचा लगभग एकदम ही बदल गया। सर्वप्रथम इस शती के द्वितीय दशक से इस दल के सदस्यों की संख्या खूब घटने लगी। तब दो वर्षों (सन् 1939 और 1940 ई०)में इस दल में विशेष भरती का अभियान शुरूहुआ और दस लाख नये सदस्य बने। इन सदस्यों में विभिन्न श्रेणी के लोग थे। यथा : नवीन निर्माण के लोग, स्तखनोवाइट्स निर्दलीय क्रियावादी, कार्यकर्ताओं के सरदार, सामूहिक कृषि-महारथी, तकनीकी विशेषज्ञ और नूतन सोवियत बुद्धिजीवी। अतः, दल की संख्या में यह वृद्धि विशाल कही जा सकती है। फरवरी, 1941 ई०में इस दल के सदस्यों की संख्या 2,515,481 थी। इसके अलावा 13,61,404 प्रार्थी अथवा परिवीक्षाधीन थे। इस तरह दल के सदस्यों की संख्या 40 प्रतिशत बढ़ गई। बाकी 60 प्रतिशत में से अधिकांश स्त्री एवं पुरुष स्तालिन-युग के थे, जो गत दशक में आये। प्राय: इस नूतन तथा विशाल युवक-संघ का संचालन और नियन्त्रण स्तालिन का अनुयायी सुस्थिर लघुवर्ग करता था और स्तालिन उन सबके ऊपर था।

क्रान्तिकारी शक्ति का द्वितीय मुख्य आधार थी सोवियत। सोवियत भी नई ही थी। किन्तु दल से इस अर्थ में विभिन्न थी कि इन सोवियतों की उत्पत्ति मार्क्स के किसी सिद्धान्त से न हुई और न ये किसी पूर्व-कल्पित योजना के अनुसार बनी थीं। सन् 1905 ई० की क्रान्ति के समय विभिन्न स्थानों पर सहसा श्रमिकों की अनेक सोवियतें या परिषदें स्वतः बन गईं। ये सोवियतें प्रातः हड़ताल-समितियाँ थीं। ये केवल मजदूर-संघों की ही न थीं। इन सोवियतों का अभ्युदय विशेषत: सन्त पीटर्सबर्ग और मास्को में हुआ। इन सोवियतों का लक्ष्य एक न था। ये असंगत थीं। इन सोवियतों में कोई आन्तरिक सम्बन्ध न था। अतः, ये सोवियतें शीघ्र ही विलीन हो गईं या कुचल दी गईं। सन्त पीटर्सबर्ग की सोवियत मुख्यतः मेनशेविक (अल्पजन) संस्था थी। ट्रॉटस्की भी इसी मेनशेविक सोवियत का सदस्य था, किन्तु इसके पृष्ठभाग में लेनिन कार्य करता था। यह सोवियत केवल छह मास ही चल सकी और सरकारी आदेश के अनुसार इसने अपने-आप को भंग कर दिया। किन्तु, मास्को की सोवियत चट्टान के समान डटी रही। वह लोहा लेने को तैयार थी। एक सप्ताह तक मास्को की सोवियत बाजार की गलियों में जान की बाजी लगाकर लड़ती रही। अन्ततः, दिसम्बर, 1 05 ई० में राजधानी से रक्षावाहिनी पहुँची। इस फौज से भी सोवियतों ने लोहा लिया, किन्तु अन्त में मास्को के श्रमिक वशीभूत होकर हार मान गये। सन् 1905 ई० की क्रान्ति का यही चरम बिन्दु था। अबसे सोवियत रक्त और प्राणाहुति-मण्डल में उसी तरह आ गई, जिस तरह डब्लिन के ईस्टर विद्रोह के बाद सिन-फिन।

लेनिन ने किसान-वर्ग के स्वगठित समितियों की आवश्यकता बतलाई थी। वह चाहता था कि किसान कानून (विधि) को अपने हाथ में लें और जमीन के

बँटवारे का प्रश्न स्वयं हल कर लें, जैसा सन् 1917 और 1918 ई० में हुआ। किन्तु, लेनिन ने सोवियतों का निरूपण न किया था। उसका अनुमान एकदम ठीक था कि इन सोवियतों की भित्ति या नींव एकदम रूसी है। अतः, सोवियतों को उसने स्वतः लड़ाकू संगठनों के रूप में इस्तेमाल किया, जिनमें क्रान्तिकारी शासन के बीज भरे पड़े थे। एकदम नये प्रकार के लोकतन्त्रात्मक शासन के लिए यह सोवियत अपरिहार्य थी। इनका सम्बन्ध राष्ट्रीय संसदीय गणतन्त्र से नहीं था। इनका सीधा सम्पर्क दल के अधिनायकत्व से था।

मार्च की क्रान्ति छिड़ते ही सारे देश में सोवियतों की बाढ़ आ गई। सेना तथा नौसेना में भी सोवियतें बनीं। कुछ महीनों के बाद ये सभी सोवियतें एक दूसरे से सम्बद्ध हो गईं और इन्होंने राष्ट्रीय पैमाने पर काम करना शुरू किया; यथा सैनिक सोवियत-काँगरेस, कर्मकार सोवियत-काँगरेस तथा कृषक-प्रतिनिधि। इन सभी राष्ट्रीय काँगरेसों का नेता था—पेट्रोग्राड सोवियत। यह संस्था अस्थायी सरकार के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में कार्य करती थी। पहले तो डूमा (रूस का पार्लियामेण्ट) के नरम उदार नेता ही पेट्रोग्राड-सोवियत में सर्वोपरि थे, किन्तु बाद में इसका नेता केरेंस्की बना, जो उग्र विचार का था, किन्तु वह स्पष्ट रूप से समाजवादी न था। लेनिन ने नारा लगाया—सोवियत सर्वशक्तिसम्पन्न हो। इस नारे के मोटा-मोटी दो ही अर्थ निकल सकते थे—युद्ध की समाप्ति तथा भूमि पर किसानों का यथाशीघ्र अधिकार। सारे देश की अधिकांश जनता इसके लिए इच्छुक थी। सन् 1917 ई० में अक्तूबर के समाप्त होते ही पेट्रोग्राड तथा मास्को की सोवियतों में बोलशेविकों का बहुमत और इनके लिए शक्ति हथियाने का अवसर आ चुका था।

ठीक इसी समय अखिल रूसी सोवियत-कांगरेस का द्वितीय अधिवेशन था। इस अधिवेशन ने शीघ्र ही घोषणा की कि सोवियत-काँगरेस ने सारी शक्ति अपने हाथ में ले ली है। शान्ति स्थापित करने के लिए इसने प्रस्ताव स्वीकार किया तथा सारी भूमि का स्वामी किसानों को बना दिया। इसने लेनिन द्वारा संचालित क्रान्तिकारी सरकार को अपनाया तथा अपनी केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति के द्वारा अपने को स्थायी बना लिया। बोलशेविक क्रान्ति के प्रारम्भिक काल में इस समिति और कांगरेस का ही बोलबाला रहा। यद्यपि बोलशेविकों का बहुमत था और जुलाई, 1918 ई० के बाद उनका अति बहुमत हो गया फिर भी उनका दल अभी सुगठित नहीं था। एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है: जब जर्मनी ने लितोवस्त की सन्धि की शर्तों को रूस पर लाद दिया, तब लेनिन को सन्धि की शर्तों को इस सोवियत-कांगरेस से मनवाने के लिए घोर यत्न करना पड़ा और तब भी २६१ मत (वोट) सन्धि के विरुद्ध थे तथा ११५ लोगों ने मत ही नहीं दिया।

कालान्तर में धीरे-धीरे यह सोवियत-काँगरेस पृष्ठभूमि में काम करने लगी, किन्तु सदा यह राष्ट्र की केन्द्रीय क्रान्तिकारी संस्था बनी रही। यह जनसमुदाय तथा दल को एक सूत्र में बाँधे रखती थी। संविधान के अनुसार सोवियत-क्रान्ति-संघ की वरिष्ठ अधिकारी यही कांगरेस थी।

स्थानीय सोवियतों की महत्ता और भी अधिक थी। पहले इनका चुनाव अधिकतर पेशा के आधार पर होता था। अब इनका निर्माण भी श्रेणी या वर्ग के आधार पर होने लगा, किन्तु दल के आधार पर नहीं। दूसरे तौर पर यह कहा जा सकता है कि सभी प्रकार के बुर्जुआ (रूढिवादी) तथा क्रान्ति के प्रतिकूल विचार रखनेवाले लोगों को चुन-चुनकर इन सोवियतों से बाहर निकाल दिया जाता था। शक्तिग्रहण तथा अनुरक्षण के लिए सफल युद्ध के बाद सोवियत-तन्त्र को धीरे-धीरे एक रूप में परिणत किया गया। इन सोवियतों का जाल गाँवों से सोवियत-कांगरेस तक फैला था। अब सोवियतों के बिना काम चलना मुश्किल हो गया था; क्योंकि विशेषत: बड़े नगरों में स्थानीय सामाजिक सेवा, उत्पादन और वितरण का काम इन्हीं सोवियतों के द्वारा होता था।[1] प्रसरणशील विशिष्ट वर्ग के रूप में साम्यवादी दल के परिरक्षण के लिए सोवियतें अपरिहार्य थीं। सन् 1925 ई० में सोवियतों के सदस्यों की संख्या केवल दस लाख थी, किन्तु सन् 1941 ई० में जब रूस की जनसंख्या 17 करोड़ थी, सोवियत-सदस्यों की संख्या 40 लाख हो गई।

अतः, यह कहा जा सकता है कि इस क्रान्तिकारी शासन का निर्माण दल और सोवियत के मेलजोल (संश्रय) से हुआ, जो लाल सेना और नूतन नौकरशाही के समान राष्ट्रव्यापी था और किसी विशेष दल से इसका लगाव न था। यह मेलजोल ही सोवियत-संघ (यूनियन ऑव सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक्स) की आधारशिला की तरह विराजता है। संविधान के अनुसार सोवियत संघ की सारी शक्ति शहर एवं गाँवों के कर्मकारों में अब भी सन्निहित है, जैसी कि सन् 1918 ई० में थी। ये कार्यकर्त्ताओं के प्रतिनिधियों की सोवियतों के रूप में काम करते हैं। राष्ट्र की उच्चतम शक्ति का अंग है सुप्रीम सोवियत जिसे 1936 ई० तक सोवियत-काँगरेस के नाम से पुकारते थे।

सन् 1936 ई० के नये संविधान ने सोवियतों को नये रूप में परिणत कर दिया।

---

1. दल सोवियत और कारखाना-समितियों की अन्तः कारर्वाइयों का स्पष्ट चित्र ग्लाडकोव-लिखित 'नॉर्थ काकेशश सिमेण्ट' (उत्तरी काकेशश सिमेण्ट) नामक उपन्यास (आंग्ल अनुवाद : 1929) में वर्णित

अब ये सोवियतें ही शक्ति के स्रोत हो गईं। समाजवाद से साम्यवाद में संक्रमण के लिए ये आवश्यक साधन बन गये। सभी वयस्कों को, जिनकी अवस्था 18 वर्ष से अधिक हो, मत देने का अधिकार मिल गया। वे चुनाव के लिए भी खड़े हो सकते थे। खानदान या अतीत से कोई रुकावट नहीं हो सकती थी। गुप्त मतदान की पद्धति शुरू कर दी गई। इसके अलावा सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि सभी चुनाव प्रत्यक्ष होने लगे। अभी तक प्रायः सभी लोगों का चुनाव अप्रत्यक्ष-रूपेण होता था। पहले केन्द्र में शहर के प्रतिनिधियों का बहुमत था और देहात के प्रतिनिधियों की संख्या कम थी। अब इस बहुमत का अन्त हो गया।

सोवियत-संघ का चुनाव पाश्चात्य यूरोपीय देशों के चुनाव से अब भी एकदम भिन्न है। प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र के लिए केवल एक ही उम्मीदवार को चुनाव लड़ने की अनुमति मिलती है। प्रत्येक उम्मीदवार साम्यवाद के सरकारी गुट का ही रहता है। वह किसी विशेष गुट का नहीं होता। केवल बोलशेविक दल के लोग ही तथा कुछ अन्य अनुमोदित संगठन के सदस्य उम्मीदवार के रूप में खड़े होते हैं। कुल मतदाताओं की संख्या नव करोड़ चालीस लाख (9,40,00 000) है। ये मतदाता अपने तेरह लाख प्रतिनिधियों को चुनते हैं। 98 प्रतिशत लोग अपना मत देते हैं। इतने प्रतिशत लोगों से मतदान करवाना पेचीदा काम है। आन्तरिक नीति की यह महती सफलता है। इस कठिन काम में बोलशेविक दल का निर्दलीय लोगों से विशेषतः ग्राम्य सोवियतों से सम्पर्क आवश्यक है। ये ग्राम्य सोवियतें प्राचीन कम्यून या पंचायतों के नये रूप कही जा सकती हैं। इन ग्राम्य सोवियतों में सदा से ही निर्दलीय प्रतिनिधियों की संख्या अधिक रहती आई है। सन् 1939 ई० के संविधान का उद्देश्य भी निश्चितरूपेण यही था कि श्रमिक वर्ग का अधिनायक-तन्त्र शासन और साम्यवाद दल की वर्त्तमान निर्देशक स्थिति जारी रहे। इस संविधान में लोकतन्त्र या लोकतान्त्रिक शब्दों के लिए स्थान ही नहीं है।

आर्थिक योजना और सुरक्षा की नितान्त आवश्यकता के कारण केन्द्र ने अधिक-से-अधिक नियन्त्रण लादना शुरू किया। इस नियन्त्रण के साधन केवल बोलशेविक दल और वरिष्ठ सोवियत (सुप्रीम सोवियत) ही न थी, किन्तु यूनियन कमिसरियत (संघ-रसद-विभाग) तथा लाल सेना के उच्च अधिकारी भी इसके साधक बन गये। संघ-रसद-विभाग की संख्या सन् 1940 ई० में 40 से अधिक हो गई थी। राजकीय कार्यों का क्षेत्र सिद्धान्त-रूप में सदा समग्रवादी रहा है और अब इसकी सत्यता सिद्ध हो गई। प्रथम दस वर्षों तक संघवाद का बोलबाला था; क्योंकि लोगों में, खास कर उक्रेन में रूस के महान् नेताओं के प्रति अब भी विश्वास न था। विघटन की

अपकेन्द्रीय शक्तियाँ अब भी अपना जाल फैला रही थीं। किन्तु, धीरे-धीरे काट-छाँट-कर इन शक्तियों को सीमित स्थानीय स्वायत्त-शासन के मौलिक रूप में परिणत किया गया। और, ये शक्तियाँ अब बोलशेविक दल और सोवियतों की देखरेख में काय करने लगीं। संविधान में कागज पर घटक गणतन्त्रों को संघ से अलग होने का अधिकार लिखित है, किन्तु सच पूछा जाय, तो सोवियत-राज्य अब एक विपुल राष्ट्रीय संघ बन गया है। अब यह अनेक राष्ट्रों का संघ न रहा, यद्यपि वरिष्ठ सोवियत का एक मण्डल संघ के ही आधार पर बना है। सोवियत-जनता की स्थानीय भाषा, कला और इतिहास को हरेक प्रकार से अनवरत प्रोत्साहन दिया जाता है। जार के राज्यकाल में ऐसी बात न थी। किन्तु, इस प्रोत्साहन की सीमा है। स्तालिन के अनुसार इनका रूप राष्ट्रीय होना था, तथा विषय समाजवाद से आप्लावित। सन् 1932 ई० से यही व्यवस्था चलती रही। यदि कहीं से राज-नीतिक राष्ट्रीयता की बू भी लगती, तो उसे कठोर दण्ड मिलता था और उसपर बहुत कड़ा नियन्त्रण रखा जाता था।

गत कुछ वर्षों से समाजवादी राष्ट्रीयता और सोवियत-देशभक्ति को एक ही समझा जाने लगा है। सर्वत्र देशभक्ति का खूब प्रचार किया जाता है। रूस पहले लोगों का जेलघर था। अब वह एक संघ बन गया है। इसका नाम है—संयुक्त सोवियत समाजवाद गणतन्त्रों (युनाइटेड सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक्स) की जनता की मैत्री। अब यह ब्रिटिश-राष्ट्रमण्डल (कामनवेल्थ ऑव नेशन्स) का एक तरह से प्रतिस्पर्धी सूत्र बन गया। सोवियत-देशभक्तों के लिए मातृभूमि और साम्यवाद इस प्रकार मिले-जुले हैं कि एक दूसरे से विलग नहीं किये जा सकते। सैनिक सेवा सभी के लिए अनिवार्य है। मुसलमान भी इस सेना में सम्मिलित हैं। जार के समय साधारणतः मुसलमानों को सेना में भरती नहीं किया जाता था। सन् 1936 ई० के संविधान ने घोषणा की कि पितृभूमि की रक्षा करना सोवियत-भूमि के प्रत्येक नागरिक का पवित्र धर्म है। रूस की पूर्वी सीमा पर वर्त्तमान विशाल संघर्ष ने स्पष्ट रूप से दिखला दिया कि लाल सेना और सोवियत-जनता इस धर्म की व्याख्या कैसी वीरता से और दृढव्रत होकर करती है।

सोवियत-भूमि के सभी लोग बराबर हैं। सभी को समान अधिकार है। इस विषय पर सब प्रकार से बल दिया जाता है। जहाँतक देश की सेवा का प्रश्न है, यह समता अवश्य सत्य है। किन्तु, सोवियत लोगों में ठेठ रूसी जनता संख्या, उपलब्धियाँ तथा अनुभव में सर्वोपरि है। इसे अस्वीकार नहीं किया सकता। इस बात पर अधिक-से-अधिक बल दिया जाता है कि रूसी विरासत का सर्वोत्तम उत्तराधिकारी सोवियत-शासन ही है। महान् पीटर तथा सुवोरोव को पुनः उच्च आसन मिला है।

रूस के महान् नेताओं के नाम पर नये पदक (तमगे) दिये जाते हैं; यथा पुश्किन, लरमोण्टोव, पर्नासुस, अलेक्जेण्डर नेवस्की, जिसने जर्मन योद्धाओं को 13वीं शती में हराया, और कुतुजोव, जिसने सन् 1812 ई० में विजय प्राप्त की। भयावह इवन तथा महती कैथेरीन के नाम घर-घर गूँजने लगे हैं। "हम बोलशेविकों की उत्पत्ति जनता के मर्मस्थल से है। हम अपनी जनता के इतिहास में वीरतापूर्ण कार्यों को आदर की दृष्टि से देखते हैं और उनका मूल्य समझते हैं।" ये शब्द मलोतोव के हैं, जिसकी नस-नस में रूसी खून था।

2. सन् 1905 ई० की क्रान्ति तथा जारशाही का पतन :

यह कैसे सम्भव हुआ कि सोवियत शासन-पद्धति, जो दल तथा सोवियत के दो नये आधारों पर टिकी थी, जारशाही का स्थान ले सकी और अन्ततः इस प्रकार की विशाल शक्ति का संचालन करने लगी।

गत चार शतियों से रूसी इतिहास की यह विशेषता रही है कि वास्तविक रूप में तथा सिद्धान्ततः निरकुंश केन्द्रीय राष्ट्र-शक्ति एक ही व्यक्ति में सन्निहित रही है। वह संविधान की शृंखला से परे रहती आई है। भयावह इवन सोलहवीं शती के मध्य लिखता है : "रूस के शासक किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं। वे अपनी प्रजा को पुरस्कृत करने या पीडा देने में स्वतन्त्र हैं। रूसी एकाधिकार सदा सम्राट् के हाथ रहा, न कि सरदारों या अमीरों के।" स्यात् यह पोलैण्ड के राजतन्त्र की ठीकेदारी प्रकृति से विभेद बतलाता रहा था। सन् 1906 ई० में भी जब निकोलस द्वितीय को एक अपरिपक्व संविधान स्वीकार करना पड़ा, तब उसने मौलिक विधि में लिख दिया कि सर्वतन्त्रस्वतन्त्र शक्ति समस्त रूस के सम्राट् के अधीन है। उसने प्राचीन सूत्र को दुहराया—'परमात्मा की आज्ञा है और सद्विवेक भी यही है कि उसकी आज्ञा का पालन होना चाहिए. जिससे वह क्रोध में न आये।'

जारशाही भूस्वामी, सेना, पुलिस, नौकरशाही तथा गिरजाघर के माध्यम से चलती थी। भूस्वामी या जमीन्दार ही उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध तक सेना तथा नौकरशाही में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रधान रहे। अट्ठारहवीं शती में जमीन्दारों ने रईसों और अमीरों के समान अपनी छोटी-मोटी रियासतें बना ली थीं, जैसा कि जर्मन-देशों में हुआ था। इनमें फूट भी थी। किन्तु, अब ये पश्चिम यूरोप के आर्थिक तथा औद्योगिक प्रभावों के बृहत् विकास के सम्मुख तेजोहीन होते जा रहे थे।

सन् 1861 ई० में दास स्वतन्त्र हो गये। इसके अद्र्धशती पूरा होने के बाद रूस-जापान-युद्ध (सन् 1904-5 ई०) तथा सन् 1905 ई० की क्रान्ति में निरंकुशता का परदा फट गया। इससे जारशाही खोखली पड़ गई। अब उसे सैनिक अधिनायकवाद या संविधान-मार्ग के सिवा अन्य चारा न था। उसे लाचार होकर संविधान-मार्ग चुनना पड़ा और उसने सन् 1905 ई० के 30 अक्तूबर को अक्तूबर-घोषणा जारी की, जो संविधानिक शासनपत्र के अनुरूप थी। व्यक्ति, धर्म, अभिव्यक्ति, सभा तथा संघ की पाँच स्वतन्त्रताओं को मोटे तौर पर स्वीकार कर लिया गया। नागरिकों ने सामान्य हड़ताल में इनकी माँग जोरों से की थी। समस्त रूस की प्रतिनिधि समिति 'डूमा' को जार के साथ कुछ कानून बनाने का अधिकार मिला। किन्तु, जार ने स्वयं ही संविधान-सभा की कल्पना की थी। उसने डूमा की शक्ति सीमित कर दी थी तथा मौलिक विधियों को निश्चित कर दिया था, जो उसकी देन थी और वह उसे छीन सकता था या उसमें परिवर्त्तन कर सकता था। अक्तूबर की घोषणा के लेखक और प्रधानमन्त्री विट्टे ने गर्व के साथ कहा कि अब संविधान मिल गया, भले ही वह अनुदार और संसद्वादिता से शून्य ही क्यों न हो। निकोलस अपने पिता और पितामह के समान जारों के सनातनी मन्त्री पोबेदोनोस्तसेव के मत का पूर्ण समर्थक था कि भाग्य से यदि अखिल रूसी संसद् विनाशकारी हो जाय, तो हम लोगों के बुरे दिन दूर नहीं रहेंगे।

सन् 1848 ई० में जो क्रान्ति आस्ट्रिया और प्रशा में हुई थी, सन् 1905 ई० की क्रान्ति एक प्रकार से उसी की रूसी प्रतिमूर्त्ति थी। इसका वैधानिक फल ठीक प्रशा के समान था। सन् 1851 ई० में प्रशा का जो संविधान बना, वह बिना रद्दोबदल के सन् 1918 ई० तक चलता रहा। रूस ने भी अपने मौलिक नियमों को सन् 1906 ई० में उसी आधार पर बनाया। मन्त्रिगण डूमा के प्रति उत्तरदायी न थे। मन्त्रिपरिषद् में किसी प्रकार का मेल भी न था। पहले डूमा के चुनाव में केवल पुरुष ही भाग ले सकते थे। प्राय: सभी को मतदान (वोट) का अधिकार था तथा गुप्त मतदान होता था। बड़े शहरों को छोड़कर मतदान अप्रत्यक्ष रूप से होता था। मतदाताओं को विभिन्न पेचीदे वर्गों में बाँट दिया गया था, जिस प्रकार प्रशा और आस्ट्रिया में हुआ था। इन सबका उद्देश्य यह था कि अनुदार शक्तियों की प्रभुता बनी रहे। इसमें कृषक ही अधिक थे, जो जार या कनीय पिता के श्रद्धालु शिशु थे। कृषक-उपद्रव तथा प्रथम दो डूमा के कटु अनुभवों से लोगों में भारी निराशा छा गई। सन् 1907 ई० में प्रधान मन्त्री स्तोलिपिन ने मौलिक नियमों को तोड़कर निर्वाचन-पद्धति को एकदम बदल दिया, जिससे कृषकों, श्रमिकों

तथा गैर-रूसियों को बहुत घाटा पड़ा। इसका फल यह हुआ कि ठोस अनुदार उच्च वर्गों का डूमा में प्रवेश होने लगा। अब इसे अपने पूर्ववर्ती दोनों डूमा के समान शीघ्र ही विघटित होने की आवश्यकता न थी। इसकी अपनी वैधानिक अवधि पाँच वर्ष तक बनी रही।

जार को पूर्ण अधिकार था कि वह किसी भी कानून को रद्द (विटो) कर दे। जब डूमा का अधिवेशन न हो, तब जार को कानून बनाने का वृहद् अधिकार था। सेना तथा वैदेशिक नीति उसके हाथ थी। डूमा की आर्थिक शक्ति बहुत सीमित थी, फिर भी सरकार डूमा से समझौता किये विना सेना का पुन: संगठन या कोई भी नई योजना कार्यान्वित नहीं कर सकती थी। किन्तु, डूमा के ऊपर एक दूसरा भी नियन्त्रण था। शिष्टगृह या ऊपरी चैम्बर (राज्यसभा) की प्रथा, जिसके अधिकार डूमा के समान थे, एक शती से चली आ रही थी। यह प्रारूप तैयार करती थी तथा इसके सदस्य नियुक्त किये जाते थे। अब इसके आधे सदस्य चुने जाने लगे और इसका रूप बदल गया।

जापान पश्चिमी ढंग पर रंग बदल रहा था और मिकाडो ने सन् 1889 ई० में संविधान की घोषणा की थी। किन्तु इसके विपरीत रूस के निरंकुश जार की आँख तभी खुली, जब इसने दो युद्धों—क्रिमिया-युद्ध तथा रूस-जापान-युद्ध, में बुरी तरह मुँह की खाई और देश ने क्रान्ति को चुनौती दी। तभी रूस ने उन्नीसवीं शती के पश्चिमी संसार के प्रभाव का सामना करने का यत्न किया। सन् 1905 ई० की क्रान्ति तो भूमिका-मात्र थी। इसने जारशाही को थर्रा दिया और जारशाही भयभीत हो गई। तबसे रूस में राजनीतिक कार्यों की नई हवा बहने लगी। शक्तिहीन तथा अनुदार होने पर भी सन् 1907 ई० के बाद डूमा ने एक प्रकार से वैधानिक शासन को जन्म दिया। प्रतिगामी शक्तियों को यद्यपि पुन: बल मिला, तथापि वे सफल न हो सकीं। आगे स्पष्ट हो जायगा कि अन्ततः कृषकों की समस्या पर दस वर्षों में (सन् 1917 ई० के पहले) पूर्ण ध्यान दिया गया। दूसरी मौलिक समस्या थी निरक्षरता की। इसके ऊपर भी ध्यान दिया गया, किन्तु उतनी सफलता नहीं मिली। यह सत्य है कि नौकरशाही से ही सरकार चलती रही, किन्तु उसकी प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा था। सन् 1905 ई० के समान पुन: क्रान्ति न हो जाय, इस डर से सन् 1906 ई० में मौलिक नियमों के द्वारा नौकरशाही के कुछ अधिकार सीमित भी कर दिये गये थे। हाँ, वे यहूदियों और गैर-रूसियों के साथ पूर्ववत् व्यवहार कर सकते थे। पुन: क्रान्ति की भविष्यवाणी अनेक लोग करते थे। देश में आर्थिक प्रगति होने पर भी उद्योगों में असन्तोष की तीव्र लहर फैल रही थी। जब फ्रांस-गणराज्य का राष्ट्रपति सन् 1914 ई० की जुलाई के अन्त में, समस्त रूस के

सम्राट् के पास राष्ट्रयात्रा पर पहुँचा, तब सन्त पीटर्सबर्ग के मजदूर-वर्ग ने मार्ग में पेड़ों को गिराकर उसका रास्ता रोकने को सोचा। ठीक दस दिन बाद ही विशाल जनसमूह ने शीत-प्रासाद के सामने घुटने टेककर राष्ट्रीय गान में भाग लिया और जर्मन-दूतावास को लूटने के लिए उसे घेर लिया।

यदि महायुद्ध न होता, तो जारशाही का अन्त न होता। देशभक्ति की परम्परा के कारण ही रूस ढाई वर्षों तक आधुनिक पैमाने पर युद्ध करता रहा। किन्तु सन् 1917 ई० तक स्वामिभक्ति की पूर्वभावना समाप्त हो चुकी थी। अब इसमें दम न था। विना स्वामिभक्ति के भला विशाल सेना या देश क्या लड़ता? उसके पास साधन ही क्या था? रूस के पास संगठन तथा स्थायी नैतिक शक्ति दोनों का अभाव था। अतः, वह इस हार के प्रभाव का अधिक सहन नहीं कर सकता था।

रूस की क्षति का मोटे तौर पर अन्दाज लगाया जा सकता है। 20 लाख आदमी मारे गये। 20 या 25 लाख कैदी बनाये गये। मित्रराष्ट्रों के मृतकों में प्राय: 40 प्रतिशत रूसी थे। रूसी सिपाहियों के नेता बुरे थे तथा इनके अस्त्र भी बुरे थे। तब भी रूस के सैनिकों ने वीरता और अद्भुत धीरता से मित्रराष्ट्रों को बचा दिया, किन्तु उनके उद्देश्य की सिद्धि नहीं कर सके। चीनियों के सिवा कोई भी दूसरा राष्ट्र इतने चिरकाल तक इस प्रकार के युद्ध और कुशासन को नहीं सह सकता था। आर्थिक दृष्टि से सन् 1917 ई० तक रूस तबाह नहीं हुआ था, किन्तु बाल्टिक तथा कृष्णसागर के बन्द हो जाने के कारण रूस पश्चिमी संसार से एकदम विलग-सा हो गया। अतः, रूस आर्थिक, सैनिक तथा मनोवैज्ञानिक रूप से पंगु हो गया। यातायात के साधन ठप्प हो गये। देश में जीवन की आवश्यकताओं का विभाजन बहुत ही नालायकी से किया गया। इससे पृष्ठभाग में और भी असन्तोष तथा कष्ट फैल गया।

मार्च, 1917 ई० में क्रान्ति आ गई। क्योंकि, युद्ध में सरकार की बहुत बुरी दुर्गति हुई। अतः, प्राचीन परम्परा का बन्धन सरकार से एकदम टूट गया। फलतः, राजधानी में हड़ताल एवं रोटी के लिए विप्लव होने लगे। राजधानी में विशाल अविनीत सेना थी। इन्होंने विद्रोह को भड़का दिया और विद्रोह की आग चमक उठी। सेना में लोग कहते थे—सरकार चाहती है कि हम सब मर जायँ, जिसमें जमीन्दार हमारी स्त्री और बच्चों को भूखों मार डाले। हमारे मित्रराष्ट्र अनेक हैं, किन्तु उनसे कोई लाभ नहीं। जर्मन भी हमारे समान ही मनुष्य हैं। हम स्वतन्त्रता चाहते हैं। देहातों से पुलिस संवाद भेजती थी—

हमलोग प्रतीक्षा कर रहे हैं और अशान्त हैं। हम चाहते हैं कि कब यह दुःखदायी युद्ध खत्म हो। राजनीतिक प्रस्तावों पर सर्वत्र चर्चा होती है। जो प्रस्ताव पास होते हैं, वे जमीन्दारों और व्यापारियों के प्रतिकूल हैं।

यह कहा जा चुका है कि जारशाही जमीन्दारों, सेना, पुलिस, नौकरशाही और गिरजाघरों के माध्यम से काम करती थी। युद्ध के समय गिरजाघर खोखले हो चुके थे और जमीन्दारों की शक्ति नष्ट हो चुकी थी। सेना प्राचीन काल की सेना न थी। कृषकों को पकड़कर युद्ध में भिड़ा दिया गया था। इस सेना को बार-बार मुँह की खानी पड़ी। युद्धस्थल में यह आचारभ्रष्ट हो चुकी थी। पृष्ठभूमि की अपार सेना अविश्वसनीय थी। अफसरों की अनेक कमजोरियाँ थीं। इनका कोई नेता न था, जो अर्जित विजय या वैयक्तिक आकर्षण से जनता में विद्युत्-संचार करता। और, अब पहली बार लाखों अशिक्षित कृषकों और मजदूरों के हाथ में हथियार थे। सन् 1917 ई० के पहले युद्धस्थल में क्रान्तिकारियों का प्रचार उतना महत्त्वपूर्ण न था, किन्तु कार्य के लिए यह आदर्श स्थान था। मार्च के बाद 6 मास में ही सारी सेना उत्तेजित भीड़ के रूप में गाँवों में लौटने और भूमि का हिस्सा लेने के लिए उठ खड़ी हुई।

नौकरशाही का अर्थ था सरकार और जार के रूप में मूर्त्तिमान् अधिकार का सिद्धान्त। क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त करने में सबसे बड़ा हाथ है अल्पसंख्यक शिक्षित और बहुसंख्यक कृषक और मजदूरों के बीच की खाई को। ये दोनों विभिन्न विचार, भाषा तथा भावना के जगत् में विचरते थे। रूसी इतिहास में गत दो शतियों से यह खाई कठिन समस्या के रूप में चली आ रही थी। शिक्षित अल्प-संख्यक ही आधुनिक रूस के शासक और सभ्यतादाता थे। प्रभावकारी सरकार तभी हो सकती है, जब नौकरशाही और शेष शिक्षित संख्यकों में यथेष्ट सम्मेल हो। किन्तु, सन् 1917 ई० तक सम्मेल का तो प्रश्न ही नहीं था। दोनों के मध्य महान् अन्तर था।

अलेक्जेण्डर प्रथम (सन् 1801-1825 ई०) के शासन-सुधारों के कारण नौकरशाही ने आधुनिक रूप धारण किया। रूसी साहित्य में इस रूसी नौकरशाही का खूब मखौल उड़ाया गया है। यह नौकरशाही क्रान्तिकारियों का अभिशाप थी। सन् 1917 ई० के पूर्व आधी शती तक प्रगतिशील लोगों को इस नौकरशाही से निराशा मिलती रही। इसके विरुद्ध जो आक्षेप किये जाते थे, वे अधिकांशतः सही थे, तो भी रूस इनका बहुत ऋणी था, जो प्रायः लोग नहीं समझते। इस नौकरशाही में अनेक योग्य, ईमानदार तथा घोर परिश्रमी शासक हुए। किन्तु, ऐसे

कम ही लोग थे और युद्ध के समय तो इनकी संख्या और भी कम हो गई। इस नौकरशाही की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि इसमें योग्य नेता तथा कुशल राजनीतिज्ञों को पैदा करने या पचा लेने की क्षमता न थी। जार के प्रभुत्व में जनता के परम्परागत विश्वास को यह अपनी मुँडेरी ईंट (Coping stone) के रूप में चाहती थी। यदि यह विश्वास लुप्त हो जाय और सेना विश्वास के योग्य न रहे, तो नौकरशाही अकेले शासन नहीं कर सकती थी। रूस के लिए यह नौकरशाही वैदेशिक थी। यद्यपि लोगों को इससे कुछ भय लगता था, तथापि जो प्रतिष्ठा जर्मनी के नागरिक सेवकों को प्राप्त थी, वह इन्हें कभी न मिली। इस नौकरशाही ने एक दृढ संघभाव का विकास किया। ऐसा करने के कारण यह शिक्षित अल्पसंख्यकों के उदार दल से अधिक-से-अधिक दूर होती गई। इस दल में थीं--डूमा, प्रान्तीय परिषद्, नगरपालिका संस्थाएँ, व्यावसायिक वर्ग तथा सहयोग-समितियाँ।

युद्धकाल में सरकारी यन्त्र एकदम बेकार हो गया। इसने न तो अपना महान् उत्तरदायित्व निबाहा और न प्रगतिशीलों द्वारा संचालित सेवकों की संस्थाओं के साथ सहयोग किया। मन्त्रिगण जार द्वारा नियुक्त किये जाते थे। वे नौकरशाही से लिये जाते थे, न कि प्रगतिशील समाज से। ये अस्तित्वहीन या उससे भी बदतर थे। भरी सभा में इनके प्रतिकूल विश्वासघात का दोष लगाया जाता था। ऊपर से किसी प्रकार का नेतृत्व नहीं था और न कोई सुदृढ नीति। सर्वत्र अयोग्यता ही दिखलाई पड़ती थी। बिना मतलब के नित्यकर्म चलता रहता, जिस प्रकार कोल्हू में तेली का बैल। जारशाही के अन्तिम वर्ष में चार विभिन्न प्रधान मन्त्री, चार गृहमन्त्री, तीन युद्ध-मन्त्री तथा तीन वैदेशिक मन्त्री बने।

निकोलस द्वितीय ने ही सरकार को अन्तिम रूप में देश से विलग कर दिया। यदि वह जार न होता, तो अच्छा होता। वह अपनी स्त्री के वश में था। वह राज्य करने के योग्य न था। वैयक्तिक रूप से उसमें अनेक अनुकरणीय गुण थे। किन्तु, रासपुतिन के कलंक और सदुपदेशों को अनसुनी करने के कारण स्थिति बिगड़ती गई। यदि वह किसी मन्त्री को चुनता, जो जनता में विश्वास जमा सकता था, अथवा कम-से-कम संयुक्त नेतृत्व की झलक भी दिखा देता, तो क्रान्ति न हो पाती। स्थिति ऐसी नाजुक हो गई थी कि शाही वंश के लोग भी प्रासाद-क्रान्ति की बात करने लग गये थे, जैसी कि अठ्ठारहवीं शती में प्रायः होती रहती थी। जब जारशाही की अन्तिम घड़ी निकट आ गई, तब जार महारानी के साथ अफसोस व्यक्त करते हुए स्वयं लिख रहा था कि बच्चों को चेचक हो गई है और वह शिकायत कर रहा था कि

प्रतिदिन सन्ध्याकाल में मुझे आधे घण्टे तक ताश खेलने का समय नहीं मिलता। मैं अपनी फुरसत के समय (८ मार्च, 1917 ई०) पुनः पासा खेलना शुरू करूँगा।

उसी दिन पेट्रोग्राड में अशान्ति फैल गई। एक सप्ताह के अन्दर इसने क्रान्ति का रूप धारण किया। समाज के सभी वर्ग के लोगों से निकोलस इतना विलग हो चुका था कि यथाशीघ्र राज्य-परित्याग के सिवा उसके लिए कोई चारा ही नहीं था। उसने ऐसा ही किया—अपने लिए तथा अपने छोटे पुत्र के लिए। उसने अपने भाई माइकेल महाड्यूक के पक्ष में राज्यत्याग दिया। महाड्यूक ने तबतक राजमुकुट धारण करना अस्वीकार कर दिया, जबतक संविधान-सभा उसे राजा न बनाये। रोमानव-वंश का यही अन्त था और इसके साथ ही निरंकुश अधिकार का भी सुदीर्घ काल के लिए अन्त हो गया।

युद्ध ने जारशाही का सत्यानाश किया। सेना विघटित हो गई थी। अब प्रतिष्ठा और परम्परा को कायम रखनेवाला कोई भी न था। नूतन अस्थायी सरकार कहीं न थी। वह अथाह सागर में बहती हुई लकड़ी के समान थी। इस अस्थायी सरकार में बेमेल प्रगतिशील गुट का प्रतिनिधित्व ही अधिक था। ये डूमा-प्रान्तीय परिषद् तथा नगरपालिकाओं के सर्वोत्तम अवयव थे। शिक्षित अल्प-संख्यकों का यह दूसरा वर्ग था, जिसे नौकरशाही से इतना विलग कर दिया गया था। युद्धकाल में यही वर्ग अग्रसर हो गया और तत्क्षण के लिए सारे देश का राजनीतिक केन्द्र बन गया। किन्तु, एकदम नया और अत्यन्त अनुदार होने के कारण यह जनसाधारण में प्रतिष्ठा न पा सका। सोवियतों ने इसे शीघ्र ही चुनौती दी। ये सोवियत भी नये थे, किन्तु नई दुनिया की शक्ति इनकी नस-नस में स्फुरित थी।

जुलाई में केरेंस्की ने अस्थायी सरकार का पुनः संगठन किया। यह देखने में सुन्दर गुलाबी रंग का था और एक ही बात पर अटल था कि मित्रराष्ट्रों के साथ मिलकर युद्ध जारी रहे। अन्य सभी बातों में इसने टालमटोल की नीति अपनाई और जबतक संविधान-सभा न बैठे, तबतक भूमि की व्यवस्था तथा नूतन शासन का प्रबन्ध खटाई में डाल दिया। सोवियतों ने शीघ्र ही दो बातों का निर्णय किया—शान्ति तथा भूमि का वितरण अभी हो। सोवियतों के पास हथियार था। पृष्ठभूमि में विशाल सेना इनका साथ देने को तैयार थी तथा युद्धस्थल में भी अधिकाधिक सेना इनकी पीठ पर थी। अब शान्ति-सुव्यवस्था के नाम पर सैनिक एकतन्त्र (तानाशाह) की स्थापना असम्भव थी। सन् 1917 ई० के अन्त में विषम परिस्थितियों में सर्व-मतदान से संविधान-सभा का चुनाव हुआ। तबतक बोलशेविकों ने अस्थायी

सरकार को उखाड़ फेंका था। संविधान-सभा में बोलशेविक अल्पसंख्य थे। अतः सोवियत-काँगरेस ने अपनी प्रतिद्वन्द्वी संविधान-सभा (जनवरी, 1918 ई०) को कुचल डाला।

सुन्दर, पवन, ईर्ष्यालु, आनन्ददायक ..
आँसू, हीरा, घूसा, महानदी... ..
संविधान-सभा को सर्वाधिकार
क्रान्ति के मार्ग पर कदम बढ़ाये जा
अथक शत्रु कभी मुख नहीं मोड़ता।
साथियों, डरो मत, लक्ष्यवेध करो।
रूस के गिरजाघरों पर गोली चलाओ--
रूस किसानों की झोपड़ी है।
यह कुन्दे के समान ठोस है।
इसका पेंदा बहुत चौड़ा है।
विना क्रॉस, विना क्रॉस के है--(ईसाई नहीं है, ईसाई नहीं है)
हमारे बच्चे सेवा के लिए गये हैं।
वे लालरक्षकों की सेना में सेवा के लिए गये हैं।
वे लालरक्षकों की सेना में सेवा के लिए गये हैं।
हम दुनिया में आग लगायेंगे
सभी बुर्जुआ[1] चूल्हे-भाँड़ में जायँ।
खून से दुनिया में आग लगायेंगे
भगवान्, हमे आशीष दो
क्रान्तिपथ पर आगे कदम
हमें अथक शत्रु का सामना करना है
आगे बढ़ो, आगे बढ़ो, नगाड़ा बज रहा है
आगे बढ़ते मजदूरों की पदचाप का
बारह, पापात्मा, सदा आगे बढ़ो
सब सहने को तैयार, किसी पर दया न करो
अतः, ये-बारह पराक्रम से आगे बढ़ते जाते हैं।
पृष्ठभाग में है भूखा दोगला
सामने है खूनी झण्डा लाल

1. बुर्जुआ (Bourgeois) फ्रांसीसी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है नागरिक। यह मध्यम श्रेणी के लोगों के लिए प्रयुक्त होता है।

बर्फ के झंझावात में अदृश्य
गोली का असर नहीं
झंझावात के ऊपर मन्द चाल से चलते रहे
बलुआ पंक की बर्फ पर मोती चमकता है
श्वेत गुलाब का प्रमण्डल है
सामने है–ईसा मसीह ।[1]

3. प्रतिनिधि संस्थाएँ

शिक्षित अल्पसंख्यकों के उदार दल तथा इनकी प्रतिनिधि सरकार की विफलता का मुख्य कारण यह था कि जारशाही ने इनको सदा ठुकराया था। अतः, इन्हें बहुत बुरी परिस्थिति में मौका मिला। यह जल के भँवर के समान था जो चक्कर काटते-काटते अराजकता में ढकेल देता। यह उदार दल भूतकाल का उज्ज्वल दृश्य दिखाकर लोगों को आकृष्ट नहीं कर सकता था और उज्ज्वल भविष्य के विषय में सोवियतों ने इसे एकदम मात कर दिया। अस्थायी सरकारी की नींव थी राष्ट्रीय प्रतिनिधि सभा—डूमा तथा स्थानीय प्रतिनिधि संस्थाएँ, प्रान्तीय तथा नगरपालिका-परिषदें। किन्तु, डूमा के अधिकांश सदस्य बहुत ही अनुदार विचार के थे। तथा परिषदों का निर्माण बहुत ही संकुचित दृष्टि से हुआ था। निर्वाचित संस्थाओं के सिद्धान्त तथा व्यवहार का रूस में अपना इतिहास है, किन्तु ये संस्थाएँ थीं क्षीण, विलग तथा सब प्रकार से केन्द्रीय शक्ति के अधीन। हम पहले स्थानीय स्वायत्त-शासन और फिर राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व के इतिहास पर विचार करेंगे।

उन्नीसवीं शती के छठे दशक के महासुधार तक स्थानीय शासन पूर्णतः केन्द्रीय शासन के नियन्त्रण में था। यदा-कदा, यथा—भयावह इवन (सन् 1549–50, 1555 ई०) तथा महती कैथरीन (सन् 1775, 1785 ई०) के कर-वसूली को ठीका पर देने की दुर्व्यवस्था को रोकने का यत्न किया गया। स्थानीय निर्वाचित अधिकारियों तथा संस्थाओं द्वारा शासन तथा न्याय को प्रभावोत्पादक बनाने का यत्न हुआ। नगरों में एक प्रकार की स्वतन्त्रता भी लाने का प्रयास हुआ। किन्तु, प्रतिवचन सन्तोषजनक न था। सभी अपनी जिम्मेवारी यथासम्भव टालना चाहते थे। राज्य की इच्छा थी कि डटकर काम किया जाय। अतः, संगठित स्थानीय प्रेरणा या स्वालम्बन की प्रायः हत्या कर दी जाती थी। केवल कृषक-समुदाय में ऐसी बात न होती थी। न्याय

1. यह क्रान्ति की प्रसिद्ध कविता है। इसे अलेक्जेण्डर ब्लोक ने जनवरी, 1918ई० में 'बारह' के नाम से लिखा था।

और शासन अधिकतर एक ही आदमी के हाथ में रहे। यदि स्थानीय मामलों का सम्बन्ध केन्द्रीय जाल से न हो, तब सामान्यतः प्रवृत्ति यह थी कि लोग इन मामलों को विभिन्न वर्गों के जिम्मे लगा देते थे; यथा जमीन्दार, पादरी, व्यापारी, वणिक्। कुछ किसानों ने राष्ट्रीय पैमाने पर तो नहीं, किन्तु स्थानीय पैमाने पर अपना संगठन किया था, परन्तु वे एक-दूसरे से विलग काम करते थे। महती कैथरीन ने कृषकों को सन् 1785 ई० में एक शासनपत्र दिया। इससे प्रान्त तथा जिले की समितियों को नया आधार मिल गया। अमीर और रईसों का एक नया राज्य ही बन गया। किन्तु, इन समितियों का विकास सजीव संस्थाओं में न हो सका। लगान वसूल करने के लिए राज्य सदा प्रत्येक वर्ग को अलग रखना चाहता था। राज्य चाहता था कि उसकी प्रजा कबूतरों के दरबे में रहे जिससे जब चाहे, उन्हें पकड़ लिया जाय। इसका प्रभाव बहुत ही बुरा हुआ। रूसी समाज का प्रत्येक अंग एक दूसरे से विलग होता गया।

अलेक्जेण्डर द्वितीय ने सन् 1861–70 के मध्य जो बड़े-बड़े सुधार किये, उसका श्रेय है नौकरशाही के प्रगतिशील वर्ग को। प्रेस ने इसे प्रोत्साहन दिया, जो उस समय अपेक्षाकृत स्वतन्त्र था। यह वर्ग दासस्वामी या व्यवसायी-वर्गों की समितियों के साथ मिल-जुलकर काम करता था। ये समितियाँ कभी तो निर्वाचित होती थीं और कभी नियुक्त की जाती थीं। कुछ सुधारों में गैर-नौकरशाहियों का सीधा हाथ था, जिसका बड़ा महत्त्व था; किन्तु मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि ये नौकरशाही के हथकण्डे थे। वे किसी राष्ट्रीय संस्था से सम्बद्ध न थे। यहाँ-तक कि दास-स्वामियों के राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व से भी वे दूर थे।

दासों की मुक्ति (सन् 1861 ई०) सबसे बड़ा सुधार था। इसका वर्णन अगले अध्याय में होगा। इसके साथ ही कृषकों के स्वायत्त-शासन के अंग कम्यूनों का पुनःसंगठन हुआ। दूसरे सुधार केवल विभिन्न भावनाओं से उत्प्रेरित हुए; यथा न्याय से शासन का विलगाव, विकेन्द्रीकरण तथा स्वायत्त-शासन। स्वायत्त-शासन के लिए चिरकाल तक संघर्ष चलता रहा और अन्ततः अनुदार शक्तियों की विजय हुई। हाँ, नूतन प्रान्तीय तथा जिला-परिषदों में (सन् 1864 ई०) उस क्षेत्र के सभी वर्गों के लोग सम्मिलित थे, किन्तु यह चुनाव त्रिवर्ग के आधार पर होता था। जैसा प्रशिया की प्रान्तीय सभाओं में होता था। कृषकों के लिए परोक्ष चुनाव था और घर के मुखिया द्वारा होता था। अमीरों का ही विशेष महत्त्व था। प्रगतिशील अमीरों ने कुछ वर्षों तक मार्ग दिखाया।

ये नूतन संस्थाएँ प्रायः समस्त यूरोपीय रूस में स्थापित हो गईं, किन्तु अन्यत्र नहीं। ये संस्थाएँ वर्तमान स्थानीय शासन-यन्त्र के अतिरिक्त थीं। इनके कार्य की

सीमा स्पष्ट न थी। इनकी वित्तशक्ति बहुत सीमित थी तथा प्रान्तीय गवर्नर और गृह-मन्त्रालय इनके ऊपर बहुत कड़ा नियन्त्रण रखते थे। प्रारम्भ में आशाजनक कार्य हुए, किन्तु शीघ्र ही प्रतिक्रिया आरम्भ हो गई। अलेक्जेण्डर तृतीय (सन् 1881–94 ई०) के काल में केन्द्रीय अधिकारियों ने उनके अधिकांश कार्यों पर पानी फेर दिया। सन् 1890 ई० में इनका पुन: संगठन हुआ। किसानों द्वारा चुनाव एक तरह से कुचल दिया गया। अमीरों का यथेष्ट बहुमत हो गया। उसी समय (सन् 1889 ई०) शान्ति के जजों की बदली कर दी गई। पहले इनका चुनाव जिला-परिषद् करती थी। अब गृह-मन्त्रालय ने उनके स्थान पर प्रतिक्रियावादियों को नियुक्त किया। इस तरह पुन: न्याय और शासन एक ही व्यक्ति के हाथ में चले गये, जो पुलिस के साथ किसानों के प्रधान शासक थे। सन् 1912 ई० तक इसी प्रकार किसानों पर शासन चलता रहा और तब एक कानून से परिवर्त्तन लाया गया। निर्वाचित नगरपालिका-परिषदों की स्थापना भी सन् 1870 ई० में जिला-परिषदों के आधार पर हुई थी। सन् 1892 ई० में उनकी भी यही दशा हुई। नगरपालिकाओं में मतदान के लिए बहुत ही उच्च योग्यता का बन्धन लगा दिया गया। तीन दल-पद्धति कायम हुई तथा नगरपालिका-परिषदों पर केन्द्र पहले की अपेक्षा और भी कड़ा नियन्त्रण करने लगा।

नौकरशाही के विरोध करने पर भी स्थानीय स्वायत्त-शासन तथा स्वयंसेवक-दलों का कार्य आगे बढ़ता ही गया। सन् 1917 ई० के पहले आधी शती तक यही क्रम रहा। जिला-परिषद् और अनेक नगरपालिका-परिषदों का कार्य प्रशंसनीय था, विशेषत: शिक्षा, जनस्वास्थ्य तथा कृषि में। सन् 1905 ई० की क्रान्ति के समय और कुछ पहले उदार दलों का साथ देनेवालों में प्रमुख राजनीतिक दल यही था, जिसने अखिल रूसी कांगरेस के माध्यम से काम किया। सन् 1914 ई० के बाद तो पृष्ठभूमि के युद्ध-संगठन के साथ संघर्ष करने में इन्हीं का प्रमुख हाथ रहा। उदार दल तथा खासकर व्यावसायिक वर्ग में ये बहुत ही लोकप्रिय थे, किन्तु इसके बाहर इनका बहुत कम प्रभाव था। जारशाही का, आधुनिक राजतन्त्र में परिवर्त्तन इनके बिना दु:साध्य था। किन्तु यह प्रतिक्रिया सन् 1905 ई० के बाद ही शुरू हुई। किन्तु, सन् 1917 ई० में न तो कोई जार था और न कोई विश्वस्त सेना। अत:, नूतन शासन-प्रणाली की आधारशिला डूमा के साथ काम करने में ये अशक्त रहे।

यदि स्थानीय स्वायत्त-शासन की जड़ पतली थी, तो राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व का केवल स्मरण-मात्र शेष था। राष्ट्रीय पैमाने पर निर्वाचित प्रतिनिधि संस्था के रूप में निरंकुश शक्ति को सीमित रखनेवाले डूमा की समानता ढूँढने के लिए रूसियों को सत्रहवीं शती की शरण लेनी पड़ी।

अलेक्जेण्डर द्वितीय ने अपनी हत्या (सन् 1881 ई०) के कुछ ही पहले नूतन-परामर्शदातृ-आयोग को चुपके-से स्वीकार कर लिया था। इसमें जेमस्त्व (जिला-परिषद्) से भी कुछ चुने हुए लोग थे। यह विकास का सफल बीज हो सकता था। किन्तु शीघ्र ही खून हो जाने के कारण उसके पुत्र अलेक्जेण्डर तृतीय को ऐसी भयंकर भावना को त्यागना पड़ा और उसने घोषणा की कि परमात्मा का यह आदेश है कि मैं निरंकुश शक्ति की सत्यता और दृढ़ता में विश्वास कर निष्ठा से शासन करूँ; राष्ट्रीय श्रेय के लिए इस निरंकुश शक्ति का योगक्षेम आवश्यक है। इसके प्रतिकूल कोई भी झुकाव न हो। अलेक्जेण्डर प्रथम निर्वाचित सभा के नमूने से संविधान तैयार करने की योजना से तीन बार खिलवाड़ करता रहा। किन्तु, उसे स्पेरंस्की से सन् 1812 ई० में हाथ धोना पड़ा। वही अलेक्जेण्डर प्रथम के सुधारक मित्रों में सबसे योग्य और सफल था। इसकी दूरव्यापी योजनाओं के कुछ अंश को ही कार्यरूप में परिणत किया जा सका।

महती कैथरीन ने सचमुच एक विधान-आयोग (सन् 1767-68 ई०) बुलाया था। इसके निर्वाचित सदस्य साम्राज्य के सभी भाग से थे तथा इसमें सभी तरह के लोग सभी वर्गों से थे किन्तु इसमें बहुसंख्य दास तथा पादरियों के प्रतिनिधि न थे।[1] विधान-आयोग का काम था कि वह विधि (कानून) को संहिता-रूप में लाने के लिए सूचनाएँ एकत्र करे। इसके पहले जमीन्दारों और वणिकों की निर्वाचित लघु समितियाँ थीं, जो गत 40 वर्षों में पाँच बार इसी कठिन समस्या को हल करने के लिए बुलाई गई थीं। किन्तु, विधान-आयोग एक वृहत्संस्था थी और इसका प्रचार खूब हुआ। इससे कैथरीन को विशाल जनसमुदाय की सम्मति तथा दूसरी सामग्री मिल गई, जिसका प्रयोग उसने कालान्तर में विधान के लिए किया। किन्तु, इस आयोग ने संहिता बनाने के लिए कुछ भी न किया। अन्तत:, निकोलस प्रथम के राज्यकाल में (सन् 1833 ई०) स्पेरंस्की के कारण संहिता तैयार करने में सफलता मिली। यह प्रयोग-मात्र था, जिसे कैथरीन ने नहीं दुहराया। इस प्रयोग को दुहराने की माँग भी कहीं से न हुई। प्रमुख जमीन्दार-वर्ग भी धीरे-धीरे अपनी स्वार्थसिद्धि से सन्तुष्ट था। राष्ट्रीय संस्था द्वारा अपनी राजनीतिक स्थान को दृढ करने की उसे आकांक्षा न थी। हो सकता है कि यह संस्था जारशाही का संगठित प्रतितुलन हो जाती।

सत्रहवीं शती के प्रारम्भ में बात दूसरी ही थी। उस समय मस्कोवी सामाजिक झंझट, गृहकलह, पोलैण्ड तथा स्वीडेन के व्यवधान में निमग्न था।

---

1. कैथरीन का आदेश सारे रूस में खूब फैल गया। इससे स्पष्ट है कि वह कितनी उदार शासक थी। उसके ऊपर माण्टस्क्यू तथा बेकारिया का प्रभाव पड़ा था।

इसका फल यह हुआ कि मास्को तथा नवगोरद उनके हाथ से चला गया तथा पोलैण्ड का जार गद्दी पर बैठा। यही आपत्तिकाल (सन् 1604–1613 ई०) था। आपत्तिकाल का एक बड़ा फल यह हुआ कि अखण्ड मस्कोवी-राज्य की भावना जाग्रत् हो उठी; क्योंकि अब कोई प्रभावशाली जार न रहा। अभी तक मस्कोवी के विषय में यही भावना प्रचलित थी कि यह जार की पैतृक सम्पत्ति है, उनकी जागीरों का महासंग्रह है और इसमें सभी वर्ग के लोग रहते हैं, जो इसकी पूँजी है। दूसरा फल यह हुआ कि स्थानीय संस्थाएँ स्वतः काम करने लगीं; क्योंकि शासन भंग हो चुका था और राज्य में विप्लव था। ये संस्थाएँ अपनी परिषदें चुनती थीं। इन्होंने मिल-जुलकर पोलैण्ड के आक्रमणकारियों का संगठित प्रतिरोध किया। यह भावना फैलने लगी कि मस्कोवी के पुनर्निर्माण में सारे देश के लोगों के सहयोग और सम्मति की आवश्यकता होगी। अत:, एक नूतन राष्ट्रीय संस्था का विकास हुआ—देश की निर्वाचित सभा, जो पश्चिमी यूरोप की महासभा (इस्टेट्स-जनरल) के अनुरूप थी। आधी शती तक इसने प्रमुख भाग लिया और दस वर्ष तक (सन् 1613-22 ई०) इसने देश के पुनर्निर्माण में भाग लिया, जब प्राय: इसके वार्षिक सत्र होते रहते थे।

देश की इस सभा का जन्म सन् 1566 ई० में हो चुका था, जब भयावह इवन ने अमीरों की परिषद् तथा उच्च-पादरी-परिषद् की संयुक्त प्राचीन सभा में मध्यम श्रेणी के कृषकों के निर्वाचित सदस्यों को भी स्थान दिया। सेना तथा अधिकारी इसी वर्ग से आते थे। ये सर्वसेवा में निपुण थे तथा मध्यकालिक इंगलैण्ड के प्रान्तयोद्धा (नाइट) के अनुरूप थे। जब इस वर्ग के प्रान्तीय सदस्यों का इस सभा में बहुमत हो गया और निर्वाचन का स्थान संकलन (चुनाव) ने ले लिया, तब इसका रूप ही बदल गया। उस समय अनेक स्थानीय शासन-कार्य के लिए निर्वाचन की ही प्रथा खूब फैली थी। इसमें वणिक् तथा नागरिकों के भी निर्वाचित प्रतिनिधि थे और कभी-कभी स्वच्छन्द कृषक तथा कुछ अन्य वर्गों के भी प्रतिनिधि ले लिये जाते थे।

इस सभा की ठीक बनावट तथा कार्य-प्रणाली के सम्बन्ध में यथेष्ट प्रमाण नहीं मिलते हैं; किन्तु इतना स्पष्ट है कि इसकी जड़ न जम सकी तथा देश की सभाएँ विभिन्न कार्य के लिए बुलाई जाती थीं और वे विभिन्न होती थीं। इनसे विभिन्न विषयों पर परामर्श लिया जाता था; यथा विग्रह, शान्ति, विधिसंहिता में वृद्धि, उक्रेन का प्रश्न, कर-निर्धारण, सन् 1613 ई० के बाद शासन का पुनः निर्माण। इनके अतिरिक्त सबसे बड़ी बात थी गद्दी के उत्तराधिकार का प्रश्न। प्रतिनिधियों का चुनाव प्रान्तों तथा नगरों में विभिन्न वर्गों के द्वारा विभिन्न संख्या में अलग-अलग होता था। इसमें उत्तम, निम्न सभी श्रेणी के भले और विचारशील पुरुष थे।

ये प्रतिनिधि उत्तर-मध्यकालीन इंगलैण्ड के शेरीफ[1] के अनुरूप थे और प्राय: उन्हीं के समान सभी कार्य करते थे। सामूहिक और वैयक्तिक आवेदन-पत्र खूब उपस्थित किये जाते थे; क्योंकि सन् 1622 ई० के बाद इसके अधिवेशन प्रासंगिक होने लगे तथा शक्ति रईस-परिषद्, मास्को के प्रमुख अधिकारी तथा केन्द्र द्वारा नियुक्त स्थानीय शासकों (गवर्नर) के हाथ चली गई।

शासन को नियन्त्रित रखना भारी काम है, खासकर जब प्रतिनिधियों को अपर्याप्त वेतन मिलता है। सबका सहयोग प्राप्त करना और भी कठिन कार्य है, यदि देश बहुत बड़ा हो, यातायात के साधन कम हों तथा लोगों में विभिन्नता हो। छोटे जमीन्दारों का मुख्य उद्देश्य सन् 1649 ई० में पूर्ण हो गया; क्योंकि नई विधि-संहिता के अनुसार उन्ह अपने दासों को बाँधकर काम लेने की वैधानिक सम्मति मिल गई। इसी समय मास्को तथा अन्य नगरों में भयानक विप्लव हुए और दृढ शासन की आवश्यकता बढ़ गई। उच्च पादरी तथा उच्च अधिकारी देश की सभाओं को हेय दृष्टि से देखते थे। सन् 1653 ई० के बाद जार ने पूर्ण सभाओं को कभी नहीं बुलाया। रईस-परिषद् तथा पादरी-परिषदों के सिवा जार केवल उन्हीं प्रतिनिधियों से परामर्श लेता था, जो चुने या निर्वाचित थे और किसी भी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे और जिस विषय से उनका सीधा सम्पर्क था। देश की पूर्ण सभा, फ्रांस की महासभा के 39 वर्ष बाद, रसातल को चली गई। उस समय पोलैण्ड में इसका अनुरूप सभा राजकीय शक्ति को खतम कर स्वातन्त्र्य-अधिकार के विकास की अन्तिम शती में पहुँच रही थी।

4. रोमानव-वंश

रूस की सभा ने सबसे बड़ा काम यह किया कि इसने राजसिंहासन के उत्तराधिकार का प्रश्न हल कर दिया। बैजनटाइन-साम्राज्य के विपरीत, जिस प्रकार स्वर्ण-कुनवा के खान सदा चंगेजखां से अपनी उत्पत्ति बतलाते थे, ठीक उसी प्रकार रूस भी एक ही वंश की परम्परा से चिपका रहा। यह वंश था वरांगी रूरिक का और उसी से सभी महाराजकुमार निकले। पहले तो ये कीव के और फिर अन्य प्रदेशों के और अन्तत: केवल मास्को के महाराजकुमार के नाम से विख्यात हुए। चौदहवीं शती के प्रारम्भ से ही प्रत्येक महाराजकुमार अपने ज्येष्ठ पुत्र और पुत्र के अभाव में अपने से छोटे भ्राता के ऊपर मास्को का राज्य-संचालन-कार्य का भार देता रहा। क्षणिक काल के लिए केवल एक ही अपवाद रहा है।

1. तुलना करें : शरीफ।

सन् 1598 ई० में भयावह इवन का इकलौता पुत्र जार फेओदर स्वर्ग सिधारा। उसकी कोई भी सन्तान जीवित न थी और कोई आत्मीय सम्बन्धी भी न था। अतः, उसकी पत्नी ने राजमुकुट धारण किया। अभी तक कोई भी महिला गद्दी पर न बैठी थी, किन्तु लोगों ने उसे स्वीकार किया। किन्तु, शीघ्र ही उसने राज्य-परित्याग कर दिया। उसने घूँघट धारण किया तथा मास्को के कुलपति को आदेश दिया कि मेरे उत्तराधिकार का प्रबन्ध करो। इस पेचीदे और विलक्षण कार्य का सम्पादन उसने देश की सभा को बुलाकर किया। सभा ने उस रानी के भाई बोरिस गुदोनव को जार चुना। यह जार फेओदर की रुग्णावस्था में देश का सचमुच शासक तथा जार का मित्र था। यह योग्य एवं प्रबुद्ध शासक था। यह निर्वाचन बोरिस के साथियों के सहयोग से हुआ, किन्तु सभा का आदेश केवल उपचार न था। बोरिस ने अपनी प्रतिष्ठा के लिए इसे आवश्यक समझा। इस निर्वाचन में किसी प्रकार की शर्त्त नहीं थी। महत्त्व की बात यह थी कि गद्दी के लिए वंश-परम्परा के प्रतिकूल इस नूतन, किन्तु आवश्यक विचलन को सरकार ने बैजनटाइन-साम्राज्य के अनेक उदाहरण उपस्थित कर पुष्ट किया।

किन्तु, मस्कोवी को इस वंश का आश्रय लेने में पन्द्रह वर्ष लग गये। बोरिस का लघु पुत्र उसके बाद गद्दी पर न बैठा। दो कपटी गद्दी पर बैठे या जार के लिए एक दूसरे से संघर्ष करते रहे। दोनों अपने को भयावह इवन के पुत्र बतलाते थे। एक था रईस शुइस्की और दूसरा था पोलैण्ड का व्लाडिस्लव, जो राजा सिगिसमुण्ड तृतीय का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। अन्त में, जब लोगों ने पोलों से मास्को पुनः अधिकृत किया, तब देशसभा ने सन् 1613 ई० में किसी विदेशी या रईस को नहीं चुना, किन्तु माइकेल रोमानव को चुना, जो मध्यमकुलीन वंश का था। भयावह इवन की लोकप्रिय भार्या के सम्बन्धी होने के कारण प्राचीन वंश से इसका लगाव था।

शुइस्की को यदि सारे देश के प्रति नहीं तो कम-से-कम रईसों के प्रति शपथ लेनी ही पड़ी थी। व्लाडिस्लव विदेशी और कैथोलिक था। उसे सारे देश की सभा की शर्त्तों को मानना पड़ा था। किन्तु, माइकेल का निर्वाचन सारे देश की देशभक्त सभा ने की थी। उसके ऊपर किसी प्रकार का बन्धन न था। इस सभा में सभी प्रदेशों के, मध्यम श्रेणी के तथा अपेक्षाकृत स्वतन्त्र उत्तरी प्रदेशों के नागरिकों और कृषकों के प्रतिनिधि थे। ये रईसों के षड्यन्त्र को, पोलैण्ड की सन्धि-शर्त्त की धारणाओं को तथा डाकू कजाकों की स्वेच्छाचारिता को समान घृणा की दृष्टि से देखते थे। वे अपनी वर्त्तमान आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए प्राचीन परम्परा का पालन करने में ही गौरव मानते थे। माइकेल केवल 16 वर्ष का था। उसे इन आवश्यकताओं की पूर्त्ति करनी थी।

अपने इतिहास के स संकटकाल में भी रूस ने अपने विजेता पोलैण्ड का अनुसरण नहीं किया। पोलैण्ड अब भी अपनी शक्ति की चरम सीमा पर था, किन्तु एक शती के अन्दर ही उसे इसका गहरा मूल्य चुकाना पड़ा; क्योंकि रईसों और देश के सरदारों ने अपने निर्वाचित राजाओं पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिये थे। पोलैण्ड कहता—'हमारे साथ मिल जाओ और तब तुम्हें स्वतन्त्रता मिल जायगी।' रूस कहते—'आपका मार्ग आपकी स्वतन्त्रता के लिए है, किन्तु हमारे लिए यह दासता है। आपके पास स्वतन्त्रता नहीं, किन्तु स्वच्छन्दता है।... ...यदि जार अन्यान्य करता, तो करे। जार का कष्ट भोगना सरल है, किन्तु अपने भाई से कष्ट पाना अच्छा नहीं। जार हम सभी लोगों का सामान्य शासक है।'

रोमानव-वंश को निराशाजनक मुहूर्त्त में शासन आरम्भ करना पड़ा तथा कालान्तर में अनेक उत्तराधिकार-सम्बन्धी कठिनाइयों को झेलना पड़ा। ऐसी कठिनाइयों का सामना स्यात् ही किसी दीर्घकालीन राजवंश को करना पड़ा होगा। इसका प्रारम्भ ही चार अल्पवयस्कों (नाबालिगों) से हुआ। दो बार (सन् 1682, 1689 ई०) राज्य का तख्ता ही उलट गया। मस्कोवी की स्थायी सेना (स्ट्रेल्ट्सी) ही प्राय: गद्दी का अन्तिम निर्णय करती थी। एक महिला अभिभावक बनी (सन् 1682–89 ई०), जो देश के भविष्य के लिए अशुभ सिद्ध हुआ। क्षणिक काल के लिए ही एक महिला, फेवोदर की महिषी गद्दी पर बैठी थी, जिसका वर्णन किया जा चुका है; किन्तु यह देश में अपवाद-स्वरूप ही था। किन्तु, ये सभी उत्तराधिकारी एक ही वंश के थे। रोमानव-वंश से बाहर जाने का प्रश्न ही नहीं उठता था। राष्ट्रीय सभा द्वारा निर्वाचन का ढकोसला भले ही रचा जाता था (सन् 1682 ई०), किन्तु प्राय: यह मास्कोवासियों का ही सम्मेलन होता था। सन् 1694 ई० में महापीटर ने 22 वर्ष की अवस्था में शासन की बागडोर अपने हाथों में ली। सन् 1782 ई० से ही वह अपने अयोग्य सौतेले भाई इवन पंचम के साथ-साथ नामधारी संयुक्त जार के पद पर था।

पीटर वर्षों तक अपने उत्तराधिकारी के विषय में सोचता रहा। अन्त में, निर्णय किया कि कोई भी उस पद के योग्य नहीं है। उसके ज्येष्ठ पुत्र की खुली सभा में भर्त्सना की गई और उसकी हत्या कर दी गई (सन् 1718 ई०); क्योंकि वह पीटर की नीति के विरोधी दल का नेतृत्व करता था। अन्ततः, पीटर ने उत्तराधिकार-विधि (सन् 1722 ई०) को परिहास बना दिया, जिसके अनुसार जार को पूर्ण स्वतन्त्रता मिल गई कि जिसे चाहे, वह अपना उत्तराधिकारी बनाये। इससे भी बढ़कर परिहास की बात यह हुई कि जार किसी को भी अपना उत्तराधिकारी नियुक्त नहीं कर सका। यह सत्य है कि मृत्यु के एक वर्ष पहले, जबकि उसका

एक भी पुत्र जीवित नहीं था, जार ने अपनी द्वितीय महिषी को सम्राज्ञी बनाया और सचमुच वही गद्दी पर बैठी। जब उसकी अन्तिम घड़ी आ गई और वह मर रहा था (सन् 1725 ई०), मुँह से बोली नहीं निकलती थी, तब उसने घसीटते हुए लिखा—'सब कुछ छोड़ दो।' किन्तु, उसकी उँगलियाँ कमजोर थीं। नाम पढ़ा नहीं जा सका। यह महापीटर का सचमुच सत्य संकल्प (वसीयतनामा) था, न कि विदेशों में विस्तार की भयानक योजना, जिसकी एक पीढ़ी के बाद एक फ्रांसीसी योद्धा ने प्रयास से टीका की और नेपोलियन ने सन् 1812 ई० में उसे अपने प्रचार का साधन बनाया।

निश्चित उत्तराधिकारी का अभाव था। वंश में कोई भी वयस्क पुरुष उत्तराधिकारी न था। अतः, अनेक महिलाओं में गद्दी के लिए होड़ मच गई। विरोधी दल किसी प्रकार झपट्टा मार उसे हथियाने का प्रयत्न करने लगे। इधर पीटर के नये रक्षादल ने अपना कमान सँभाला, जिसमें अफसरों के साथ-साथ अधिकांश लोग जमीन्दारों की श्रेणी में से आये थे। सन् 1725 और 1762 ई० के बीच चार महिलाएँ सम्राज्ञी बनीं। एक बालक, एक गोद में शिशु और एक शराबी सम्राट् बने। इन सात सम्राटों में तीन जर्मनी के थे और एक तो व्यभिचारिणी महिला लिवोनिया के गाँव की थी। जारशाही के लिए इससे अधिक निराशाजनक और क्या हो सकता था अथवा पोलैण्ड या स्वीडेन के अल्पतान्त्रिक संविधान के अनुरूप रूसियों के लिए इससे बढ़कर और क्या आशा हो सकती थी।

सचमुच, यह अल्पशासनतन्त्र था और दस वर्षों (सन् 1730–40 ई०) तक प्रधानतः यह जर्मन अल्पतन्त्र था। किन्तु, रूसी साम्राज्य का औपचारिक आधार निरंकुश ही बना रहा, जैसा कि गौरवशाली और प्रसिद्ध प्राचीन जार के शासनकाल से चला आ रहा था। जब (सन् 1730 ई०) सम्राज्ञी अन्ना के उत्तराधिकार का प्रश्न उठा, तब इसी सूत्र ने मैदान जीत लिया।

पुराने शिष्टवंश के अल्पगुट पर स्वीडेन के रईसों का प्रभाव स्पष्ट था; क्योंकि स्वीडेन के रईसों ने सन् 1720 ई० में राजशक्ति को जकड़ दिया था। इन लोगों ने अपना शासन स्थायी करने के लिए अन्ना को लिखित प्रतिबन्धों को स्वीकार करने के लिए बाध्य करना चाहा। अन्ना इवन पंचमी की कन्या थी। उसे किसी भी शर्तनामे पर हस्ताक्षर करने में हिचकिचाहट न थी; क्योंकि वह कोर्टलैण्ड के ड्यूक से व्याही थी और बाल्टिक-तट पर के जर्मन-रईसों द्वारा लगाये गये संविधानिक नियन्त्रण का उसे अभ्यास हो गया था। खानदानी रईसों का विरोध उच्च अधिकारियों तथा सेना के शिष्टजनों ने किया। पीटर द्वारा निर्मित इस

उच्च श्रेणी में विभिन्न दल के लोग सम्मिलित थे। इन्हें शंका हो गई कि कहीं ये जर्मनी के निर्वाचक राजकुमारों के समान जबरदस्त बनकर सम्राट् को उँगली के इशारे से नचाने न लगें; क्योंकि जर्मनी में सम्राट् को कुछ भी अधिकार न था और ये राजकुमार ही सर्वस्वामी बन गये थे। इन नये रईसों ने प्राकृतिक विधि और सामाजिक संविदा का ढकोसला रचा तथा विधान-सभा के निर्माण की माँग की, जिसमें वे अपना स्थान दृढ कर सकें।

मास्को में 2,000 अधिकारी रईस ही इस विषय पर अन्तिम निर्णय दे सकते थे। एक दल ने पोलैण्ड की विधायिका सभा (डायट) के आधार पर ही प्रस्ताव उपस्थित किया। किन्तु, अधिकांश, विशेषत: रक्षा-अधिकारियों ने प्राचीन पद्धति को ही अपनाया और नूतन प्रयोग को ठुकरा दिया। उन्होंने पूर्वकथित सूत्र को उपस्थित किया--'निरंकुशता गौरवशाली और प्रसिद्ध प्राचीन जार के समय से चली आ रही है।' एक देहात के रईस ने लिखा--"परमात्मा करे कि हमें एक निरंकुश शासक के बदले दस शक्तिशाली निरंकुश वंश न मिल जाय।" उसे सन्तोष दिया गया। जिस शर्त्तनामे पर अन्ना ने हस्ताक्षर किया था, वह विधिवत् फाड़ दिया गया।

विजयी सरदारों के लिए यह स्वाभाविक था कि वे अपने विशेष कष्टों का निवारण करायें तथा उनके विशेषाधिकार बढ़ें। आगामी पीढ़ी में इनकी सभी मनस्कामनाएँ पूरी हो गईं। किन्तु, इनमें सामूहिक भाव और राजनीतिक विकास का अभाव था। अत:, वे शासन का आधार बदलने के लिए किसी प्रकार के वैधानिक ढाँचा की आवश्यकता ही नही समझ पाते थे। सन् 1785 ई० में जब महती कैथरीन ने अपना शासनपत्र जारी किया और रईस तथा अमीरों की रियासत की स्थापना की, तब राज्य के राजनीतिक ढाँचे पर या उसकी अपनी वैधानिक शक्ति-विशेष पर कुछ प्रभाव न पड़ सका।

सन् 1730 ई० के बाद कम-से-कम प्राय: एक शती बीतने पर ही उच्च वर्ग के लोगों ने निरंकुश शासक के परे निरंकुशता के सिद्धान्तों को चुनौती देने का कुछ प्रयास किया। राजमहल की क्रान्ति से तीन जार राजगद्दी से हटाये गये और उनकी हत्या कर दी गई। जब चुनौती दी गई, तब क्रान्ति मच गई (दिसम्बर, सन् 1825 ई०)। जब सन्त पीटर्सबर्ग तथा दक्षिण के कुछ सेनागारों में दिसम्बरी उठे, तब अट्ठारहवीं शती के राजविप्लव का रूप इन्होंने धारण कर लिया, किन्तु विचार में ये भिन्न थे। इनके नेता थे असन्तुष्ट रक्षक तथा सेना-अधिकारी। किन्तु, इन्होंने पश्चिमी भावनाओं को, मूलत: फ्रांसीसी भावनाओं को नेपोलियन से युद्ध करते समय सीखा था। अत:, ये सदा आगे ही नजर दौड़ाते थे, न कि पीछे। ये विवेकशील अमीरों के प्रथम नमूने थे, जिन्होंने उन्नीसवीं शती में रूस के सांस्कृतिक

तथा सामाजिक विकास में प्रमुख भाग लिया। दिसम्बरियों ने शासन और समाज का आमूल परिवर्तन करना चाहा। अमरीकी संविधान का आश्रय लेकर कुछ लोगों ने उदार संघ बनाकर राजशक्ति को पूर्ण नियन्त्रित करना चाहा तथा दासता को उठाकर वैयक्तिक अधिकार को स्थायी बनाने को सोचा। अन्य लोगों ने प्रजातान्त्रिक गणतन्त्र के आधार पर दृढ केन्द्रीय शक्ति को क्रान्तिकारी अधिनायक के हाथ सौंपना चाहा। अतः, उन लोगों के लक्ष्य विभिन्न थे। देश में भी उसके समर्थक प्रायः नहीं के बराबर थे। अतः, सेना ने सरलता से, खून कर ही सही, उन्हें दबा दिया। अधिकांश सेना निकोलस प्रथम की स्वामिभक्त सेना थी।

सन् 1730 ई० के संघर्ष से निश्चित हो गया था कि निरंकुशता को औपचारिक रूप में नियन्त्रित नहीं किया जा सकता, किन्तु गद्दी के उत्तराधिकार को हल करने का कोई प्रयास न किया गया था। यह मामला खटाई में पड़ा रहा। किन्तु, सन् 1797 ई० में जार पॉल ने 'मौलिक नियम' की घोषणा की। रूस के कानून में सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग आरम्भ हुआ। जर्मनी के राजकुलों से यह नियम अपनाया गया। (पॉल की भार्या वूर्टेमवर्ग की राजकुमारी थी)। इसका तात्पर्य यह था कि राजमुकुट सीधे पुरुष-वंश को मिले। अतः, किसी प्रकार अन्ततः उत्तराधिकार का आधार नियमित कर दिया गया और लोगों ने इसका पालन किया। किन्तु, भाग्य में कुछ और ही लिखा था। पॉल को लोगों ने गद्दी से उतार दिया, जिस प्रकार इसके पिता पीटर तृतीय का। पॉल को गद्दी से उतारने में इसके पुत्र अलेक्जेण्डर प्रथम की सम्मति थी और पॉल का वध कर दिया गया। अलेक्जेण्डर अपुत्र था। पाल के द्वितीय पुत्र को उत्तराधिकार से वंचित रहने की शपथ लेनी पड़ी कि वह अपने भाई की गद्दी पर न बैठेगा। पॉल के पौत्र अलेक्जेण्डर द्वितीय की हत्या कर दी गई और उसके पोते निकोलस द्वितीय को राज्य त्याग देना पड़ा और उसे जवह (नृशंस हत्या) कर दिया गया।

इस प्रकार, रोमानव-वंश का अन्त हुआ या सत्य कहिए, तो होल्सतीन-गोत्तोर्प-वंश का। सन् 1762 ई० से रूस के सभी शासक महती कैथरीन के वंश के हुए। वे माता-पिता दोनों कुल से जर्मनी के थे। उसका पति पीटर तृतीय होल्सतीन-गोत्तोर्प का ड्यूक था। इसका पिता जर्मन तथा माता रूसी थी, जो महान् पीटर की कन्या थी। एक को छोड़कर रूस के इन सभी शासकों ने जर्मनी की राजकुमारियों से विवाह किया। जर्मनी के साथ ये वैवाहिक सम्बन्ध महान् पीटर के काल से आरम्भ हुए। इससे रूस को बहुत लाभ पहुँचा। किन्तु, इससे सन्त पीटर्सबर्ग का सम्बन्ध मास्को से तथा रूस के केन्द्र से विलग होता गया। इन

लोगों ने अपनी वैदेशिक नीति में अपने वंश का लाभ प्राय: अधिक सोचा तथा राष्ट्रीय भावनाओं को ताख पर रख दिया।

5. जारशाही की बैजनटाइन तथा तातार-उत्पत्ति

जारशाही का ढांचा महान् इवन, वलिसी तृतीय तथा भयावह इवन (सन् 1462–1584 ई०) के राज्यकाल में बना। पश्चिमी यूरोप में ठीक इसी समय राष्ट्रीय राजा शक्ति का केन्द्रीकरण कर रहे थे। 'जार' शब्द रूसी भाषा[1] के 'सीजर' शब्द से लिया गया है। बैजनटाइन सम्राट् को रूसी भाषा में जार कहकर सम्बोधित करते थे। बाद में स्वर्णदल के खान के लिए भी इस शब्द का प्रयोग होने लगा। गैर-सरकारी रूप में अन्य शासक या राजकुमारों के लिए भी इस शब्द का प्रयोग होता था। भयावह इवन प्रथम जार था, जिसका अभिषेक जार के रूप में सन् 1541 ई० में हुआ। इसका अभिषेक-संस्कार बैजनटाइन नमूने के आधार पर हुआ। इसके बाद जार सरकारी उपाधि हो गई और महान् पीटर ने इसके बदले सम्राट् की उपाधि धारण की (सन् 1721 ई०)।

इसके सिवा बैजनटाइन द्विमुखी गरुड ग्रहण किया गया तथा राजमुकुट की बनावटी उत्पत्ति बैजनटाइन मूल से बताई गई, जो बहुत ही जनप्रिय था। सन् 1498 ई० में ही महान् इवन ने अपनी उपाधि धारण की थी—'निरंकुश जार ईश्वर-निर्णीत'। जिस प्रकार बैजनटाइन उपाधि 'ओटोक्राटर' ग्रीक-भाषा के 'इम्पेरेटर' (सेना-संचालक) के समान है और नूतन रोम की मौलिक सैनिक रूपरेखा का द्योतक है, ठीक उसी प्रकार मास्को ने भी सर्वतन्त्रशासक रूप को अपनाया तथा बैजनटाइन दैवी रूप को जोड़ लिया; क्योंकि यह तृतीय नूतन रोम या और सैनिक राज्य से बढ़कर था। इस अन्तिम विचारधारा की परिपुष्टि अन्य उपाधि 'समस्त रूस के सम्राट्' से हुई। इस उपाधि को भी महान् इवन ने सर्वप्रथम धारण किया—तातारों की दासता को उखाड़ फेंकने के बाद। इसने सन् 1472 ई० में अन्तिम बैजनटाइन सम्राट् की भ्रातृजा पैलियोलोगस से विवाह किया। इससे इटली के पुनर्जागरण (रेनेसाँ) से मस्कोवी का सम्बन्ध विशेषरूपेण बढ़ गया इवन के दरबार को इससे कुछ नया रूप मिला तथा राज्यशक्ति को नूतन साज-शृंगार।

दसवीं शती के अन्त में ईसाई-धर्म का प्रवेश रूस में हुआ। रूस के गिरजाघरों में जो शिक्षा दी जाती थी, उससे स्पष्ट है कि लौकिक शक्ति का क्या स्थान है तथा बैजनटाइन विरासत का कितना गहरा प्रभाव पड़ा है। यहाँ एक बात को समझ लेना आवश्यक है। सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनों ही लौकिक तथा धार्मिक

1. कुछ विद्वानों के मत में यह राजा का ही रूप है।

शक्ति में बैजनटाइन-साम्राज्य के हजार वर्ष के अस्तित्व में आकाश-पाताल का अन्तर था। चतुर्थ धर्मयुद्ध तथा लैटिन-साम्राज्य (सन् 1204-61 ई०) द्वारा कुस्तुन्तुनिया पर कब्जा हो जाने के बाद पैलियोलोगी के पुनर्जीवित बैजनटाइन-साम्राज्य की छाया-मात्र रह गई थी। रूसवाले बैजनटाइन-विधि और साहित्य से पन्द्रहवीं शती में भी पूर्ण परिचित न थे। एक ही परिच्छेद से रूसवाले परस्पर विरोधी निष्कर्ष निकाल सकते थे और निकालते थे। इन्हें कुस्तुन्तुनिया से सम्राट्-शक्ति की विशिष्टता का परिपक्व सिद्धान्त ठोस रूप में कभी न मिला।

राजकुमार ईश्वर-प्रदत्त है,—यह विचारधारा प्राचीन काल से रूस की शिक्षा और साहित्य में व्याप्त है। यहाँतक कि प्रजापीडक या निर्बल राजकुमार भी ईश्वर-प्रदत्त है। यदि उसके मन्त्री बुरे हैं, तब भी उसकी आज्ञा का पालन होना चाहिए। देश की समस्त आपत्तियों की जड़ ईश्वर का ही प्रकोप है, यह उनकी सन्तानों के पाप तथा खासकर राजकुमारों के कलह के कारण है। तातारों के हाथ देश का कष्ट भी इसी क्रोध के कारण हुआ। ईसाई का काम है पश्चात्ताप करना, न कि विद्रोह। स्वर्ण-कुनबा के खान का विरोध भी इसी विचार के कारण नहीं हुआ; क्योंकि परमात्मा की यही इच्छा थी और यह पीछे मुड़ने का दण्ड था।

ऐहिक कार्यों में राजकुमार का अधिकार केवल दैवी नियम से सीमित है। वह केवल ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है। ऐहिक बातों में गिरजाघरों का कुछ भी भाग नहीं है। आध्यात्मिक बातों में राजकुमार कम-से-कम अभिभावक और संरक्षक है, कभी-कभी इससे बढ़कर है। ऐहिक और पारलौकिक शक्तियों में सन्तुलन बना रहे, इसी सिद्धान्त की नियमित शिक्षा दी जाती थी। बैजनटाइन-विधि-संहिताओं से रूसवाले परिचित थे, विशेष कर जस्टिन के नोवेली से। इसके अनुसार ईसाई कानून राजकुमार के अधिकारों को सीमित कर देता है। किन्तु, एक आदर्श के रूप में विधि की धारणा की, जिसके अधीन राजकुमार भी है, इतने सामान्य रूप में व्याख्या की गई थी कि इसके विभिन्न अर्थ किये जा सकते थे और व्यावहारिक रूप में राजकुमार की शक्ति पर कोई भी रुकावट नहीं आ सकती थी।

चौदहवीं शती से ही मास्को के नये महाराजकुमारों की शक्ति, चाहे जैसे हो, बढ़ाई जाने लगी। इस प्रकरण में रोमवासियों के नाम सन्देश (अध्याय त्रयोदश) और सन्त पीटर के प्रथम सन्देश (अध्याय द्वितीय) की बार-बार दुहाई दी जाती थी कि वर्तमान शक्ति का आज्ञा-पालन महान् धर्म है। पन्द्रहवीं शती के मध्य से गिरजाघरों की प्रभावशाली शक्तियों ने मास्को के महाराजकुमारों को समस्त रूस के जार के पद से भूषित करना आरम्भ किया और उद्घोष किया कि ये जार बैजनटाइन-

एकतन्त्र के उत्तराधिकारी बनाकर परमात्मा द्वारा भेजे गये हैं। अतः, सब प्रकार से इनकी पूजा तथा प्रतिष्ठा होनी चाहिए। केवल ऐहिक बातों में ही इनका पूर्ण अधिकार नहीं है, बल्कि धार्मिक बातों में भी कुछ सीमा के अन्दर इनका अधिकार है। महाराजकुमार अब समस्त रूस का निरंकुश सम्राट् हो गया। वह कुंस्तुन्तुनिया के नये नगर, मास्को, का नया जार कांस्टाटाइन हो गया।

सोलहवीं शती के प्रारम्भ से ही मास्को तृतीय रोम कहलाने लगा। यह नामकरण स्यात् दक्षिणी स्लावों के नमूनों से संकेतित हुआ। डेढ़ सौ वर्षों तक इस नाम को लोकप्रिय बनाया गया। इसके विभिन्न रूप हुए और नये राष्ट्रीय रूढिवाद का यह एक अभिन्न अंग हो गया। सभी ईसाई जारशाहियों का अन्त हो गया। अब उन्होंने हमारे सम्राट् की जारशाही में पुनः जन्म लिया है। भविष्यपुराण के अनुसार वह रूसी जारशाही है। दो रोमों का पतन हो चुका है, किन्तु तृतीय अटल है और चतुर्थ होगा ही नहीं।

इस धृष्ट वाक्याडम्बर का कारण था बैजनटाइन-साम्राज्य का दोहरा पतन। इसने फ्लोरेंस-परिषद् (सन् 1439 ई०) में सनातनी ईसाइयों को धोखा दिया, जबकि प्राची-प्रतीची गिरजाघरों का पुनः सम्मेलन नाममात्र के लिए हुआ। सन् 1453 ई० में तुर्कों ने कुंस्तुन्तुनिया को ले लिया और इस प्रकार इसका भौतिक सत्यानाश हो गया। धार्मिक पतन के प्रभाव की व्याख्या आगे अध्याय में की जायगी। भौतिक पतन को मास्को में इस प्रकार चित्रित किया गया कि यह लातिन नास्तिकता स्वीकार करने का तथा पैलियोलोगी के अन्तिम वर्षों में शासनाभाव का दण्ड है, जबकि रईसों की परिषद् ने तथा शक्तिशाली पादरियों ने राजशक्ति को हड़प लिया था। भयावह इवन ने भी लोगो को आगाह किया कि यदि निरंकुश एकतन्त्र न होगा, तो बैजनटाइन-साम्राज्य के समान अन्त में दुर्दशा होगी। यह ध्यान देने की बात है कि जब काम के लिए वंशगौरव की बात आती थी, तब इवन अपनी मातामही 'जोव पैलियोलोगस' का जिक्र नहीं करता था, किन्तु वह कीव से तथा जब साम्राज्य उन्नति पर था, तब सन्त व्लादिमीर मोनोमख से अपना उत्तराधिकार बतलाता या सीजर अगस्तस की अपेक्षा अपने सहोदर भ्राता कल्पित प्रुस की दुहाई देता। बैजनटाइन की अधीनता हेय समझी जाती थी और सन्त ऐण्ड्रू की प्राचीन गाथा को महत्ता दी जाने लगी; क्योंकि वह रूसियों के लिए ईश्वर का भेजा हुआ दूत था।

बैजनटाइन-साम्राज्य की अन्तिम दुर्दशा से भयावह इवन सतर्क हो गया तथा विजयी उस्मानी साम्राज्य इसके लिए दृष्टान्त हो गया। रईसों के प्रतिकूल उसका एक समर्थक बहुत ही अनुभवी तथा दुनिया देखे हुए सेना का सरदार था। उसने

कुस्तुन्तुनिया को हड़पनेवाले सुलतान मुहम्मद के न्याय और क्रूरता की भूरि-भूरि प्रशंसा की; क्योंकि उसका शासन निरंकुश था। जिस प्रकार जार के अधीन घोड़ा बिना लगाम के है, उसी प्रकार जारशाही भी बिना भय के है। उसने सुझाव दिया कि सुलतान के सुधारों को अपनाना चाहिए तथा सेना का पुनर्गठन अवश्य होना चाहिए। उसने जाँनिसारी की विशेष प्रशंसा की। जारशाही का आधार ही अच्छी सेना तथा जनता, न कि विशेषाधिकार-प्राप्त शिष्ट गन और दासता। रूसियों के लिए तुर्की की इस प्रकार की प्रशंसा विचित्र बात है। उन्हें तुर्कों के विषय में अभी पूरा ज्ञान न था, किन्तु वे निरंकुश, निर्दय शासन से पूर्ण परिचित थे, जो कभी-कभी निपुण सैनिक एकतन्त्र शासन कर सकता था। जारशाही के निर्माण में बैजनटाइन-साम्राज्य का प्रभाव विचार एवं प्रणाली में स्पष्ट है और तातार खान-सरदारों का व्यवहार तथा कार्य उनके साथ घुल-मिल गये।

रूसी इतिहासकारों ने स्वर्णदल की अधीनता के काल में तातारों का प्रभाव विभिन्न अंशों में माना है। यह प्रभाव बहुत ही बुरा था; क्योंकि रूसियों के साथ पशुवत् बरताव इन तातारों ने किया था। अनेक इतिहासकारों का मत है कि मास्को के महाराजकुमार की शक्ति को जारशाही में परिवर्त्तन करने के कारण हैं स्थानीय परिस्थितियाँ तथा बैजनटाइन-परम्परा। दूसरे लेखकों का मत है कि तातारों के निरंकुश शासन का जान-बूझकर या अनजान में अनुकरण करने से ही जार निरंकुश हो गया।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि चौदहवीं शती में मास्को के महाराजकुमारों का उदय स्वर्णदल के साथ विशेष सम्पर्क से हुआ। खासकर ये खान के लिए कर वसूलते थे। यह भी निःसन्देह है कि रूसी राजकुमार खान की राजधानी सराय (निम्न वॉलगा-तट पर स्थित) में अक्सर आया-जाया करते थे। कभी-कभी तो वे चिरकाल तक वहीं वास करते थे। सराय में रूसी उपनिवेश भी था। ये तातार की राजकुमारियों से विवाह भी करते थे। किन्तु, इस प्रकार के सम्बन्ध कम होते थे। मंगोल-विजय के बाद तो ऐसे सम्बन्ध और विरल हो गये। इसके पहले पोलोवत्सी से सम्बन्ध हो चुका था। दो ऐसे विवाहों को छोड़ दें, तो केवल नाबालिगों का ही विवाह-सम्बन्ध ऐसा माना जायगा। स्वर्णदल तथा तातारों का प्रभाव कुछ अंश में वर्णित है। यह कहना कठिन है कि कोई खास प्रभाव या अनुकरण मंगोल-काल का है या उसके पहले से रूस पर पड़ा। रूसी स्लावों का सम्पर्क स्टेपी की जनता के साथ शतियों से चला आ रहा था। स्वर्णदल में मंगोल केवल नाममात्र की संख्या में थे। किन्तु, यह सत्य है कि मंगोल-काल में ही शासन और सेना की नूतन पद्धति च पड़ी और रूसी इनसे भली भाँति परिचित हुए। इसके विपरीत, सुदूर बैजनटाइन-शासन से इनका सम्बन्ध कम ही था।

मंगोल-शासन की प्रथम शती (सन् 1240–1340 ई०) में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य हुए। यथा : करदाता जनसंख्या का लेखा, परिवार के अनुसार कर देने की प्रथा, नये सिक्के, चुंगी-कर का संगठन तथा संचार और हरकारे द्वारा डाक-व्यवस्था। महान् इवन के काल में मस्कोवी में इनके विभिन्न रूप मिलते हैं। इस विषय में और भी आवश्यकता है कि मंगोलों के साम्राज्य के दूरवर्त्ती भाग में भी इनकी शासन-पद्धति किस प्रकार प्रचलित रूसी व्यवहार के अनुकूल हो गई और कहाँतक बाद के मस्कोवी के व्यवहार में उन पद्धतियों को अपनाया गया या उनका अनुकरण हुआ। जहाँतक सेना का प्रश्न है, अवश्य ही अनुकरण हुआ है। राज्य ने शराब का एकाधिकार भी तातारों से ही लिया, जो बाद के राज्य के आय-व्यय का एक प्रधान आधार बन गया। खान का केन्द्रीय शासन दीवानों के द्वारा होता था। ये दीवान ही मस्कोवी 'प्रिकजी' के पूर्वरूप हैं या इनकी उत्पत्ति राजकुमारों या कचहरियों द्वारा बन्दोबस्त जागीर के कारण हुआ, इसका हमें ज्ञान नहीं है। हमें यह भी ज्ञान नहीं कि एक ही व्यक्ति के साथ सैनिक और नागरिक अधिकारों का सम्मिश्रण तातारों से लिया गया, जिनके साथ यह नियमित प्रथा थी या वह बैजनटाइन-साम्राज्य से आया, जहाँ यह सामान्य प्रथा न थी।

स्वर्णदल में खान की निरंकुशता उसके वैयक्तिक गुणों पर निर्भर करती थी, विशेषतः उसके सैनिक गुणों पर। खान की निरंकुशता पर प्रायः रोक रहती थी—भ्रातृपरिषद् तथा मुख्य अनुगामी के द्वारा (कजान-कुनबे में उच्च पादरी भी रोक रखते थे)। इनके सिवा अर्द्धस्वतन्त्र, खानदानी जमीन्दार भी आर्थिक तथा सैनिक शक्ति के कारण कुछ नियन्त्रण खान पर रखते थे। तो भी स्वर्णदल तथा उसके परवर्त्ती कुनबों में सफलता की कुंजी खान की वैयक्तिक शक्ति थी। तबतक लोग खान से डरते थे, चूँकि उसका प्रभाव सर्वोपरि और सर्वव्यापी था। खान मजबूत हो या न हो, प्रजा उसकी खानदानी निरंकुशता से पूर्ण अभ्यस्त थी। कजान और आस्ट्रखान-विजय के बाद भयावह इवन के मिश्र जंगली स्टेपी-साम्राज्य के आधे अंश के लिए श्वेतजार को तातार-खान का उत्तराधिकारी माना जाता था। सोलहवीं शती में जो यूरोपीय राजदूत मस्कोवी गये, उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि इस देश पर कोई तुर्की सुलतान या एशिया का निरंकुश शासक राज्य करता हो। वह पादरियों और जनसाधारण पर समान अधिकार रखता था। अपनी प्रजा के जीवन तथा सम्पत्ति पर उसका असीम अधिकार था। यह शंकास्पद है कि जनता की पशुवृत्ति के कारण राजकुमार निरंकुश हो गया या अपने राजकुमार की स्वेच्छाचारिता के कारण लोग स्वयं इतने क्रूर पशुवृत्ति के हो गये।

6. जारशाही का विकास तथा कार्य-प्रणाली

सोलहवीं शती में जार की स्वच्छन्द क्रूरता तथा प्रजा की दासता से मास्कोवी में यूरोपीय राजदूत बहुत ही प्रभावित थे। जारशाही का यही रूप सदा बना रहा। किन्तु अन्य लक्षण भी थे, जिनका सन् 1500 से 1900 ई० तक चार शतियों में जारशाही के विकास तथा कार्य-प्रणाली में अधिक महत्त्व था।

जारशाही के मुख्य लक्षणों का वर्णन 6 शीर्षकों में किया जा सकता है :

(क) एक सर्वोपरि शासक की शक्ति का-अर्द्धपवित्र मानवीकरण जार है। उसके ऊपर किसी प्रकार का नियमित या सामाजिक नियन्त्रण नहीं हो सकता। उसकी इच्छा ही अन्तिम निर्णायक है। हाँ, जमीन्दार और सेना पर निर्भरता के कारण तथा परिपाटा से भले ही उसकी शक्ति सीमित हो जाय।

(ख) सब प्रकार से राज्य की सेवा की भावना, पहले सारे देश की, पुनः प्रजा के सभो वर्गों की। यह भावना अट्ठारहवीं शती के मध्य तक और भी दृढ़ होती गई, यद्यपि पहले भी इस भावना की कभी पूर्ण सिद्धि न हो पाई थी।

(ग) जमीन्दारों के प्रति सेवा की भावना इस प्रकार फैली कि कोई भी भूमि सेवा के वाहर न रहे, वल्कि समस्त भूमि सेवा में ही रहे। इसका फल यह हुआ कि सारी भूमि अन्ततः जार के अधिकार में किसी-न-किसी प्रकार आ गई।

(घ) सेवा की भावना राज्य की सर्वसामर्थ्यता से सम्बद्ध है। राज्य सब काम कर सकता है (महान् पीटर के पहले गिरजाघरों को छोड़कर)। राज्य सभी संस्थाओं का सृष्टिकर्त्ता है, न कि केवल नियामक (गिरजाघरों को छोड़कर)।

(ङ) विधायिका, प्रशासनिक तथा न्यायिक कार्यों में विभेद न था। केन्द्रीय नौकरशाही का बहुत बड़े पैमाने पर विकास हुआ, जो साम्राज्य की वृद्धि के साथ-साथ राज्य की वेहद वढ़ती हुई नियन्त्रण-शक्ति के अनुरूप थी।

(च) राष्ट्र के लिए सेना की परम आवश्यकता थी। अतः, परोक्ष और अपरोक्ष रूप से सेना ही जार का सब कुछ थी। शक्ति का प्रयोग वढ़ता गया तथा शासन में पुलिस स्वच्छन्दरूपेण काम करती थी।

चार सौ वर्षों में इन छह लक्षणों ने विभिन्न रूप धारण किये। उन्नीसवीं शती में सातवां लक्षण उत्पन्न हुआ विशाल वहुभाषी रोमानव-साम्राज्य के अधिकांश भाग में एकता लादने का प्रयत्न। शासन की केन्द्रीय संस्थाओं के मध्यम से

जारशाही का किस प्रकार विकास हुआ और जमीन्दारों के साथ कैसा सम्बन्ध रहा, इसकी रूपरेखा से सभी बातें स्पष्ट हो जायेंगी :

"हमारे मस्कोवी-राज्य में प्रत्येक श्रेणी का व्यक्ति, जो सेवा के योग्य है, सेवा करता है। वह भूमि की सेवा करता है। किसान देश में दसवीं जोत-भूमि पर हल चलाता है, जो राज्य की है और कर देता है। किसी के पास भूमि मुफ्त में नहीं होती है।"

इन शब्दों में सत्रहवीं शती के अन्त में एक घोषणा द्वारा निर्गत दो सौ वर्षों में केन्द्रीय मस्कोवी-राज्य के विकास की प्रगति का वर्णन किया गया। पहले के अनिवार्य सेवा-राज्य का स्थान प्रतिस्पर्धी जागीरों के समूहों ने ले लिया। मंगोल-शासनकाल में या अधिनायकत्व (सन् 1240–1480 ई०) में उत्तरी रूस का निर्माण इन्हीं से हुआ था। इस प्रकार, सार्वभौम मास्को महाराजकुमार के सैनिक सहायक समस्त रूस के जार की सेवक-प्रजा बन गये। अगले अध्याय में स्पष्ट हो जायगा कि ठीक उसी काल में (सन् 1480–1700 ई०) दास-प्रथा का विकास हुआ और इसने ऐसा रूप धारण किया कि दास समाज के प्रमुख अंग बन गये। पश्चिमी यूरोप में भी सन् 1100 और 1300 ई० के मध्य ठीक ऐसा ही हुआ था। किन्तु, मस्कोवी में दासता का विकास राजनीतिक सामन्तशाही की वृद्धि के साथ न हो सका।

यदि कहा जाय, तो राजनीतिक सामन्तशाही एक प्रकार से भ्रष्ट हो गई और महान् इवन, वसिली तृतीय तथा भयावह इवन (सन् 1462-1584 ई०) ने इसका अन्त सदा के लिए कर दिया। इसके पूर्ववर्ती स्वर्णदल के दासता-काल को लगभग सभी रूसी इतिहासकारों ने जागीर-ए-रूस के नाम से सम्बोधित किया है। राजनीतिक सामन्तशाही ही इस काल की विशेषता है। जागीर-ए-रूस की सामन्तशाही कहाँतक यूरोप की सामन्तशाही से हू-ब-हू मिलती है, इस प्रश्न का उत्तर अन्तिम रूप में नहीं दिया जा सकता। इसपर और भी खोज की आवश्यकता है। स्वयं यूरोप के विभिन्न कालों में इसके विभिन्न रूप थे।

जागीर-ए-रूस में जागीरदार और अधीनस्थ व्यक्ति (Vassalage) थे। साथ ही, स्तुति, पूजा, स्वामिभक्ति, मुक्ति तथा छूट की भी प्रथा थी, किन्तु जागीरदारों तथा अधीनस्थों के मध्य दृढ सम्बन्ध का प्रायः अभाव था। रूस में किसी भी प्रकार की जागीर-सम्बन्धी विधि-संहिता या ग्रन्थ न था। स्वामी और सेवक का वैयक्तिक सम्बन्ध पश्चिमी यूरोप की अपेक्षा कमजोर रूप में विकसित हुआ। सामन्त को यह अधिकार था कि अपने स्वामी से सम्बन्ध-विच्छेद कर ले। किन्तु, पश्चिमी यूरोप में यह विरल था। वहाँ केवल सीमान्त-प्रदेशों में या कलह-क्षेत्रों में ही स्वामी और सामन्त का बिलगाव हो सकता था।

चौदहवीं और पन्द्रहवीं शती के शुरू में न्यायिक और आर्थिक, लौकिक और धार्मिक मुक्ति तथा छूट के कारण शक्ति का बहुत बँटवारा हो चुका था। महाराजकुमारों की शक्ति क्षीण होती जा रही थी। ये महाराजकुमार उपाधि और वंशपरम्परा में कीव के प्राङ्मंगोल महाराजकुमार के छायामात्र थे। कीव के महाराजकुमार रूरिक तथा वरांगियों की सन्तान थे। (तुलना करें पृ० 9) परम्परागत व्यवहार और अपहरण के कारण ही नाबालिग राजकुमारों तथा लौकिक जमीन्दारों का अधिकार-क्षेत्र तथा शासन पनप सका। इधर महाराजकुमारों ने मुक्ति और छूट को प्रोत्साहन दिया और इसके लिए शासन-पत्र जारी किया। स्वर्णदल के खानों ने गिरजाघरों को भी इसी प्रकार प्रोत्साहित किया। पन्द्रहवीं शती में और भी प्रतिबन्ध लाद दिये गये। भारी-भारी अपराध लौकिक कचहरियों के अधिकार-क्षेत्र से बाहर हो गये।

महान् इवन ने (जन्म सन् 1440 ई०, महाराजकुमार सन् 1462–1505 ई०) राजकुमारों तथा अन्य खानदानी जमीन्दारों की अर्द्धस्वतन्त्रता भंग करने का सफल प्रयत्न किया। मस्कोवी तथा उत्तरी रूस एक छत्रच्छाया के अन्दर आ गये। उसने त्वेर (कालिनिन) तथा अन्य प्रदेशों को अधिकृत किया। कुछ तो बल से और कुछ सन्धि से मिल गये। उसने नवगोरद तथा उसके उत्तरी उपनिवेश-साम्राज्य को अपने अधीन किया। लिथुआनिया और कजान के तातारों को युद्ध में पराजित किया तथा वह सन् 1480 ई० में स्वर्णदल से सब प्रकार स्वतन्त्र बन बैठा।

इवन आपद् मोल नहीं लेता था या परम्परा को अनवधानता से चुनौती न देता था। जब कभी वह चोट करता, तो गहरी चोट करता था। नवगोरद तथा अन्य लोगों को उसने छट्ठी का दूध याद करा दिया था। जब (सन् 1477 ई०) उनलोगों ने सन्धि की शर्तों की माँग की, तब उसने उत्तर दिया—"हमारे महा-राजकुमार का साम्राज्य ऐसा ही है। न तो कोई सभा होगी और न हमारी भूमि नवगोरद के गिरजाघरों में घण्टा ही बजेगा और न कोई प्रतिनिधि होगा। अपना शासन हमलोग स्वयं करेंगे।" और, ऐसा ही हुआ। जब नवगोरद ने इसके प्रतिकूल षड्यन्त्र किया, तब उसने 4/5 जमीन्दारों की भूमि छीन ली। सबको बन्दी बनाने लगा और पकड़कर केन्द्र मस्कोवी ले गया। अन्य स्थानों में भी लोगों को जबरदस्ती पकड़कर दूर करने की नीति अपनाई।

जारशाही इसी प्रकार नियमित रूप से विद्रोही दल का सामना करती थी, चाहे वे किसी वर्ग के हों। भयावह इवन ने मस्कोवी-जनता के साथ भी ठीक इसी प्रकार की क्रूरता से व्यवहार किया, न कि केवल विजित प्रदेशों के साथ। सात

वर्षों (सन् 1565—72 ई०) में सर्वत्र आंतक फैल गया और संकटकाल की स्थिति आ गई। बलात् दूर भगाकर सम्पत्ति हड़प ली जाती थी, किन्तु साधारणत: नई भूमि उसके बदले में दे दी जाती थी या जहाँ भी वे जाते थे, वहाँ उन्हें व्यापार की सुविधा मिल जाती थी, अत: यह बाद के देश-निष्कासन (साइबेरिया में) की प्रथा के समान न था। वहाँ उनके नागरिक अधिकार छीन लिये जाते थे तथा घोर श्रम करना पड़ता था। दो तरह से इसका काफी महत्त्व था। स्थानीय प्रतिरोध को भंग करने का यह एक साधन था। साथ ही शीघ्रता से विस्तृत होनेवाले मस्कोवी-साम्राज्य के असमान तत्वों के पारस्परिक मिलन में इससे मदद मिली।

बलात् स्थानान्तरण के साथ ही इवन के काल से एक नई परिपाटी भी चल पड़ी। वह थी स्वेच्छापूर्ण चुनाव की परिपाटी। कुछ परिवारों को या पुरुषों को स्वेच्छापूर्वक विभिन्न कार्यों के लिए या सेवा के लिए स्थायी रूप में भरती होना आवश्यक था। इसके सिवा क्षणिक श्रम या सुरक्षा-सेवा के लिए प्राय: बराबर ही बलात् शुल्क देना पड़ता था। यह शुल्क महान् पीटर के समय सबसे अधिक हो गया; क्योंकि वह अपनी नई राजधानी बना रहा था तथा श्रम की उसे विशेष आवश्यकता थी।

चुनाव का अभिप्राय यह था कि कोई उत्तरी समुदाय अनेक पुरुष या परिवार क्षणिक या स्थायी रूप में बढ़ई का काम करने या महा साइबेरिया में भार ढोने के लिए देगा। हो सकता है कि किसी समुदाय को जंगली स्टेपी में सीमा-विस्तार के लिए अनेक पुरुषों या परिवारों को सैनिक सेवा के लिए या उन्हें वंशानुगत बन्दूकची या कज़ाक का काम करने के लिए भेजना पड़ता। उन्हें वॉल्गा-स्थित नूतन नगरों में या राज्य-कारखानों में भी कुछ कारीगरों को भेजना पड़ता था। कभी-कभी सैकड़ों श्वेत रूसी अमीरों को, जो पोलैण्ड से आये थे, सैकड़ों मील दूर वॉल्गा-कामा की सुरक्षा-सीमा पर जाना पड़ता। किन्तु, ये रईस कनान का सापेक्षिक आराम पसन्द करते थे और सीमान्त के श्रम से दूर भागते थे। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। यह चुनाव नाम के लिए स्वेच्छापूर्ण था। जबरदस्ती भरती से इसे विलग करना कठिन है। प्राय: चुनाव या जबरदस्ती भरती से भी काम नहीं बनता था। टालमटोल, सत्याग्रह तथा खुला विरोध लोग बराबर करते थे। तब भ मस्कोवी-राष्ट्र अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए भरसक यत्न करता रहा। सैनिक और औपनिवेशक आवश्यकताओं की पूर्त्ति किसी-न-किसी प्रकार चुनाव से कर ही ली जाती जाती थी। इसके सिवा अनेक प्रकार के करों में छूट तथा तकावी दी जाती थी।

महान् इवन की नीति तथा तरीकों को उसके पुत्र वसिली तृतीय (सन् 1505–1533 ई०) तथा उसके पौत्र भयावह इवम (सन् 1533–84 ई०) काम में लाये। इनके व्यक्तित्व ने राज्य में राजनीतिक सामन्तशाही का अन्तिम समय ला दिया; क्योंकि ये जमीन्दारों और राजा से संघर्ष करते आ रहे थे।

पन्द्रहवीं शती में लौकिक जमीन्दारों में थे—जागीरों के राजकुमार तथा कुछ उपाधिहीन भूस्वामी। ये राजकुमार थे रूरिक-वंश के तथा लिथुआनिया के महाप्रदेश के संस्थापक के वंश के। इनकी पैतृक जागीर थी तथा उसके शासन में इनका बहुत हाथ था। इन जागीरों का आकार बहुत बड़ा होता था, किन्तु छोटे-छोटे टुकड़ों (मनोर्स) में ये बँटे थे। ये मास्को के राजकुमारों अथवा किसी अन्य कुमार की सेवा करने को बाध्य थे; क्योंकि उन्हें जागीर मिली थी या वैयक्तिक समझौते की शर्त्त में ऐसा ही लिखा था। समझौते की दशा में वे अपने को सेवक नहीं समझते थे और पैतृक रियासतों का उपभोग करते हुए सम्बन्ध-विच्छेद कर सकते थे। महान् इवन ने शक्ति का ऐसा दृढ संगठन किया कि सम्बन्ध-विच्छेद का क्रमशः अन्त ही हो गया। सन् 1500 ई० के बाद यदि वे मास्को के महाराजकुमार की सेवा न करते, तब उन्हें लिथुआनिया के महाड्यूक की सेवा करनी पड़ती, जो मास्को का महाप्रतिद्वन्द्वी था। लिथुआनिया का महाड्यूक पोलैण्ड का भी राजा था। सोलहवीं शती में लिथुआनिया की सेवा को राजद्रोह माना जाता था और सम्भव था कि उसके समर्थक को सारी सम्पत्ति से हाथ धोना पड़ता।

उस शती के मध्य तक किसी के लिए भी खानदानी जमीन्दार होना असम्भव था, जबतक वह मास्को की सेवा न करे और यदि सेवा छोड़ दे, तो पैतृक रियासत खत्म हो जाती। पहले सेवा की अवधि तथा प्रकार अनिश्चित तथा अस्थिर था। सन् 1556 ई० में भयावह इवन ने सैनिक-सेवा को नियमित कर दिया। रईसों को भूमि के अनुपात में सेना में सेवा करनी पड़ती थी।

उसका यह कार्य उसके सैन्य-सुधार से सम्बद्ध था। सन् 1549 और 1556 ई० के मध्य राज्य तथा गिरजाघरों में अनेक सुधार हुए। इवन का सैनिक-सुधार उसके महासुधारों में केवल एक था। अब इवन की सेना में मध्य श्रेणी तथा कम भूमिवाले लोग भी भरती किये जाने लगे। इन सैनिकों को अस्थायी भूमि दी जाती थी, जबतक वे सेना में रहते थे। ऐसे वर्ग की संख्या गत सौ वर्षों से बढ़ रही थी; क्योंकि लिथुआनिया और तातारों के विरुद्ध मस्कोवी का विस्तार हो रहा था। इससे राष्ट्र की सैनिक तथा अन्य आवश्यकताएँ बहुत बढ़ गईं। अतः, पुराने रईसों के अविनीत, हथियार-रहित भाड़े के टट्टुओं का अन्त हो गया।

भयावह इवन ने नई सेवा-जागीर का वृहत् पैमाने पर विकास किया, जिससे उसकी सैनिक और आर्थिक तथा औपनिवेशिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति हो सके, यद्यपि दोनों उद्देश्यों में महान् अन्तर था। उदाहरणार्थ, उसने मास्को के समीप नूतन अधिकारी जागीरदारों की टोली एकत्र की और सविस्तर उनके कर्त्तव्य तथा हक की उद्घोषणा की, जैसा मध्यकालीन इंगलैण्ड में नाइटों (सरदारों) का होता था। ये सेवा-जागीरें पहले बहुत ही विचल थीं तथा एक हाथ से दूसरे के के हाथ चली जाती थीं। किन्तु, धीरे-धीरे ये जागीरें खानदानी बनने लगीं और वस्तुतः पूर्णरूपेण मालिकों की सम्पत्ति बन गईं। धीरे-धीरे सेवा-जागीरें निजी भूमि में परिवर्त्तित होती गईं और इस प्रकार सत्रहवीं शती में सारी भूमि निजी सम्पत्ति हो गई। सन् 1714 ई० में महान् पीटर ने घोषणा द्वारा दोनों प्रकार की भूमि को कानून की दृष्टि में समान कर दिया।

धन, सामाजिक स्थिति तथा परम्परा के कारण मध्यम श्रेणी तथा अल्प भूमिपतियों के बीच बहुत अन्तर था। साथ ही, इन जागीरदारों तथा शिष्ट रईसों में भी बहुत बड़ा अन्तर था। अतः, मस्कोवी के जमीन्दारों में एकता न थी। इनके विभिन्न दल सफल न हुए, जैसा पोलैण्ड में या मध्यकालीन आरागण में रईसों को सफलता मिली थी। निरंकुशता के सिद्धान्त के विरुद्ध इन्होंने किसी ऐसी संस्था की पुष्टि न की, जो निरंकुशता से बचा सके। तीन ऐसे बचाव सम्भव थे; यथा शिष्ट-परिषद्, देशसभा तथा पूर्वदृष्टान्त-संहिता।

दृष्टान्त-संहिता बहुत ही बड़ा था। सरकार इसे मान्यता देती थी। इसी के आधार पर उच्च पदों पर नियुक्ति होती थी। वंशवृक्ष तथा पूर्वसेवा के आधार पर निर्धारित अधिकारियों के सापेक्षिक पदों द्वारा नियुक्तियों का नियन्त्रण होता था। किन्तु, केवल प्राचीन राजकुमारों के वंश तथा कुछ अन्य वंशों के लिए ये लागू होते थे। ये नियम रिवाज और परम्परा पर आश्रित थे। इस सम्बन्ध में कोई सामान्य विधि न थी। अतः, राज्य ने यथासम्भव इनके पालन को नियमित करने का प्रयास किया। इनके पालन से अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं, खासकर सेना-क्षेत्र में। कभी-कभी तो इन नियमों को तोड़ना-मरोड़ना पड़ता था या इन्हें अनुलम्बित कर दिया जाता था। अन्ततः, सन् 1682 ई० से इसका अन्त विधिवत् हो गया। किन्तु, जार की शक्ति पर इससे कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता था; क्योंकि इसका मुख्य उद्देश्य था—प्रतिद्वन्द्वी महान् वंशों से प्रत्येक महान् वंश की प्रतिष्ठा की रक्षा, न कि जार से उनकी समवेत प्रतिष्ठा की रक्षा।

दूसरी सम्भावित रोक थी देशसभा, किन्तु किसी प्रकार की स्थायी संस्था में इसका विकास न हो सका, जैसा पहले कहा जा चुका है (देखें पृ० 62–64)। तृतीय रोक था शिष्ट-परिषद्। इसका इतिहास बहुत लम्बा-चौड़ा तथा महत्त्वपूर्ण है।

शिष्ट-परिषद् अपने को खानदानी शासक-परिवार समझता थी और चाहती थी कि लोग भी उन्हें ऐसा ही समझें। यह महाराजकुमारों की परम्परागत परामर्श-दात्री पुरानी संस्था थी। सोलहवीं शती तक प्रायः इसके सभी सदस्य केवल मास्को के अधीनस्थ राजकुमार ही थे, जिनमें कुछ अन्य जमीन्दार-वंश के थे। भयावह इवन को अपने नाबालिग-काल (सन् 1533--47 ई०) का कटु अनुभव था। इसने देखा कि ये अमीर ही उसकी शक्ति में सबसे अधिक बाधक थे। ये अब भी शक्तिशाली थे, यद्यपि इसके पहले दो राजाओं के समय इनकी अर्द्धस्वतन्त्रता पंगु हो चुकी थी। अब संघर्ष में वैधानिक प्रश्न यह था कि क्या शिष्ट-परिषद् जार के कार्यों की स्वतन्त्रता के ऊपर प्रकटरूपेण रोक लगा सकती है। ऐसा करने के लिए उसे पुरानी, किन्तु अनिश्चित परिपाटी पर आधृत चोंगा बदलकर ठोस संस्था के रूप में परिणत होना पड़ता। इस संघर्ष का सोलहवीं शती के रूसी साहित्य पर गहरा छाप पड़ा है। इवन और कुमार कुर्वस्की में खूब विवाद चला। झक्की इवन की शंका और भयंकर ज्यादतियों के सात वर्षों में (सन् 1565--72 ई०) यह संघर्ष चरम सीमा पर पहुँच गया।

भयावह इवन ने (जन्म सन् 1530, राज्यकाल 1533 ई०, शासनकाल सन् 1547--84 ई०), सात विवाह किये। रूस के 23 राजाओं में (एक को छोड़कर) यह सबसे अधिक विवादास्पद व्यक्ति है। यह सभी मानते हैं कि उसका राज्यकाल सबसे महत्त्वपूर्ण है---वाह्य तथा आन्तरिक दोनों रूपों में। उसके राज्य के उत्तरार्द्ध में उसके व्यक्तित्व के कारण खून की धारा वह चली। यहीं पर एकमत समाप्त हो जाता है। उसके सम्बन्ध में मतभेद का कारण है प्रमाणों का अभाव। वचन-चातुर्य, शास्त्रार्थ में नैपुण्य, कठोरता में वैशिष्ट्य, धर्मग्रन्थ को याद रखने में पटुता, अदम्य स्वभाव (इसने अपने हाथ से अपने ज्येष्ठ पुत्र का वध कर दिया) तथा वृद्धावस्था में अपने क्रूर समसामयिकों को मात करनेवाली क्रूरता रखनेवाले यह इवन द्विधा-व्यक्तित्व का प्राणी था। इसने अपने शासन के प्रथम दस वर्षों (सन् 1547--58 ई०) को झूठा कर दिया, जबकि कजान और अस्त्राखान की भारी विजयश्री इसको मिली तथा राज्य और गिरजाघरों में सर्वतोमुख सुधार किया गया। इन सबके कारण यह 'महान्' की उपाधि से भूषित होने लगा।

इसके बाद समकालिक इतिहासकार के शब्दों में जार के ऊपर एक भयानक झोंका आया, जिससे वह उद्विग्न हो गया और उसके सौम्य हृदय की शान्ति भंग हो गई। न जाने, कैसे उसका दिमाग ही बदल गया। प्रभूत बुद्धि होने पर भी उसका जंगली पशुवत् स्वभाव हो गया। वह अपने ही राज्य में द्रोह रचने लगा। ये अन्तिम शब्द उसके विरोधी शिष्टजनों की भावना प्रकट करते हैं।

उसने शिष्टजनों पर बहुत निर्दयता से आघात किया। यह सत्य है कि उच्च तथा निम्न श्रेणी की सभी प्रजा की दशा दयनीय थी। उनमें फूट भी थी और वे मस्कोवी पहुँच जाते थे। किन्तु, निम्न श्रेणी के लोग जार को अमीरों की दृष्टि से नहीं देखते थे। पोलैण्ड के राजा के एक सचिव का लिवोनिया-युद्ध के अन्तिम वर्ष में रूस से गहरा सम्बन्ध था। वह आश्चर्यपूर्वक कहता है कि राजकुमार के इतना क्रूर होने पर भी लोग उसके प्रति अटूट श्रद्धा और विश्वास रखते थे। उन्होंने दुर्ग की रक्षा में अविश्वसनीय दृढता दिखाई। यह भी विलक्षण बात है कि आगामी शती में देशवासी उसे भयानक के रूप में कम जानते थे, किन्तु विजेता के रूप में अधिक। उसने कजान जीता तथा तातारों के विरुद्ध जनता को उत्साहित कर उनका श्रद्धापात्र बन गया। उसकी विजयी सेना बाल्टिक-तट तक पहुँचने में असफल रही, किन्तु इससे इवन का प्रतिष्ठा कम न हुई। उसने कास्पियन सागर तक अपना पंजा फैलाया था। लिवोनिया-युद्ध का रूसी जनता पर कोई विशेष असर न पड़ा। उनके लिए कसौटी थी वॉल्गा तथा स्टेपी; एशिया, न कि यूरोप।

उद्दण्डता, बड़प्पन की नींव को ढाह देती है। किन्तु, इवन का भयानक राज्य-काल, जो 'अपरिच्छिन्न काल' के नाम से ख्यात है, वैयक्तिक प्रतिशोध तथा मतिविभ्रम से नहीं उमड़ पड़ा था। यह निश्चित प्रशासनिक एवं राजनीतिक नीति का अंग था। इसका सामाजिक तथा आर्थिक महत्त्व बहुत अधिक है। पुराने रईसों की शक्ति कुचलने में इसे अपूर्व सफलता मिली। इसके लिए उसने रईसों को विभिन्न क्षेत्रों में अपने ऐतिहासिक स्थानीय मूल से इधर-उधर कर दिया और उन्हें दरिद्र बना दिया। इसका एक फल यह हुआ कि रईसों की भूमि का शीघ्र ही बँटवारा विभिन्न हाथों में हो गया। खासकर मास्को के पास की भूमि टुकड़े-टुकड़े हो गई। मस्कोवी में लिथुआनिया और पोलैण्ड के समान अब कोई रईस न बच गया, जिसके पास भूमि का चकला हो, जहाँ से डटकर विद्रोह के केन्द्र को संचालित किया जाय या उसका नूतन प्रादेशिक रूप बन सके।

भयावह इवन के बाद की शती में एक नये प्रकार के रईसों का प्रादुर्भाव हुआ। ये पुराने अमीरों से मिल गये, किन्तु ये अपने पूर्व प्रभुत्व को पुनः न पा सके। इनकी संख्या बहुत ही कम थी। इनमें लगभग केवल साठ वंश थे। ये अमीर वंश-विरोध के कारण आपस में बहुत विलग रहते थे। ये मिलकर काम करने में असमर्थ रहे तथा आपत्काल के दीर्घसंकट में भी राष्ट्रीय एकता का सहज नेतृत्व न कर सके।

यह सत्य है कि सत्रहवीं शती में शिष्ट-परिषद् का राज्य-कार्यों में निर्णायक हाथ था। स्थायी समिति के निर्माण होने से इसका कार्य और भी सुसंगठित हो गया। इसके सदस्यों से जार विधि-निर्माण में सहायता लेता था और विशिष्ट

शक्ति के प्रयोग में ये जार का साथ देते थे। किन्तु, परिषद् जार के ऊपर किसी प्रकार की वैधानिक रोक न लगा सकी। इस परिषद् के सदस्य केवल अमीर की श्रेणी से ही प्रधानतः नहीं लिये जाते थे। इसमें नये लोग भी प्रकट हो रहे थे और उनका प्रभाव बढ़ता ही जाता था। कुछ परिवारों का जार से वैयक्तिक सम्बन्ध था। साथ ही, प्रान्तीय रईस नौकरशाही में प्रवेश कर रहे थे। सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में वित्त तथा वैदेशिक विभागों में सुयोग्य नये चुने हुए व्यक्ति इसी श्रेणी से पहुँचे। इनमें पाश्चात्य प्रवृत्ति स्पष्ट थी। शासन-तन्त्र की बढ़ती हुई पेचीदगी तथा सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रत्येक विभाग के प्रधान कार्यकर्त्ता को शक्ति चाहिए था। अतः, जार की चान्सलरी से गुप्त कार्य-विभाग की सृष्टि हुई (सन् 1655 ई०)। इससे शिष्ट-परिषद् की व्यावहारिक महत्ता को बहुत धक्का लगा। सत्रहवीं शती के अन्त होते-होते वंश तथा रक्त की महत्ता जाती रही। उस समय तक ओहदे और वंश-परम्परा से पद सुदूर चला गया था। ऊपर कहा जा चुका है कि दृष्टान्त-संहिता को सन् 1682 ई० में सरकारी तौर पर रद्दी की टोकरी में फेंक दिया गया था। अब शिष्ट-परिषद् केवल मन्त्रिपरिषद् का अनिर्णीत प्रकार-मात्र था। महान् पीटर, सुधारक जार, का मार्ग खुला था (जन्म सन् 1672 ई०, राज्यकाल सन् 1682 ई० से; शासनकाल सन् 1694–1725 ई०)।

महान् पीटर ने मस्कोवी पर ऐसा संघात किया, जैसे किसान अपने घोड़े को घूँसे से मारता हो। मस्कोवी पर अनेक चिरस्थायी चिह्न पड़ चुके थे। अब उसे रूस[1] के नाम से पुकारने लगे। किन्तु, उसके सुधारों का चाहे जो महत्त्व हो, उनसे

---

1. 'रूस' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में मतभेद है। स्यात 'रुश' या 'रुष' धातु से यह शब्द बना है। 'रुश' शब्द ऋग्वेद में भी आता है। यथा :

यद्वा रूमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्रमादयसे स चा।
कण्वासस्त्वा ब्रह्माभिः स्तोमवाहस इन्द्र यच्छन्त्या गहि ॥ (ऋग्वेद, ८।४।२)

सायन की टीका कहती है–'यद्वा यद्यपि रूमादिपु चतुपु राजसु।' 'हे इन्द्र, आप रूम, रुशम, श्यावक तथा कृपके संग मदपान कर चुके हैं। उसी प्रकार कण्ववंशी ने भी जो स्तोमवाहक है, पान किया है। वे आपको स्तुति से आकृष्ट करते हैं, अतः आप पधारें।'(ऋग्वेद, ८।४।२)।

पुनः ऋग्वेद ८।३।१२ कहता है—"हे इन्द्र! जिन समृद्धियों से आपने रुशम, श्यावक और कृप को पूर्ण किया है, उन्हीं समृद्धियों से आप स्वर्गकामी पुरुषों को युक्त करें। हे इन्द्र! जिस धन-धान्य से आपने पौरवों की रक्षा की है, उन्हीं से आप अपने पूजकों को भी रक्षा करें।" इनके सिवा अनेक स्थलों में 'रुश' का नाम ऋग्वेद में आता है। स्यात महाभारत-काल में इस देश का नाम 'ऋषिक' था, जहाँ अर्जुन का घनघोर युद्ध हुआ था और तोते के रंग के सात घोड़े उपहार में मिले थे। 'रूस', 'रुश' का अर्थ परिश्रम करने पर भी अन्य स्रोतों से पता न चल सका। —दे० स० त्रिवेद

नया राज्य न बना। उसके पहले की पीढ़ी के व्यवहारों और विचारों का ही शाघ्रता और दृढ़ता के साथ विकास हुआ। प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनों व्यवहार चलते रहे, जो कहीं अंशतः टकरा जाते तथा कहीं अंशतः घुल-मिल जाते। उसके जीवनकाल में जारशाही पर उसके विशिष्ट चरित्र तथा गुणों के कारण नई मुहर लग गई, किन्तु इसकी कार्यप्रणाली पूर्ववत् बनी रही। यह कार्यप्रणाली जमीन्दारों के विभिन्न वर्गों तथा शासन-तन्त्र पर निर्भर थी। पीटर सेवा-राज्य (Service state) के सिद्धान्त का प्रवर्त्तक नहीं था। किन्तु, उसने इसे चरम सीमा तक पहुँचाया। इसने सेना, नौसेना के शासन में जमीन्दारों को जबरदस्ती भरना आरम्भ किया तथा स्वयं राष्ट्र का प्रथम सेवक बनने का उदाहरण उपस्थित किया। उसने अपने सम्बन्ध में पूर्ण न्याय के साथ लिखा—"मैंने अपनी पितृभूमि तथा जनता की सेवा से न अपने प्राण बचाये हैं, न तो कभी बचाऊँगा।'

पीटर अपनी बर्बरता, अशिष्टता तथा मानव-जीवन को एकदम तुच्छ समझने के कारण आकर्षणविहीन था। किन्तु, वह सदा प्रगतिशील था। उसमें अदम्य उत्साह तथा संकल्प-शक्ति थी। उसकी उत्सुकता कभी शान्त नहीं होती थी। वह प्रयोग-प्रिय था। उसने हार मानना तो कभी सीखा ही नहीं। वह महान् योजनाओं को कार्य-परिणत करने का बीड़ा उठा लेता था, चाहे उसमें कितना ही व्यय क्यों न हो। वह उन्हें जल्दबाजी में बेढंगे तौर पर तथा बड़े पैमाने पर आरम्भ कर देता था। बाल्यकाल से ही उसकी प्रमुख वैयक्तिक उत्सुकता थी युद्ध—समुद्र तथा स्थल पर। किन्तु, उसने ठीक से समझ लिया था कि इसके लिए देश के भौतिक तथा मानवी साधनों का पूर्ण उपयोग होना चाहिए। वह सन् 1695 ई० से लगातार अट्ठाईस वर्षों तक युद्ध करता रहा। चौबीस वर्ष की अवस्था में उसने युद्ध करना शुरू किया और बावन वर्ष की अवस्था में उसने अन्तिम सन्धि की और उसके बाद एक वर्ष से कुछ ही अधिक दिनों तक जीवित रहा।

पीटर के सभी सुधारों का जन्म सैनिक तथा नाविक आवश्यकताओं के कारण हुआ। शासन के लिए दो बातें आवश्यक हैं—शक्ति तथा सुरक्षा। इसके लिए रूस क पश्चिमीकरण की ओर ले जाना ही होगा। इस हेतु उसी के शब्दों में उसका प्रथम कर्त्तव्य था कि वह अपनी प्रजा को पशु से मनुष्य तथा बालक से वयस्क बनाये। उसके कटु आधुनिक आलोचक भी मानते हैं कि रूस के प्रति उसमें गाढ स्नेह था। उसमें व्यक्तिगत अभिलाषा न थी। वह उदाहरण और उपदेश द्वारा नागरिकता की उचित भावना को उद्दीप्त करना चाहता था, जिससे राज्य की सेवा सुयोग्य और प्रशिक्षित रूप में हो सके। वह नहीं चाहता था, कि लोग एक पवित्र शासन की अन्धसेवा करते रहें, जो सुदूर ऊँची गद्दी पर बैठा है और मस्कोवी रीति-रिवाजों के कारण पूजित होता है।

सन् 1715 ई० तक तो उसके सुधार अंशतः होते रहे। ये सुधार संकीर्ण थे तथा उसने स्वयं स्वीकार किया कि ये जल्दबाजी में किये गये थे; क्योंकि उनकी क्षणिक आवश्यकता थी। वह सदा अपने हथकण्डे के इस या उस भाग की कटनी-छँटनी करता रहता था; क्योंकि उसे अधिक-से-अधिक रंगरूट, मजदूर, राजस्व और हथियार की खोज थी। अपने अन्तिम बारह वर्षों में, जब युद्ध कम कष्टसाध्य था और पश्चिमी यूरोप से अधिक समीप सम्बन्ध था, उसने सावधानी से घोषणा की, जिससे सुयोजित विस्तीर्ण विधान की परिपाटी चल सके और राज्य तथा गिरजाघर दोनों का एक समान पुनर्निर्माण हो सके। उसकी पहले की घोषणाओं में परस्पर विरोध, अस्पष्टता तथा संक्षिप्त रूखापन रहता था। उसकी नृशंस हत्या, विशाल माँग (जिसे वह जबरदस्ती पूरा करता था) तथा राष्ट्रीय ढंग को खुले आम ठुकराने और पक्षपाती भावनाओं के कारण विद्रोहियों को अच्छा अवसर मिला। उसने चार भयंकर विप्लव को खूनी ढंग से कुचल दिया। उसने अपने ही पुत्र तथा उत्तराधिकारी अलेक्सिस को मृत्यु का दण्ड दिया; क्योंकि वह प्रतिक्रियावाद का प्रधान नेता था (सन् 1718ई०)। किन्तु, दरअसल अलेक्सिस एक शान्त प्राणी था। उसे डर था कि कहीं लोग उसकी जान न ले लें। अतः, वह अपने पिता की मृत्यु की आशा देख रहा था। विद्रोहियों का कोई नेता न था। इनमें विभिन्न प्रकार के लोग थे। रूस की सारी शक्तियाँ पीटर के पक्ष या विपक्ष में विभक्त थीं।

उसका लक्ष्य था कि जारशाही को यूरोपीय ढंग से निरंकुश राजतन्त्र के रूप में परिणत किया जाय। इसमें उसे यथेष्ट सफलता भी मिली। अब रूस पहले के जैसा न रहा, हालाँकि प्रगति की चाल उग्र जरूर थी और उसकी मृत्यु के बाद लोगों ने कदम पीछे भी बढ़ाया। वह अपने को निरंकुश शासक बतलाता था, जो संसार में अपने कामों के लिए किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं है। एक ईसाई सम्राट् के रूप में उसे शक्ति और अधिकार था कि राज्य तथा भूमि का शासन वह अपनी इच्छा तथा विवेकपूर्ण निर्णय से करे। प्रबुद्ध निरंकुश राजतन्त्र का यह रूप पीटर की नई सेना-संहिता (सन् 1716 ई०) में मिलता है। उसने पाश्चात्य ढंग पर स्थायी राष्ट्रीय सेना का संगठन किया। यह उसकी महान् देन है। और अब पहले की अपेक्षा सैनिक शक्ति और सैनिक प्रवृत्ति का जारशाही के साथ और भी सुदृढ सम्बन्ध हो गया। एक बाह्य रूप ध्यान देने योग्य है। पीटर सदा सैनिक या नाविक के वेष में प्रकट होता था (जब वह यात्रिक के वेष में न रहता था)। इसके उत्तराधिकारी सभी सम्राटों ने भी ऐसा ही किया। इसके पूर्वाधिकारी (जब शिकार नहीं करने जाते) प्रायः महापुरोधा रूप में प्रकट होते थे, अर्थात् अर्द्धजार तथा अर्द्ध-पुजारी का वेश धारण करते थे।

किसी भी अन्य जार ने रूस के ऊपर इतना स्थायी प्रभाव न डाला, जितना पीटर ने अपने कार्य तथा व्यक्तित्व से डाला था। वह अश्रुतपूर्व जार था। किसी-किसी के लिए वह जार था ही नहीं, बल्कि ईसा-विरोधी था। वह जार को धरातल पर लाया और अपने को प्रजा की आशा, भय, विलाप और स्मृति का प्रतीक बना दिया। वह कराल कालशक्ति था, जिसने अतीत को उखाड़ फेंका तथा स्वीडेन को खदेड़ मारा। रूसी ऐसे शासक की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। वह समस्त देश में व्याप्त था। विशालकाय, अथक सवार वह सदा दौरे में ही रहता था। उसे अपने विशाल कठोर हाथों का अभिमान था। वह युद्धभूमि में बम गिरानेवाले की तरह काम करता था। वह अपनी प्रजा के समान कुल्हाड़ी चलाता था। वह एक ही घूँसे में ही किसी का भी अन्त कर दे सकता था तथा कई बार उसने ऐसा किया भी। रूसी जनता उसे कभी न भूलेगी। "वह जार था। वाह रे जार! वह हराम का भोजन नहीं करता था। हमलोगों से भी अधिक श्रम करता था।" एक किसान ने उसकी स्तुति इन शब्दों में की। वह पीटर के साथ रह चुका था और उसके साथ पसीना बहाया था। उसने अपने शक्तिशाली शरीर और दिमाग को रूस के लिए बलि दे दी। उसने रूस को निर्दयता से आगे बढ़ाया और तेजी से ढकेला। किन्तु, इसमें उसका उद्देश्य महान् था। उसने रूस को महत्ता-का पाठ पढ़ाया और तेजी से यूरोप और एशिया उसे कुछ समझने लगे।

हा यमराज, महाराज, आप अन्तरिक्ष में ईस प्रकार उत्पन्न
लौहपुरुष, सर्वाधिकारी, समस्त रूसाधिपति, नितम्बारूढ

पीटर की मृत्यु सन् 1725 ई० में हो गई। इसके बाद अर्द्धशती में जमीन्दारों ने घोर आन्दोलन किया; क्योंकि पीटर उन्हें जबरदस्ती सेना में भरती करता था और उसकी एक घोषणा बहुत ही अप्रिय थी, जिसके अनुसार जागीर का बँटवारा इच्छा-पत्र से न होकर उसे एक ही पुत्र या उत्तराधिकारी को समर्पित कर दिया जाता था। सन् 1731 ई० में यह घोषणा रद्द कर दी गई। जमीन्दार-वर्ग चाहता था कि शासन में उसका प्रत्यक्ष राजनीतिक नियन्त्रण भले ही न रहे, किन्तु अपनी जागीर में दासों पर उसका पूर्ण अधिकार रहे तथा उनका विशेषाधिकार बना रहे। महती कैथरीन के काल में सन् 1785 ई० के घोषणापत्र से उनकी इच्छा पूर्ण हो गई। उनकी जागीर उन्हें पुनः मिल गई।

किन्तु, पीटर ने जो पदसूची (सन् 1722 ई०) बनाई थी, उससे स्थायी प्रभाव को ये मिटा न सके। यह घोषणा उसने खूब सोच-समझकर जारी की थी और इस सूची को उसने सावधानी के साथ विदेशी (खास कर डेनमार्क और प्रशा के) ढांचे पर तैयार किया था। किसी का पद या नूतन जमीन्दारी राष्ट्रसेवा

के सोपान में उस व्यक्ति द्वारा प्राप्त स्थान पर निर्भर थी। राष्ट्रसेवा चौदह सैनिक और नाविक सीढ़ियों तथा समानान्तर चौदह नागरिक सीढ़ियों में बँटी थी। प्रत्येक सीढ़ी के लिए नकद वेतन निश्चित कर दिया गया था। पीटर ने अपने अति विश्वस्त सलाहकार या कार्यकर्ताओं को, जिनमें अनेक विदेशी भी थे, निम्न श्रेणी से चुना; क्योंकि उसमें वैयक्तिक योग्यता और स्वामिभक्ति थी। धन राष्ट्रसेवा में उन्नति की कसौटी था। और, सभी को अपना जीवन निचली सीढ़ी से आरम्भ करना होता था। यह सत्य है कि रक्त, धन तथा पक्षपात का अब भी बोलबाला चलता रहा, किन्तु अब मध्य तथा निम्न श्रेणी के लोगों को सेना, नौसेना तथा नागरिक सेवा में प्रवेश के लिए दरवाजा खुल चुका था और इसके बाद कभी पूर्णरूपेण बन्द न हुआ। इस प्रकार, ये खानदानी दास रखनेवाले जमीन्दारों की श्रेणी में विशेषाधिकार प्राप्त कर सकते थे।

पदसूची तथा पीटर के नूतन कॉलेजों ने मस्कोवी नौकरशाही का रूप बदल दिया। यह नौकरशाही बेढंगे बढ़ रही थी। प्रतीत होता था कि इसके बिना जारशाही का काम ही न चलेगा। सत्रहवीं शती के मध्य में विभिन्न प्रकार के तीस-चालीस विभाग थे, जिनके प्रधान अस्सी से अधिक सचिव थे। ये विभिन्न वर्गों, विशेषत: मध्यम सेवकजनों, मास्को तथा प्रान्तीय जमीन्दारों से लिये गये थे। वेतन कुछ तो भूमिदान और कुछ शुल्क में मिलता था। घूसखोरी का तो कहना ही क्या था ? ये विभाग सूत्र तथा परम्परा के जाल में फँसे थे। इनकी गति मन्थर थी। इनका कार्यक्षेत्र किसी सिद्धान्त पर निर्धारित न था। कुछ विभाग कुछ प्रदेशों का कार्य देखते थे, कुछ विभाग कुछ व्यक्तिवर्ग का काम देखते थे, तो कुछ किसी विशेष श्रेणी का ही कार्य देखते थे (यथा विशिष्ट सैनिक सेवा, विदेशी मामले)।

पीटर के पहले से ही साधारणीकरण तथा संकेन्द्रन का काम चल रहा था। किन्तु, इसी पीटर ने विभागों के इस जंगल में से अधिक महत्त्वपूर्ण को अन्तत: आठ कॉलेजों में बदल दिया तथा दो नये कॉलेजों (नौसेना तथा खनिज और शिल्प) को जोड़ दिया। ये कॉलेज पश्चिमी ढाँचे पर थे। इनके द्वारा पीटर श्रम-विभाजन को युक्तिसंगत बनाना चाहता था—सबसे बढ़कर वित्त और सेना में। पुराने विभागों की कमबख्ती (झक) और विलम्ब को मिटाने के लिए हर कॉलेज के ऊपर उसने एक लघु बोर्ड बना दिया, जो बहुमत से सभी निर्णयों का उत्तरदायित्व लेता था। इन कॉलेजों से पीटर को बहुत उच्च आशा थी, किन्तु उसे सफलता न मिली, यद्यपि पहले से सुधार अवश्य हुआ। अट्ठारहवीं शती में इनके अनेक रूप बने। युद्ध, नौसेना तथा वैदेशिक मामलों के कॉलेज एक प्रकार से स्वतन्त्र शक्ति बन बैठे। कैथरीन महती के राज्य में कॉलेज-सिद्धान्त का तेजी से अन्त होता गया और अलेक्जेण्डर प्रथम ने इसे तिलांजलि देकर केन्द्रीय शासन का पुन: संगठन किया।

महान् पीटर ने शासन में तृतीय भारी सुधार किया—सिनेट का निर्माण (सन् 1711 ई०)। आरम्भ में इसमें नौ सीनेटर थे। जब कभी पीटर विदेश या युद्ध-भूमि में बाहर रहता, तब इन्हें शासन चलाने का पूर्ण अधिकार था। किन्तु, आगे चलकर यह शासन (विशेषकर वित्त), न्याय तथा प्रान्तीय शासकों का काम देखता था तथा उनपर नियन्त्रण रखता था। इसके सदस्यों को सदा जार नियुक्त करता था। धीरे-धीरे इनकी संख्या बढ़ती गई। इसने एक विशाल सचिवालय विकसित कर लिया। नूतन स्थायी सेना, जलसेना, पदसूची, कॉलेज, धर्मसभा, चुंगी कर तथा आन्तरिक पारपत्र के समान सीनेट पीटर की देन था। बाद में लोगों ने इसे विकसित या परिवर्त्तित किया, किन्तु वे इसका नाश न कर सके। यह वस्तुतः अन्त (सन् 1917 ई०) तक चलता रहा। पीटर के निकटतम उत्तराधिकारियों ने इसे बदल दिया, किन्तु उसकी कन्या महारानी एलिजाबेथ (सन् 1741–62 ई०) ने इसे शासन का मुख्य केन्द्र मानकर पुनर्जीवन दिया। महती कैथरीन ने अधिकार घटाकर इसका पुनर्निर्माण किया। अलेक्जेण्डर प्रथम (सन् 1803,1811 ई०) ने इसका पुनः संगठन किया और इसी आधार पर यह आगामी शती में साम्राज्य के लिए न्याय और शासन की अन्तिम सत्ता के रूप में चलती रही।

अलेक्जेण्डर प्रथम (जन्म : सन् 1777 ई०, राज्य : सन् 1801-25 ई०) ने सीनेट को नये साँचे में ढाला। केन्द्रीय शासन के सामान्य पुनः संगठन का यह एक अंग था। उसने राज्य-परिषद्, (सन् 1810 ई०) की स्थापना की तथा कॉलिजों के स्थान पर मन्त्रालय बनाये (सन् 1802,1811ई०)। उसने राज्य-परिषद् को विधि तैयार करने का भार सौंपा। पहले इस काम को अंशतः सीनेट, अंशतः कॉलेज, और अंशतः विशेष आयोग करते थे। राज्य-परिषद् कोई प्रतिनिधि संस्था न थी। यह नौकर-शाही तन्त्र का एक अंगमात्र थी। इसके सदस्यों को सम्राट् चुनता था। इनकी संख्या पैंतीस से साठ के लगभग होती थी। इसके मातहत बहुत कर्मचारी होते थे। विधान-प्रस्ताव आरम्भ करने का इसे अधिकार न था। इसकी सिफारिशें केवल परामर्श के रूप में होती थीं। इससे बिना परामर्श किये भी सम्राट् आदेशपत्र जारी कर सकता था। अथवा अल्पमत के अनुसार कार्य करता था, फिर भी परिषद् ने बहुत-से आवश्यक कार्य कुशलता से किये। यह परिषद् (सन् 1905 ई०) तक चलती रही। क्रान्ति ने (सन् 1905 ई०) इसे नई संसद् के द्वितीय गृह में बदल गया।

अलेक्जेण्डर का तृतीय महान् सुधार था—कॉलेजों का मन्त्रिविभागों में अन्तिम परिवर्त्तन। प्रत्येक विभाग का एक मन्त्री होता था। उसे जार नियुक्त करता था और वह जार के ही प्रति उत्तरदायी था। वह सीधे जार के पास सन्देश

पहुँचा सकता था। प्रत्येक विभाग का संगठन तथा कार्य-प्रणाली पर्याप्त संशोधित नियमों पर निर्भर थी। साथ ही समन्वय के लिए एक मन्त्रिसमिति भी बनी। यह समिति इंगलैण्ड के ढाँचे पर नहीं, किन्तु नेपोलियन के ढाँचे पर काम करती, जो अलेक्जेण्डर की अन्तरंग परामर्शदात्री समिति पहले ही हो चुकी थी। मन्त्री मन्त्रालय नहीं बनाते थे। इनका सामूहिक उत्तरदायित्व न था। उनके विचार विभिन्न और परस्पर विरोधी भी होते थे। अत:, मन्त्रिसमिति नीति के समन्वय का अत्यन्त दुर्बल साधन थी और इस बात में इसका महत्त्व गौण था। सन् 1906 ई० में डूमा बना। मन्त्रिसमिति अब मन्त्रिपरिषद् के रूप में परिणत हो गई। इसका महत्त्व बहुत ज्यादा था। स्तोलिपिन इसका अध्यक्ष (सन् 1906-11 ई०) हुआ। इसके अधिकार प्रधान मन्त्री के समान थे; क्योंकि इसका व्यक्तित्व ओजस्वी था। किन्तु, असल में अन्त तक यह विभागों के प्रधानों का समूह-मात्र रही। प्रत्येक प्रधान अलग-अलग जार के प्रति उत्तरदायी था, न कि डूमा के प्रति। ये डूमा के सम्मुख उपस्थित हो सकते थे, किन्तु उसके सदस्य न थे।

महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का निबटारा ठीक उसी प्रकार उन्नीसवीं शती में भी होता था, जिस प्रकार महान् पीटर के मरणोपरान्त अट्ठारहवीं शती में। इसके लिए कोई नियमित पद्धति या संस्था न थी। केवल कुछ खुशामदी टट्टू या विशिष्ट व्यक्ति, जो सदा सम्राट् के पास चक्कर काटते रहते, किसी-न-किसी प्रकार प्रणाली तोड़-मरोड़कर अपना काम निकाल लेते थे। किन्तु, किसी सम्राट् की स्वीकृति अवश्य प्राप्त करनी पड़ती थी। इस स्वीकृति को पाने के लिए सम्राट् के वैयक्तिक चरित्र के अनुरूप यथासाध्य उपाय करना होता था।

अत:, अट्ठारहवीं शती में शक्ति का संचार अधिकतर अन्तत: परिषद् सीनेट तथा कॉलेजों के द्वारा होता था। परिषद् को विभिन्न नाम से पुकारते थे : यथा विशिष्ट गुप्त परिषद्, राजकीय मन्त्रलय, मन्त्रिसभा या राज्य-परिषद्। सीनेट का प्रधान होता था महासमाहर्त्ता। अन्त में वह न्याय, वित्त तथा गृहमन्त्री का मिला-जुला रूप हो गया था। कॉलेज थे युद्ध, नौसेना, तथा वैदेशिक मामलों के लिए। उन्नीसवीं शती में प्रश्न उठा खड़ा हुआ कि प्रमुख शक्ति कौन है—मुख्य मन्त्रालय (सेना, गृह तथा वैदेशिक मन्त्रालय), सम्राट् की चांसलरी, विशिष्ट परिषद् या राज्यप्रतिनिधि-महाशासक (जो प्राय: सदा सैनिक पुरुष होते थे)। ये राज्यप्रतिनिधि पोलैण्ड, नूतन, रूस, ट्रान्सकाकेशि तथा एशिया में थे। यह कथन अतिशयोक्ति न होगा कि उन्नीसवीं शती के अन्त में भी निरंकुशता या जारशाही स्वतन्त्र विभागों का एक संघ थी, जो किसी के प्रति उत्तरदायी न था। ये विभाग आपस में मैत्री नहीं रखते थे और न तटस्थ ही थे रहते। कभी-कभी खुल्लमखुल्ला झगड़ते भी थे।

अंशतः नियमित नौकरशाही को नियन्त्रण में रखने के लिए, अंशत: इसकी संकीर्णता और कर्कशता में लचीलापन लाने के लिए तथा अंशत: वैयक्तिक झक के कारण पीटर महान् के बाद सभी सम्राटों ने विशिष्ट समिति का उपयोग विशिष्ट कार्य के लिए किया। अलेक्जेण्डर प्रथम तथा निकोलस प्रथम अपने विश्वस्त व्यक्तियों, खासकर महासेनापति, के ऊपर इस भार को सौंपते थे। इसे सूचना देने, सन्धि करने या किसी निर्णय पर पहुँचने का कार्य-संचालन करने के लिए विशिष्ट शक्ति मिली हुई थी। यही पद्धति गृह तथा वैदेशिक बातों में भी अपनाई जाती थी। शासन के सामान्य तन्त्र से बाहर जाने में लाभ था और यह कुछ हद तक आवश्यक भी था। किन्तु, ऐसा करने से गड़बड़ी और मनमानापन बढ़ता ही गया।

रूसा नौकरशाही अट्ठारहवीं शती में विशाल थी, जो उन्नीसवीं शती में और भी बढ़ती गई। इस नौकरशाही में प्रधानत:, न कि सर्वांशत: रूसी ही थे। विशाल बहुराष्ट्रीय साम्राज्य को एक जाल में बाँध रखने में यह नौकरशाही अपरिहार्य थी। किन्तु, साथ ही केन्द्र तथा प्रान्त दोनों में लाल फीता तथा घूसखोरी के लिए बदनाम भी थी। अकुशलता, गुप्तचरी, मनमानापन तथा नृशंसता की भी कमी न थी। महती कैथरीन ने प्रान्तीय शासन में तथा अलेक्जेण्डर प्रथम ने केन्द्र में कुछ सुधार किया। उसका फल अच्छा ही हुआ। इससे उच्च अधिकारियों का शिक्षा-स्तर उन्नत हो गया। उन्नीसवीं शती तक के छठे दशक में अलेक्जेण्डर द्वितीय ने भी कुछ सुधार किया; यथा नूतन प्रान्तीय परिषद् तथा विधि-न्यायालय का प्रारम्भ। इनसे सच्चा सुधार हुआ। फिर भी, गृहमन्त्रालय तथा प्रान्तीय शासक अब भी बहुत प्रभावशाली बने रहे। रूसी जीवन के आवश्यक रोग थे--अधिक केन्द्रीयीकरण तथा स्थानीय और गैर-सरकारी संस्थाओं पर नौकरशाही का नियन्त्रण, जो सन् 1917 ई० की क्रान्ति तक चलते रहे।

अलेक्जेण्डर प्रथम ने केन्द्रीय शासन का पुन:संगठन (सन् 1802-11 ई०) किया। इसका श्रेय है स्पेंरस्की (जन्म सन् 1772 ई० : मृत्यु सन् 1839 ई०) को। रूस के सुधारकों में यह सबसे अधिक क्रमबद्ध और रचनात्मक व्यक्ति था। महावैज्ञानिक पवलव के समान यह भी एक महान् रूसी जन था और इसका पिता एक देहाती पुजारी था। किन्तु, इसकी सांविधानिक, वित्तीय तथा शासन-सुधार-सम्बन्धी सर्वव्यापी योजनाओं के कुछ भाग को काम में लाया गया। उसने केन्द्र में तथा स्थानीय सभाओं में प्रतिनिधित्व की योजना बनाई थी, किन्तु उसे स्थगित कर दिया गया। उसने शासन के विभिन्न अंगों के वैधानिक, शासकीय तथा न्यायिक कार्यों की सीमा स्थिर करने का भी प्रयत्न किया था, किन्तु इसमें उसे आंशिक सफलता ही मिली।

स्पेरंस्की ने शक्तियों के विलगाव की आवश्यकता पर जोर देकर ठीक किया। यह ठीक है कि सभी देशों में वैधानिक, शासकीय तथा नैयायिक कार्यों में स्पष्ट रेखा खींचना कठिन है; किन्तु किसी भी देश में ऐसी रेखा न होने से ऐसी गड़बड़ी, निरंकुशता तथा स्वेच्छाचारिता न हुई, जैसी रूस में। व्यक्ति की अपेक्षा राष्ट्र का सदा उच्च अधिकार था। इससे राजनीतिक की कौन कहे, नागरिक स्वतन्त्रता भी कुचल दी जाती थी। अधिकारी सदा कम या अधिक विशेषाधिकार-प्राप्त व्यक्ति थे। महान् पीटर, महती कैथरनी तथा स्पेरंस्की के यत्न करने पर भी न्यायालय नौकरशाही के हथकण्डे सन् 1864 ई० तक बने रहे। कचहरी और उसकी कार्य-प्रणाली दोनों प्राचीन यूरोप के ढंग पर थी। उनके स्मरण-मात्र से ही रोंगटे खड़े हो जाते है और रक्त जम जाता है। इनकी विशेषताएं थीं—बेहद पेचीदापन, उच्च न्यायालयों को अनन्त निर्देश. भारी घुसखोरी तथा विलम्ब, गुप्तता तथा समीक्षण-प्रणाली, केवल लिखित गवाही पर विश्वास तथा अधिकारियों के प्रतिकूल उचित शोध का पूर्ण अभाव।

सन् 1864 ई० के सुधारों से पुरानी पद्धति का पूर्णान्त हो गया। इसका स्थान इंगलैण्ड और फ्रांस के व्यवहारों के मौलिक सम्मेल ने लिया। ये सुधार बहुत बारीकी और अच्छे ढंग से किये गये थे। सरल तथा प्रभावशाली नई कचहरियाँ बनीं। जजों को वास्तव में हटाया नहीं जा सकता था। देश के जिलों में अँगरेजी ढाँचे पर शान्ति-जजों (Justices of the peace) का निर्वाचन होता था। आपराधिक तथा कुछ अन्य मामलों में (यहाँतक कि राजनीतिक मुकदमों में भी) मौखिक गवाही तथा जूरी द्वारा मुकदमों की देखदेख की शुरुआत हुई। सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि शासन तथा न्याय-कार्यों को एक ही व्यक्ति या एक ही प्रकार के व्यक्ति नहीं देखते थे (इसके कुछ अपवाद भी थे) तथा सभी मुकदमों की सुनवाई खुले आम होने लगी। ये नैयायिक सुधार बहुत बड़ी उपलब्धियाँ थीं और इनका फल बहुत ही लाभप्रद हुआ। इससे अति योग्य विधि-व्यवसाय की खूब उन्नति हुई।

किन्तु, 19वीं शती के छठे दशक के अन्य सुधारों की तरह राजनीतिक प्रतिक्रिया का सामान्य प्रभाव इनके ऊपर भी खूब पड़ा। यदि किसी मुकदमे में खुले आम बहस से जनमत के भड़क जाने का भय रहता, तो ऐसे मुकदमों की सुनवाई बन्द कमरे में होती थी। इसका निर्णय अधिकारी ही करते थे (सन् 1881 ई०)। राजनीतिक मामलों में कचहरियों का प्रभुत्व प्रायः शून्य हो जाता था; क्योंकि पुलिस को अधिकार था कि वह स्वतन्त्ररूपेण गुप्त काररवाई करे। साथ ही, जारशाही के अन्तिम 50 वर्षों में साम्राज्य के अधिकांश भागों का शासन प्रायः सुरक्षा की दृष्टि से विशेषा-

धिकार द्वारा होता था। इस कारण, सामान्य कचहरियों तथा अधिकारियों का स्थान अंशत: या पूर्णत: विशेषाधिकारयुक्त प्रान्तीय शासक, पुलिस तथा अन्तत: सैनिक न्यायालय हड़प लेते थे।

निकोलस प्रथम (जन्म : सन् 1796 ई०; राज्यकाल ; सन् 1825–55 ई०) के समय जारशाही के कार्य-सम्पादन में पुलिस का राज्य पहले से बहुत अधिक बढ़ गया था, हालाँकि सत्रहवीं शती के मध्य से ही पुलिस की प्रधानता थी। निकोलस को गद्दी पर बैठते ही दिसम्बरियों का सामना करना पड़ा। अत:, उसने गुप्त पुलिस का पुन: संगठन और खूब विस्तार किया। यही व्यवस्था आगे चलकर इतनी बदनाम हुई कि लोग इसे शाही अधिकार का तृतीय अंग कहकर पुकारने लगे। उन्नीसवीं शती के द्वितीय पाद के समसामयिकों के लिए रूसी निरंकुशता देश में तथा बाहर आदर्श पुलिस-राज्य के नाम से विख्यात थी। निकोलस केवल यूरोप का ही सिपाही न था, बल्कि इससे बढ़कर अपने साम्राज्य का सिपाही था। जिस प्रकार कर्नल अपने रेजिमेण्ट (सेना) पर शासन करता है तथा पैतृक जमीन्दार अपनी जागीर में शासन करता है, उसी प्रकार यह भी साम्राज्य में शासन करता था। यह बड़ी-बड़ी रिपोर्टों को मिहनत के साथ उसी प्रकार ध्यान से देखता था, जैसा स्पेन का फिलिप द्वितीय, भले ही इन रिपोर्टों में राष्ट्र के महान् प्रश्नों का विवरण हो या किसी प्रकार का वैयक्तिक विवरण। उसी के समय से पुलिस और सिपाही ही जारशाही के मुख्य बाहु थे, जिनके द्वारा वह उन सबका विनाश और दमन करता या मार्ग पर लाता था, जो राजनीतिक कण्टक समझे जाते थे। हालाँकि, बाद में इनकी रचना तथा अधिकार में अनेक परिवर्त्तन हुए। देश की परिस्थिति का ज्ञान भी जार को इन्हीं के माध्यम से होता था तथा निकोलस प्रथम को अपने सेवकों के अनाचार का भी पता इनसे चल जाता था।

निकोलस ने तृतीय दल के दोनों अंग (पुलिस एवं सिपाही) तथा शेष शाही अधिकार को साम्राज्य की नौकरशाही को नियन्त्रण में रखने के उद्देश्य से पुन: संगठित किया था। ये निरंकुश शासक की शक्ति को भी शासन-तन्त्र के विभिन्न दैनिक कार्यों के सम्पादन करने में बरबाद होने से रोकते थे। इसके सिपाहियों को आज्ञा थी कि वे जार और प्रजा के बीच अफसरों की जो दीवार है, उसे तोड़ डालें और इस विचार का प्रचार पुलिस के द्वारा करवायें कि प्रत्येक नागरिक की आवाज जार की गद्दी तक पहुँच सकती है। निकोलस इंच-प्रति-इंच जार मालूम होता था। वह अपनी प्रजा के जनक के रूप में प्रकट होकर बहुत प्रभाव पैदा करता था। किन्तु, पुलिस के बारे में उसकी धारणा का बुरा फल हुआ। शासन के अन्य अंगों और पुलिस में विद्वेष बढ़ने लगा तथा सार्वजनिक भर्त्सना

और जासूसी बढ़ी। पुलिस ने क्रान्तिकारी दलों, तथा दूसरे रूप में व्यापार-संघों में भण्डाफोड़ करनेवालों को नियुक्त किया। निकोलस द्वितीय के काल में इसकी हद हो गई। सन् 1909 ई० में अजेव के जीवन पर सरकारी तथा गैर-सरकारी तौर पर पोल खुली, जिससे पता चला कि वह एक साथ ही गुप्त सेवा का एजेण्ट तथा आतंकवादी षड्यन्त्रकारी था। दो मन्त्रियों की तथा मास्को के महाशासक, जार के चाचा की हत्या में उसका गहरा हाथ था। इसने अन्य हत्याएँ भी की थीं।

गत सौ वर्षों में सुगठित पुलिस-शासन का जो महान् विकास हुआ, उसकी तुलना जारशाही के एक नये लक्षण, एकरूपता की नीति से की जा सकती है। सन् 1815 ई० के पूर्व की शती में साम्राज्य का बेहद विस्तार हो चुका था। इसमें नये प्रकार की प्राप्ति हुई; यथा स्वीडेन और पोलैण्ड की प्राचीन आबाद भूमि, जो पहले यूरोपीय राज्य में थे। वहाँ के शासन के रिवाज तथा पद्धतियाँ रूस से भिन्न थीं। धर्म भी भिन्न था (मार्टिन लूथर के अनुयायी या कैथोलिक)। इनकी उच्च वर्ग की संस्कृति रूस से ऊँची थी और आबादी अधिकतर गैर-रूसी (यथा : बाल्टिक प्रदेश, सन् 1721 ई०; विभाजित पोलैण्ड देश, सन् 1772,1793,1795 ई०; फिनलैण्ड, सन् 1721,1743,1809 ई० और पोलैण्ड-महासंघ, सन् 1815 ई०)। अब भारी प्रश्न उठा कि इन नये प्राप्त देशों का शासन रूस के ढांचे पर हो या उन्हीं की स्थानीय संस्था, विधि तथा रिवाजों के अनुसार।

महती कैथरीन ने एक नई नीति अपनाई, जो अदृश्य रूप में यथासम्भव सभी को रूसी बना ले। किन्तु, पाल और अलेक्जेण्डर ने इस नीति का पालन न तो पश्चिम में और न दक्षिण बेसरबिया (सन् 1812 ई०) और नजॉर्जिया(सन् 1801 ई०) में किया, यद्यपि पोलैण्ड का प्रश्न पेचीदा होता जाता था। सामान्यत:, स्थानीय स्वतन्त्रताओं का आदर किया जाता था या उन्हें पुनर्जीवन दिया जाता था। बाल्टिक प्रदेशों में जर्मन-रईस तथा नगर के सरदारों ने पीटर महान् तथा उसके निकटतम उत्तराधिकारियों द्वारा प्रदत्त प्राय: सभी विशेषधिकारों को पुन: प्राप्त कर लिया। अत:, उनकी अपनी संस्थाएँ, कानून, भाषा और धर्म सभी बने रहे और इसका फल यह हुआ कि वे प्रान्तों के शासन पर नियन्त्रण रखने लगे। फिनलैण्ड को स्वीडेन से सन् 1809 ई० में जात लिया गया और इसे साम्राज्य से प्राय: पूर्णत: अलग एक ड्यूक का प्रदेश (Grand duchy) बना दिया गया, जो अपने संविधान, विधि और चुंगी-नियमों से शासित होता था। अलेक्जेण्डर के पोलैण्ड-राज्य की भी यही दशा पहले थी। यह सन् 1815 ई० का कांगरेस पोलैण्ड था।

एक शती के बाद, सन् 1905 ई० की क्रान्ति के समय परिस्थिति एकदम भिन्न थी। स्थानीय अधिकार या विशेपाधिकार तथा रिवाज या तो समाप्त कर

दिये गये या मिटा दिये गये या उनपर आघात किया गया। समरूपता तथा रूसी-करण-सूचक शब्द बन गये। रूसी भाषा अनिवार्य बनाई जा रही थी। निकोलस प्रथम के राज्य में पश्चिमी प्रदेशों में तथा पोलैण्ड-महासंघ में पोलैण्ड-विरोधी नीति के कारण समय ने पलटा खाया। सन् 1830 ई० के विद्रोह के बाद यह नीति तीव्र हो गई, जब पोलैण्ड के संविधान का अन्त कर दिया गया और सन् 1863 ई० के विद्रोह के बाद तो और भी तीव्र हो गई। जो ईसाई पोप को अपना सर्वप्रधान मानते थे, उनके तथा उक्रेनी राष्ट्रीय सांस्कृतिक आन्दोलन के विरुद्ध युद्ध छिड़ गया। अलेक्जेण्डर तृतीय (जन्म: सन् 1845 ई०; राज्यकाल: सन् 1881-94 ई०) के समय रूसी कानून, प्रशासन, पुलिस-पद्धति तथा रूढिवाद के विस्तार की नीति और आगे बढ़ी। बाल्टिक प्रदेशों में जर्मनों की स्थिति को खुल्लमखुला चुनौती दी जाने लगी। सन् 1899 ई० के क्रान्तिकाल में इसमें क्षणिक विघ्न हो गया। केन्द्रीय एकरूपता लाने का भारी फल यह हुआ कि सन् 1905 ई० और उससे भी बढ़कर सन् 1917 ई० में जारशाही के विरुद्ध लगाये जानेवाले आरोपों में रूसीपन ने अपना स्थान बना लिया। साम्राज्य के सभी गैर-रूसियों ने तथा रूसी उदार एवं क्रान्तिकारी सम्मति ने इसका समर्थन किया। किन्तु, 'महारूसी अतिराष्ट्रीयता' केवल जारशाही शासन की कृति न थी, जो सन् 1917 ई० में एक धक्के से नष्ट हो जाय। इनका मूल जनप्रिय था, भले ही वह नीरस या भ्रष्ट हो चुका था। क्रान्ति के बाद अनेक वर्षों तक यह विरासत ही संघ में रूसी जनता के पुनर्निर्माण में एक महती बाधा थी।

इस अध्याय में जारशाही की जिस विलक्षणता का अन्तिम निदेश किया गया है, वह है राष्ट्र-कार्य का क्षेत्र। राज्य सर्वशक्तिमान् है। इसी से अन्य सभी संस्थाओं का (गिरजाघर को छोड़कर) उदय होता है। सोलहवीं शती के बाद से गिरजाघर का भी जार से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था कि महान् पीटर बिना किसी हिंसात्मक संघर्ष के सरलता से साँचे में ढाल सका था। इसके बाद यह भी बहुत अंश तक शक्ति की दूसरी भुजा बन गया।

पीटर के पहले दो सौ वर्षों तक अनिवार्य राष्ट्रसेवा होने से राज्य का प्रभाव तथा हस्तक्षेप बहुत बढ़ गया था। परम्परा तथा रिवाज इसके जबरदस्त विरोधी रहे। फिर भी, जमीन्दारों के बन्धक दास, जिनकी संख्या देश में सबसे अधिक थी, राज्य का नियन्त्रण कम हो जाने के कारण स्वत: अपने स्वामियों के शासन में चले आ रहे थे। अगले अध्याय में यह स्पष्ट हो जायगा। सत्रहवीं शती में शासन के मुख्य कार्य केवल सुरक्षा, वैदेशिक मामला, न्याय, आन्तरिक शान्ति और सिक्के ही न थे, बल्कि उपनिवेशन, यातायात, बन्दियों को धन देकर छुटकारा दिलाना, विदेशी व्यापार तथा प्रमुख आन्तरिक व्यापार के साथ-साथ विविध लघु

कार्य भी थे। उत्पादन (विशेषकर सेना से सम्बद्ध) के नये स्रोतों की ओर राष्ट्र का ध्यान तेजी से, किन्तु ठहर-ठहरकर, जा रहा था। जार अलेक्सीस (जन्म : सन् 1629 ई० : राज्यकाल : सन् 1645–76 ई०) के पास विशाल सम्पत्ति थी। बुढ़ापे में राज्य में वही अकेला सबसे बड़ा उत्पादक तथा बड़ा व्यापारी था। जार के निजी और सार्वजनिक चरित्र में गड़बड़ी थी। इससे इस धारणा का उदय हुआ कि राज्य देश के आर्थिक जीवन का निदेशक है। पूरा साइबेरिया तथा सुदूर उत्तर प्राय: पूर्णरूपेण राज्य की भूमि में थे। अत:, इस भावना को और भी बल मिला। उसी शती में अनेक सरकारी एकाधिकार (यथा : रेशम, नमक, शराब, पोटाश) या तो बन्दोबस्त कर दिये गये या प्रत्यक्षत: राज्य द्वारा संचालित होते थे। इससे लोग उत्पादन तथा व्यापार के द्वारा राष्ट्र-नियन्त्रण के और भी अभ्यस्त हो गये।

महान् पीटर के समय राज्य का आर्थिक नियन्त्रण बढ़ गया, कुछ तो पहले से चली आनेवाली प्रथा के कारण और कुछ पाश्चात्य व्यवसायों से उसके सीधा सम्पर्क के कारण। इन सबका प्रधान उद्देश्य था उत्पादन की वृद्धि, जिससे पुन: संगठित विशाल सेना और एकदम नूतन नौवाहिनी की आवश्यकताओं की पूर्त्ति हो। 'खनन और व्यवसाय-कॉलेज' नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि राज्य-कार्य का क्षेत्र कितना विस्तीर्ण था। अधिकांश नूतन राष्ट्रीय राजकीय कारखाने एवं खानें शीघ्र ही निजी कम्पनियों को या व्यक्तियों को (कुछ काल के लिए सही) दे दी गईं। किन्तु, ये तथा अन्य विशालकाय कारोबार, जो अब रूस में पनप गये थे, खजाने के दान, सरकारी नियन्त्रण तथा सम्राज्ञियों और उनके चाटुकारों के झक पर निर्भर थे। यह पीटर की विशेषता है कि उसने उद्योग में धन लगा दिया, न केवल दान से, बल्कि बलात् भी। वह इसे राष्ट्रसेवा मानता था। उसने दासों से जबरदस्ती श्रम लेने का नया तरीका अपनाया, जिसमें सेना और नौवाहिनी के लिए हथियार बनें। राज्य और विशाल उद्योग का घनिष्ठ सम्बन्ध कभी विच्छिन्न न हुआ। यह सत्य है कि महती कैथरीन (जन्म सन् 1729 ई० : राज्यकाल सन् 1762–96 ई०) के समय राज्य-एकाधिकार तथा आर्थिक क्षेत्र में राज्य के प्रत्यक्ष कार्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। इसका प्रधान कारण था स्थानीय उद्योग और व्यापार में भूमिपतियों की बढ़ती हुई दिलचस्पी। किन्तु, उन्नीसवीं शती-भर उद्योग की प्राय: सभी प्रमुख शाखाएँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राष्ट्र से चिपकी रहीं।

महान् पीटर के समय यातायात तथा सार्वजनिक निर्माण-कार्यो को राज्य ने एकदम नये पैमाने पर विकसित किया : यथा नहर तथा सन्त पीटर्सबर्ग का निर्माण। बलात् श्रम भी उसी प्रकार बढ़ गया। सर्वप्रथम, राज्य ने सामान्य शिक्षा

प्रत्यक्षत: अपने हाथ में ली। यह एकदम छोटे पैमाने पर, बिलकुल उपयोगितावादी थी और बेढंगे शुरू हुई, किन्तु, प्रारम्भ में यह किसी वर्ग के आधार पर न थी और इसकी महत्ता अधिक थी; क्योंकि इसका सूत्रपात सम्राट् ने किया था। अभीतक शिक्षा अविकसित थी तथा इसे राष्ट्रीय कार्य नहीं माना जाता था। इसी प्रकार, उसी शिक्षा से सम्बद्ध क्षेत्र में रूस के समाचार-पत्र का उदय भी पीटर के ही कार्य से हुआ। कैथरीन के काल में नियत अवधि पर निकलनेवाली पत्रिकाओं का विकास हुआ। इसका प्रभाव कभी कम न हुआ। अब राज्य शिक्षा का नियन्त्रण कड़ाई से करने लगा तथा गिरजाघर से मिल-जुलकर काम करता रहा।

यदि हम अलेक्जेण्डर प्रथम और महान् पीटर-कालीन रूस की तुलना करें, तो सिद्धान्त में राज्य के कार्य में कोई भी मौलिक परिवर्त्तन न मिलेगा। किन्तु, वे बृहत्तर पैमाने पर विभिन्न तरीके से किये जा रहे थे। शिक्षा के क्षेत्र में दूसरी ही भावना काम कर रही थी। जमीन्दारों के दासों को प्राय: प्रत्येक काम के लिए उसके स्वामी को सौंप दिया गया। इस दिशा में राज्य ने अपना नियन्त्रण एकदम त्याग दिया। सेंसर-व्यवस्था के क्षेत्र में राज्य-नियन्त्रण का रूप ही बदल गया।

मध्य सोलहवीं शती में पूर्व पोलैण्ड से छापाखाना मस्कोवी पहुँचा। किन्तु, यह अविकसित था और महान् पीटर के समय तक गिरजाघरों की पूर्ण सम्पत्ति बना रहा। अट्ठारहवीं शती के पूर्वार्द्ध तक केवल 918 पुस्तकें (गिरजाघरों की सेवा-पुस्तिकाओं को छोड़कर) रूस में छपी थीं। इसी के उत्तरार्द्ध में यह संख्या 8,595 पहुँच गई तथा विदेशों से पुस्तकों का आयात बेहद बढ़ गया। पहले आधुनिक रूप में पुस्तकों की रोकथाम (Censorship) की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। पहले धर्माधिकारी ही पुस्तकों पर रोक लगा देते या उन्हें जब्त कर लेते थे। किन्तु, फ्रांस की क्रान्ति तथा पुस्तकों के नये ढंग पर प्रकाशन और आयात से शीघ्र परिवर्त्तन की आवश्यकता हुई। अबसे गिरजाघर के साथ-साथ राज्य सभी पाठ्य-विषयों पर नियन्त्रण रखने लगा।

महती कैथरीन तथा पाल के काल में करीब 12 वर्ष (एक युग) तक अनियमित दमन चलता रहा। अलेक्जेण्डर प्रथम (सन् 1804 ई०) ने नियमित रूप से रोकथाम के लिए सेंसर-व्यवस्था का संगठन किया। अब सभी प्रकाशनों को चाहे रूसी हों या विदेशी, सेंसर से पास होने पर ही बिक्री के लिए भेजा जा सकता था। पहले तो यह पद्धति बहुत उदार भावना से काम करती थी, किन्तु निकोलस के काल में बहुत कड़ाई से इसके नियमों को लागू किया जाने लगा। सन् 1848 ई० की क्रान्ति के बाद एक प्रकार से सभी का मुख बन्द कर दिया गया। रूस के सामाजिक और राजनीतिक विचार एवं क्रिया-कलापों तथा साहित्य पर इसका गहरा प्रभाव

पड़ा, हालाँकि निकोलस (सन् 1825–55 ई०) के राज्यकाल में ही पुस्किन, लेरमोण्टोव तथा गोगल की महान् पुस्तकें प्रकाशित हुई ।

अलेक्जेण्डर द्वितीय के समय 10 वर्षों में (सन् 1856–67 ई०) महासुधार हुए । इससे सेंसर-व्यवस्था में कुछ ढीलापन आ गया । सन् 1865 ई० में रोकथाम करनेवाली सेंसर-व्यवस्था की जगह दण्ड देनेवाली सेंसर-व्यवस्था चली आई । रूसी पुस्तकों और सन्त पीटर्सबर्ग तथा मास्को के मुद्रणालयों पर अनेक रोकथाम लगीं, तथा जुरमाना, मुअत्तली, अपहरण तथा प्रकाशन के बाद अन्य उपाय किये गये । इन नये नियमों से सन् 1905 ई० की क्रान्ति तक सेंसर-व्यवस्था चलती रही । शीघ्र ही इन नियमों को और भी बदला गया, जिससे प्रेस की और भी क्षति हुई । सन् 1905 ई० के क्रान्तिकाल में कुछ समय के लिए तो ऐसा हुआ कि किसी प्रकार के नियम को लागू करना ही असम्भव हो गया । किन्तु, आगे चलकर उनमें सुधार हुआ और वे नियम लागू होने लगे ।

अलेक्जेण्डर द्वितीय के आरम्भिक वर्षों में किसी भी रूप में प्रेस की स्वतन्त्रता की माँग सबसे जबरदस्त रही, किन्तु उसके किसी भी सुधार से प्रेस को पूर्ण सन्तोष न हुआ । प्रेस निकोलस प्रथम के लिए प्लेग का अड्डा था । सन् 1865 ई० के बाद 40 वर्षों तक पुस्तकों और साहित्यिक तथा विद्वत्तापूर्ण पत्रिकाओं के प्रकाशन की एक तरह से स्वतन्त्रता थी, किन्तु विदेशी पुस्तकों को विवेकहीनता-पूर्वक दूर रखा जाता था । मार्क्स का 'कैपिटल' तो देश में लाने दिया गया, किन्तु, हॉब्स के 'लेवियाथान' का अनुवाद तथा स्पिनोजा के ग्रन्थों पर रोक थी । दोनों राजधानियों के प्रेस पर कड़ी निगरानी थी और प्रान्तों के प्रेस का मुँह बन्द कर दिया गया था । अब कोई भी सस्ता राजनीतिक प्रेस कानूनी तौर पर नहीं पनप सकता था ।

रोकथाम की मनमानी तथा संकीर्णता होने पर भी रूस में अब किसी-किसी तरह एक राजनीतिक प्रेस हो गया, जो अलेक्जेण्डर द्वितीय के पहले रूस में नहीं था । वैदेशिक मामलों में विभिन्न कारणों से वास्तव में यथेष्ट स्वतन्त्रता थी । सन् 1863 ई० में सर्वप्रथम रूस में प्रेस ने पोलैण्ड के विद्रोह के विरुद्ध आन्दोलन किया; क्योंकि फ्रांस और इंगलैण्ड इस विद्रोह में हस्तक्षेप करना चाहते थे । उग्र पत्रकार कतकोव इसका नेता था । इसी प्रकार सन् 1876–78 ई० में जब बालकन-प्रायद्वीप में और सन् 1886–87 ई० में बलगेरिया में संकट उत्पन्न हुआ, तब राष्ट्रीय प्रेस बौखला उठे । कतकोव का अलेक्जेण्डर तृतीय से बहुत घनिष्ठ तथा पारस्परिक सम्बन्ध था । अतः, आस्ट्रिया तथा जर्मनी के विरुद्ध सर्वत्र घृणा छा गई । यह कतकोव का ही प्रभाव था ।

रोकथाम के विभिन्न अधिकारियों में तथा विभिन्न मन्त्रालयों में परस्पर विद्वेष था, जिस कारण वाक्-स्वतन्त्रता का अस्तित्व अनिश्चित था। शीर्षस्थ लोगों में मतभेद के कारण इसका और भी गहरा प्रभाव पड़ा। राज्य, विचारधारा को रोकने या किसी प्रणाली में ढालने में असमर्थ तो था ही, इसके पास सुसंगत प्रचार-नीति का कोई ठोस साधन भी न था। विचारों का जारशाही नियन्त्रण मूलतः नकारात्मक था। इसका ध्येय था रोकथाम के द्वारा विचारों को रोकना। इसके पास विचार-प्रचार के साधन का अभाव था। किन्तु, सन् 1905 ई० की क्रान्ति के फलस्वरूप इस कमी को दूर करने का यथेष्ट प्रयत्न किया गया। किन्तु, यहाँ भी प्रतिक्रियावादी ढंग अपनाया गया : यथा 'कृष्णशत' या 'सेमिटक-विरोध'। यदि निकोलस द्वितीय (जन्म : सन् 1868 ई०; राज्यकाल : सन् 1894–1917 ई०) के रूस की अलेक्जेण्डर प्रथम के रूस से तुलना करें, तो राज्य के कार्य में कुछ भी मौलिक परिवर्त्तन दिखाई न देगा। किन्तु, उनका विस्तार बहुत बढ़ गया था तथा उनके साधन भी बहुत सुदृढ़ हो गये थे। शिक्षा के क्षेत्र को छोड़कर दासों की मुक्ति (सन् 1861 ई०) तथा उसी समय के औद्योगिक तथा वित्तीय क्रान्ति में यह विशेष रूप से दृष्टिगोचर होगा।

मुक्त होने पर, जो पहले दास थे, उनका राज्य से वैसा ही सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया, जैसा अन्य नागरिकों का। पहले ये दास प्रत्यक्ष कर तथा सेना में भरती को छोड़कर अधिकांश बातों के लिए अपने स्वामी के शासन में सौंप दिये जाते थे। अब किसानों की सभी विशाल समस्याओं ने, यथा दुर्भिक्ष की समस्या का समाधान, उपनिवेशन तथा कृषि-सुधार—नया चोंगा धारण किया और स्थानीय तथा केन्द्रीय प्रशासन के ये एक प्रमुख कर्त्तव्य बन गये।

आर्थिक क्रान्ति (सन् 1860 और 1914 ई०) के मध्य रूस का जो रूप बदल रहा था, उसका प्रभाव शासन के विस्तार और यन्त्र तथा जारशाही की शक्ति की नींवों पर पड़े बिना नहीं रह सकता था। केन्द्रीय शासन के कार्यों का विस्तार यातायात, उद्योग, वित्त, व्यापार तथा कुछ हद तक श्रम-दशा के नियमन में खूब हुआ।

रेलमार्ग (सन् 1860 ई० में 1000 मील, सन् 1914 ई० में 44,000 मील तथा 8,000 मील बन रहे थे), टेलिग्राफ (सन् 1851 ई० से) तथा टेलिफोन (सन् 1881 ई०) के विकास हो जाने से यातायात पर सदा से आनेवाला राज्य का प्रत्यक्ष नियन्त्रण बहुत अधिक बढ़ गया। बड़े-बड़े रेलमार्ग तथा टेलिग्राफ-पंक्तियों को राज्य चलाता था और राज्य ही उनका मालिक था। हाँ, पहले कुछ कम्पनियों को ठीका दे दिया गया था। जहाँ राज्य स्वयं इनका

निर्माण तथा संचालन नहीं करता, वहाँ भी इसका प्रचुर धन लगा था। मध्य एशिया में नया औपनिवेशिक साम्राज्य (सन् 1864–85 ई०) स्थापित हुआ तथा ट्रान्स-साइबेरिया-रेलवे (आरम्भ : सन् 1891 ई०) के बन जाने से साइबेरिया में साम्राज्य का बहुत विस्तार हो गया। सुदूरपूर्व में नया साम्राज्यवाद का विकास हुआ तथा जापान से (सन् 1904–5 ई०) युद्ध हुआ। अतः, राज्य का कार्य और भी बढ़ाना पड़ा। समस्त रेलमार्ग तथा एशिया में यातायात के दूसरे मार्ग राज्य के थे। राष्ट्रीय नीति का ध्यान रखते हुए उनका आयोजन हुआ था। मंचूरिया और फारस में रूस का आर्थिक विस्तार प्रधानतः शासन पर निर्भर था, विशेषकर वित्त-मन्त्रालय पर, जो रूसी-चीनी बैंक तथा रूसी-फारसी बैंक का निर्माता और संचालक था।

उद्योग सदा सन्त पीटर्सबर्ग की आशा लगाये रखते थे, जिसमें उन्हें सहायता (प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से), रियासत तथा चुंगीकर से राहत मिल सके। अनेक प्रमुख वर्दि्धष्णु उद्योगों से राष्ट्र का घनिष्ठ सम्बन्ध था; क्योंकि राष्ट्र ही उनका सबसे भारी उपभोक्ता भी था (यथा—सेना, नौवाहिनी, रेलमार्ग, आन्तरिक जलमार्ग, भवन-निर्माण)। पूँजी, तकनीकी, कच्चा माल तथा संचार का पारस्परिक सम्बन्ध सरकार द्वारा स्थापित होता था। उन्नीसवीं शती के अन्त में वित्त-मन्त्री वित्ते (सन् 1849–1915 ई०) था। यह बहुत उत्साही तथा निपुण था। प्रान्तीय रेलमार्ग में एक छोटे पद से इसने तरक्की की। यह महत्त्व की बात है कि वित्त के अलावा वह एक साथ ही परिवहन, व्यापार, उद्योग तथा (अधिकांशतः) श्रम का भी मन्त्री था।

रूस के आर्थिक विकास की प्रगति बहुत ही आश्चर्यजनक है। किन्तु, यह सदा नौकरशाही के फन्दे में बुरी तरह जकड़ा रहा, जैसे पहले भी था। परिस्थिति ही ऐसी थी कि किसी सुदृढ, स्वतन्त्र औद्योगिक और व्यापारिक वर्ग का विकास न हो सके। यह वर्ग राज्य का बहुत ऋणी है; किन्तु नौकरशाही तथा जारशाही की कमजोरियाँ इसे सदा खटकती रहीं। सदा से इसका जमीन्दारों के साथ चोली-दामन का सम्बन्ध चला आ रहा था, जिनकी शक्ति शीघ्रता से क्षीण होती जा रही थी। साथ ही, यह सैनिक भावना से ओतप्रोत था। अतः, यह आधुनिक पूँजीवाद के बन्धन में पड़कर काम करने में असमर्थ था। एक प्रमुख औद्योगिक पत्र ने सन् 1901 ई० में लिखा—यह ध्यान देने की बात है कि यूरोपीय उद्योग सर्वव्यापी निरक्षरता तथा अज्ञान के क्षेत्र में, जहाँ आर्थिक स्वतन्त्रता का पूर्ण अभाव हो, नहीं पनप सकता। यह सोचने की बात है कि

औद्योगिक विकास के पेचीदे और बारीक तन्त्रों का प्रशासन किसी एक केन्द्र (सन्त पीटर्सबर्ग) से नहीं हो सकता।

यदि पुराने विचारवाले ही इस प्रकार सरकार और प्रशासन की आलोचना करें, तो उदार तथा समाजवादी मत का कहना ही क्या। वे घोर विरोधी थे। सन् 1905 ई० की क्रान्ति ने केवल जारशाही की कार्य-प्रणाली को ही चुनौती न दी, बल्कि इसकी मौलिक भित्ति को भी। संसार के महान् देशों में रूस सचमुच एक महान् देश था। इसके लोगों की योग्यता महान् थी और इसके साधन भी महान् थे। किन्तु, इसकी योग्यता और साधनों को अवसर न मिला था और न उनका उपयोग ही किया गया था। चार शतियों में रूस राष्ट्र की बहुत उन्नति हुई। इसकी उपलब्धियाँ महती हैं। फिर भी, यह घूसखोरी, मनमौजीपन तथा नालायकी से बहुत कमजोर हो गया था। इसकी शक्ति, जो किसी भी राष्ट्र के लिए परमावश्यक है, नग्न खड़ी थी। बीसवीं शती में दुनिया की परिस्थिति ने माँग की कि शासन में आमूल परिवर्त्तन हो, भले ही राज्य-शक्ति में भारी कमी न की जाय। इस प्रकार के विशाल साम्राज्य में यदि किसी प्रकार गम्भीर और शीघ्र परिवर्त्तन हो, तो उससे यदि पूर्ण क्रान्ति न मच जाय, तो भयावह पेचीदापन और कर्कशता का आ जाना स्वाभाविक है। प्रथम विश्वयुद्ध की टक्कर अभी शेष थी। सन् 1905 ई० की क्रान्ति के समय वित्ते की कथित वाणी को न भूलना चाहिए। (भले ही जारशाही को सुरक्षित रखने के लिए ये वचन पर्याप्त न हों।)

"संसार को आश्चर्य होगा कि हमारे रूस में कोई शासन है भी। यह बात ही नहीं है कि हमारा शासन अधूरा है। यह अद्भुत बात है कि अनेक जातियों, अनेक भाषाओं तथा अधिकांशतः अशिक्षित राष्ट्र के होते हुए भी निरंकुशता से देश एक बना रहा। एक बात स्मरण रखें, यदि जार के शासन का पतन हुआ, तो आप देखेंगे कि रूस में खूब कुहराम मच जायगा और आप देखेंगे कि किसी भी दूसरी सरकार को सँभालने में अनेक वर्ष लग जायेंगे; क्योंकि रूस राष्ट्र में अनेक मिलावटें हैं।"

मूल पुस्तक की पृष्ठ-सं० 70 की पाद-टिप्पणी :

धर्मशास्त्र, अर्थात् पुराना और नया धर्म-नियम, भारत-लंका-बाइबिल-समिति, बँगलोर।

रोमियों के नाम पोलुस प्रेरित की पत्री :

अध्याय 13.

1. प्रत्येक व्यक्ति प्रधान अधिकारियों के अधीन रहे; क्योंकि कोई अधिकार ऐसा नहीं, जो परमेश्वर की ओर से न हो, और जो अधिकार हैं, वे परमेश्वर के ठहराये हुए हैं। 2. इससे

जो कोई अधिकार का विरोध करता है, वह परमेश्वर की विधि की अवहेलना करता है, और अवहेलना करनेवाले दण्ड पायेंगे। 3. क्योंकि प्रभु अच्छे कार्य के नहीं, किन्तु बुरे काम के लिए डर का कारण है, सो यदि तू प्रभु से निडर रहना चाहता है, तो अच्छा काम कर और उसकी ओर से तेरी प्रशंसा होगी। 4. क्योंकि वह तेरी भलाई के लिए परमेश्वर का सेवक है। परन्तु, यदि तू बुराई करे, तो डर; क्योंकि वह तलवार व्यर्थ लिये हुए नहीं है और परमेश्वर का सेवक है कि उसके क्रोध के अनुसार बुरे काम करनेवाले को दण्ड दे। 5. इसलिए अनवधान रहना न केवल इस क्रोध से, परन्तु डर से अवश्य है। अपितु विवेक भी यही गवाही देता है। 6. इसलिए कर भी दो; क्योंकि वे परमेश्वर के सेवक हैं, और सदा इसी काम में लगे रहते हैं। 7. अतः प्रत्येक का हक चुकाया करो, जिसे कर चाहिए, उसे कर दो; जिसे महसूल चाहिए, उसे महसूल दो; जिससे डरना चाहिए, उससे डरो; जिसका आदर करना चाहिए, उसका आदर करो। 8. आपस के प्रेम को छोड़ और किसी बात में किसी का ऋणी न बनो; क्योंकि जो दूसरे से प्रेम रखता है, उसीने व्यवस्था पूरी की है। 9. क्योंकि अव्यभिचार, अहिंसा, अस्तेय, अलोभ के सिवा और कोई भी आज्ञा हो, तो सबका सारांश इसीमें पाया जाता है कि अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रखे। 10. प्रेम पड़ोसी की कुछ बुराई नहीं करता, इसलिए प्रेम रखना व्यवस्था को पूरा करना है। 11. और, समय को पहचानकर ऐसा ही करो; क्योंकि अब तुम्हारे लिए नींद से जाग उठने की घड़ी आ पहुँची है; क्योंकि जिस समय हमने विश्वास किया था, उस समय के विचार से अब हमारा उद्धार निकट है। 12. रात बहुत बीत गई है और दिन निकलने पर है, इसलिए हम अन्धकार के कार्यों को त्याग कर ज्योति के हथियार बाँध लें। 13. जैसा दिन को सोहता है, वैसा ही हम सीधी चाल चलें, न कि लीला, क्रीडा और पियक्कड़पन, अव्यभिचार और लुचपन में, और न झगड़े और डाह में। 14. किन्तु प्रभु यीशु मसीह को पहिन लो, और शरीर की अभिलाषाओं को पूरा करने का उपाय न करो।

अध्याय 2.

पतरस (पीटर्स) की पहली पत्री :

1. इसलिए सब प्रकार का बैरभाव और छल, कपट, डाह और बदनामी दूर करके; 2. नये जनमे हुए बच्चों के समान निर्मल आत्मिक दुग्ध की लालसा करो, जिससे उसके द्वारा उद्धार पाने के लिए बढ़ते जाओ। 3. यदि तुमने प्रभु की कृपा का स्वाद चख लिया है। 4. उसके पास आकर, जिसे मनुष्यों ने तो निकम्मा ठहराया, परन्तु परमेश्वर के निकट चुना हुआ और बहुमूल्य जीवित पत्थर है। 5. तुम भी स्वयं जीवित पत्थरों के समान आत्मिक घर बनते जाते हो, जिससे याजकों का पवित्र समाज बनकर ऐसा आत्मिक बलिदान चढ़ाओ, जो यीशु मसीह के द्वारा परमेश्वर को ग्राह्य है। 6. इस कारण

पवित्र शास्त्र में भी आया है कि देखो, मैं सिय्योन में कोने के सिरे का चुना हुआ बहुमूल्य पत्थर धरता हूँ और जो कोई उसपर विश्वास करेगा, वह किसी प्रकार से लज्जित नहीं होगा। 7. सो तुम्हारे लिए, जो विश्वास करते हो, वह तो बहुमूल्य है, किन्तु जो विश्वास नहीं करते, उनके लिए जिस पत्थर को राजमिस्त्रियों ने निकम्मा ठहराया था, वही कोने का सिरा हो गया। 8. और ठेस लगने का पत्थर और ठोकर खाने की चट्टान हो गया है; क्योंकि वे तो बचन को न मानकर ठोकर खाते हैं और इसीके लिए वे ठहराये भी गये थे। 9. पर, तुम एक चुना हुआ वंश और राजपदधारी, योजकों का समाजपूत लोग, और देवपुत्र हो, इसलिए कि जिसने तुम्हें अन्धकार में से अपनी अद्भुत ज्योति में बुलाया है, उसके गुण प्रकट करो। 10. तुम पहले तो कुछ भी नहीं थे, पर अब परमेश्वर की प्रजा ! तुम पर दया नहीं हुई थी, पर अब तुम पर दया हुई है। 11. हे प्रियो। मैं तुमसे विनती करता हूँ कि तुम अपने-आप को परदेसी और यात्री समझकर उन सांसारिक अभिलाषाओं से, जो आत्मा से युद्ध करती हैं, बचे रहो। 12. अन्य जातियों में तुम्हारा आचरण अच्छा हो, इसलिए कि जिन-जिन बातों में वे तुम्हें कुकर्मी समझकर बदनाम करते हैं, वे तुम्हारे चले कामों को देखकर, उन्हीं के कारण कृपादृष्टि के दिन परमेश्वर की महिमा करें। 13. प्रभु के लिए मनुष्यों के ठहराये हुए प्रत्येक प्रबन्ध के अधीन में रहो। राजा के, इसलिए कि वह सब पर प्रधान है। 14. और हाकिमों के; क्योंकि वे कुकर्मियों को दण्ड देने और सुकर्मियों की प्रशंसा के लिए उसके भेजे हुए हैं। 15. क्योंकि परमेश्वर की इच्छा यह है कि तुम भले काम करने से निर्बुद्धि लोगों की अज्ञानता की बातों को बन्द कर दो। 16. और अपने-आपको स्वतन्त्र जानो, पर अपनी इस स्वतन्त्रता को बुराई के लिए आड़ न बनाओ, परन्तु अपने-आपको परमेश्वर का दास समझकर चलो। 17. सबका आदर करो, भाइयों से प्रेम रखो, परमेश्वर से डरो, राजा का सम्मान करो। 18. हे सेवको, हर प्रकार के आदर के साथ अपने स्वामियों के अधीन रहो। न केवल भलों और नर्मों के, पर कुटिलों के भी। 19. क्योंकि यदि कोई परमेश्वर का विचार करके अन्याय से दुःख उठाता हुआ क्लेश सहता है, तो यह शोभन है। 20. क्योंकि यदि तुमने अपराध करके घूसे खाये और धीरज धरा, तो इसमें क्या बड़प्पन है ? पर, यदि भला काम करके दुःख उठाते हो और धीरज धरते हो, तो यह परमेश्वर को भाता है। 21. और इसी के लिए बुलाये भी गये हो; क्योंकि मसीह भी तुम्हारे लिए दुःख उठाकर, तुम्हें एक आदेश दे गया है कि तुम भी उसके चिह्न पर चलो। 22. न तो उसने पाप किया और न उसके मुख से छल की कोई बात निकली। 23. वह गाली सुनकर गाली नहीं देता था और दुःख उठाकर किसी को भी धमकी नहीं देता था ,पर अपने-आपको सच्चे न्यायी के हाथ में सौंपता था। 24. वह आप ही हमारे पापों को अपनी देह पर लिये हुए क्रूस पर चढ़ गया, जिससे हम पापों के लिए मर करके धार्मिक जीवन बितायें। उसी के मार खाने से तुम चंगे हुए। 25. क्योंकि, तुम पहले भटकी भेड़ों के समान थे, पर अब अपने प्राणों के रखवाले और अध्यक्ष के पास पुनः आ गये हो।

तृतीय अध्याय

भूमि

1. कृषि में सोवियत-क्रान्ति :

रूस के समान ही सोवियत-संघ भी गत दशक तक प्रधानतः किसानों का देश रहा है। शतियों तक भूमि की प्रधानता रही, न कि नगर की। अतः, रूस अपेक्षाकृत पिछड़ा रहा। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में आर्थिक विकास की तेज गति के कारण आधुनिक विशाल उद्योगों का जमघट कुछ केन्द्रों में हुआ, जहाँ शहरों के दरिद्र लोग कुछ इने-गिने कुशल श्रमिकों के साथ मिलकर काम करने लगे। देहात और शहरों में कई बातों में आकाश-पाताल का अन्तर था। सन् 1897 ई० में नव वर्ष से अधिक उम्रवालों में $\frac{1}{5}$ से अधिक लोग देहातों में साक्षर न थे। वहाँ के लोग अज्ञान के अन्धकार में डूबे थे और ज्ञान-वधिर थे। किन्तु, सन् 1914 ई० में एक महान् परिवर्त्तन आ गया। विश्व-बाजार तथा पाश्चात्य विज्ञान और विचारों ने तख्ता पलट दिया, जिन्होंने बड़े नगरों तथा विशाल औद्योगिक और वित्तीय संस्थाओं को प्रभावित किया। शहर और देहात की खाई दूर होने लगी। देहात के लोग साक्षर भले न हों, किन्तु वे बहरे न थे। सन् 1905 ई० की क्रान्ति में 'लाल-मुरगे खूब बोलने लगे।' देहातों के महलों और खलिहानों में आग लग गई। किसी भी रूसी सरकार के लिए कृषक अब भी एक भारी समस्या थे। नवम्बर 1917 ई०, में बोलशेविकों ने जो पहला काम किया, वह था कृपकों की स्वतन्त्रता।

सन् 1914 ई० में देश की $\frac{4}{5}$ जनता खेती से निर्वाह करती थी। 12 साल के बाद अक्तूबर-क्रान्ति होने पर भी, यही अनुपात बना रहा। सन् 1926–38 ई० के युग में दूसरी (स्तालिन)-क्रान्ति हुई। इस काल में लगभग 2,40,00,000 लोग

देहातों से शहरों में चले आये और पहली बार देहातों की जनसंख्या बहुत घट गई। सन् 1939 ई० में प्राय: प्रत्येक तीन सोवियत नागरिकों में एक शहरी था। अधिकतर ये उन शहरों में रहते थे, जहाँ की आबादी 1 लाख से अधिक थी। अब देहातों में नव वर्ष की अवस्था से अधिकवालों में $\frac{3}{4}$ से अधिक लोग साक्षर थे। सभी कृषक सामूहिक कृषि करते थे और वे समस्त जनसंख्या के आधे से कुछ ही कम थे। ये चकित कर देनेवाले परिवर्तन किसी भी जाति के आधुनिक इतिहास में इतने बड़ पैमाने पर और इतनी तेजी से नहीं हुए हैं। ये फल हैं पंचवर्षीय योजनाओं तथा सामूहिक खेती के।

कृषकों की समस्या हल करने के लिए कृषि में सोवियत-क्रान्ति सर्वथा एक नूतन ढंग थी। शहर और देहातों में जो खाई थी, उसे दूर करने का यह नया विचार था। इसका उद्देश्य यह था कि भूमि को कारखाने के रूप में परिणत कर दिया जाय और किसान इन भूमि-कारखानों में काम करें। इस क्रान्ति का यह फल हुआ कि सन् 1940 ई० में कुल 2,40,000 ठोस सामूहिक फार्म संघ में हो गये। सन् 1928 ई० में किसानों के विभिन्न खेतों की संख्या 2,50,00,000 थी। ये खेत तितर-बितर थे। अब खेती की सब पैदावार इन फार्मों में होने लगी। सामूहिक फार्मों का आकार भी विभिन्न है। औसतन प्रत्येक सामूहिक फार्म (खेत) पर 70–80 घर और 1,200 एकड़ भूमि में अन्न पैदा किया जाता है। 7,50,00,000 व्यक्ति सघन गाँवों में रहते हैं। दस लाख से अधिक लोग प्रशासन तथा तकनीकी कार्य डटकर करते हैं। उनका काम है लेखा, पौधा-विज्ञान, भूमि-विज्ञान, पशु-चिकित्सा तथा अन्य प्रकार के विशिष्ट कामों में सहायता पहुँचाना। दूसरी ओर दस लाख के लगभग लोग टैक्टर-मशीन के कारखानों में काम करते हैं। यान्त्रिक कृषि की यही कुंजी है। जब छोटे-छोटे खेतों को सामूहिक खेतों में परिवर्तित कर दिया गया, तब सामूहिकीकरण का यही द्वितीय मुख्य अंग बन गया।

सन् 1914 ई० में मशीन का प्रयोग अपवाद था, हालाँकि इसका प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ रहा था। रूस के आधे हल अब भी पुराने जमाने के समान काठ के थे। खेतों में बोने का काम हाथ से होता था तथा हँसिया, दँतिया और मूसल से ही काम लिया जाता था। दक्षिण तथा साइबेरिया में और बड़ी-बड़ी जागीरों की बात दूसरी थी। सन् 1938 ई० तक करीब $\frac{3}{4}$ भूमि को ट्रैक्टर से जोता जाता था। फसलों को बोने और काटने का सम्भवत: आधा काम मशीन से होता था तथा खलिहानों में दवने का सारा काम मशीन से ही होता था। सचमुच यह ऐसी क्रान्ति थी, जिसे रूस के गाँवों में लोगों ने कभी सुना भी न था। अब

समस्त सामूहिक खेत पूर्णरूपेण मशीन तथा ट्रैक्टर के स्टेशनों पर निर्भर हो गये। इनका संगठन अलग ही ढंग से किया गया। ये स्टेशन भी अपना काम चलाने के लिए पेट्रोल पर निर्भर रहते हैं। इनका राजनीतिक महत्त्व भी बढ़ गया; क्योंकि इनके साथ राजनीतिक वर्ग लगाया गया था, जिनमें दल के चुने हुए व्यक्ति थे।

अब वृहत् पैमाने पर यान्त्रिक खेती होने लगी। उत्तरी प्रान्तों में जंगल के विपरीत खेती में इसका प्रयोग सीमित था और सम्भव है, इससे शीघ्र ही भूमि की उर्वरता समाप्त हो जाय। किन्तु, इससे तीन महान् लाभ हुए। 1. इससे काम बहुत शीघ्रता से होने लगा। ऊसर तथा अर्द्ध-ऊसर स्टेपी में शीघ्र बोआई का का काम समाप्त करना कठिन था। अब यह सरल हो गया। 2. अब बहुत बड़ क्षेत्र में खेती करना सम्भव हो गया। पूर्व दिशा की नई स्टेपी भूमि में सोवियत-उपनिवेशन के लिए यह आवश्यक भी था। 3. पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत निर्माण तथा औद्योगिक कार्यों के लिए असंख्य मजदूर खेती के कामों से छुटकारा पा गये।

सामूहिक कृषि का आधार एक प्रकार से प्राचीन रूसी सहकारी संस्था आरटेल (Artel) है। यह आरटेल अनेक स्थानीय उद्योगों में खूब प्रचलित था; यथा भवन-निर्माण, मत्स्य-व्यापार; किन्तु खेती में इसका प्रयोग नहीं के बराबर था। सामूहिक खेत में कार्यकर्ताओं के सदस्यों की संस्था का सरकारी नाम है 'आरटेल'। गांव के कम्यून या मीर से भी इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। मीर रूस की जन्मजात संस्था है और बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। सन् 1907 ई० में धड़ाधड़ तितर-बितर खेतों की चकबन्दी या फार्म बनाने का काम जारी था; किन्तु फार्मों के विकराल राक्षस रूप और सामूहिकीकरण से इस दिशा में क्रान्ति मच गई।

जिसमें यन्त्रों का प्रयोग वृहत् पैमाने पर होता है, वह है सामूहिक या समाजवादी फार्म, जिसे न तो बेच सकते हैं, न किराये पर दे सकते हैं और न इसका आकार छोटा कर सकते हैं। हाँ, इसका आकार बड़ा किया जा सकता है। यह देश की राष्ट्रीय सम्पत्ति है।किन्तु, इसे वहुमूल्य वयनामे द्वारा, 'आरटेल' का स्थायी वन्दोवस्त कर दिया गया है। वैयक्तिक रूप में लोग कुछ झोपड़ी, सीमित पशु (भारवाही पशुओं को छोड़कर), लघु औजार, बागीचा तथा अपना बाँट रख सकते हैं। अन्य सभी वस्तुएँ, 'आरटेल' की पूँजी के अंग हैं। वस्तुतः, कोई भी मजदूर भाड़े पर काम नहीं कर सकता।

क्या पैदा किया जाय, इसका निर्णय राष्ट्रीय योजना के अनुसार किया जाता है। पैदावार का मूल्य राज्य नियत करता है। विभिन्न प्रदेशों के लिए विभिन्न दर

निश्चित होती है। स्थानीय समितियाँ इस दर का पूरा विवरण निकालती हैं, किन्तु अन्ततः सामूहिक फार्म ही अन्तिम निर्णय करता है। इसका प्रबन्धक सभापति होता है, जिसके चुनाव का नियन्त्रण प्रायः साम्यवादी दल करता है। जो कुछ भी पैदा किया जाता है, उसपर सरकारी कर लगता है। यह कर कम दाम पर पैदावार के रूप में अनिवार्यतः वसूल किया जाता है। यह देय विशिष्ट संख्या होती है, न कि जो अन्न पैदा हुआ है, उसका नियत प्रतिशत। अब इस देय का लेखा कृषि-योग्य समस्त भूमि में हिसाब से होता है कि कितना प्रधान अन्न और पशु उस फार्म को देना पड़ेगा, न कि कितनी भूमि को बोने की योजना है और कुल पशुओं की संख्या कितनी है। दूसरी बात यह है कि पैदावार में से मशीन-ट्रैक्टर-स्टेशनों को तथा बीज, बीमा एवं सामाजिक अन्य मदों में भी देना पड़ता है।

अब पैदावार का जो कुछ भी अंश बच जाता है, उसका उपभोग करते हैं या बेचते हैं। बिक्री के लिए या तो राष्ट्र को ठीके पर दें या सहयोग-समितियों द्वारा बेचें या खुले बाजार में बेचें। अनिवार्य देय वस्तु के दाम से यह बहुत महँगी दर पर बिकता है। यह शेषांश आरटेल के सदस्यों में श्रमदान के आधार पर बाँटा जाता है। जितना श्रम जिसने किया है, उसी दर से उसे मिलेगा, किन्तु अन्ततः स्ताखनोवाइत-पद्धति का प्रयोग सब प्रकार से लालच देने के लिए किया जाता है। श्रमिकों को पारितोषिक (बोनस) दिया जाता है; क्योंकि उन्होंने योजना से अधिक काम किया है। इसका उद्देश्य है राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि तथा सामूहिक खेती की लक्ष्यप्राप्ति, जिसमें सभी सदस्य समृद्धिशाली हो जायँ और बोलशेविक बन जायँ।

क्रान्ति के प्रारम्भ से ही विभिन्न प्रकार के सामूहिक फार्म आरम्भ किये गये, किन्तु उनसे कुछ काम न बना। राष्ट्र के फार्मों में इस बात पर विशेष जोर दिया जाता था कि प्रबन्धकारिणी समिति बहुत बड़ी हो, उत्पादन के साधनों का समाजीकरण हो तथा फार्म के कार्यकर्ताओं का संगठन कारखानों के समान किया जाय। अन्ततः, यह असफल ही रहा; क्योंकि इनका आकार बहुत बड़ा था और कृषकों की मनोवृत्ति तथा मनुष्यों की वैयक्तिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति इससे न हो सकी। कालान्तर में इन शोध, परीक्षण तथा प्रशिक्षण की पूर्त्ति को फार्मों में आमूल परिवर्त्तित कर दिया गया अथवा इन्हें पशुशाला बना दिया गया और इसमें प्रायः बहुत सफलता मिली।

सन् 1928 ई० में पूर्ण सामूहिकीकरण की नीति अपनाई गई, किन्तु छह वर्षों तक अथक श्रम तथा नृशंसता से काम करने के बाद ही यह फल हो सका।

इसमें तकनीकी, प्रशासनिक तथा मनोवैज्ञानिक क्रान्ति हुई। सन् 1941 ई० से पहले कोई भी, विशेषतः मनोवैज्ञानिक क्रान्ति, पूर्ण सफल न हुई। किन्तु, निर्णायक फल मिल रहे थे।

जो किसान खुशहाल थे, उन्होंने डटकर तथा जी-जान से सामूहिकीकरण का विरोध किया; क्योंकि इससे कुलक-वर्ग का नाश हो जाता। मध्यम श्रेणी के लोगों ने तथा कुछ दरिद्र कृषकों ने भी कुछ काल तक इसका खूब विरोध किया। सामूहिकीकरण की प्रगति इतनी तेजी से हुई कि इसका प्रतिरोध होने लगा। यहांतक कि स्तालिन (सन् 1930 ई०) ने दल के उग्रवादियों को फटकारा कि सफलता से उनकी आँखें चौंधिया गई हैं। अतः, वे किसानों की वैयक्तिक सम्पत्ति छीनकर उन्हें जबरदस्ती और विना बूझ-समझ के सामूहिक कृषकों में परिणत करते जा रहे हैं। उक्रेण तथा उत्तरी काकेशश में प्रचण्ड विरोध और दमन हुए। लोगों को दण्डित करने के लिए अभियान किये गये तथा अनेक लोगों को निकाल बाहर कर दिया गया। ऐसी क्रान्ति में गड़बड़ी बढ़ जाने का कारण यह भी था कि केवल उन आवश्यकताओं को ही ध्यान में रखकर सामूहिकीकरण की योजना बनी थी। अन्य पैदावारों और पशुपालन में इसके प्रयोग की ओर ध्यान नहीं दिया गया था।

सन् 1932–33 ई० में महादुर्भिक्ष पड़ा (यह दुर्भिक्ष सन् 1921–22 ई० के समान अतिव्यापी न था)। अतः, कृषकों तथा खानाबदोशों ने खासकर कजाकों ने अपने पशुओं की पूर्णहत्या शुरू कर दी। इस विशाल क्षति के कारण सन् 1938 ई० तक भी घोड़ों की संख्या आधी तथा भेड़ों की संख्या दस वर्ष पहले की अपेक्षा दो-तिहाई थी। पशुपालन रूस की कृषि में एक दुर्बल अंग था। अब सोवियतों को इस कमी को पूरा करने के लिए घोर एवं सतत यत्न करना पड़ा। सिंचाई से विभिन्न प्रकार की खेती होने लगी। विभिन्न प्रकार की औद्योगिक फसलें तथा घास बोई जाने लगी। इससे खेती बढ़ी। फिरभी, रूस के तीन-चौथाई भाग में अब भी खाद्यान्न की पैदावार ही प्रधान रही।

द्वितीय क्रान्ति (सन् 1928–34 ई०) के वर्षों में भोजन-सामग्री पुनः परिमाण से बँटने लगी। राशनिंग शुरू हुई। इसी समय नूतन औद्योगिक योजनाओं को भी लागू किया गया और इधर थी भूमि पर क्रान्ति। यह रूस के लिए लोहकाल था। सन् 1935 ई० तक प्रायः शान्ति स्थापित हो गई। सामूहिक फार्मों में किसानों को आश्वासन दिया गया कि वे पशुओं को अपनी निजी सम्पत्ति के रूप में रख सकते हैं

और अपने छोटे खेत पर वैयक्तिक उत्पादन का उन्हें काफी मौका मिल सकता है; किन्तु उन्हें सामूहिक फार्म पर काम करना ही होगा। सन् 1939 ई० में इन सुविधाओं को बहुत सीमित कर दिया गया, जब सामूहिकीकरण कसकर शुरू हुआ।

द्वितीय क्रान्ति के कारण हैं कुछ आर्थिक तथा राजनीतिक। जब सन् 1917 ई० में क्रान्ति हुई, तब देहातों में किसानों ने अमीरों की भूमि हड़प ली तथा खेतों को पुन: बाँटने की और टुकड़े-टुकड़े करने की होड़ लग गई। जिन खेतों की चकबन्दी पहले हो चुकी थी, उन्हें कम्यून में ले लिया गया। दस वर्ष बाद सन् 1928 ई० में 2,50,00,000 के लगभग खेत हो गये, यद्यपि पहले स्यात् 1,60, 00,000 ही खेत थे। इनमें कुछ तो चकबन्दी में थे और कुछ खुले मैदानों में छिटपुट टुकड़े, जो शतियों से चले आ रहे थे। किसानों को अन्तत: खेत मिल गये, किन्तु इसके लिए उन्हें गृहयुद्ध की पीड़ा सहनी पड़ी और इसके लिए उन्हें भी उतना ही कष्ट झेलना पड़ा, जितना नगरवासियों को। अन्तत:, ऐसा दुर्भिक्ष हुआ और सन् 1921-22 ई० में ऐसा रोग फैला कि इस संकट को टालने के लिए पाश्चात्य देशों से अन्तरराष्ट्रीय सहायता की आवश्यकता पड़ गई। सन् 1914 ई० के पूर्व भी दुर्भिक्षों में निजी तौर पर छोटे पैमाने पर सहायता मिलती थी।

अब किसानों को बहुत प्रमुख सुविधाएँ दी गईं। युद्धकालीन साम्यवाद का, जिसमें बलात् अपहरण होता था, अन्त हो गया। पैदावार पर एक संगठित कर लगा। वह पहले अन्न के रूप में, पुन: रुपये के रूप में वसूल किया जाने लगा। लेनिन ने सन् 1921 ई० में नई आर्थिक नीति (New Economic Policy) अपनाई। यह नीति थी राज्य-पूँजीवाद की। यहाँ वृहत्काय राज्य उद्योग तथा यातायात का लघुकाय निजी उद्योग, निजी व्यापार तथा लघुकाय कृषकों की खेती की मिश्र पद्धति थी। इसमें बहुत सफलता मिली। यहाँतक कि सन् 1927 ई० में कृषि की विभिन्न शाखाओं में जितनी पैदावार सन् 1914 ई० के पूर्व होती थी, उतनी ही होने लगी और कहीं-कहीं बढ़ भी गई। किन्तु, शहर और देहातों में तफरका बहुत तीव्र हो गया था। पहले (सन् 1924-25 ई० में) आशा की जाती थी, कि सहयोग-समितियों द्वारा मध्यम तथा दरिद्र किसानों के सहयोग से देहातों में समाजवाद की स्थापना हो सकेगी। किन्तु, इस आशा पर भी पानी फिर गया। स्तालिन के शब्दों में, सामूहिकीकरण का सिद्धान्त कृषि में व्याप्त हो जायगा—पहले तो कृषि की पैदावार को बेचने में तथा कालान्तर में कृषि के उत्पादन में।

एक ओर वृहत्काय समाजीकृत उद्योग आगे बढ़ रहा था तो दूसरी ओर अधिक-से अधिक संख्या में किसान अपने खेतों को वृहत् फार्म के रूप में परिणत करते जा रहे थे;

क्योंकि सरकारी कानून बन गया था कि खेत को लगान पर दे सकते हैं और भाड़े के मजदूरों से काम ले सकते हैं। इससे किसानों ने लाभ उठाया। ये धनी किसान थे कुलक (यूरोपीय मानदण्ड से भले ही ये दरिद्र हों)। क्रान्ति से करीब 50 वर्ष पहले से ये उसी रूप में जाने जाते रहे थे। उनमें उत्साह तथा नपुण्य भले ही था, किन्तु उनके शत्रु भी बहुत थे। ये शत्रु गांव के सर्वहारा थे। सन् 1906 ई० के कृषि-सुधारों से इस कुलक-वर्ग को विशेष प्रोत्साहन मिला। सन् 1918 ई० के ग्रीष्म से बोलशेविकों ने दरिद्र कृषकों के सोवियतों के माध्यम से ग्रामों में इस श्रेणी के विरुद्ध युद्ध छेड़ रखा था। सन् 1921 ई० में यह आक्रमण बन्द कर दिया गया और नूतन आर्थिक नीति ने इसका स्थान लिया। सन् 1928 ई० में पुनः नये ढंग से आक्रमण शुरू हुआ और धुआंधार सामूहिकीकरण शुरू हुआ। इस संघर्ष में कुलक, मध्यम वर्ग तथा दरिद्र कृषकों के बीच जो कुछ अन्तर था, वह धीरे-धीरे गायब हो गया। अब कुलक-वर्ग क्रान्तिकारी राजनीति या वैयक्तिक कलह का महान् प्रश्न हो गया।

उपभोक्ताओं की सामग्री का भारी अभाव था तथा यह हीन श्रेणी की थी। औद्योगिक वस्तु तथा कृषिजन्य वस्तु के मूल्य में महान् अन्तर था (कैंची)। अतः, देहात शहरवालों को खाने को नहीं देना चाहता था। दोनों के मध्य राजनीतिक तथा आर्थिक दरार खतरनाक हो गई थी। गाँवों में साम्यवादी दल के अनुयायियों की संख्या बहुत कम थी, इस कारण खतरा और अधिक बढ़ गया। सन् 1927 ई० में, दल के सरकारी आँकड़े के अनुसार, जो अनाज देहातों से बाजार में शहरवालों के खाने के लिए आता था, वह सन् 1914 ई० के पूर्व आयात का केवल 37 प्रतिशत होता था, यद्यपि उसकी सपता में अनाज का उत्पादन 91 प्रतिशत पहुँच चुका था। इस संकट-परिस्थिति का दोष कुलकों के माथे मढ़ा गया; क्योंकि वे ही सबसे अधिक अन्न उपजाते थे। चाहे जैसे हो, यह आवश्यक हो गया कि कृषि का उत्पादन ठोस रूप में बढ़े और इसका वितरण नियन्त्रित हो।

यह तय हो गया कि लघुकाय किसानों की खेती से रूस का काम नहीं चल सकेगा, जैसाकि फ्रांस में, जो निम्न मध्यमवर्ग के सिद्धान्तों से ओतप्रोत था। फ्रांस को आदत पड़ गई थी कि सस्ते बाजार में खरीदो और महँगा बेचो। लोगों ने समझ लिया कि यदि किसानों के सामने इस प्रकार समर्पण कर दिया जाय, साम्यवादी दल का दिवाला ही निकल जायगा तथा सर्वहारा वर्ग की तानाशाही का पतन हो जायगा। ऐसा करने से समग्रवादी योजना असम्भव हो जायगी तथा महान् निर्माण की विशाल योजना चौपट। बिना इनके सुरक्षा तथा

उद्योग की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं सकेगी। कृति के लिए मशीन भी न मिलेगी। खेती की अधिक पैदावार बढ़ाने के लिए मशीन आवश्यक हैं। मशीनों के प्रयोग से अनेक मजदूरों को खेत से छुट्टी मिल जायगी और वे उद्योग में काम कर सकेंगे।

द्वितीय (स्तालिन) क्रान्ति की यही दस वर्ष की पृष्ठभूमि थी। इसके पहले सन् 1905 ई० में क्रान्ति हो चुकी थी, जिसके फलस्वरूप कृषि में सुधार हुए। सन् 1861 ई० में दासों को मुक्ति मिली। शतियों से किसान भूमि के लिए और भूमि से संघर्ष करते आ रहे थे। किसानों के अपने विचार थे, भावना थी और पक्षपात तथा अन्धविश्वास भी। शतियों से कम्यून और दासता चली आ रही थी। कहावत प्रसिद्ध थी--"शरीर का मालिक जार और आत्मा का मालिक भगवान् तथा पीठ जमीन्दार की।"

2. सन् 1905 ई० की क्रान्ति तथा दासों की मुक्ति :

सन् 1917 ई० के पहले 50 वर्षों में रूस से किसान धीरे-धीरे अनियमित रूप में स्वतन्त्र छोटे कृषक या कृषक बनते जा रहे थे। भूमि के लिए उनकी सतत बुभुक्षा अभी शान्त न हुई थी। दासता से परिवर्तन धीमा और पेचीदा था। आर्थिक और सामाजिक जीवन की प्रगति उस पद्धति की ओर थी जहाँ द्रव्य-व्यवस्था श्रम-संचालन तथा ठीकेदारी की स्वतन्त्रता थी। इसके पहले सामाजिक स्थिति का ही राज्य था। इस शती के प्रारम्भ में यह रूपान्तर कम्यूनों में अधिक न हो सका। यूरोपीय रूस में उस समय 1,20,000 कम्यून थे। सन् 1905 ई० के बाद भी कुछ कामों के लिए कृषकों की एक अलग श्रेणी ही थी। जार की अन्य प्रजाओं से विभिन्न ये अलग ही रियासतें थीं।

उनकी जीवनवृत्ति का स्तर बहुत निम्न था। इसी के लिए किसान अपने खेतों में उत्पादन करने में लगे रहते थे। इसके लिए उन्हें सामयिक मजदूर तथा गैरकृषि की सहायक आमदनी पर निर्भर रहना पड़ता था। उपभोक्ता-प्रदेशों में पहले की अपेक्षा यह निर्भरता और भी अधिक थी। दासकाल की पुरानी प्रथा जर्जर दशा में चली आ रही थी। पुरानी बेगार-प्रथा तद्रूप मनोवृत्ति के साथ चली आ रही थी। ये परिस्थितियाँ पहले के समान ही देश के विभिन्न भागों में विभिन्न थीं। साइबेरिया में कृषि में दासता का नाम भी नहीं सुना गया था। यह प्रथा कजाकों के देश में या दक्षिण के नये प्रदेश में न थी।

सन् 1916 ई० तक कृषि-योग्य भूमि का दो-तिहाई भाग किसानों के हाथ में था। किन्तु, इसका विभाजन बहुत असमान था। सन् 1905 ई० में कम्यूनों में किसानों के खेत की एक-तिहाई से अधिक भूमि घरवासी किसानों के दशम भाग के हाथ में थी और इन खेतों का क्षेत्रफल 50 एकड़ से अधिक प्रत्येक का था। कुलकों का यही मूल-बिन्दु था। कृषकों में विभेद-प्रक्रिया स्पष्ट थी। आगामी युग में (12 वर्ष) यह विभेद बढ़ता ही गया। सबसे बड़ी बात यह थी कि अब बहुत अधिक खानेवाले किसान हो गये थे। मुक्ति (सन् 1861 ई०) और क्रान्ति (सन् 1905 ई०) के मध्य किसानों की संख्या 5,00,00,000 से बढ़कर 7,80,00'000 हो गई। इसमें 60,00,000 किसान नहीं जोड़े गये हैं, जो नगरों में या भूमि से अन्यत्र काम करते थे। भूमि-भूख और शारीरिक भूख प्रायः सभी प्रदेशों में तीव्र थी।

सन् 1902 ई० में किसानों ने बलवा कर दिया। तब एक किसान कहता है—"छोटी पुस्तिकाओं (क्रान्तिकारी प्रचार-साहित्य) के विषय में कुछ भी अफवाह सुनने में नहीं आई। मै समझता हूँ कि यदि हमलोग सुखपूर्वक (खुशहाल) रहें, तो इस प्रकार की छोटी पुस्तिकाओं का महत्त्व नहीं रह जायगा, उनमें कुछ भी लिखा रहे। सबसे भयानक बात छोटी पुस्तिका नहीं है, किन्तु यह कि हमलोगों के पास खाने को कुछ भी नहीं है।" पाँच वर्षों के बाद एक किसान-प्रतिनिधि डूमा में गरजकर बोला—"हमसे बार-बार कहा जाता है कि सम्पत्ति पूत है, अभग्न है। मेरी सम्मति में यह सम्भवतः अभग्न हो ही नहीं सकती। कोई भी वस्तु अभग्न नहीं हो सकती, यदि जनता इस बात का प्रण कर ले। ......माननीय सभा के मान्यवर, क्या आप समझते हैं कि हमलोगों को ज्ञान नहीं है कि किस प्रकार आपने ताश के खेल में हमलोगों को दाँव पर लगा दिया और कुत्तों के मोल बेच दिया। हम जानते हैं कि आपलोगों के लिए क्या पूत और क्या अभग्न सम्पत्ति है।...... आपने हमलोगों की भूमि चुरा ली है।......जिन किसानों ने मुझे यहाँ भेजा है, उन्होंने यही कहा है कि भूमि हमलोगों की है। हमलोग यहाँ इसे खरीदने के लिए नहीं आये, किन्तु लेने के लिए आये हैं।"

दस वर्ष के बाद उनलोगों ने भूमि ले ली। इसी बीच प्रधान मन्त्री स्तेलिपीक ने शीघ्रता से भूमि-सुधार के उपायों को लागू करना चाहा। यह (सन् 1906 ई०) में निकोलस द्वितीय का प्रधान मन्त्री हुआ और सन् 1911 ई० में हत्या-पर्यन्त प्रधान-मन्त्री बना रहा। वित्ते के बाद यही महान् चरित्रबल का पुरुष था। यह बहुत प्रभुत्वशाली था। उसने सण्ड-मुसण्ड बलिष्ठों पर दाँव लगाया, न कि दीन-हीन और पियक्कड़ों पर। सन् 1905 और 1906 ई० में किसानों ने खुलकर विद्रोह

किया। सारे देश में हड़ताल मच गई। देहातों के घरों में आग लगा दी गई और उनके औजार स्वाहा हो गये। सेना ने क्रूरता से उनका दमन किया और इस हेतु विशेष सैनिक अदालत युद्धक्षेत्र में स्थापित किये गये। सुधार की नीति इसी के उत्तर में थी। सन् 1905 और 1908 ई० के बीच एक तरह से सारा साम्राज्य सैनिक शासन के सुपुर्द था। लगभग 3500 से 4500 व्यक्ति, केवल किसान हीं नहीं, मृत्यु के घाट उतारे गये। मास्को में तथा अन्य विद्रोह-स्थलों में तथा बाल्टीक-प्रदेशों में 'शान्ति' के लिए जो स्वर्ग भेजे गये, उनकी संख्या इससे अलग है।

देहातों में साम्प्रदायिक सभाओं को राजनीतिक सभा का रूप प्रायः दे दिया जाता था। इससे स्पष्ट है कि कम-से-कम कुछ किसानों में नूतन राजनीतिक जागृति उत्पन्न हो रही थी। सन् 1905 ई० में कृषक-संघ बना, जो प्रारम्भिक कृषक-दल था। प्रथम दो डूमा में किसानों के प्रतिनिधियों के रुख से भी यह एकदम स्पष्ट था। वॉल्गा में लोग कहते थे—"सरकार हम किसानों को चूस लेती है। यह दोष है रोमानव-राजाओं का। जार ने रूस को जापान के हाथ बेच दिया है। तीन सौ वर्षों तक रोमानव-राजाओं ने किसानों के लिए कुछ भी न किया और बड़े-बड़े ड्यूक कुछ नहीं करते। वे पीकर मस्त रहते है।......हमलोग के लिए किसी से आशा करना बेकार है। किन्तु, हमलोग जबरदस्ती सब छीन लेंगे। डूमा में उन किसानों का प्रतिनिधित्व बहुत जबरदस्त था। अधिकारियों ने जब इन किसानों को इस प्रकार का प्रतिनिधित्व दिया, तब उन्हें स्वप्न में भी आशा न थी कि यह काला' अज्ञात, विश्वस्त, सनातनी किसानों का समूह पलटा खायगा।

स्तोपिलीन ने द्वितीय डूमा को भंग कर दिया तथा किसानों की वोट और प्रतिनिधियों की संख्या एकदम घटा दी (सन् 1907 ई०)। किन्तु, शीघ्र ही पहले उसने अपने कृषि-सुधारों को राज्यादेश के द्वारा जारी किया था और उन्हें डूमा से पास नहीं करवाया।

सन् 1905 ई० के पहले से ही कम्यून से लाभ और हानि के विषय में घोर विवाद चल रहा था। स्तोलिपीन कम्यूनों का जबरदस्त विरोधी था। "साम्प्रदायिक सिद्धान्त का सहज उत्तर है वैयक्तिक मिलकियत। इससे शान्ति बनी रहेगी; क्योंकि लघुस्वामी ही वह बिन्दु है जिसपर राष्ट्र की सम्पूर्ण शान्ति निर्भर रहती है।" संक्षेपतः, सन् 1906 ई० में यही नीति थी और आगामी कृषि-सम्बन्धी कानून भी इसी आधार पर बने।

नूतन नीति का प्रथम लक्ष्य था कम्यूनों का नियन्त्रण भंग करना। इन कम्यूनों का कृषक-जीवन तथा कृषि-प्रणाली पर बहुत अधिकार था। इस नियन्त्रण को तोड़कर इनके वदले में छिटफुट खेत को टुकड़ियों की चकलावन्दी करनी थी। कुछ गाँवों में ये छोटे खेत वंश-परम्परा से चले आ रहे थे। किन्तु अधिकांश गाँवों में समय-समय पर इन खेतों को पुन: वाँटने की प्रथा थी और यह भूमि कम्यून के सदस्यों में बाँट दी जाती थी। इस दिशा में प्राय: लक्ष्य यही होता था कि यह भूमि पैतृक सम्पत्ति बन जाय।

नूतन नीति का दूसरा उद्देश्य था कि अमीरों से, राज्य से या गैर-कृषक भू-स्वामियों से जमीन खरीदकर या लगान पर लेकर उनसे अलग सुदृढ़ फार्म बनाये जायँ। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए कृषक-भूमि-बैंक की कार्यप्रणाली में सुधार किये गये। सरकार ने इस बैंक की स्थापना सन् 1883 ई० में की थी। किन्तु, व्याज की दर वहुत अधिक होने से वैयक्तिक किसानों को भूमि खरीदने में कुछ भी सहायता न मिल सकी थी। अत:, इस बैंक ने कुछ काम न किया। देहातों में उधार देनेवाली संस्थाओं को प्रोत्साहित किया गया। दक्षिण रूस में इससे आशातीत सफलता मिली। इसके अलावा साइबेरिया में, अन्यत्र या नगरों में जाने के लिए सुविधाएँ दी जाने लगीं; क्योंकि नियम बना दिया गया कि किसान कम्यून को सदा के लिए छोड़ सकते थे। साथ ही कम्यून को भंग करने के लिए एक ठोस पग बढ़ाया गया और कर वसूल करने का सामूहिक उत्तरदायित्व कम्यून पर से एकदम हटा दिया गया।

प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ जाने पर भी दस ही वर्ष में अपूर्व सफलता मिली। किन्तु, इतने अल्पकाल में केवल एक तुच्छ अल्पसंख्या को ही ठोस कृषक के रूप में परिणत किया जा सका। अभी तक कम्यूनों में काफी ताकत थी, जिसे इसके विरोधी सोच भी नहीं सकते थे। कुलक, स्वतन्त्र धनी किसानों, की संख्या वहुत बढ़ गई; क्योंकि इन्होंने अमीरों की भूमि खरीद ली या पट्टे पर ले ली और जो किसान कम्यून छोड़-कर चले जाते थे, उनकी भूमि ये सस्ती दर में खरीद लेते थे। सन् 1917 ई० में क्रान्ति के अवसर पर प्राय: 13,00,000 किसान गृहवासी थे। ये समस्त संख्या के प्राय: दशांश थे। इन्होंने नई चकवन्दी पर अधिकार जमा रखा था। साथ ही, और भी खेतों की चकवन्दी जोरों से चल रही थी। सन् 1905 और 1907 ई० में फसलें वहुत वरवाद हो गईं। कुछ क्षेत्रों में सन् 1906 ई० में दुर्भिक्ष पड़ा। इससे किसानों की क्रान्तिकारी भावना और भी जागरित हो गई। किन्तु, इसके बाद दस वर्षों तक अच्छी और खूव फसलें हुई, केवल सन् 1911 ई० में दुर्भिक्ष पड़ गया।

कृषि की विभिन्न शाखाओं में खूब उन्नति हुई। अधिक मशीन तथा अधिक कृत्रिम खाद का प्रयोग होने लगा। प्रति एकड़ अधिक उपज होती तथा सहयोग-समितियों की संख्या भी बढ़ने लगी। किन्तु उक्रेन, उत्तरी काकेशश तथा साइबेरिया में ही यह सुधार अधिक हुआ और इससे वैयक्तिक किसानों को तथा बड़ी रियासतों को अधिक लाभ हुआ, न कि उन्हें, जो अब भी कम्यून में थे। अधिकांश किसानों की भौतिक स्थिति अब भी दयनीय और हीन थी। इन किसानों की दशा की तुलना भारतवर्ष के किसानों से अच्छी तरह से की जा सकती है, न कि पश्चिमी यूरोप के किसानों से।

किसानों का एक दल यदि उठ रहा था, तो दूसरा दल किसी प्रकार दिन काट रहा था—गुजारा कर रहा था। इस दल की संख्या बहुत अधिक थी और वह डूब रहा था। अधिकांश ये अशिक्षित थे। सन् 1917 ई० तक यूरोपीय रूस के अधिकतर किसान अपने कम्यून के खुले छिटपुट खेतों में दिन काट रहे थे। यह भूमि इनके पास वंश-परम्परा से चली आ रही थी। लोगों के बाहर चले जाने से जन-संख्या का बोझ कम न हुआ। मध्यम वॉल्गा-प्रदेशों में तथा केन्द्रीय कृष्णभूमि में अब भी जनसंख्या का भार बहुत अधिक था; क्योंकि जीवन-यापन केवल भूमि पर ही निर्भर था। दुर्भिक्ष-सहायता-लेखा से पता चलता है कि सबसे अधिक सहायता (इमदाद) इन्हीं क्षेत्रों में दी गई और यहीं पर लोग ऋण से अधिक दबे थे। यहाँतक कि अमीरों की रियासत देखकर किसान कहते थे—'तुमने हमारी भूमि चुरा ली है।'

साम्राज्य के जिस भाग में रूसी थे, वहां के रईसों और अमीरों के पास सन् 1861 ई० की मुक्ति के समय जितनी भूमि थी, उससे ढाईगुना कम थी। उनकी कुछ रियासतें तो छोटी थीं और कुछ भारी बन्धेज पर रेहन रखी गई थीं। सन् 1907 ई० के पहले 30 वर्षों तक किसान जितनी जमीन खरीदते थे, उसकी अपेक्षा दस वर्षों में (सन् 1907-17 ई०) कृषकों ने खूब भूमि खरीदी। किन्तु, बड़ी-बड़ी रियासतों की कमी न थी। यह बात सत्य थी कि परिवार-सहित रईसों और अमीरों की कुल संख्या दस लाख से कुछ अधिक थी, फिर भी उनके पास अब भी 10,00,000 (दस लाख) एकड़ भूमि थी।[1] इसके विपरीत किसानों की संख्या

1. रूस के किसानों की समस्या के समाधान के लिए यह बात ध्यान देने योग्य है कि ग्रेटब्रिटेन में केवल 5,70,00,000 एकड़ भूमि है (सन् 1931 ई०)। वहाँ केवल 13,43,000 व्यक्ति ही कृषक माने जाते हैं, यद्यपि इसमें इनके परिवार शामिल नहीं हैं।

नेकासोव ने किसान और उनकी मुक्ति के विषय में एक काव्य लिखा है—'रूस में कौन सुखी और स्वतन्त्र है ?' (सन् 1873 ई०)।

उनसे पौगुना अधिक थी; किन्तु उनके पास रईस अमीरों की अपेक्षा चौगुने से अधिक भूमि न थी। अच्छा हो या बुरा, किसान समझते थे कि भूमि हमारी है और मुक्ति के फल से हमें वंचित रखा गया है।

अलेक्जेण्डर द्वितीय ने सन् 1861 ई० में दासों को जो मुक्त किया, वह उसका सबसे महान् सुधार है। इस सुधार ने रूस को आधुनिक राष्ट्र में परिणत करना शुरू कर दिया। इसका यह अर्थ हुआ कि रूस में आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक क्रान्ति का श्रीगणेश हो गया, विशेष कर उन ठोस रूसी क्षेत्रों में, जहां दासों का जमघट था।

मुक्ति के समय यूरोपीय रूस के छह करोड़ आबादी में लगभग 5 करोड़ लोग एक प्रकार से कृषक थे। ये गैर-रूसी उपान्त के बाहर थे। इनमें दो करोड़ से अधिक लोग रईसों, अमीरों तथा जमीन्दारों के दास थे। दो करोड़ से कम ही राज्य के कृषक थे। इनकी हालत बदलती रहती थी, किन्तु दासों से इनकी हालत मिलती-जुलती थी, यद्यपि निकोलस (सन् 1825–55 ई०) प्रथम ने विभिन्न उपायों से इनकी दशा काफी हद तक सुधार दी थी। शेष जनसंख्या थी विभिन्न प्रकार के दासों तथा स्वतन्त्र किसानों की। द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के लोगों की मुक्ति अलग से, प्रथम श्रेणी की अपेक्षा, बहुत ही अनुकूल शर्तों पर हुई। सबसे कठिन समस्या थी जमीन्दारों के दासों या बन्धकों की। ये जमीन से इतने न बंधे थे, जितने अपने स्वामी से।

इनके मुख्य बन्धन थे––नकद या फसल में स्वामी को मालगुजारी चुकाना, खेतों में या ठीकेदारी में प्रति सप्ताह नियत दिनों तक साधारणतया अपने ही पशुधन एवं औजारों की सहायता से काम करना, या दोनों प्रकार की सेवा उन्हें करनी पड़ती थी। इसके अतिरिक्त, उन्हें गाँव या कम्यून के सदस्य होने के नाते अपने छिटपुट खेतों में, खुले मैदान में भी हल जोतना पड़ता था। अधिकांश दास भूमिहीन गृह-चाकर थे। अधिकांशतः, इस श्रेणी की दशा बहुत ही दयनीय थी। इन्हें बिना भूमि दिये ही मुक्त कर दिया गया। मुक्ति-विधान ने दासों को स्वामी से मुक्त कर दिया, किन्तु कम्यून से नहीं। उन्हें भूमि मिली, किन्तु महँगी। अब वे वैधानिक रूप में कोई भी पेशा अख्तियार करने से वंचित न किये जा सकते थे।

भूमि की बन्दोबस्ती बहुत ही पेचीदी थी। रूस के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार से बन्दोबस्ती होती थी। इसे पूरा करने में 20 वर्ष लग गये। मोटे तौर पर इसका खाका यह था: जिस भूमि पर जमीन्दार स्वयं खेती करता था, वह उसके पास रह गई। अब भाड़े पर मजदूर रखकर वह उसकी जुताई-बुआई करा

सकता था। अब यथासम्भव भूतपूर्व दासों को काम में नहीं लगाया जाता था। ये दास अपनी झोपड़ियों तथा बागीचे की टुकड़ियों में बने रहे। कम्यून के परती मैदान भूतपूर्व दासों या राष्ट्रकृषकों को दिये गये। ये परती जमीनें पश्चिमी अर्थ में इनकी निजी वैयक्तिक सम्पत्ति न हुई। ये अब भी कम्यून में संगठित थे। यह सत्य है कि किसानों के लिए कम्यून से विलग होने का विधान था, किन्तु उसमें ऐसे पेचीदे प्रतिबन्ध थे कि अलग हो जाना प्राय: असम्भव हो जाता। अधिकतर उनके छोटे-छोटे खेतों की टुकड़ियाँ चकबन्दी में न थीं। वे छिटपुट ही बनी रहीं और उन्हें बार-बार पुन: बाँटा जाता था। केवल कुछ गाँवों में, जहाँ पैतृक परम्परा से प्रथा चली आ रही थी, खेत नहीं बाँटे जाते थे। यह नियम बना दिया गया कि जिस खेत को किसान पहले जोतता था, वह उसे ही दे दिया जाय। इस नियम का पालन भी बहुत हद तक हुआ, किन्तु जमीन्दारों के लिए जो चरागाह, घासस्थली एवं दारुवनों का प्रबन्ध किया गया, प्रधानतः उसके कारण किसानों के खेत तथा जीवन-यापन के अधिकार बहुत ही न्यून हो गये। केवल पश्चिमी और उत्तरी प्रान्तों में ऐसा न होकर विपरीत फल हुआ। केन्द्रीय कृष्णमृत्तिका एवं मध्य वॉल्गा-प्रान्तों में ठीक जहाँ भूमि पर सबसे अधिक बोझ था, वहीं मुक्ति का फल किसानों के हक में सबसे अनिष्टकर सिद्ध हुआ।

इसके साथ ही खेत का मूल्य भी चुकाना पड़ा––मुख्यत: राष्ट्र को 49 वर्षों में चुकाये जानेवाले वार्षिक दण्ड के रूप में। राष्ट्र ने बाजार-दर से बहुत मँहगे भाव में जमीन्दारों से भूमि खरीद ली थी। इसका फल हुआ कि मुक्ति का वार्षिक दण्ड बहुत कड़ा पड़ गया। इसके सिवा सन् 1886 ई० तक मार्ग-शुल्क देने की प्रथा चलती रही और इसके देने का सामूहिक भार कम्यून के ऊपर था।

जब किसान दास थे, तब वे कहते––"हम आपके हैं, किन्तु भूमि हमारी है।" अब वे अपने स्वामियों के दास न रहे, किन्तु भूमि अब भी उनकी न थी। उनकी भूमि होनी चाहिए, अधिकांश किसानों के लिए बातों की जड़ यही थी। मुक्ति होते ही सारे रूस में तहलका मच गया। कहीं-कहीं विद्रोह हो गया, किन्तु आग न भभकी। विचारपूर्वक देखा जाय, तो संकट शीघ्र ही दूर हो गया और नई व्यवस्था को लोग अत्यन्त कष्ट झेलकर भी अपनाने लगे। इस विशाल देश के विभिन्न भागों में इस नई व्यवस्था का रूप बदलता रहा, किन्तु सन् 1861 एवं 1905 ई० की क्रान्ति के मध्य इसकी वही रूपरेखा थी, जो यूरोपीय रूस की थी।

(क) दासता की प्रथा मिट जाने से श्रमिक-सेवा और वह भी पैदावार के रूप देने की प्रथा बहुत कम हो गई। इससे नकद रुपये देने की प्रथा तथा रुपये की व्यवस्था बढ़ी।

(ख) उपखण्डों में बँटे हुए परती खेतों को जोतने की प्रणाली का तकनीकी पिछड़ापन अधिकाधिक उग्र होता गया।

(ग) किसान तीन दलों में बाँटे जाने लगे। यथा धनी-कुल, मध्यम कृषक तथा ग्रामों की दरिद्र जनता, जिनके पास मामूली खेत था, कुछ पशु और औजार थे या नहीं के बराबर थे। वे प्रायः या हमेशा मजदूरी करके पेट पालते थे। यह आवश्यक न था कि वे खेत में ही काम करें। सन् 1905 ई० तक यह विभेद बहुत हद तक दूर हो सका, अंशतः कम्यून के असर के कारण।

(घ) केवल जमीन्दारों के दासों की ही मुक्ति नहीं हुई, बल्कि किसानों की भी मुक्ति हुई। इस मुक्ति का आधार था कम्यून (अमीरों) की तथा पारिवारिक गृह-व्यवस्था की रक्षा करना। प्राचीन काल से चली आ रही यह व्यवस्था अब भी कालजयी स्लाव 'संस्थान' समझी जाती रही और ऐसा समझा जाता था कि ये संस्थान ही पाश्चात्य व्यक्तिवाद की घातक प्रतियोगिता से किसानों की रक्षा कर सकेंगे। अबतक जमीन्दार राष्ट्र का नियन्त्रण करते थे—बेलिक और ग्राम-मुखिया की सहायता से। अब दासों की कृतज्ञता अधिकांशतः कम्यून के ऊपर ही न्यस्त हो गई। कम्यून की सामान्य सभा में प्रत्येक घर के प्रधान या चुने हुए वृद्धजन होते थे। कहीं-कहीं पर नये ढंग से स्थापित प्रशासन-ईकाई-कैण्टन में किसानों द्वारा कुछ चुने हुए अधिकारी भी होते थे। इन कैण्टनों में कई कम्यून शामिल कर दिये जाते थे। जो राष्ट्र कृषक बन जाते, उनका कम्यून बना रहता तथा उसे वैधानिक मान्यता भी मिलती थी।

कम्यून के मुख्य बन्धन थे– मुख्य करों तथा मुक्ति-हेतु वार्षिक चन्दा देने का सामूहिक उत्तरदायित्व, मुख्य करों तथा धरती को उचित भागों में बांटना, सामान्य पुलिस-सेवा तथा पारपत्रों या अभयपत्रों का अनुदान। सन् 1897 ई० तक इस पारपत्र की बिक्री होती थी। अब पारपत्र एक प्रकार से पहचान-कार्ड तथा श्रम-पुस्तिका का सम्मिश्रण था। पीटर महान् के काल से किसान तथा प्रायः सभी श्रेणियों के लोग अपने इलाके से बाहर बिना श्रम-पुस्तिका के वैधानिक रूप से नहीं जा सकते थे। कैण्टन की कचहरियों में किसान ही थे और वे कचहरियां किसानों की ही देखभाल करती थीं। वे साधारण दीवानी मुकदमों तथा सदाचार का निर्णय स्थानीय व्यवहार के आधार पर करती थीं। इनके सिवा वे कम्यून के असंख्य प्रश्नों का निबटारा करते थे, जैसा पहले से होता आ रहा था—जैसे भूमि से सम्बद्ध प्रश्न, खेती-बारी को पुनः बांटना तथा ग्राम की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्त्ति।

अतः, सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनों में इसका अर्थ था बहुत हद तक किसानों का स्वायत्त-शासन, कम-से-कम घर के प्रधान के लिए। सन् 1917 ई० में जब क्रान्ति

आरम्भ हुई, तब किसानों के कम्यून तथा कैण्टन-समितियों के ही द्वारा किसानों ने मामला अपने हाथों में लिया। इस स्वायत्त-शासन का दायरा बहुत संकुचित था, किन्तु यह बहुत ही घनिष्ठ तथा प्रमुख क्षेत्रों में काम करता था। इसका आधार प्रायः स्थानीय व्यवहार ही था। किन्तु, अनेक दुःखकर या अप्रिय विषयों से भी यह सम्बद्ध था। यथा : कर लगाना, बकाया, पारपत्र आदि। फिर, अलेक्जेण्डर तृतीय के काल में, सन् 1880 ई० में जो प्रतिक्रिया हुई, उससे कम्यून तथा कैण्टन दोनों की बहुत क्षति हुई, जब गृह-मन्त्रालय तथा पुलिस की शक्ति बढ़ा दी गई।

मुक्ति हो जाने पर भी अधिकारी लोग कृषकों के साथ एक अलग श्रेणी के रूप में ही व्यवहार करते रहे। प्रगतिशीलों तथा वामांथियों ने इस भावना की भर्त्सना की; क्योंकि इसी के कारण शहर और देहात के बीच, प्रबोधन-शक्तियों तथा अन्धकारग्रस्त, अनपढ़ कृषक-समुदाय के बीच खाई बढ़ती गई। इसी भावना के कारण रूस एक सूत्र में न बँध सका और विभिन्न श्रेणियों में बँटा रहा तथा उनमें सम्मेल न हो सका।

(ङ) उद्योगपतियों ने तथा अन्य व्यक्तियों ने, जिन्हें मजदूरों की आवश्यकता थी, मुक्ति का समर्थन किया; क्योंकि इससे श्रम-संचालन में सुविधा होती थी। सन् 1861 ई० का यह बहुत महत्त्वपूर्ण फल हुआ। बाढ़ की गति से लोग, कुछ सामयिक, कुछ स्थायी रूप में, खेतों को छोड़कर परिवहन, खनन तथा औद्योगिक संस्थानों में जाने लगे, जिससे रूस की आर्थिक व्यवस्था का सन्तुलन ही बदल गया। इस प्रकार, स्थायी रूप से लोगों के चले जाने में व्यय और पारपत्र-पद्धति की कठिनाई तथा कम्यून से नाता जुड़े रहने के कारण बहुत बाधा पहुँची। ये लोग दक्षिण या पूर्व की नूतन कृषिभूमि में भी पहुँचते थे। विशेषतः, कम्यून पर कर चुकाने का जो संयुक्त उत्तरदायित्व था, जो सन् 1906 ई० के पहले पूर्णरूप से न समाप्त हुआ, उसके कारण इनका गमन बाधित हुआ।

(च) किसानों की स्वाभाविक वृद्धि अधिक हुई। उनकी अपेक्षा कम ही लोग खेतों को छोड़कर बाहर गये। किसानों के हाथ में अधिक-से-अधिक खेत आने पर भी उनके संख्या-बहुल मूर्खों को सन्तोष न हो सका। नये खेत प्रायः उन्हें ही मिले, जो पहले से ही अपेक्षाकृत खुशहाल थे।

(छ) सन् 1900 ई० के लगभग किसानों की समस्या और भी तीव्र हो गई। जो उपजाऊ प्रदेश या रूस के अन्नागार कहलाते थे, वहाँ की हालत और भी खराब थी; क्योंकि जनसंख्या बढ़ती जा रही थी, खेती करने का तरीका बहुत घटिया था, सन् 1870 ई० और सन् 1880 ई० में गल्ले का भाव बहुत गिर गया और सन् 1891-92 में महादुर्भिक्ष पड़ा तथा सन् 1898 और 1909 ई० में स्थानीय महादुर्भिक्ष हुआ।

इस महादुर्भिक्ष की तुलना भारतवर्ष के उन भयंकर दुर्भिक्षों से की जा सकती है, जो सन् 1876-78 तथा 1899-1900 ई० में घटित हुआ। यद्यपि सन् 1880 ई० में लवण-कर तथा सन् 1886 ई० में मार्ग-कर उठा दिये गये, तथापि अन्य करों का वकाया बढ़ता ही गया। मुक्ति-हेतु वार्षिकी दो बार कम कर दी गई। फिर, तीन बार उसे टाल दिया गया और अंशतः काट दिया गया। अन्ततः, जब क्रान्ति का संघर्ष शुरू हुआ, तब वार्षिकी के इन सभी प्रकारों को लुप्त कर दिया गया और सब प्रकार से ये रद्द हो गये (सन् 1905 ई०)।

(ज) जबकि अनेक किसान क्रान्ति करने ही वाले थे, उनके भूतपूर्व स्वामी अधिकांशतः, अपने को आर्थिक या राजनीतिक रूप से पिछले 40 वर्षों के (सन् 1861—1905 ई०) परिवर्त्तनों के अनुकूल बनाने में असफल रहे। कुछ जमीन्दार सुधर रहे थे और सफल भी हुए, किन्तु बहुतेरे अमीर या तो ऋण से दबे थे या व्यावहारिक रूप से खेतों से उनका सम्बन्ध-विच्छेद हो चुका था। मुक्ति के पहले से ही अमीर कर्ज से बहुत लदे थे। मुक्ति के बाद उन्हें जो धन राष्ट्र से शीघ्र मिला, उसका अधिकांश पुराने कर्जों को चुकाने में समाप्त हो गया। अलेक्जेण्डर तृतीय के समय सरकार ने यत्न किया कि स्थानीय भूधर अमीरों को प्राश्रय दिया जाय, जिसमें वे राष्ट्रशक्ति के ठोस प्रचार का काम दें। राजनीतिक तथा प्रशासन-क्षेत्र में इन्हें क्षणिक सफलता मिली, किन्तु आर्थिक क्षेत्र में ये अमीर सफल न हो सके। अमीर लोग अधिक-से-अधिक अपने खेतों से हाथ धोते जा रहे थे। नगरों के मध्यम श्रेणी के लोग इन्हें खरीदते जाते थे। सन् 1885 ई० में, खास कर इन्हीं अमीरों को सहायता पहुँचाने के लिए नोवल्स लैण्ड बैंक (सज्जन भूमि-बैंक) खुला। केवल एक ही बात में यह बैंक खूब सफल हुआ। सन् 1904 ई० तक अमीरों की एक-तिहाई भूमि को इस बैंक ने बन्धक में ले लिया। अब आर्थिक शक्ति अधिक-से-अधिक स्पष्टरूपेण नूतन बैंक-महाजनों, औद्योगिक तथा व्यावसायिक व्यक्तियों के हाथ चली जा रही थी। यह पुराने जमीन्दारों की परम्पराओं तथा पद्धतियों के लिए एकदम अपरिचित था।

3. दास तथा दासस्वामी :

दासों को सन् 1861 ई० में मुक्ति मिल गई। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में गुलामी का अन्त इससे चार वर्ष बाद (सन् 1865 ई० में) हुआ। प्रशिया और और आस्ट्रिया में दास-प्रथा का अन्त इसके 12 वर्ष पहले (सन् 1849 ई०) हुआ था। फ्रांस में 72 वर्ष पहले (सन् 1789 ई०) इसका अन्त हो चुका था। क्रिमिया-युद्ध (सन् 1853–56 ई०) में रूस की करारी हार हुई। इसके पहले से ही निकोलस प्रथम ने सन् 1848 ई० के बाद शीतल प्रतिक्रिया आरम्भ कर दी थी, अतः अन्त

निकट पहुँच चुका था। संस्थाओं को पुनः नये साँचे में ढालने की आवश्यकता थी। इन संस्थाओं में सर्वप्रमुख थी--दास-प्रथा।

गत पच्चीस वर्षों में मानव-प्रेम की भावना बढ़ रही थी तथा अनेक दासस्वामी स्वयं ही दास-प्रथा की आर्थिक असुविधाओं पर घोर वाद-विवाद कर रहे थे। इधर उदीयमान व्यावसायिक तथा औद्योगिक पूँजीवादी उत्सुक थे कि किसी प्रकार दासता तथा वर्ग-पद्धति के बन्धन दूर हों। निकोलस प्रथम (सन् 1825--55 ई०) के राज्य-काल में कारखानों में, खास कर सूती उद्योगों में, स्वच्छन्द भाड़े के मजदूर काम करते थे और इसके कारखानों का उत्पादन बहुत बढ़ गया था, किन्तु जहाँ दास-मजदूर काम करते थे, वहाँ उत्पादन बहुत कम हो गया था। फिर भी, दासों की वैधानिक अयोग्यताएँ; यद्यपि निकोलस ने उन्हें मिटाने का यत्न किया, वृद्धिशील और बाधामय बनी रहीं। मजदूर बाजार में कम ही मिलते; क्योंकि अमीर और रईस अपने दासों के ऊपर नियन्त्रण रखते थे और उन्हें अन्यत्र काम करने को नहीं जाने दिया जाता था, साथ ही इन दासों के लिए वहाँ काम भी पूरा नहीं मिलता था।

सरकारी आँकड़े के अनुसार सन् 1851 ई० में दासस्वामियों की संख्या में 2,63,000 पुरुष थे। इनमें आपसी फूट बहुत थी। खासकर इस बात को लेकर कि इनके खेत उपभोक्ता-प्रान्तों में थे, या कृष्णमृत्तिका-प्रान्त में या नूतन रूस में। महारूस में आधे से अधिक दासस्वामी छोटे जमीन्दार थे, जिनमें प्रत्येक के पास दस से कम ही दास होते थे। बड़े जमीन्दारों की अपेक्षा इनका स्वार्थ और दृष्टिकोण एकदम विभिन्न था। बड़े जमीन्दारों के पास 100 से लेकर कई हजार पुरुष दास का काम करते थे और ४/५ दासों के स्वामी ये ही जमीन्दार थे। मुख्यतः निर्यात के लिए, गेहूँ की पैदावार दक्षिण तथा मध्य वॉल्गा में बहुत विस्तृत क्षेत्र में होने लगी। इससे लोग और अधिक तितर-बितर हो गये। खासकर यहाँ अधिकाधिक दासस्वामियों को सन्तोषजनक भाड़े के मजदूर दासों की अपेक्षा अधिक लगते थे। क्योंकि, दासों के पास तकनीकी योग्यता का अभाव था, जिसे तीव्रता के साथ महसूस किया जा रहा था। साथ ही, दास-प्रथा दिन-प्रतिदिन खतरनाक होती जा रही थी। सन् 1773–75 ई० में पुगाचोव के सामूहिक विद्रोह के बाद दासों का विद्रोह सुनने में न आया था, किन्तु दास-कृषकों का विप्लव खतरनाक ढंग से बढ़ता जा रहा था। निकोलस के राज्य के अन्तिम दस वर्षों में 400 दास-विप्लव हुए तथा बाद के 6 वर्षों (सन् 1855–60 ई०)में ही 400 विप्लव दासों ने किये। 20 वर्षों में (सन् 1835–54 ई०) 230 दासस्वामी या उनके बराहिल काट दिये गये। मुक्ति के पहले तीन वर्षों में और भी 53 काटे गये। परिस्थिति की प्रचण्डता और विपुल उग्रता सन् 1880 ई०

में आयरलैण्ड के सर्वाधिक अशान्त जिलों की अपेक्षा कहीं अधिक थी। अलेक्जेण्डर द्वितीय कहता था कि उसे ऊपर से मुक्ति तथा नीचे से क्रान्ति का सामना करना पड़ा। इसमें आश्चर्य नहीं!

पाश्चात्य देशों की अपेक्षा रूस में दास-प्रथा अधिक काल तक रही; क्योंकि इसकी आर्थिक हानियाँ पहले लाभ की अपेक्षा अधिक न थीं। उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध तक जनसंख्या इतनी न बढ़ी थी कि कृषकों के लिए पर्याप्त भूमि की कमी काफी तीव्र होती। मध्यम श्रेणी दासस्वामियों की अपेक्षा दुर्बल थी। मानव-प्रेमभावना तथा व्यक्ति की महत्त्वमूलक अन्य धारणाओं का विकास कम ही हुआ था। फ्रांस की क्रान्ति की भावना के विरुद्ध जो प्रतिरोध हुआ, उससे चिर-स्थायी संस्थाओं की आन्तरिक शक्ति को बल मिल गया था। अन्ततः, दास-प्रथा केवल दासस्वामियों के लिए ही आर्थिक आधार न थी, बल्कि रूस राष्ट्र का भी प्रधान आधार थी, जिसके द्वारा वह लाखों अनपढ़ों पर किसी तरह शासन करता था।

निकोलस प्रथम ने समझ लिया कि 'दासता रूसी जीवन का निश्चित कलंक है, किन्तु इनका स्पर्श करना और भी खतरनाक होगा।' उसने ऐसा इसलिए सोचा कि उसका मतसाम्य अपने पुलिस-प्रधान के साथ था, जिनके अनुसार 'जमीन्दार ही सम्राट् के सर्वाधिक विश्वसनीय स्तम्भ हैं, जो प्रभाव और देखरेख जमीन्दार अपने रियासत में सदा से रखते आये हैं, उसकी पूर्ति कोई सेना नहीं कर सकती। यदि वह शक्ति नष्ट हो जाय, तो लोग, हो सकता है, एक दिन जार के जीवन को भी खतरे में डाल दें। जमीन्दार ही सबसे अधिक विश्वासपात्र हैं। वे कुत्ते की नींद सोकर सतत राष्ट्र की रक्षा करते हैं। जमीन्दार स्वभाव से ही पुलिस-दण्डाधिकारी का काम करते हैं।'

खानदानी रईस और अमीर ही प्रायः दासस्वामी हो गये थे और इसका प्रभुत्व उस लम्बी परम्परा का परिणाम था, जो अट्ठारहवीं शती में प्रबलतम हुई। महरानी अन्ना के समय (सन् 1730 ई०) में इसका श्रीगणेश हुआ और महती कैथरीन ने इस नीति का पूर्ण समर्थन किया। जब उसने मैन्तेस्क्यू का सिद्धान्त अपनाया कि 'सरदार की इज्जत सम्राट् की इज्जत है' और सन् 1785 ई० के घोषणा-पत्र में इन जमीन्दारों को 'मध्य जमीन्दारों की रियासत' के रूप में मान लिया।

सन् 1731 ई० और सन् 1762 ई० के मध्य जमीन्दारों को ही दासों का मनौती-शुल्क देने का भार सौंपा गया। महान् पीटर ने इस शुल्क को लगाया था। यह

शुल्क सबको देना पड़ता था। केवल जमीन्दार और पादरी इससे बरी थे। महान् पीटर के द्वारा संगठित स्थायी सेना में दासों की भरती के लिए भी ये जमीन्दार उत्तरदायी थे। युद्ध हो या शान्ति, यह सेना राष्ट्र के लिए भारी बोझ साबित हो रही थी। पूरी शताब्दी-भर राज्य की आय का आधा इसमें खर्च होता रहा। इसके सिवा महती कैथरीन के समय स्थानीय न्याय और प्रशासन का नियन्त्रण भी इन लोगों को मिल गया। इसका फल यह हुआ कि ये अपने दासों के वैधानिक तथा आर्थिक स्वामी और उनके पुलिस तथा न्यायशासक भी हुए, अतः आवश्यकता पड़ने पर ये राष्ट्र की सेना की सहायता भी ले सकते थे।

दास-स्वामी साक्षात् कर नहीं देते थे, किन्तु इसके बदले पहले से वे जार की सेवा करते थे, मुख्यतः सैनिक सेवा। पीटर महान् ने इन दास-स्वामियों का पुनः संगठन किया था और भरसक यत्न किया था कि वे सेना, नौसेना या नागरिक प्रशासन में आजीवन राष्ट्र की सेवा करते रहें और उनको अनिवार्य शिक्षा मिले। जमीन्दारों ने इसका घोर प्रतिरोध किया। शिक्षा के विरोध में उन्हें उल्लेखनीय सफलता भी मिली। पीटर के बाद वे मनमानी करने लगे। सन् 1730 ई० से नौसेना रुचिकर न रही और इसमें सेवा करना अनिवार्य न रहा। सन् 1736 ई० में अनिवार्य सेवा की अवधि घटाकर 25 वर्ष कर दी गई, साथ ही विभिन्न प्रकार की छूट मिली तथा विशेषाधिकार भी मिले। सन् 1762 ई० में इन जमीन्दारों ने पीटर प्रथम पर मरणोत्तर विजय प्राप्त की। पीटर तृतीय से उन्होंने किसी प्रकार की सेवा करने का बन्धन समाप्त कर दिया।

इस घोषणा ने दासता की वैधानिक तर्क-संगति को दूर कर दिया। दास मथौती-शुल्क देकर तथा फौज में भरती होकर एवं अपने स्वामियों का समर्थन करके परोक्ष रूप से राष्ट्र की सेवा करते थे। जमीन्दारों को स्वयं सेना में और नागरिक सेवा में अफसर बनकर राष्ट्र की साक्षात् सेवा करनी पड़ती थी। जब जमीन्दार राष्ट्र की सेवा नहीं करेंगे, तब दास अपने स्वामी की सेवा क्यों करें ? ऐसा दासों ने सोचा एवं तर्क किया और उन्होंने विद्रोह किया। दूसरे घोषणा-पत्र द्वारा दास अपने स्वामी से स्वतन्त्र हो गये; क्योंकि जमीन्दारों ने विद्रोह का दमन किया था और उन्हें स्वतन्त्रता देने के कारण उनके 'छोटे पिता' की हत्या की थी। पीटर तृतीय गद्दी से उतार दिया गया और सन् 1762 ई० में राजमहल में षड्यन्त्र द्वारा उसकी हत्या कर दी गई। गद्दी पर से उतारने में उसकी पत्नी कैथरीन महती का हाथ था तथा उसकी हत्या इसी पत्नी के कटाक्ष से हुई। किन्तु, सच्ची मुक्ति के लिए किसानों को अभी और सौ वर्ष प्रतीक्षा करनी थी।

सन् 1762 ई० की घोषणा से सेना में या सरकारी सेवा में किसी प्रकार अधिकांश जमीन्दारों की जीवन-वृत्ति समाप्त न हुई। यह बहुधा लाभप्रद थी और इन सेवाओं में भरती होना बहुत अच्छा समझा जाता था। किन्तु, इस घोषणा से यह फल अवश्य हुआ कि सरकारी सेवा में उनका समय कम जाने लगा और अनेक ने तो इसमें जाना ही बन्द कर दिया। जमीन्दारी और नौकरशाही के मध्य आधुनिक विभेद का यह श्रीगणेश था। इसी काल से उच्च श्रेणी में वह आलोचनात्मक प्रवृत्ति आई, जो उन्नीसवीं शती में रूसी सांस्कृतिक जीवन का एक प्रधान अंग बन गई।

महती कैथरीन के समय से एक प्रान्तीय समाज का विकास हुआ, जैसा रूस में पहले कभी नहीं सुना गया था। इसी समय उसने सन् 1775 ई० और सन् 1785 ई० में सुधार भी किये। प्रायः यह समाज आरामकुरसी पर आनन्द लेनेवालों या ताश के खिलाड़ियों का था। ये आराम के साथ फ्रांसीसी उपन्यास पढ़ते थे। किन्तु, इस समाज के अच्छे प्रतिनिधि उच्च चरित्रवाले तथा सुसंस्कृत पुरुष थे। यह हमें नहीं भूल जाना चाहिए कि रूस की उच्च श्रेणी के दास-स्वामी ही कुछ सेवा में थे, कुछ दोनों राजधानियों में थे और कुछ देहातों की जागीर में थे। उन्नीसवीं शती में और किसी वर्ग की अपेक्षा इसी श्रेणी ने रूसी साहित्य के अतुलनीय प्रसारण में योगदान किया। इसने आश्चर्यजनक विविधतावाले दिग्गज व्यक्तियों को जन्म दिया, जिन्होंने अपनी विभिन्न विचारधाराओं और देन से रूस का नाम ऊँचा किया। यथा : पुश्किन, तुर्गेनेव, टॉलसटॉय, बुकनिन, हेरजेन तथा क्रोमोत्किन।

महती कैथरीन (जन्म: सन् 1729 ई०; राज्यकाल: सन् 1762–96 ई०) ने रूस में संस्कृति के मानदण्ड तथा लक्ष्य को बहुत प्रभावित किया। उसने उदात्त भावना का खूब प्रचार किया। शिक्षा को प्रोत्साहित किया और अन्त समय तक साहित्य और कला को प्रोत्साहन देती रही। किन्तु, उसके राज्य में दासों को जमीन्दारों के हाथ सौंप दिया गया। उसने जान-बूझकर विभिन्न वर्गों के सिद्धान्त को प्रोत्साहित किया। यथा : रईस और अमीर, वणिक् और नागरिक तथा किसान। इससे एक वर्ग दूसरे वर्ग से अपने को विभिन्न समझने लगा। विशेषतः, रईस और अमीरों का वर्ग अन्तिम दो वर्गों से दूर हो गया। रईस और अमीर को केवल अपनी रियासत घेरने की सुविधा न मिल सकी। उनके विशेषाधिकार बहुत सीमित कर दिये गये। दूसरी श्रेणी के लोगों द्वारा वैधानिक रूप से भूमि-अर्जन को भी वे नहीं रोक सके, यद्यपि वे अपने कारखानों और खानों के लिए नये दास नहीं ले सकते थे। किन्तु, इन्हें अपनी रियासतों, जंगलों और खनिजों पर पूर्ण प्रभुत्व मिल गया (सन्

1782 ई०)। महान् पीटर ने उनके ये अधिकार या तो छीन लिये थे या सीमित कर दिये थे।

किसानों की दशा सुधारने में महानता का श्रेय कैथरीन की अपेक्षा मेरिया थेरेसा को अधिक मिलना चाहिए। अपने पहले के पत्रों तथा पुस्तिकाओं में उल्लिखित सद्भावना को कार्यरूप में परिणत करने में जो उलझनें थी, उन्हें वह हमेशा महसूस करती थी। वह दासता के क्रूर बन्धन को असह्य समझकर मन मसोस-कर रह जाती थी। उराल-प्रदेशों में तथा मध्य वॉल्गा-भूमि में झुण्ड-के-झुण्ड किसानों ने विद्रोह कर दिया। इनका नेता था पुगचोव। यह एक भयावह अनुभूति थी। इस समय राजा और दास-स्वामी मिल गये। इसके पहले वे एक दूसरे के इतना समीप कभी न आये थे और उन्होंने मिलकर सामाजिक व्यवस्था के कठिन कार्य को सँभाला। शती का अन्त होते-होते दासत्व ने अपना अन्तिम रूप प्राप्त कर लिया, जो कानूनी तौर पर सन् 1861 ई० तक प्रायः अक्षुण्ण बना रहा।

विवेकशील अमीरों में कुछ स्वतन्त्र विचारक भी थे। रडिश्चेव उनका प्रथम मुख्य प्रतिनिधि कहा जा सकता है। उसने अपने 'सन्त पीटर्सबर्ग से मास्को की यात्रा' (सन् 1690 ई०)[1] में दासता का आम प्रभाव बहुत ही संयत शब्दों में चित्रित किया है। इसके लिए कैथरीन ने उसे साइबेरिया में निर्वासित कर दिया। उसने स्वयं डिडेरट को लिखे एक पत्र में दासता के सारांश को एक वाक्य में ही निहित कर दिया है : "जमीन्दार अपनी रियासत में जो भी अच्छा समझते हैं, करते हैं; केवल मृत्युदण्ड नहीं दे पाते; क्योंकि वह वर्जित है।" तब भी उन्हें कोड़ा मारने की लगभग पूर्ण स्वतन्त्रता थी, जिससे कभी-कभी मृत्यु हो जाती थी। यद्यपि दाण्डिक अपराधों के लिए दण्ड देने का काम कचहरियों को सुपुर्द था, तथापि दासों के अन्य झगड़ों का निबटारा साक्षात् या परोक्ष रूप से स्वामी ही कर देते थे और इसकी पुनः सुनवाई नहीं होती थी। सन् 1765 ई० के बाद जमीन्दार अपने दासों को कठिन श्रम के लिए साइबेरिया भेज सकते थे, यदि वे उद्दण्डतापूर्वक व्यवहार करते रहें। जमीन्दार ही निर्णय करते थे कि सेना में किसे भरती किया जाय। वहाँ उन्हें (दासों को) सन् 1847 ई० तक, 25 वर्षों की लम्बी सेवा करनी पड़ती तथा वे अपने दासों को रँगरूट के रूप में बेच भी सकते थे। सन् 1767 ई० में अपने स्वामी के प्रतिकूल किसी प्रकार की प्रार्थना (अपील) करने का हक (अधिकार) दास खो बैठे। अपील करने के इस अधिकार से उन्हें कुछ लाभ नहीं था तथा अपील करने पर उन्हें इसका बहुत बुरा फल भी भोगना पड़ता था, फिर भी इस हक के

1. इसका जर्मन-भाषा में अनुवाद हो चुका है। किन्तु, अँगरेजी में नहीं। (लिपिजिग, 1922)।

मिटने पर उन लोगों ने बहुत बुरा महसूस किया। विवाह करने के लिए स्वामी से आज्ञा लेनी पड़ती थी और साधारणतः कुछ धन भी किसी-न-किसी रूप में देना पड़ता था।

दास पृथ्वी से इस प्रकार जकड़े थे कि विना स्वामी की इच्छा (मरजी) के खेत या खलिहान रियासत को छोड़कर नहीं जा सकते थे। दूसरे प्रकार से यह भी कह सकते हैं कि जमीन से उनका कोई भी नाता न था; क्योंकि यदि मालिक चाहता था, तो उन्हें दूसरी रियासत में काम करने को भेज देता था, चाहे जैसे उनसे काम लेता था—घर पर, अस्तबल में, कार्यालय में, कारखाने में, खान में, बाँधों पर या नाचघर में, यदि उसके पास ये हों। यदि दास अपने स्वामी की सेवा रुपये या गल्ले के द्वारा करते थे, तो वे अत्यन्त इच्छित काम करने को अपेक्षाकृत स्वतन्त्र हो जाते थे। रुपये या गल्ले के रूप में सेवा देने की प्रथा उपभोक्ता-प्रान्तों में धीरे-धीरे बढ़ रही थी। ऐसे दास भाड़े पर दूसरे मालिकों की मजदूरी कर सकते थे, यदि वे अपना अंश तथा मथौती-शुल्क चुकाते जायँ। दूसरी ओर जहाँ दास मालिक के के खेतों में काम करके अपना बँधेज पूरा करते थे, वहाँ दासता का साक्षात् बोझ बहुत भारी था।

मालिक अपने दासों के साथ न केवल मनमाना व्यवहार कर सकते थे, बल्कि चाहने पर उन्हें, खेत या व्यक्ति के रूप में (अलेक्जेंडर प्रथम के काल तक) स्वामी दास को बेच भी सकता था। दासों को खुले आम नीलाम किया जाता था। जिस प्रकार होलस्तीन के बाजी के घोड़ों या पुस्तकों को बेचने के लिए विज्ञापन निकलता था, ठीक उसी प्रकार दासों की बिक्री के लिए भी विज्ञापन होता था। दासों को जूए में दाँव पर चढ़ा दिया जाता था। कर्ज के लिए बाजी लगा देना सम्मान समझा जाता था और इसे देना पड़ता था।

कैथरीन के समय प्रचलित दासता के मूल अवयव प्राचीन काल से चले आ रहे थे, किन्तु इसके काल में और इसके पुत्र पाल (सन् 1796–1801 ई०) के राज्य में दक्षिण में तथा उक्रेण मे दासता का खूब विस्तार हुआ और इसमें नियमबद्धता आई। उक्रेण में सन् 1798 ई० के बाद दासों का विना भूमि के विक्रय बन्द कर दिया गया। किन्तु, पहले जहाँ उन्हें अपने स्वामी के खेत पर प्रति सप्ताह दो दिन काम करना पड़ता था, अब तीन दिन काम करना पड़ा। दूसरी जगहों में तीन दिन काम करना प्रत्यक्षतः नियत कर दिया गया, जो वस्तुतः सर्वाधिक प्रचलित था। कभी-कभी तो उन्हें चार या पांच दिन काम करना होता था, विशेषतः छह दिन भी। सन् 1797 ई० से इस प्रकार का काम रविवार को रोक दिया गया। कैथरीन तथा पाल ने अपने

प्रियजनों को दास-सहित भूमिदान देने में पिछली सभी बाधाओं को तोड़ दिया। (34 वर्षों में 8,00,000 स्त्री-पुरुष दास तथा पाँच वर्षों में 4,30,000)। इसका यह अर्थ होता था कि नूतन दासों को वैयक्तिक स्वामियों के पास और भी कठिन काम करना पड़ता था। राज्य-कृषकों को तथा उनकी कचहरियों को वदल दिया जाता था। राज्य कृषक स्वयं एक प्रकार के दास थे। दासों के लिए तो एक प्रकार से मालिक का बदलैया था। दासों का धन हड़प लिया जाता था, चाहे उन्होंने अपना खेत पौलैण्ड में बनाया हो या अन्यत्र; किन्तु उक्रेण में ऐसा न होता था। महान् पीटर के समय से एक विशेष प्रकार के दासों का विकास हुआ जिससे नये खानों और कारखानों के लिए मजदूर मिल सकें। ये मजदूर खानों और फैक्टरियों से स्थायी रूप से सम्बद्ध हो गये। उराल-प्रदेशों में इनकी परिस्थिति बहुत ही कष्टदायक थी, अतः यदा-कदा विप्लव हुआ करते थे और अन्ततः पुगाचोव के नेतृत्व में आतंक मच गया।

दासता वंश-परम्परा से थी। इस दासता से बचने के दो ही उपाय थे—भाग जाना या उसका स्वामी उसे स्वतन्त्रतापूर्वक दान दे या बेच दे। दूसरी स्वतन्त्रता दुर्लभ थी। किन्तु, अलेक्जेण्डर प्रथम ने, जो अपने प्रारम्भिक वर्षों में उदार था और किसानों की स्थिति से बहुत प्रभावित हुआ था, सन् 1803 ई० में सभूमि दासों को स्वेच्छापूर्वक मुक्ति का वैधानिक यत्न किया। यद्यपि, मुक्ति की गति तेज रही, तथापि उसके राज्यकाल में (सन् 1801–25 ई०) में इस प्रकार 50,000 से अधिक दासों को मुक्ति न मिल सकी। किन्तु, दूसरी बातों में अलेक्जेण्डर के राज्य में दासता का बोझ सामान्यतः बढ़ गया, यद्यपि क्रूरता निकृष्ट कोटि की नहीं थी। बाल्टिक-प्रान्तों में एस्तोनिया और खेती के किसानों की जमीन मालिकों से वैयक्तिक मुक्ति (सन् 1816-19 ई०) के बावजूद वे आर्थिक रूप से दास बने रहे; क्योंकि अन्त में यह मुक्ति भूमिरहित निश्चित की गई थी।

देश के विभिन्न भागों में और विभिन्न स्वामियों की मातहती में विभिन्न परिस्थिति का होना स्वाभाविक था। किन्तु, पिछले पन्नों के वर्णन से यह न समझना चाहिए कि परिस्थिति एक समानतः अन्धकारमय थी। तत्कालीन व्यक्ति अत्यन्त नृशंस अभियोगों को घृण्य समझते थे और इसका दण्ड अभियुक्तों को भोगना पड़ता था। अनेक व्यक्तिगत दासों ने विभिन्न धन्धों में उन्नति हासिल की, कुछ तो प्राचीन पारिवारिक सेवकों की जाति के थे। पुश्किन की प्रिय उपचारिका, जिसे उसने अपने 'यूगेन ओनेगिन'[1] ग्रन्थ में अमर कर दिया है, इसी कोटि में आती है। दूसरे अनेक दास कम्यूनों में प्रतिष्ठित पद पर थे अथवा अपने स्वामी के कार्यों की

1. ओलिवर एल्टन ने (सन 1939 ई०) इसका उल्लेखनीय अँगरेजी-अनुवाद प्रस्तुत किया है।

देखभाल करते थे। कुछ विरले दासों ने महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त किये और ख्याति भी अर्जित की।

जिस दासता का वर्णन ऊपर किया गया है वह समस्त साम्राज्य के रूसी हृदय में व्याप्त थी; किन्तु साइबेरिया, सुदूर उत्तर या नूतन दक्षिण में ऐसा न था। मध्य वॉल्गा के तातार-फिनिश प्रदेशों में यह अंशतः लागू थी, किन्तु खानाबदोश लोग अपने रीति-रिवाजों और सामाजिक संगठन के अनुसार ही रहते रहे।

इस प्रकार, प्रायः आधे किसान बन्धक दास न थे। वे विभिन्न प्रकार के राज्य-कृषक कहे जा सकते थे। उन्हें मथौती-शुल्क तथा मालगुजारी देनी पड़ती और फौज में भी भरती होना पड़ता था। इन शुल्कों को वे नकद दे सकते थे या विभिन्न प्रकार की श्रमसेवा के रूप में। यथा : परिवहन, निर्माण और जंगल का काम। किन्तु, हर हालत में जमीन्दारों के बन्धक दासों की अपेक्षा इनकी हालत बहुत अच्छी थी, खासकर उन्नीसवीं शती में। फिर भी, इन सभी छूटों के बावजूद, यह सत्य ही रहा कि 'दासता', जैसा निकोलस प्रथम ने कहा है, "असन्दिग्ध रूप से रूसी जीवन का अभिशाप थी।" कहते हैं पुश्किन, जब वह 'मृतात्माएँ : रेडर्ड सोल्स' (सन् 1842 ई०) की पाण्डुलिपि पढ़ रहा था, बार-बार रटता रहा—"भगवन् ! हमारे रूस की दशा कैसी दयनीय है।" गोगल ने अपने इस महान् उपन्यास में दासों, उनके स्वामियों तथा प्रान्तीय अधिकारियों का जीवन चित्रित किया है।

4. दासता और कम्यून के मूल

दासता का जो आधुनिक रूप है, वह उसने सोलहवीं और सत्रहवीं शती में धारण किया। रिवाजों, निजी ठेका और विशेष दशाओं में सरकारी घोषणाओं ने मिलकर इसे यह रूप दिया और यह दासता जबरदस्ती लादी गई। यद्यपि यह रूसी समाज का मुख्य अंग बन गई, किन्तु न तो इसका कोई वैधानिक आधार था, न कोई संहिता या सम्मिश्रण-नियम, जहाँ स्वामी और दासों के हकों और वँधेजों का स्पष्टीकरण किया गया हो। उदाहरणार्थ, सन् 1649 ई० में जो तथाकथित संहिता नाम के लिए बनी, उसमें दासों की अवस्था को नियमबद्ध बनाने की चेष्टा ही न की गई। यह संहिता एक बहुत बड़ी चीज थी, किन्तु इसका नाम होने पर भी इसमें नियमों का गड़बड़ ढंग से संव्यूहन किया गया था। ये नियम प्रायः व्यवहार के थे, कुछ नये और कुछ पुराने। सामान्यतः इसकी प्रवृत्ति यह थी कि कृषक-परिवारों को भूमि साथ लगा दिया जाय। इसके लिए एक नया कानून भी बन गया था कि यदि भविष्य में कोई किसान भाग भी जाय, तो पकड़कर उसे पुनः वहाँ लाने के लिए कोई नियत अवधि न रहे, उसे (अवधि को) समाप्त कर दिया जाय। स्वामियों का

अपने दासों पर प्रभुत्व दिन-ब-दिन बढ़ता ही गया और इसे वैधानिक मान्यता मिल गई। इनकी रजिस्ट्री (निवन्धन) होने लगी और दासों की प्रथा की परम्परा चल पड़ी।

सीमा-सम्बन्धी प्रारम्भिक अध्याय में इस बात पर जोर दिया गया कि रूस के इतिहास में प्रचलित जनसंख्या और स्थानान्तरण का महत्त्व लगातार बना रहा। सन् 1550 और 1650 ई० के मध्य 100 वर्ष तक किसान खूब भागते रहे—कभी एक जमीन्दार से दूसरे जमीन्दार के पास; पर अवसर किसी भी जमीन्दार के यहाँ से और चाहे जहाँ। कुछ तो भागकर दूर नहीं जाते थे। कुछ जंगली प्रदेशों में भागकर अपना भाग्य आजमाते और कुछ भिखमंगों की संख्या बढ़ाते, जिससे शासन का काम ठप रह जाता और सरकार कभी-कभी भयभीत हो जाती। यह भी नई दासता की शर्त थी।

रूस देश के सामाजिक संगठन में दासता चिरकाल से एक आवश्यक अंग रही थी। किन्तु, इसका विस्तार न हुआ था और न उस रूप में ही यह ठोस हो सकी थी, जो रूप कालान्तर में हो गया। चौदहवीं और पन्द्रहवीं शती में मस्कोवी की तुलना इंगलैण्ड के नारमनों या प्लाटोगेनेटों की अपेक्षा एँग्लो सेक्सनों के साथ कई बातों में की जा सकती है। उनमें जो भी रियासती समानता हो, किन्तु 'विना स्वामी के भूमि नहीं' वाली बात सिद्धान्त में भी न थी। आवादी विरल तथा छिटपुट थी। परिवार ही मुख्य ईकाई था। बीजग्राम या विशाल खुले खेत (मैदान) अपवाद थे। किसान, शिकारी, जंगलोपजीवी, कलाप्रवीण कृषकों को कानून से और आर्थिक दृष्टि से कई श्रेणियों में बाँट दिया गया था। उनके विभिन्न हक तथा बँधेज थे। यथा : परतन्त्र दास से लेकर नवगोरोद के स्वतन्त्र काश्तकार तक। ये परतन्त्र दास पूर्ण तौर पर अपने स्वामी की सम्पत्ति थे तथा राज्य को किसी प्रकार का कर नहीं देते थे।

स्वतन्त्रता तथा परतन्त्रता की मध्य रेखा झिलमिल थी और वदलती रहती थी। किन्तु, स्वतन्त्र व्यक्ति की एक खास पहचान यह थी कि उसके सिर पर एक वोझ था—उसपर किसी रूप में राज्य को अपना भाग देने का बँधेज लदा हुआ था। 'कृष्ण-भूमि' की जातियाँ इसी प्रकार प्रत्यक्ष कर देती थीं। कालान्तर में जो 'कृष्ण खेतिहर' कहलाये, वे स्वतन्त्र, करद किसान थे। ये, जो मालगुजारी तहसीलने के लिए या प्रशासन सुविधा के लिए 20 या उससे अधिक झोपड़ों के कैण्टन में या गाँवों में प्रायः बाँट दिये गये थे। ये कैण्टन या गाँव कराधान अथवा सेवाओं के विस्तृत मूल्यांकन के लिए सामूहिक रूप से उत्तरदायी थे। शेष किसान पादरी या गृहस्थ जमीन्दारों के खेतों पर विभिन्न भाँति के ठेके की शर्तों पर खेती करके जीवन विताते थे और अनुशासित

व्यक्ति, मन्नीदास, दास, आरोपित दास, क्षणिक दास (आकस्मिक दास) या पूर्ण दास के रूप में रहते थे। ये अन्तिम दो वर्ग (दास और आरोपित दास) स्वतन्त्र न थे, किन्तु शेष इस अर्थ में स्वतन्त्र थे कि वे परोक्ष या साक्षात् रूप में राज्य को कर देते थे। महाराजकुमारों ने बड़े-बड़े जमीन्दारों को, खासकर मठों को, कर देने से विमुक्त कर दिया था और उनके ऊपर से प्रभुत्व हटा लिया था। अतः, खेतिहरों का राज्य से साक्षात् सम्बन्ध बहुत कुछ टूट चुका था। इसके सिवा विभिन्न पेशेवालों की एक श्रेणी अभी तक व्यवस्थित थी तथा क्षणिक मजदूरों और शिल्पियों का एक वर्ग था, जो प्रायः भूमिहीन थे और राज्य को कर नहीं देते थे।

लगभग सन् 1500 और 1700 ई० के मध्य महान् परिवर्त्तन हुए। इसकी अंशतः तुलना पश्चिमी यूरोप के सन् 1100 से 1300 ई० के बीच के विकास से की जा सकती है। इस परिवर्तन से विभिन्न श्रेणियों के प्राय आधे किसान जमीन्दारों के दास की श्रेणी में आ गये और बन्धक किसान हो गये। शेषार्द्ध का विकास राज्य-कृषकों के विभिन्न रूपों में हुआ, जो दासों से प्रायः मिलते-जुलते थे, एक प्रकार के दास ही थे। जमीन्दारों के दासों को भूमि से बाँधने का काम सर्वप्रथम मस्कोवी के मर्मस्थल के अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्र में हुआ —मुख्यतः ओका एवं वॉल्गा और नोवगोवर्ट की अन्तर्वेदी में अंशतः आर्थिक बोझ, खासकर ऋण के भार के कारण ऐसा हुआ होगा, किन्तु मुख्यतः रिवाज का प्रभाव होने के कारण और काश्तकारों एवं राज्य की आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए दास-प्रथा चल पड़ी। इसकी पृष्ठभूमि में बल-प्रयोग भी था।

महान् ईवन (सन् 1462–1500 ई०) के समय से राज्य की शक्ति और आवश्यकताएँ बहुत तेजी से बढ़ती गईं। राज्य की सैनिक आवश्यकताएँ सबसे अधिक बढ़ रही थीं। जैसा कि पहले ही उल्लेख हो चुका है। इसी समय एक-दूसरा महान् परिवर्तन भी हुआ, जो दासता-सम्बन्धी परिवर्तन के समानान्तर है। वह था राज्य का नया प्रत्ययन, जिसके अनुसार राज्य का प्रधान जार ही आवश्यक सेवाओं को नियमित करेगा और खेतों को जैसे चाहे बाँटेगा नये प्रकार के मध्यम और निम्नश्रेणी के सेवकों के लिए भूमिदान या जागीर बहुत कम उपयोग की थी; क्योंकि उन्हें जोतने-बोने के लिए लोग न मिले थे। उन्हें 'कृष्ण-भूमि' दे दी गई थी। उन जागीरों पर भी आबादी होना जरूरी था। जो कर देते हैं या किसी प्रकार की सेवा करते हैं, उनका लेखा होना चाहिए और किसी प्रकार उन्हें सहेजकर रखना चाहिए। इस हेतु पन्द्रहवीं शती के अन्त से खाताबन्दी के नाप-सर्वे का विकास हुआ था। इसका भी कुछ-कुछ प्रमाण

मिलता है कि किसानों का किस खेत से सम्बन्ध था। उन्हें कुछ खेत विशेषाधिकार में मिले थे। कुछ किसान काश्तकार के साथ सम्बद्ध कर दिये गये। कहीं-कहीं तो ऐसा प्रबन्ध किया गया, जिससे किसी भी कृष्ण कैण्टन को सरकारी देन में एक छदाम भी कम न होने पाये। इसलिए कोई भी किसान कैण्टन को छोड़कर तबतक बाहर नहीं जा सकता था, जबतक उसे अवेजी (बदले) में काम करनेवाला किसान न मिले। सोलहवीं और सत्रहवीं शती में खातावन्दी और वुझारत-वहियों का पूर्ण विवरण मिलता है, जिनके नाम उनमें दर्ज थे। वे 'प्राचीन वासी' कहलाने लगे, यद्यपि 'प्राचीन' की भावना अनिश्चित है और बदलती रहती है। ये 'प्राचीन वासी' दूसरों की अपेक्षा खुशहाल किसान थे और खेत से उनका वाता होना अधिक श्रेयस्कर था। धीरे-धीरे सन् 1550 और 1650 ई० के बीच, यह एक प्रकार से नियम हो गया और प्राचीन वासियों का हक खानदानी हो गया। उस समय तक पटवारी (लेखापाल), जो असंख्य रिपोर्ट (प्रतिवेदन), तहकीकात तथा बही-खाता तैयार करता था, जिन्हें सरकार माँगती थी, जनसाधारण की दृष्टि में भयानक हो चुका था। यदि पटवारी खेत कम लिख दे, तो इसका अर्थ है आफत, झंझट, बँधेज या जब्ती।

यह सौ वर्ष अधिकांशतः फूट एवं संक्षोभ का काल था। भयानक ईवन के राज्य के अन्तिम 20 वर्षों में युद्ध और खून-खराबियों का संघर्ष खूब चलता रहा। सत्रहवीं शती के प्रथम दो दशकों में भी खून-खराबी हुई। अतः, मस्कोवी का मर्मस्थल बहुत निर्जन हो गया। लोग गाँव छोड़कर चले गये। खेत उजाड़ हो गये। कर का वोझ वढ़ता ही जाता था। किसानों ने अपना प्रवन्ध स्वयं किया या सिफारिश करके अधिक शक्तिशाली और बड़े काश्तकारों की शरण में गये तथा उनसे आर्थिक सहायता ली। मजदूरों का अभाव दिन-पर-दिन वढ़ता जाता था। मजदूरों के स्वतन्त्र विचरण पर अधिक-से-अधिक प्रतिबन्ध लगते जाते थे, जिससे छोटे और मध्यम श्रेणी के किसानों एवं सेना में काम करनेवाले जागीरदारों का हित हो। ये जागीरवाले सेवक ही सेना के मेरुदण्ड थे। पोलैण्डवासियों को भगाने का अधिक श्रेय इन्हीं जागीर-सेवकों को है तथा इन्होंने ही रोमानव-वंश की स्थापना (सन् 1613 ई० में) की। अगले बारह वर्षों तक नई-नई जागीरों के रूप में ये इनाम पाते रहे।

अधिकतर स्वतन्त्र किसानों का परम्परा से अधिकार चला आ रहा था कि वे प्रति वर्ष अपने काश्तकार को साल समाप्त होने पर माइकेलमास (29 सितम्बर) के बरावर, छोड़ सकते थे, यदि वे अपना कुल देन अदाय कर चुके हों, इस अधिकार को कानून से भी सन् 1497 और 1550 ई० में मान्यता प्राप्त हो गई थी।

किन्तु, बाद में इस अधिकार को लोग चुनौती देने लगे। खासकर छोटे काश्त-कारों को इससे घाटा था; क्योंकि वे उन सुविधाओं को देने में असमर्थ थे, जो बड़े काश्तकार या मठाधीश देते थे। 'ओप्रिच्निना'-काल (सन् 1565–72 ई०) में महान् आर्थिक परिवर्त्तन तथा उथल-पुथल हुए। दशा दिन-ब-दिन बिगड़ती गई। सन् 1601–3 ई० में महादुर्भिक्ष पड़ा और प्लेग भी भयंकर रूप से हुआ। भगेड़ू किसानों को पुनः प्राप्त करने के पूर्ण अधिकार के लिए तहलका मचा कि धनी काश्तकार अन्य किसानों को आगे न अपना सकें तथा किसानों के लिए भागने का सारा अधिकार रद्द कर दिया जाय। लगभग सन् 1580 ई० से अनेक प्रकार के घोषणा-पत्र निकलने लगे कि कितने दिनों की अवधि तक भगेड़ू किसानों को पकड़ा जा सकता है तथा 'निषिद्ध वर्षों' की सूची भी बनी, जिनसे उनका भागना अस्थायी तौर पर रोक दिया गया। कहना कठिन है कि सन् 1607 ई० में जो घोषणा हुई, उसके अनुसार किसानों का पलायन-अधिकार सदा के लिए समाप्त हो गया या नहीं, किन्तु वस्तुतः सारे वर्ष बाधक वर्ष हो गये। आपत्काल (सन् 1604–13 ई०) के बाद इस अधिकार की बातें सुनने में नहीं आतीं। किन्तु, पलायन सामान्य हो गया था और जहाँ भी देखें, सुनने में आता कि किसान भाग गया। हम देख चुके हैं कि सत्रहवीं शती में भगेड़ू किसान एक महान् समस्या हो गये थे। सन् 1649 ई० में अन्ततः कानून बन गया, जिसके अनुसार भगेड़ू किसानों को पकड़कर लाने की सामान्यतः कोई नियत अवधि न रही।

किसानों की दासता को विस्तार और ठोस रूप देने की व्याख्या में अन्य जिस कारक से मदद मिलती है, वह है गुलामी का प्रभाव। रूस देश में गुलाम हमेशा से चले आ रहे थे, यद्यपि उनकी संख्या इतनी बड़ी न थी कि वे सामाजिक संगठन में प्रमुख स्थान पायें। उनसे अधिकतर घरेलू व्यवस्थापन तथा सैनिक कार्य लिये जाते थे, किन्तु सोलहवीं और सत्रहवीं शती में वे अधिकतर खेतों में भी काम करने लग गये। दरिद्रता और कुशासन के कारण मनुष्यों को क्षणिक गुलामी स्वीकार करनी पड़ी। स्वामी को अपने गुलामों पर अथाह अधिकार था और गैर-गुलाम किसानों पर इसका प्रभाव बिना पड़े न रह सका।

फिर भी, गुलाम 'कलंक' न थे। वे राज्य को कोई कर न देते थे। अतः, राज्य ने यथासम्भव यत्न किया कि गुलाम-वर्ग की संख्या न बढ़ने पाये। सन् 1680 ई० के बाद जिन गुलामों को स्वामी खेत देकर बसाता था, उन गुलामों पर कर लगा दिया, जिस प्रकार सन् 1631 ई० के बाद सरकार ने विभिन्न श्रेणी के भूमिहीन सामयिक मजदूरों तथा शिल्पियों पर अपने कर का जाल फैलाया था, उसी प्रकार सन् 1649 ई० में भी भयंकर परिवर्त्तन हुए। अब शहरों में जो स्वच्छन्द विचरते थे, अर्थात् जो कर

नहीं देते थे और अनुशासित किसान बनकर काम करते थे, उनके लिए एक तरह से व्यापार करने की तथा शिल्प-कार्य करने की सुविधा बन्द कर दी गई और शहर के करदाताओं में उनका भी नाम चढ़ गया।

खैर, राज्य के और काश्तकारों के स्वार्थ का जहाँ प्रश्न उठता, वहाँ मौलिक समानता थी। राज्य चाहता था कि कर देनेवाले स्थायी लोग हों तथा सेना और श्रम-सेवा जुटाने के लिए स्थायी व्यवस्थापक हों तथा काश्तकार चाहते थे आबाद (स्थायी) मजदूर। जिस प्रकार 'सेवक जनों' को राष्ट्र की अनिवार्य सेवा करनी पड़ती थी उसी प्रकार किसान भी कृषि की अनिवार्य सेवा करें। सेवक जनों को पहले अस्थायी जागीर मिलती थी, जो एक प्रकार से उनकी स्थायी हो जाती थी। राष्ट्र की आर्थिक नींव कृषि पर ही निर्भर है, अतः कृषि-सेवा भी अनिवार्य हो गई। सेवक जन केवल सेना और नौकरशाही में ही ही अफसर-वर्ग के न थे, अपितु कृषकों की विशाल कृषि-सेना में भी।

पहले किसान विभिन्न वर्गों में विभक्त थे। क्रमशः उनका रूपान्तर हुआ और मोटे तौर पर अब वे दो भागों में विभक्त थे—जमीन्दार काश्तकारों के बन्धक, गुलाम तथा राज्य-कृषक। महान् पीटर ने इस रूप को एक पग और आगे बढ़ाया। उसने सभी पुरुषों के लिए समान मथौती-शुल्क लगा दिया, केवल रईस, अमीर और पादरी यह शुल्क देने से वंचित रहे (सन् 1718 ई०)। यह आदेश शहर और देहात दोनों के लिए लागू था। इसके साथ ही कर लगाने की मर्दुमशुमारी भी तेजी से होने लगी कि कौन कर देता है और कौन नहीं। किन्तु, इसका प्रभाव देहातों पर ही अधिक महत्त्वपूर्ण हुआ। पीटर के पूर्वाधिकारियों ने जिस काम को आरम्भ किया था, उसे उसने और आगे बढ़ाया। पीटर ने गुलामों या अन्य विभिन्न श्रेणियों, जो अब भी किसी प्रकार का कर नहीं देते थे, और जो किसान कर देते थे, उनके बीच का विभेद मिटा दिया। वह सबको मथौती-शुल्क देनेवालों की श्रेणी में ले आया, चाहे वे बन्धक दास हों, राज्य-कृषक हों या निबन्धित नगरवासी हों।

मथौती-शुल्क का यह फल हुआ कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर-निर्धारण का पूरा सम्बन्ध ही उलट गया। पहले सामान्य प्रत्यक्ष कर कृषियोग्य भूमि पर पेचीदे रूप से हिसाब करके लगाई जाती थी तथा जीवन-निर्वाह के अन्य कुछ स्रोतों पर भी प्रत्यक्ष कर लगता था। सत्रहवीं शती में जब राज्य को और अधिक धन एकत्र करने की हाय-हाय पड़ी, तब वह धीरे-धीरे घर पीछे कर लगाने लगे। सन् 1681 ई० के बाद साक्षात् कर लगाने का यही सामान्य

तरीका बन गया। ठीक-ठीक किसको कितना कर देना पड़ेगा, इसका निर्णय पहले के समान ही कम्यून या जिले पर छोड़ दिया गया और वहाँ के स्थानीय लोग ही इसका निर्णय करते थे। सत्रहवीं शती में अनेक प्रकार प्रत्यक्ष करों, सामान्य और विशेष, दोनों की प्रथा बहुत अधिक बढ़ गई थी। पर, सन् 1680 ई० में सम्पूर्ण राजस्व की केवल $\frac{1}{3}$ आय प्रत्यक्ष कर से होती थी।

इसके विपरीत पीटर ने जो मथौती-शुल्क लगाया, उससे राजस्व के आधे से अधिक की आय हुई। यद्यपि इससे इसके एक उद्देश्य की पूर्ति एकदम न हो सकी। कोष का स्वाभाविक घाटा पूरा न हो सका। सन् 1886 ई० में मथौती-शुल्क का अन्त कर दिया गया। उस समय तक प्रत्यक्ष कर का मुख्य स्रोत यही बना रहा। किन्तु, अट्ठारहवीं शती से इसका महत्त्व धीरे-धीरे कम होने लगा; क्योंकि अप्रत्यक्ष कर द्वारा अधिक धन आने लगा और अब राज्यकोष में अप्रत्यक्ष कर ने अपना पूर्व स्थान ले लिया।

मथौती-शुल्क के अगले प्रधान परिणाम तीन प्रकार के थे—(क) पीटर ने मथौती-शुल्क अदा करने का सामान्य उत्तरदायित्व दास-स्वामियों के मत्थे ठोका। किन्तु, इसे उगाहने का भार पहले सेना को और फिर प्रान्तीय अधिकारियों को दिया। दोनों के लगभग समान भयंकर फल हुए। अन्ततः, सन् 1731 ई० में कानून बना दिया गया कि दास-स्वामी ही अपने दासों से मथौती-शुल्क वसूल करें। इसके उत्तरदायी वे ही होंगे। अब सरकारी अफसर अपेक्षाकृत कम छेड़छाड़ करते थे। इससे राज्य पहले की अपेक्षा दास-स्वामियों के अधिक निकट आ गया। इसका परिणाम यह हुआ कि दास-स्वामियों द्वारा दुर्दिनों में अपने किसानों को व्यावहारिक मदद देकर उन्हें बाँध रखने का आदेश दिया गया (सन् 1734 ई०), जिससे खेत परती न रहने पायें और राज्य के प्रमुख राजस्व-साधन को क्षति न पहुँचे। यह कानूनी बन्धन बना रहा, किन्तु अपने किसानों को एकदम निर्धन रखने से दास-स्वामियों की कहाँतक स्वार्थसिद्धि होगी; प्रधानतः इसी अनुपात में इसकी निपुणता बनी रही।

(ख) अट्ठारहवीं शती की यह विशेषता रही कि अधिकाधिक खेतों पर कृषि होने लगी। जनसंख्या की वृद्धि अंशतः इसका कारण हो सकता है, किन्तु अन्य भी अनेक कारण थे। मथौती-शुल्क का प्रभाव भी एक मुख्य कारण था। यद्यपि पहले के साक्षात्कार का बोझ किसानों पर उतना अधिक नहीं पड़ता था, जितना मथौती-शुल्क का पड़ा, फिर भी उन्हें एक नियत राशि ही देनी पड़ती थी, चाहे वे जितनी अधिक भूमि जोतें या जितना अधिक धन पैदा करें। इसमें सन्देह

नहीं कि उत्पादन और आन्तरिक व्यापार में बहुत तरक्की हो रही थी। सन् 1754 ई० में आन्तरिक चुंगी हटाने तथा सन् 1762 ई० में गल्ले के आन्तरिक व्यापार करने की छूट मिलने के कारण इनको और सुविधा मिली। समकालिक लेखकों के मत में इस वृद्धि का कारण था दासता अथवा यह कहा जाय कि दासता के बिना यह वृद्धि सम्भव न थी। खैर, इतना सत्य है कि ठीक एक ही दासता का विस्तार हुआ और उसकी गति तीव्र हुई तथा उत्पादन बढ़ा।

(ग) जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ी मथौती-शुल्क की पद्धति भी बढ़ती गई। कम्यून के विकास में यह बड़ा भारी कारण था; क्योंकि कृषि, आर्थिक मालगुजारी और प्रशासनिक इन सारी पद्धतियों पर इस शुल्क का प्रभाव पड़ता था।

मीर या कम्यून के विकास और उत्पत्ति के सम्बन्ध में रूसी इतिहासकारों में घोर मतभेद है, जितना दासता के सम्बन्ध में भी नहीं है। जबसे दासों की मुक्ति का प्रश्न उठा, मीर या कम्यून का महत्त्व प्रमुख हो गया। इस अध्याय में कहा जा चुका है कि मुक्ति के समय सन् 1861 ई०) यह निश्चय किया गया कि कम्यूनों को वैधानिक रूप दिया जाय कि ये कृषि-सम्बन्धी आर्थिक इकाई तथा विभिन्न राजकर और प्रशासन-सम्बन्धी कार्यों की संस्था बन जायँ। कम्यून के समर्थक कई दलों में विभक्त थे। स्लाव-समर्थकों के समान कुछ लोग इस कम्यून को रूस की प्राचीन संस्था समझते थे, जिसकी उत्पत्ति जनता से हुई थी तथा जिसमें पाश्चात्य देशों में प्रचलित वैयक्तिक स्पर्धा की भावना को रोकने की शक्ति थी। दूसरे लोग जो जनप्रिय समाजवादी क्रान्तिकारियों की कोटि के थे, उन्होंने सोचा कि इस कम्यून के द्वारा ग्रामीण समाजवाद की स्थापना हो सकेगी तथा एक लम्बे अरसे तक पूँजीवादी विकास से न गुजरना होगा।

मुक्ति के समय अधिकांश रूसी कृषक कम्यूनों में बँटे थे। ये कम्यून विभिन्न आकार के थे, कभी तो इस कम्यून में एक ही गाँव होता, कभी किसी बड़े गाँव में कई कम्यून होते तथा कभी-कभी अनेक छोटी आबादियों को एक ही कम्यून में नाथ दिया जाता। कृषि तथा आर्थिक दृष्टि से कम्यून के सामान्यतः प्रमुख लक्षण ये थे---(क) इसके सदस्य खानदानी होते थे, यद्यपि नवागन्तुक भी इसमें भरती किये जा सकते थे। (ख) कम्यून के सदस्य वंशागत खेत जोतते थे, किन्तु कुछ कम्यूनों को छोड़कर जिनमें सम्पत्ति पैतृक होती थी, समय-समय अपने खेतों का पुनः विभाजन करते थे और वितरण करते थे। क्योंकि, ये खेत छिटपुट थे। इस वितरण का आधार होता था खेत में काम करनेवाले व्यक्तियों की संख्या, कर तथा अन्य बँधेज देय शक्ति या घर में खानेवाले व्यक्तियों की

संख्या। खेतों में प्रायः तीन पैदावार होती थी। कुछ कम्यूनों में प्रति परिवार एक व्यक्ति काम करता था। (ग) कम्यूनों के सदस्य मिल-जुलकर सामान्य उपभोग की वस्तु का समुचित प्रवन्ध करते थे। यथा : बगीचा, चरागाह, मत्स्यागार, जंगल की लकड़ी इत्यादि। कम्यून की परती जमीन, जो कभी जोती-वोई न गई हो (गैर-मजरुआ जमीन), की वन्दोवस्ती या नई जमीन को कृषि-योग्य वनाने का काम भी कम्यून के सदस्य ही करते थे।

इतिहासकारों के एक स्कूल की विचारधारा है कि कृषि कम्यून रूस के इतिहास मे परम्परा से चले आ रहे हैं, इनके रूप विभिन्न भले ही रहे हों। पहले भी यथासमय भूमि का पुर्नवितरण होता था। यूरोपीय देशों के विकास से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह कम्यून स्वत: उत्पन्न एवं जनप्रिय सहयोगी संस्था थी। इसके उत्पादन में राज्य का कोई हाथ नहीं है या ऊपर से दवाव के कारण इसकी उत्पत्ति न हुई। दूसरे स्कूल के इतिहासकारों की विचारधारा है कि उन्नीसवीं शती के कम्यून राज्य द्वारा प्रस्तुत वित्तीय तथा प्रशासनिक उपायों के कारण उत्पन्न हुए। सोलहवीं शती से ही राज्य इन उपायों की पूर्त्ति का यत्न करता था। दास-स्वामियों के शासन के प्रभाव के कारण भी कम्यून ने यह रूप धारण किया।

गत 60 वर्षों के अनवरत अनुसन्धान से कम्यून की समस्या पर वहुत प्रकाश पड़ा है। किन्तु, सन् 1550 ई० के पहले का इसका इतिहास अव भी अन्धकारमय है। अव यह स्पष्ट हो गया कि प्रथम विचारधारा अमान्य है तथा दूसरी विचारधारा में काफी संशोधन की आवश्यकता है। खासकर विभिन्न प्रकार के कम्यूनों में विभेद समझने की आवश्यकता को दिखाया गया है। विभिन्न कम्यूनों का विकास विभिन्न समय पर विभिन्न प्रकार से रूस के विभिन्न क्षेत्रों में हुआ। इनके विकास के अत्यन्त विभिन्न स्वाभाविक तथा सामाजिक कारण थे। फिर, मोटे तौर पर दो प्रकार के कम्यूनों के अन्तर को समझने की आवश्यकता को वतलाया गया है--कृषि-सम्वन्धी कम्यून तथा प्रशासन-सम्वन्धी कम्यून। (क) कृषि तथा जंगलों में काम करनेवाले व्यक्तियों के जो कम्यून वने, उनका आधार था पारिवारिक इकाइयाँ। उन्हें अनेक प्रकार का श्रम करना पड़ता था। आर्थिक साझा या संस्था वनाकर वे काम करते थे। इसकी वनावट तथा आकार वड़ा छोटा हुआ करता था। इसमें विभिन्न प्रकार के काश्तकार हुए और वे विभिन्न प्रकार से खेती करते थे तथा जीवन-यापन के भी इनके विभिन्न प्रकार थे। (ख) जो कम्यून प्रशासन तथा मालगुजारी अदाय करने के हेतु वने, उनका आकार और विभिन्न होता था एवं उनका विकास राज्य की शक्ति और आवश्यकताओं की पूर्त्ति पर निर्भर था।

यह स्पष्ट है कि कृषि-कम्यून केवल प्रशासन-कार्यों के कारण उत्पन्न न हुए, यद्यपि राज्य तथा दास-स्वामियों, दोनों ने इसके विकास को कम-से-कम सोलहवीं शती से बहुत ही प्रभावित किया। उसके पहले प्रमाण अपेक्षाकृत विरल और अप्राप्य तथा अन्धकारमय हैं, किन्तु यह निश्चय है कि कीव रूस तथा मंगोल दोनों काल में समाज की यह एक प्रमुख विशेषता थी कि कृषक-वर्ग सामुदायिक प्रबन्ध से काम चलाते थे, चाहे वह सम्मिलित परिवार हो, या ऐसे कुछ परिवारों का समूह हो या कई वर्ग के लोगों का विस्तृत समुदाय हो। इन्हीं के द्वारा भूमि की अदला-बदली होती थी तथा जनसाधारण द्वारा इसके उपयोग की व्यवस्था भी अधिकतर यही संस्थाएँ करती थीं। यथा : बाग, मधु या मत्स्य-खण्डागार या चरागाह तथा नवागन्तुकों के साथ व्यवहार। इस प्रकार के कृषि-कम्यून निश्चय ही कालान्तर के कम्यूनों से बहुत भिन्न प्रकार के रहे हैं; क्योंकि कालान्तर के कम्यूनों का आधार साधारणतः ग्रामसमूह था। खुले खेतों में तीन फसलों की खेती होती थी तथा समय-समय खेतों का पुनर्वितरण किया जाता था। वर्तमान प्राप्त प्रमाणों से पता चलता है कि सोलहवीं शती तक छिटपुट ढंग से बसे हुए अधिक-से-अधिक आठ या नौ घर मिलकर ही प्राय: कृषिग्राम बना लेते थे तथा केन्द्रीय मस्कोवी में सन् 1500 ई० के लगभग से खुले मैदानों में तीन फसल पैदा करने की परिपाटी का केवल प्रारम्भ हो रहा था।

सामयिक पुनर्वितरण चल पड़ा, किन्तु कृषि-कम्यून का यह प्रधान अंग न बन सका। साम्राज्य के अधिकांश रूसी भागों में अट्ठारहवीं शती तक या बाद तक भी यही हाल रहा। किसी तरह भी यह सामूहिक खेती या भूमि-स्वामित्व का कोई खास चिह्न न था। किन्तु. यह बहुत महत्त्वपूर्ण था। राज्य ने तथा दास-स्वामियों ने इसे प्रोत्साहित किया और कुछ क्षेत्रों में इसकी शुरुआत की। अत:, किसानों के हृदय में यह बात बैठ गई कि कुछ खेत पाना उनका हक है। सामयिक वितरण तथा तीन-फसल खेतों का क्रमिक विकास हुआ; क्योंकि प्राकृतिक साधनों पर आबादी का बोझ बढ़ता जाता था, किसान दासत्व के बन्धन में फँसते जाते थे, दासों की मालिक के प्रति सेवा का अनुपात भी बढ़ता जाता था तथा राज्य भी साक्षात्कार के उपायों में तथा धन में वृद्धि करता जाता था।

पुनर्वितरण की प्रथा केन्द्रीय मस्कोवी की घनी आबादियों से बाहर धीरे-धीरे फैलने लगी; क्योंकि इसी कारण, खासकर प्राकृतिक साधनों पर जनसंख्या का बोझ, कभी इस तो, कभी उस क्षेत्र में अनुभूत किये जाने लगे। श्वेत रूस और उक्रेण के अधिकतर भागों में इस प्रकार का विस्तार प्राय! अनियमित था; क्योंकि वहाँ

पोलैण्ड का राज्य था तथा अन्य प्रकार के भूमिस्वामित्व और कम्यून-संस्थाएं दीर्घकाल तक बनी रहीं। नूतन रूस में कम्यून-प्रथा किसी तरह भी सामान्य परम्परा न थी और खेतों में अक्सर तीन फसलें उपजाने की आवश्यकता न होने के कारण भूमि की पुनर्वितरण-प्रथा काम में न लाई जा सकी, जैसा केन्द्रीय रूस में होता था। फिर, सुदूर उत्तर और साइबेरिया में कृषि-कम्यूनों का विकास परिस्थिति के कारण बहुत दूसरे प्रकार से हुआ।

रूस में अन्यत्र के समान कम्यूनों का विकास काश्तकार तथा सहायक मजदूरों के मौलिक आधार पर हुआ। वे संगठित परिवार के रूप में काम करते थे। अधिकतर यह परिपाटी तीन पीढ़ी तक चलती थी। किन्तु, उत्तरी प्रदेशों के कम्यूनों का विकास संसृष्टि से हुआ। लगभग इन सभी कम्यूनों में दास नहीं थे, अपितु वे लोग थे, जो आगे चलकर राज्य-कृषक बन गये। यह संसृष्टि-प्रणाली बड़ी पेचीदी थी। ये लोग अपने-अपने खेत के अनुकूल वैयक्तिक हिस्सा लेते थे। अट्ठारहवीं शती में इससे किसानों के धन में महान् विपर्यय हो गया तथा धनी और निर्धन किसानों में एवं काश्तकारों में दीर्घकालीन संघर्ष चलता रहा। इस संघर्ष में सरकार ने धनी किसानों के प्रतिकूल पक्ष लिया, जिससे इन राज्य-कृषकों का समुचित संगठन हो सके तथा उनके द्वारा नियमित कर तथा सैनिक सेवा आदि मिल सके। इसका फल यह हुआ कि सन् 1754 ई० के बाद आधी शती में सुदूर उत्तरी प्रदेशों में एक प्रकार के नये समान सामुदायिक भूमि-व्यवस्था की प्रथा चल पड़ी। राज्य द्वारा अनेक यत्नों की शृंखला का यह फल था। मध्य रूस के लगभग समान ही उस भूमि का वितरण नियत अवधि पर हुआ करता था।

अतः, जहाँतक सोलहवीं शती से खोज द्वारा पता चला है, यह स्पष्ट है कि कि कृषि-कम्यून का विकास रूस की विशाल भूमि में विभिन्न प्रकार से विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न गति से हुआ। धीरे-धीरे अधिकांश प्रदेशों में यह, राज्य द्वारा कर लगाने की पद्धति तथा दास-स्वामियों के प्रति दायित्व से, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में अधिकाधिक प्रभावित होता गया।

तब भी किसानों की प्रतिक्रिया ऊपर से लादे गये कानूनों के विरुद्ध होती रही; क्योंकि कभी यह कानून बनता, कभी वह। सरकारी अफसर कभी यह फैसला देते, कभी दूसरा; जमीन्दार कभी यह काम करते, कभी वह। इनकी प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप भूमि के लिए और भूमि के साथ उनके अनवरत संघर्ष की वस्तुतः अत्यन्त भिन्न कार्य-पद्धतियाँ प्रकट हुईं। कृषि-कम्यून के

आधार में सनातनी जन-परम्परा थी, जो काम के सिद्धान्त पर आधृत थी। यह सिद्धान्त खेती में लागू किया जाता था और इस विचार पर अवस्थित था कि खेत में काम करने का हक सबको है।

कम्यून का दूसरा रूप था मालगुजारी और प्रशासनिक ईकाई। इसका भी इतिहास उतना ही पुराना और प्रारम्भ से ही अन्धकार में डूबा है। कीव रूस में और मंगोल-काल में फौजदारी-सम्बन्धी मुकदमों का फैसला करने का भार स्थानीय वर्ग या जिलों पर था, जिस प्रकार ऐंग्लो-सेक्शन काल के इंगलैण्ड में शतग्राम या ग्राम पर भार था। स्थानीय संस्थाएँ ही कर को बाँटती और वसूल करती थीं तथा अन्य सामान्य कार्यों की भी देखभाल करती थीं। ये उत्तरदायित्व मुखिया, ग्रामीण वृद्धजन या स्थानीय अर्द्धसरकारी अधिकारियों पर थे। इस मन्थरगति प्रबल परम्परा के आधार पर कम्यूनों का मालगुजारी और प्रशासनिक रूप धीरे-धीरे अनेक प्रकारों में बदल गया।

सन् 1450 और 1650 ई० के बीच मस्कोवी की स्थापना हुई, किन्तु यह बहुत अविकसित था। यह मुख्यत: न तो परम्परा के व्यवहार को निवाह सकता था और न वैयक्तिक व्यवहार को, अत: इसने वर्ग में काम करना शुरू किया। सोलहवीं शती के अन्त से अनेक ठोस प्रमाण मिलते हैं और हमें मस्कोवी-शासन की कुछ विस्तृत झलक मिलती है। खासकर कर लगाने और उन्हें वसूल करने का घोर प्रयत्न दीखता है, जिससे सेना और सुरक्षा का काम हो सके।

पहले हल पीछे कर लगाया जाता था। हरेक जिले में अधिकारी इस कर का निर्णय करते थे, किन्तु इसकी सूचना के लिए वे किसानों पर या स्थानीय लोगों पर निर्भर रहते थे। जिले-भर का कुल लगान जितना होता, उसमें प्रतिव्यक्ति या प्रतिवर्ग को कितना देना होगा, इसका निर्णय स्थानीय निर्वाचित वृद्धजन या किसान-वर्ग या नगर-कम्यून करते रहे, जैसा पहले होता था। साधारणत:, सरकार की ओर से इसमें कोई भी प्रत्यक्ष छेड़छाड़ न होता था। कर-वसूली का भार भी प्राय: राज्य-कृषकों के निर्वाचित कम्यून के सदस्य ही करते थे, किन्तु सरकार के अधिकारी इसपर कड़ा नियन्त्रण रखते थे। जमीन्दारों की रियासत में जमीन्दार स्वयं ही या उनके बराहिल लगान वसूल करते थे। ये लगान विभिन्न प्रकार से दासों पर बाँटे गये थे। यद्यपि अट्ठारहवीं शती से पहले वे अपने दासों से कर वसूलने या दासों का कर देने के लिए कानूनन उत्तरदायी न थे।

कम्यून या इसके अनुमण्डल के किसान और नागरिक दोनों साक्षात्कार देने के लिए सामूहिक रूप से उत्तरदायी थे। यद्यपि लगता है कि बकाया के लिए सन् 1861 ई० के पहले सामान्य तौर पर उनका सामूहिक उत्तरदायित्व न था। मस्कोवी-प्रशासन सामान्य सिद्धान्तों को बनाने में सदा सुस्ती करता था। इसका काम

धीरे-धीरे होता था। एक विशेष बात के बाद दूसरी विशेषता निकल आती थी। एक जिले में एक ही प्रकार की कानूनी परम्परा का निर्वाह नहीं होता था, मनमौजी ढंग से काम किये जाते थे। कुछ भी हो, करों को कम्यूनों के सामूहिक उत्तरदायित्व पर छोड़ देने का बहुत भारी महत्त्व था। यही एवं अन्य दायित्व विकसित होते-होते सत्रहवीं और अट्ठारहवीं शती में मालगुजारी-प्रशासन-वर्ग एवं कृषि, आर्थिक वर्ग के कम्यूनों को एक करने में सफल हुए।

सोलहवीं और सत्रहवीं शती में मस्कोवी के अधिकारियों को भूमि-कर लगाने की कोई भी सन्तोषजनक इकाई कार्यान्वित करने में प्रबलतम कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। ये इकाइयाँ देश के विभिन्न भागों में विभिन्न काल में विभिन्न होती थीं। ये हमेशा बहुत ही पेचीदी होती थीं और लगान रह-रहकर विभिन्न समयों पर लगाया जाता था। अपने सदस्यों के ऊपर कर बाँधने का भार कम्यून के ऊपर था। अतः, कम्यून इस बात का जबरदस्त ध्यान रखते थे कि इसके सदस्यों की संख्या या उनकी सामान्य आय में कमी न होने पाये। महान् पीटर ने जब मथौती-शुल्क लगाया, उसके बाद भी यही पद्धति चलती रही। लगभग हर बीस वर्ष के बाद केवल एक बार पुरुषों की जनगणना होती थी, किन्तु प्रत्येक कम्यून का मथौती-शुल्क-धन पूर्ववत् ही बना रहता था, भले ही जनगणना में पुरुषों की संख्या में कमी या बेशी हो जाय। अतः, व्यवहार में लोगों को जबरदस्ती कम्यून का लगातार सदस्य बनाये रखना काफी प्रभावपूर्ण था, कम-से-कम जहाँ तक मथौती-कर देने का सवाल था।

अतः, पीटर ने कम्यून-प्रथा को केवल फिर से दृढ ही न किया, उसने किसानों के ऊपर और कर लाद दिया तथा दासता का बोझ भी बढ़ाया। उसके द्वारा चलाई गई पारपत्र-पद्धति ने भी, जिसे उसके उत्तराधिकारियों ने और भी विस्तृत किया, इसी दिशा में काम किया। उसने अपनी नई राजधानी बनाने के लिए लोगों से नृशंसतापूर्वक बेगार लिया। अपने नये सामुद्री बेड़ों, नई नहरों के निर्माण के लिए किसानों पर कर का बोझ लाद दिया। इनके अतिरिक्त अपनी नई स्थायी सेना के लिए रँगरूट भरती करने का दुर्वह भार ढोना भी किसानों का नियमित कर्त्तव्य हो गया। फलतः, एक दृष्टि से अट्ठारहवीं शती भी सत्रहवीं शती के समान ही बनी रही। किसानों के भागने और विद्रोह करने से इस शती का आरम्भ हुआ और शती-भर यही दशा बनी रही।

5. किसान-विद्रोह :

रूसी और गैर-रूसी सभी किसान बढ़ती हुई दासता और अधिकारियों के लोभ के प्रति उत्तेजित हो गये। इस उत्तेजना ने दो चरम रूप धारण किये—

उत्पीडन से पलायन और उत्पीडन के विरुद्ध युद्ध। रूस के विस्तार और उसकी सीमा के इतिहास में पलायन का जो महत्त्व है, उसे अच्छी तरह बताया जा चुका है। मध्य रूस में दासता के प्रतिकूल युद्ध इतना उग्र रूप धारण न कर सका, जितना होना चाहिए था; क्योंकि यहाँ से अनेक साहसी और जवान दक्षिण या पूर्व की ओर चले गये। दासता की उमड़ती बाढ़ को रोकने के लिए जो सबसे खूँखार युद्ध हुआ, उसका क्षेत्र प्रधानतः सीमान्त उपान्त थे, न कि पृष्ठभूमि। यह मध्यप्रदेश के अपेक्षाकृत आबाद और वर्द्धमान जनता के प्रतिकूल सीमान्त के लोगों का युद्ध था; क्योंकि मध्यप्रदेश ही राजकीय शासन का केन्द्र भी था।

वॉल्गा-सीमा के अग्निकोण और मध्य के लोगों ने चार बार घोर विद्रोह किया। उन्हें हम गृहयुद्ध कहें, तो अच्छा होगा। इससे राज्य का तख्ता बहुत हिल गया, किन्तु पहले प्रयत्न को छोड़कर, जिसमें वे कुछ सफल हुए, मस्कोवी के मर्मस्थल की आम जनता को भड़का न सके। गैर-रूसियों का विद्रोह इससे अलग है। ये विद्रोह रूस के इतिहास में अपने मुख्य नेताओं के नाम से ख्यात हैं। यथा : बोलेत्निकोव (सन् 1606–7 ई०), स्तेंका राजीन (सन् 1670–71 ई०), बुलविन (सन् 1707-8 ई०) तथा पुगाचोव[1] (सन 1773-75 ई०)।

इन गृहयुद्धों की कुछ विशेषताएँ हैं, उनकी व्याख्या दासों की मुक्ति के पहले की ढाई शताब्दियों के रूस के सामाजिक इतिहास तथा किसानों की समस्या को समझने में सहायता मिलेगी।

1. प्रारम्भिक दशा में बोलेत्निकोव विद्रोह के सिवा सभी महाविप्लवों के नेता दोन या उरल के कजाक ही थे। प्रायः सभी नेता उन्हीं के बीच से आये और उन्होंने ही कृषक-समूह को विस्तृत पैमाने पर भड़काया तथा सैनिक संगठन और नेतृत्व के रूप में उन्हें सहायता दी। किन्तु, जैसे-जैसे वे उत्तर दिशा की की ओर बढ़े, उनकी संख्या कम होती गई और उन्हें अपनी सफलता पर विश्वास भी कम होता गया। फिर, कजाक-विप्लवियों में अधिकांश संख्या थी दरिद्र नवागन्तुकों और भगेड़ू किसानों की, जो पीठ दिखाकर दासता से बचने के लिए सन् 1650 ई० के बाद दक्षिण की ओर चल गये थे। जैसा पहले बताया जा चुका है, इनमें तथा निम्न दोन के कजाकों के विशिष्ट अमीरों में प्रायः कुछ भी

---

1. पुश्किन ने अपनी प्रसिद्धतम कहानियों में से एक 'कप्तान की कन्या (सन् 1836 ई०)' में पुगाचोव के विद्रोह का बहुत स्पष्ट वर्णन किया है। स्वयं पुगाचोव को आश्चर्यजनक अनुकूलता के साथ चित्रित किया गया है। पुश्किन ने विद्रोह का भी बहुमूल्य इतिहास लिखा है, जिसका अनुवाद नहीं हुआ है।

समानता न थी। अधिकतर ये अमीर विप्लवियों से दूर रहे, यहाँतक कि उन्होंने विप्लवियों को रोका भी। न तो राजीन और न बुलविन ही निम्न दोन में सुदृढ अड्डा जमा सके तथा दोन में पुगाचोव का साथ देने के लिए कोई भी विद्रोह न हुआ। उक्रेण तथा जपोरोझियन कजाकों का भी समर्थक न तो राजीन को मिला और न बुलविन को। यद्यपि उक्रेण के अनेक लोगों ने व्यक्तिगत रूप में विद्रोही समुदायों का साथ दिया, किन्तु स्थानीय मतभेदों तथा आपसी फूट के कारण वे लोग मिलकर मास्को के प्रतिकूल काररवाई न कर सके।

2. इन विद्रोहों की गम्भीरता का मुख्य कारण यह था कि दास तथा अन्य श्रेणी के किसानों ने भी कजाकों का साथ दिया, न कि केवल रूसी किसानों ने ही। बन्धक दास तथा राज्य के किसानों ने साधारणतः मिलकर साथ दिया। पुगाचोव के विद्रोह में उरल के उन किसानों का मुख्य हाथ रहा, जो खानों तथा धातु-कारखानों में काम करते थे। अट्ठारहवीं शती के इस नये दास-वर्ग की अपनी अलग शिकायतें थीं। अधिकांशतः इन दासों को अपने गाँवों से बहुत दूर वर्ष में अनेक दिन काम करना पड़ता था और ये अकुशल औद्योगिक मजदूर थे। ये आधे किसान थे। ये किसानों के स्वार्थ तथा परम्परा में पले थे। इसके सिवा कुशल कारीगरों के छोटे केन्द्रों का दृष्टिकोण भिन्न था। ये कारखानों के समीप स्थायी रूप में रहते थे और कारखानों पर ही निर्भर थे। अतः, ये चाहते थे कि उन लोगों के काम करने का शोचनीय तरीका सुधारा जाय, किन्तु ये यह नहीं चाहते थे कि कारखानों का विनाश हो। पुगाचोव ने इन्हीं दासों को अपनी सेवा में भरना चाहा और इन्हें हथियार देकर बहादुर बनाने का यत्न किया। पहले इनके पास हथियार नदारद था।

3. कजाक और कृषकों के अतिरिक्त वॉलगा तथा अन्य सेनागारों और व्यापार-केन्द्रों में भी विभिन्न श्रेणी के लोग थे। यथा : मल्लाह और सामयिक मजदूर, लघु शिल्पी तथा खुदरे व्यापारी, अनेक साधारण अधिकारी तथा सुरक्षित सेनागार के सिपाही। जिस समय कजाकों की शक्ति बढ़ गई थी, उस समय सीमान्त नगरों में अनेक लोग असन्तुष्ट, पददलित तथा भिखमंगे थे। उन्होंने विद्रोहियों की शक्ति और संख्या को और भी बढ़ा दिया।

किन्तु, मस्कोवी के प्राचीन प्रान्तों के नगरों के लिए ये बातें लागू न थीं। सत्रहवीं शती में इन नगरों में छोटे मास्को को छोड़कर सर्वत्र अशान्ति थी। लगभग सभी नगरों में अब भी लोगों के पास कुछ-न-कुछ खेत था और कृषि, मत्स्यागार तथा जंगल से उनका सम्बन्ध था। सत्रहवीं शती के विद्रोहों के इतिहास में नगर उतने ही प्रमुख रहे, जितने किसान। सन् 1648 ई० में मास्को तथा

अन्य अनेक नगरों में विद्रोह हुआ। सन् 1650 ई० में नवगोरद तथा मस्कोवी में, सन् 1662 ई० में पुन: मास्को में तथा अस्त्राखान में एवं सन् 1705-6 ई० में भी विद्रोह हुए। फिर भी, नगरवासी और किसान ने मिलकर सरकार और दास-स्वामियों का कभी विरोध न किया। शहर में अत्यन्त संमिश्र विद्रोह के कारण प्राय: ऐसे थे, जिनका प्रभाव किसानों पर एकदम नहीं पड़ता था अथवा हो सकता है, जिस प्रकार उनका प्रभाव नगरवासियों पर पड़ता था, उस प्रकार किसानों पर नहीं। किसान जब दंगा करते थे, तब उनके कारण किसी भी हद तक नगरवासियों के समान नहीं होते थे। एक नगर में भी दूसरे नगर के समान कारणवश विद्रोह नहीं होता था। केवल एक बार सन् 1648–49 ई० में देश की सभा संकट में पड़ गई और नूतन विधि-संहिता बनी।

4. तीन महाविद्रोहों में रूसी और गैर-रूसी सभी शामिल थे। बुलविन-विद्रोह (सन् 1705–11 ई०) मध्य उरल में बश्कीरों के दीर्घकालीन संघर्ष के साथ-साथ चलता रहा। पुगाचोव के समय वश्कीरों ने सेना-सहित साथ दिया। सौ वर्ष के अन्दर उनका यह पाँचवाँ महाविद्रोह था। मध्य वॉल्गा में अनेक कजान तातारों, चुवाशों तथा मोरड्वाओं ने विद्रोह किया, जैसा उन्होंने राजीन और बोलेत्निकोव के समय किया था। उनका यह विद्रोह रूसियों तथा अपने उच्च वर्ग दोनों के प्रतिकूल था। विद्रोहियों की कुछ सेनाओं में रूसी और गैर-रूसी मिले-जुले थे। राजीन का एक नारा था—"ईश्वर और पैगम्बर के लिए, सम्राट् तथा सेना (कजाक-सेना) के लिए।" अत:, किसानों के महाविद्रोह एक तरह से औपनिवेशिक विद्रोह भी थे; क्योंकि वॉल्गा और उरल-क्षेत्रों में दीर्घ काल से रूसियों के प्रतिकूल संघर्ष चलता आ रहा था।

इस बात में गैर-रूसियों का बरताव मोटे तौर पर रूसियों के सभी वर्गों के लिए प्राय: एक समान था, यद्यपि रूस के सामान्य लोगों के साथ व्यक्तिगत रूप में उनका सम्बन्ध प्राय: कुछ बहुत बुरा न था। रूसी दास या साधारण व्यापारी या सेनागार के सिपाही रूसियों पर उसी प्रकार टूट पड़े, जैसे रूसी दास-स्वामी, धनी महाजन, व्यापारी या अफसर। बश्कीरों को उनपर तेजी से बढ़ते हुए रूसी दबाव के विरुद्ध संघर्ष के लिए खास तौर पर भड़काया गया। पीटर और उसके उत्तराधिकारियों ने उरल-क्षेत्र में खानों और कारखानों की गति तेज कर दी थी। रूस के किसानों के प्रति, जो कारखानों में काम करते थे, उनका रुख ध्यान देने योग्य है। वे कहते (सन् १७७३ ई०): "जाओ घर, तुम्हारी अवधि पूरी हो गई। हमारे जिन पुरखों ने तुम्हें भूमि दी थी, वे मर गये। अब हम तुम्हें भूमि देना नहीं चाहते।" और, उन्होंने खूब आग लगाई तथा लूट-पाट

करके अपना दिल ठण्डा किया। पुगाचोव ने रूसियों के विरुद्ध लूट-खसोट को सीमित करने के लिए व्यर्थ प्रयत्न किये, खासकर इसलिए; क्योंकि वह चाहता था कि कारखानों से उसे हथियार मिले। उस विद्रोह-काल में उरल-क्षेत्र के आधे कारखाने ज्यादातर बहुत बरबाद हो गये। उन्हें अपनी पुरानी रफ्तार से पुनः उत्पादन करने में छह वर्ष लग गये।

रूसी और गैर-रूसियों में धार्मिक विभेद एक दूसरी बाधा थी, जिसके कारण दोनों दलों के किसानों ने मिलकर काम न किया। इस धार्मिक मतभेद ने सभी गैर-रूसियों को एकत्र भी कर दिया। कजान तातारों और बश्कीरों में मुल्ला बहुत प्रभावशाली तथा शक्तिशाली थे। वे कुस्तुन्तुनियों तथा क्रिमिया के तातारों से अटूट सम्बन्ध बनाये रखते थे; क्योंकि उनका कहना था—"हम एकही परिवार और धर्म के हैं।" किन्तु, यातायात की कठिनाई बढ़ती जाती थी। अतः, इन क्षेत्रों में, बाद में जो 'इस्लाम सर्वस्व' कहलाया, उसका कभी बोलबाला न रहा, यद्यपि उन्नीसवीं शती में काकेशश में तथा बाद में मध्य एशिया में 'इस्लाम सर्वस्व' की तूती बोली। अट्ठारहवीं शती में अनेक लोग इसाई-धर्म में परिवर्त्तित कर लिये गये। जो ईसाई बन जाते, उन्हें कर से छुटकारा मिल जाता था तथा अन्य सुविधाएँ भी मिलती थीं। मस्जिदें बन्द कर दी गईं तथा मुसलमानों के विरुद्ध अन्य अनेक पग उठाये गये। अतः, रूसियों के प्रतिकूल भावना उत्तेजित हो रही थी, जबतक महती कैथरीन ने एलिजाबेथ के सिद्धान्तों को उलट न दिया। एलिजाबेथ सनातनी ईसाइयों को धर्म-परिवर्त्तन करने के लिए प्रोत्साहित करती थी। कैथरीन ने प्राचीन प्रचलित पद्धति अपनाई और धर्मसहिष्णु बन गई। पुगाचोव के विद्रोह से उसे क्षोभ हुआ और उसने मुस्लिम-धर्मनेताओं को विश्वासपात्र बनाने की नीति को प्रोत्साहन दिया।

रूसी उपनिवेशन के विरुद्ध हथियार लेने तथा इस्लाम के कारण सभी गैर-रूसी एक साथ मिलकर लोहा ले सकते थे; किन्तु उनका परस्पर सामाजिक विभाजन स्वयं छिन्न-भिन्न था। उनके राजकुमारों, जमीन्दारों तथा व्यापारियों के लिए उनके ही आदमियों द्वारा विद्रोह का अर्थ था अपने ही प्रतिकूल विद्रोह, साथ-साथ रूसियों के भी। सत्रहवीं शती के प्रारम्भ के बाद रूसियों के विरुद्ध उन्होंने अपने आश्रितों का साथ अंशतः ही दिया। इसके अलावा उस समय अनेक तातार रूसी सेना में भरती थे, जिन्होंने नमकहलाली की और सरकार का साथ दिया और खास कर राजीन के समय विद्रोह को सफलतापूर्वक दबा दिया।

अतः, गैर-रूसियों के विद्रोह के जो दो प्रमुखतम कारण थे—रूसी उपनिवेशन तथा इस्लाम की सुरक्षा, उन्हें रूसवासी स्वीकार करने को तैयार न थे। उसी

तरह गैर-रूसी और रूसी किसानों के विद्रोह के पीछे जो सामान्य कारण थे—दासता का बोझ तथा सरकारी कुशासन, वे सामान्यत: गैर-रूसी लोगों को प्रबलतम बलों द्वारा अनुभूत नहीं कराये गये। अत:, स्वयं आपस में फूट होने तथा रूसियों से अलग होने के कारण वे विद्रोहियों से मिलकर जनविद्रोह को विशाल रूप न दे सके।

5. अट्ठारहवीं शती के विद्रोहों में लोगों ने पुराने धर्म की दुहाई दी, जो अक्सर विदेशियों के प्रति शाप से संयुक्त रहती थी। ये विदेशी जर्मन थे, जो नये प्रकार से भ्रष्टाचार फैलाते थे तथा दरिद्रों को अत्याचार से पीसते थे। बुलविन के एक अनुयायी ने घोषणा की—"हमलोग पुराना धर्म चाहते हैं। ईश्वर की मातृभूमि के लिए, आपके लिए तथा समस्त जनसाधारण के लिए हमलोग ग्रीकधर्म नहीं अपनाना चाहते।" अर्थात्, वे निकन का सुधार नहीं चाहते थे। उराल-नदी के तट पर, जहाँ से पुगाचोव ने सन् १७७३ ई० में विद्रोह आरम्भ किया, कजाक अधिकतर पुराने धर्म को माननेवाले थे। सन्त पीटर्सबर्ग से भेजे गये जर्मन-अफसरों से वे दस वर्षों से लड़ते चले आ रहे थे। ये जर्मन-अफसर वहाँ उनके आपसी झगड़ों को निपटाने तथा उन्हें पुनः संगठित करने के लिए भेजे गये थे।

6. इन चारों महाविप्लवों में पहरेवालों के सांकेतिक शब्दों तथा नारों से एक ही विशेषता टपकती है—दासता और उत्पीडन के प्रतिकूल जनता को उभाड़ना। राजीन का प्रधान राग बहुत साधारण था: "सिपाहियों को नगरों से हटाओ, जमीन्दारों के विरुद्ध मास्को चलो ज़मीन्दारों का वध करो।" बुलविन का नारा भी ऐसा ही सरल था: "जमीन्दारों, मुनाफाखोरों और जर्मनों का का वध करो। हमारा युद्ध जमीन्दारों से तथा अन्यायकारियों से है। ओ नंगे बदनवालो, तुम सब आओ, पैदल या घोड़े पर, नंगे पाँव आओ, डरो मत, तुम्हें मिलेंगे घोड़े, वस्त्र और धन। और, जो कोई भी आम जनता को पकड़ेगा और उन्हें न जाने देगा, उसे फाँसी पर चढ़ा दिया जायगा।"

पुगाचोव ने सम्राट् पीटर तृतीय का स्वाँग बनाया। उसने विविध प्रकार की घोषणाएँ जारी कीं, जिससे उसके विभिन्न अनुयायियों के स्वप्नों तथा आशापूर्ति का जाल बुना जाता रहे। उदाहरणार्थ, उरल-कृषक परमेश्वर की स्तुति करने लगे कि सूर्य का प्रकाश जो दीर्घकाल से पृथ्वी पर से रसातल चला गया था, अब पुनः सम्पूर्ण संसार में विकीर्ण हुआ है और अब फिर उन्हें गरमी मिलेगी। उन्होंने आशा की कि विप्लवी उन्हें पुनः स्वतन्त्र कर जंगली जानवरों से उनकी रक्षा करेंगे तथा पापी ज़मीन्दारों, अफसरों और कारखाना-मालिकों के तीक्ष्ण नख काट डालेंगे। सर्वोपरि जब पुगाचोव ने कजान को क्षणिक काल के लिए अधिकृत किया

और जब वह वॉल्गा के पश्चिम में पार उतरकर (सन् 1774 ई०) मास्को पर धावा करना एवं मध्य प्रदेशों में भयंकर विप्लव मचाना चाहता था, उससे सर्वत्र दासता का अन्त हो गया और अमीरों के प्रतिकूल युद्ध की घोषणा कर दी गई।

"जो अबतक जमीन्दारों की दासता और गुलामी में जकड़े थे, उन सबको स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं। उन्हें पुराना क्रॉस (स्वस्तिक) और पूजन, सिर और दाढ़ी, स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता प्रदान करते हैं। वे सदा कज़ाक बन रहें, फौजी भरती का कर दें, मथौती-शुल्क या किसी प्रकार का कर रुपये में न दें। खेतों, जंगलों, घास के चरवाहों तथा मत्स्यागार तथा लवण-झीलों पर उनका अधिकार होगा। उन्हें इनके लिए कोई लगान या कर नहीं लगेगा। जो लोग आजतक पापी जमीन्दारों, घूसखोर अफसरों तथा जजों (न्यायधीशों) से उत्पीडित थे, उन सबको हम मुक्त करते हैं। जो अपने खेतों और जागीरों में अबतक रईस बने थे, जो हमारे शासन के विरोधी थे, साम्राज्य के परिपोषक थे, किसानों को बरबाद करते थे, उन्हें पकड़ लो, दण्ड दो, फाँसी पर लटका दो, उनके साथ वैसा ही बरताव करो, जैसा वे तुम किसानों के साथ करते थे। उनमें दया की कोई भावना नहीं थी। इन शत्रुओं और पापी रईसों का सत्यानाश होने पर सभी पूर्ण शान्ति के साथ आनन्दपूर्वक जीवन बिताना प्रारम्भ करेंगे और ऐसा ही आनन्दमय जीवन सदा बना रहेगा।"

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि चाण्डालों की उत्तेजना को भड़कानेवाला पुगाचोव हम जैसे जनसाधारण के लिए मित्र और रक्षक था, न कि कोई अपराधी। बहुत कुछ इसी प्रकार राजीन भी जनगीतों एवं लोक-कथाओं में सम्पूर्ण रूस का नायक बन गया था। वह निर्बलों का रक्षक एवं सहायक समझा जाता था। एक लोभी विजेता और जादूगर के रूप में, जो एक दरी पर उड़ा करता था, जिसे कोई गोली नहीं लगती थी, जो अपनी बेड़ियों के बीच से छेद में से सूई की तरह भाग निकलता था, उसके गीत गाये जाते थे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि 1500 से अधिक रईस, पुरुष, स्त्री और बच्चे उसके सैनिकों के हाथ से मौत के घाट उतरे। इनके सिवा 1300 अन्य श्रेणियों के लोग भी काल के गाल में फंसे। कैथरीन को अपने एक अत्यन्त प्रमुख सेनापति को तानाशाह बनाकर स्थायी सेना की विशाल टुकड़ियों के साथ भेजना पड़ा कि किसी तरह पुगाचोव को पकड़ा जा सके और वॉल्गा-प्रदेशों में शासन और जमीन्दारों की पुनः स्थापित किया जाय। उसने शीघ्रता से स्थानीय शासन-पद्धति को सुधारने का यत्न किया (सन् 1775 ई०)। सबसे बड़ी बात यह हुई कि शासक-वर्ग ने समझ लिया कि पुगाचोव का विद्रोह सामाजिक क्रान्ति का श्रीगणेश-मात्र है एवं शान्ति और नियम को पदस्थापित करने के लिए क्रूरतम उपायों को अपनाने से ही काम चल सकेगा।

7. किन्तु, तो भी किसानों का अन्तःकरण आन्तरिक किसान-क्रान्ति को जार के प्रतिकूल क्रान्ति के रूप में सोचने को तैयार न था। केवल कुछ कजाक और बश्कीरों को छोड़कर किसी-न-किसी रूप में सर्वत्र जार का शासन सूर्य और चाँद के समान ईश्वर-प्रदत्त माना जाता था। दो रूसी कहावतें इस बात को स्पष्ट कर देती हैं— 'जार के खुशामदी सताते हैं, न कि जार।" "जार है दयालु, उसके कुत्ते पालक नहीं।" यह भी ध्यान देने की बात है कि राज़ीन ने नारा लगाया—"परमेश्वर सम्राट् का साथ दो, धोखेबाज अफसरों और जमीन्दारों को हटाओ।" इस विशाल विद्रोह का, स्थानीय छोटे-छोटे विप्लवों के समान ही कोई राजनीतिक कार्यक्रम नहीं था, जिसके साथ वे अपने सामाजिक कार्यक्रमों को जोड़ सकते।

यदि आवश्यकता पड़ती, तो घोषणा कर दी जाती थी कि वर्त्तमान शासक गद्दी का सचमुच अधिकारी नहीं है या वह ईसाई-धर्म का विरोधी है। उस राजा या रानी के बदले दूसरा सच्चा शासक बतलाया जाता, जो सचमुच जीवित रहता; किन्तु अफवाह फैला दी जाती कि वह मर गया है। कहा जाता कि वह विप्लवियों के साथ है या तुरत ही उनका साथ देगा; क्योंकि वे उसकी विश्वसनीय प्रजा हैं। यही कारण है कि चिरकाल तक कपटी जारों का ताँता लगा रहा। वे सहसा प्रकट होते और उन्हें आशातीत अपूर्व सफलता मिलती। सर्वप्रथम कपटी दिमित्री (सन् 1604 ई०) जार प्रकट हुआ था। इससे सिद्ध है कि अशिक्षित जनता में किस प्रकार अफवाह फैलती है। वे बच्चों के समान विश्वास कर लेते हैं और छद्मवेशी को अपनाने में नहीं हिचकते। पुगाचोव और उसके साथियों के चरित्र से छद्मवेशी सिद्धान्त की प्रकृति सर्वाधिक प्रकट होती है।

पुगाचोव वस्तुतः एक भागा हुआ दोन कजाक था। पुलिस इसकी खोज में थी। इसने अपने को पीटर तृतीय, महती कैथरीन का पति, घोषित किया। यह पीटर तृतीय गद्दी से उतार दिया गया था और सन् 1762 ई० में उसे मार डाला गया था। अफवाहें थीं कि वह अभी तक जीवित है और शीघ्र प्रकट होगा। पुगाचोव के पहले इस प्रकार के चार कपटी उसके नाम से प्रकट हो चुके थे और पुगाचोव के बाद कम-से-कम एक ऐसा कपटी प्रकट हुआ। पीटर तृतीय को कुछ हद तक मरणोत्तर लोकप्रियता मिली; क्योंकि सन् 1762 ई० की घोषणा द्वारा उसने अमीरों को अनिवार्य सेना से मुक्त कर दिया था। इस प्रतिघात के कारण वह बहुत जनप्रिय हो गया था। लोग समझते थे कि यह घोषणा जार की नहीं, किन्तु उसके शत्रुओं की है अथवा यह कृषकों के लिए, जिन्हें चुपके-चुपके दबाया गया था, मोक्ष की अग्रसूचिका है; क्योंकि इस

विश्वास के अनेक भ्रमपूर्ण रूप फैले, किन्तु यह भावना सदा बनी रही कि पीटर दासों की उनके स्वामियों से रक्षा करने को सोच ही रहा था कि लोगों ने धोखे से उसका अन्त कर दिया।

पुगाचोव ने अपने अनुयायियों से सफाई दी : रईस मुझे क्यों नहीं चाहते, इसके पीछे महान् कारण है। बात यह है कि अनेक नवयुवक और प्रौढ़ रईस, यद्यपि वे सेना में सेवा के योग्य थे और उन्हें पद मिले थे, मौज की जिन्दगी बिताने के लिए अवकाश प्राप्त कर गाँवों में चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने किसानों को बरबाद कर दिया। किसान सीधे थे और ये रईस ही सारे साम्राज्य पर अपना शासन करने लगे। अतः, मैं इन्हें सैनिक सेवा के लिए बाध्य करने लगा और इनसे उनके गाँवों को छीन लेना चाहा, जिसमें कि ये केवल वेतन पर ही नौकरी करें। और, जो अफसर मुकदमा देखते थे और अन्याय करते थे तथा प्रजा को पीडा देते थे, उन्हें मैंने दण्ड दिया और उन्हें फाँसी पर लटकाना चाहा। और इसीलिए, उन्होंने मेरे लिए खाई खोदनी शुरू की। और, जब मैं सन्त पीटर्सबर्ग में 'नेवा' नदी में नौका चला रहा था, उन्होंने मुझे कैद कर लिया। मेरे विषय में झूठी कहानी रची गई और उन्होंने मुझे पृथ्वी पर इधर-उधर भटकने के लिए मजबूर कर दिया। किन्तु, अनेक वर्ष तक विदेशों में यात्रा के बाद पीटर लौटा; क्योंकि मैं देखना चाहता था कि जनसाधारण की क्या दशा है तथा अफसर लोग उसके ऊपर किस प्रकार अत्याचार कर रहे हैं। अब वह फिर अपनों के बीच आ गया था। तुरत वह अपने बेचारे प्रिय पुत्र पाल का साथ देगा। (पाल बाद में सम्राट् बना। उस समय उरल के कजाकों के अनुसार पाल की अपनी माँ कैथरीन से एकदम नहीं पटती थी)। वह कजान, मास्को और सन्त पीटर्सबर्ग जायगा। मैं कैथरीन को 'नन' बनाकर बाहर कर दूँगा या उसे अपने मैके जर्मनी भेज दूँगा। और, यदि वह मुझसे गाली-गलौज करेगी, तो मैं जो करूँगा, उसका निश्चय भी कर लिया है।

इस प्रकार, अफवाहों और अन्धविश्वासों का जाल सर्वत्र फैलने लगा। ये समाचार कपटी सम्राट् के मुख्यालय तथा युद्ध-कॉलेज से फैल जाते। सन्त पीटर्सबर्ग की नकल में मुख्यालय और युद्ध-कॉलेज बने थे। लोग सम्राट् के आदेश तथा बनावटी घोषणाएँ लेकर स्टेपीज की ओर दौड़ते थे। इन घोषणाओं में सुमधुर प्रिय वाक्य रहते थे, जिनमे खानाबदोश जनता को लाभ पहुँचे। पुगाचोव लगभग निरक्षर था, किन्तु इसकी लोग परवाह नहीं करते थे। उसकी भाभी उरल कजाक-प्रदेश की थी। उसकी दूसरी भाभी तथा परिवार दोन-तट पर थे। उसके समीप के साथी जानते थे कि पुगाचोव सत्यतः क्या है। दूसरे भी उसके प्रति शंका करते थे, किन्तु यदि एक बार इन विप्लवियों का सरदार बन जाता, तो सब कुछ वैध हो जाता।

किसान-विद्रोह

सन् 1764 ई० में एक अँगरेज पर्यवेक्षक लिखता है—इस देश की आन्तरिक स्थिति ऐसी है कि सर्वत्र उत्तेजना है और प्रत्येक कोने में विस्फोट रखा है। किन्तु, वस्तुतः ये विस्फोटक इतने स्थानीय और विलग थे कि स्थानीय शक्ति उनका सहज दमन कर सकती थी या साधारण सेना उन्हें कुचलकर उनपर जुरमाना कर सकती थी। केवल बड़े-बड़े विद्रोहों में, जिनकी अभी व्याख्या की गई है, वस्तुतः युद्ध करने की आवश्यकता पड़ी, भले ही यह छापामारी युद्ध हो। नियमित सेनाओं की बहाली करने की आवश्यकता पड़ गई। द्वितीय श्रेणी के जो सेनागार निर्जन एकान्त में थे, वहाँ विप्लवी सचमुच भयंकर आतंक मचा सकते थे; किन्तु विश्वस्त सेना के सामने वे ठहर नहीं सकते थे। विद्रोहियों के पास हथियार अधिकांशतः बहुत तुच्छ थे। कुछ छीने गये बन्दूकों को छोड़कर वे एक प्रकार से विना हथियार के थे। उनके पास घोड़े भी कम ही थे। उनमें क्रमिक संगठन तथा सैनिक अनुशासन का अभाव था। वे प्रायः सदा स्वच्छन्द विचरते थे। वे जहाँ चाहते, आग लगा देते थे, किन्तु उनके पास ठोस भट्ठी नहीं थी। महान् विद्रोहों की भी असफलता का मूल कारण यही था कि वे स्थानीय विद्रोह ही रहे। अधिकांश विद्रोही दल बहुत छोटे क्षेत्र में काम करते थे। उनकी संख्या जब अधिक-से-अधिक होती, तब 15,000 या 20,000 के करीब हो जाती। किन्तु, इनकी संख्या बहुत तेजी से घटती और बढ़ती थी। सबसे बड़ी बात यह है कि बोलोत्निकोव के विद्रोह में ही कुछ आंशिक सफलता मिली, अन्यथा किसी भी विद्रोह में सफलता न मिल सकी। न तो उन्हें दासता के केन्द्र में ही और न शासकीय शक्ति में ही कुछ अधिकार मिले।

★

चतुर्थ अध्याय

गिरजाघर[1] (पादरी)

1. क्रान्ति और धर्म :

सोवियत-संघ की यह विशेषता रही है कि यह पहला राष्ट्र है, जहाँ बागडोर एक ऐसे शासक दल के हाथ थी, जिसने इस बात की घोषणा की कि सभी धर्मों का, चाहे उनका कोई भी रूप हो, विरोध करना हमारे सिद्धान्त का एक अंग है। किन्तु, अन्तत: इसका विकास ऐसा हुआ कि इस भावना में उल्लेखनीय सुधार हो गया। लेनिन ने नैयायिक भौतिकवाद का विकास किया। वह मार्क्स का नारा अन्त:करण से मानता था कि धर्म जनता के लिए अफीम है। उसने इसका लक्षण बतलाया कि धर्म एक आदर्शवाद है। इसका आधार है प्राकृतिक शक्तियों तथा वर्त्तमान राजशक्ति से भय ! यह पूँजीवाद का एक समर्थक है तथा विज्ञान का कट्टर शत्रु, इस हेतु उसने इसका विरोध किया। रूस में क्रान्ति-आन्दोलन के सभी दल सरकारी राज्य-पादरियों को शत्रु की दृष्टि से देखते थे। रूस के अधिकांश निवासी प्राचीन ईसाई-धर्म के अनुयायी थे। क्रान्तिकारी इन्हें एकतन्त्र संगठन का अंग मानते थे और दोनों मिलकर ईश्वर-प्रभुत्व की निरंकुशता स्थापित करते थे। अत:, ज़ार के पतन से सनातनी पादरियों का पतन भी अवश्यम्भावी था और अक्तूबर-क्रान्ति के बाद शीघ्र ही धर्म पर खुल्लम-खुल्ला आघात शुरू हो गये, जिसमें चेतना को सच्ची स्वतन्त्रता मिले।

गृहयुद्ध में अनेक पादरी नेताओं ने श्वेत धर्म का साथ दिया था। इससे एवं मित्रराष्ट्रों के हस्तक्षेप से यह विश्वास और भी दृढ हो गया कि सनातनी पादरी केवल भूतकाल में ही प्रतिक्रियावादी न थे, अपितु वर्त्तमानकाल में भी क्रान्ति के विरोधक हैं। रूसी साम्राज्य में कैथोलिक खासकर पौलेण्ड-निवासी थे।

---

1 कार्यकर्त्ताओं के विवेक की सच्ची स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए गिरजाघर राज्य से अलग हैं तथा विद्यालय गिरजाघर से विलग कर दिये गये हैं। प्रत्येक नागरिक को धार्मिक तथा धर्मविरोधी प्रचार करने की स्वतन्त्रता है।—रूसी समाजवादी संघीय सोवियत गणतन्त्र का संविधान (जुलाई, १९१८; धारा १३)

अतः, सन् 1920 ई० में जब सोवियत-पोलैण्ड-युद्ध छिड़ा, कैथोलिकों को लोग और भी शंका की दृष्टि से देखने लगे। कैथोलिकों के अन्तरराष्ट्रीय चरित्र से सोवियतों की शत्रुता और भी उत्तेजित हो उठी। मुसलमान कुल दो करोड़ थे। आपसी फूट होने पर भी ये 'इस्लाम सर्वस्व' और रूस-विरोधी प्रभावों के वश में थे खासकर मध्य एशिया में। साम्यवादियों को इन्हें पुनः जीतने में मुसलमानों के अधिकृत स्वार्थ के विरुद्ध घोर संघर्ष करना पड़ा; क्योंकि मुसलमानों को देश के बाहर का भी कुछ समर्थन मिल जाता था। किन्तु, यहाँ एक उत्कृष्ट परिवर्त्तन यह हुआ कि तुर्की ने रूसी मुसलमानों के लिए प्रभावशाली चुम्बक का काम करना छोड़ दिया; क्योंकि वहाँ मुस्तफा कमाल का नूतन राज्य धर्म-निरपेक्ष था।

धर्म के विरुद्ध, खासकर सनातनी और कैथोलिक धर्मावलम्बियों के प्रतिकूल खुल्लम-खुल्ला आक्रमण विभिन्न रूपों में हुआ। राज्य ने पादरियों को सभी प्रकार का भुगतान बन्द कर दिया। विद्यालयों और धार्मिक गोष्ठियों में धार्मिक शिक्षा पर प्रतिबन्ध लग गया। गिरजाघर बन्द कर दिये गये। पादरियों का छिटपुट खून होने लगा। गिरजाघर की सम्पत्ति लूटी जाने लगी या उन्हें जब्त कर लिया गया। पादरी और श्रद्धालु ईसाइयों को बन्दी बनाया जाने लगा या उन्हें राजनीतिक आधार पर कि, वे क्रान्ति-विरोधी दल के समर्थक हैं, फाँसी पर लटकाया जाने लगा। प्रारम्भिक अराजकता के वर्षों और गृहयुद्ध के बाद पादरियों के विरुद्ध हिंसक कर्म कम हो गये। अंशतः चूँकि सोवियत शासन अपना जड़ जमा चुका था और अंशतः चूँकि लोगों ने यह समझ लिया, जैसा शिक्षाकमिश्नर लुनाचस्की ने कहा—"धर्म एक कील के समान है और जितने ही जोर से इसे ठोंकोगे उतना ही गहरा लकड़ी में धँसता जायगा।"

लेनिन और साम्यवादी दल ने इस बात पर सदा जोर दिया था कि 'धार्मिक पूर्वाग्रहों का पूर्णतः सफाया' तभी सम्भव होगा, जब समाज का पूर्णरूपेण पुनः निर्माण होगा तथा नई शिक्षा का प्रसार होगा। अतः, लोगों ने धार्मिक प्रभाव को मिटाने का प्रयत्न प्रत्यक्ष रूप से कम कर दिया और इसका बहुत ही अधिक असर पड़ा। किसी भी विद्यालय में धार्मिक शिक्षा अब बन्द हो गई। कर लगाने में किसी प्रकार का भेदभाव न रहा। छापाखानों पर सरकारी नियन्त्रण हो गया तथा गिरजाघरों को (लाइसेंस) अनुमति लेनी पड़ती थी। इस प्रकार, एक पीढ़ी तक साम्यवादी सिद्धान्तों की शिक्षा पर जोर दिया गया। इस शिक्षा-पद्धति को धर्म से दूर रखा गया और इसमें धर्म की आवश्यकता ही नहीं समझी गई; क्योंकि इस शिक्षा का विकास नूतन आर्थिक और सामाजिक ढर्रे पर हुआ था। इसी बीच

पादरियों से भी कुछ समझौता हो गया। सनातनी पादरियों की फूट का लाभ उठाकर जनता पर इनका प्रभाव कम कर दिया गया। 'नामधारियों' तथा रूस के अन्य मतावलम्बियों का कुछ पक्ष लिया गया; क्योंकि इनका सामाजिक दृष्टिकोण साधारणतः सदा राजा के प्रतिकूल था और ये समतावादी थे।

सन् 1929 ई० में धुआंधार सामूहिकीकरण हुआ। प्रथम पंचवर्षीय योजना भी इसी वर्ष आरम्भ हुई। अब सैनिक कारवाई पुनः शुरू हुई। राजतन्त्र ने सारा बल धर्म के प्रतिकूल लगा दिया। गुप्त पुलिस तथा अनीश्वरवादी योद्धासंघ ने इसमें विशेष सहायता पहुँचाई। इसी वर्ष एक संशोधन के द्वारा धर्म तथा धर्म-विरोधी प्रचार की स्वतन्त्रता विखण्डित कर दी गई, जिसका आश्वासन सन् 1918 ई० के संविधान में दिया गया था। अब केवल धर्म-विरोधी प्रचार का अधिकार ही अवशेष रहेगा। सन् 1936 ई० के संविधान में इसकी पुनरावृत्ति की गई, किन्तु इस संविधान से पादरियों की स्थिति सुधर गई। पहले किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय का महन्थ या पुजारी निर्वाचित नहीं हो सकता था। अब इस नियम को रद्द कर दिया गया तथा एक विशेष विधि द्वारा सब को धार्मिक पूजन की स्वतन्त्रता दी गई। पहले विवाह और परिवार के प्रति जो भर्त्सना की भावना थी, वह भी एकदम बदल गई। रविवार आराम का दिन निश्चित कर दिया गया। केवल सन् 1937–38 ई० में पादरियों पर पुनः आक्रमण की बात के सिवा सामान्य नीति यही रही कि कम-से-कम सनातनियों के प्रति उदारता का व्यवहार हो।

सन् 1941 ई० में अनीश्वरवादी योद्धासंघ की सदस्यता 3,50,00,000 थी, तो भी सन् 1930 ई० के पहले से ही इसके कार्यों में जडता तथा विरमता आ गई थी और देश के कम-से-कम अनेक गांवों में धर्म का अडिग राज्य चला आ रहा था। सन् 1937 ई० में संघ-प्रधान ने हिसाब लगाया था कि नगरों में सोलह वर्ष के अधिक उम्रवालों में दो-तिहाई ईश्वर में विश्वास नहीं रखते, किन्तु गांवों में केवल एक-तिहाई ही शायद ईश्वर में विश्वास नहीं करते। साथ ही, यह बात भी समझ लेना चाहिए और सोवियत आंकड़ों से यह सम्भव है कि सन् 1941 ई० में सनातनी गिरजाघरों की संख्या सन् 1900 ई० की अपेक्षा दसगुना कम हो गई थी तथा गृहस्थ पादरियों की संख्या कम-से-कम अष्टांश कम हो गई थी तथा संन्यासियों और वैरागिनों का लोप हो चुका था। सन् 1928 ई० से ही यह संख्या बहुत अधिक घटने लगी थी।

जून, 1941 ई० में जब जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया, तब पादरियों ने देशभक्ति और वीरता के साथ देश का साथ दिया और पहले जब पादरियों को

सोवियत-संघ के विरुद्ध विदेशियों के मित्र कहा जाता था, वह बदनामी मिट गई। साम्यवादियों का पादरियों के प्रति युद्ध-प्रवृत्ति का प्रधान कारण यही था और अब यह दुश्मनी समाप्त हो गई। परिणाम यह हुआ कि पादरियों के प्रति सरकार का रुख एकदम बदल गया। सितम्बर, 1943 ई० में पादरी-कुलपति का चुनाव हुआ और स्तालिन ने इसका अनुमोदन किया। इससे यह स्पष्ट है कि सरकार का रुख कितना बदल गया है और यह सम्भव है कि नई सोवियत स्वामिभक्ति के कारण धार्मिक दृष्टिकोण और इसका ऐतिहासिक स्वरूप ही बदल जाय; क्योंकि इस स्वामिभक्ति में रूस की परम्परा और अतीत के तथ्यों का ध्यान रखा गया है।

कीव रूस में दसवीं शती में ईसाई-धर्म पहुँचा। अब रूसी इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि इससे सभ्यता की बहुत प्रगति हुई। मंगोल-काल में धार्मिक भावना बहुत तेजी से बढ़ी तथा नूतन वैराग्य-आन्दोलन से यह भावना और भी दृढ़ हो गई। सनातनी पादरी मास्को के उदीयमान राज्य के मित्र बन गये। सन् 1450 से 1650 ई० तक धर्मपरायणता राष्ट्रीय और स्वदेशानुराग-पूरित बल था, किन्तु क्रमशः पादरी लोग सन्त पीटर्सबर्ग के निरंकुश शासन के पिट्ठू हो गये, जिसका बुरा फल हुआ। सत्रहवीं शती के चतुर्थांश में पादरियों में फूट हुई, जिससे सरकारी गिरजाघर जारशाही के पूर्ण दासानुदास हो गये। और, दूसरी ओर शासक-शक्ति के प्रतिकूल जो विरोधी सम्प्रदाय थे, उन सम्प्रदायों की संख्या कई गुनी बढ़ती गई। धीरे-धीरे धर्म सनातनी पादरियों के सर्वांग कवच के चंगुल से सुदूर होता गया। सन् 1917 ई० में पादरी कई तरह से खोखले हो गये थे। किन्तु, ईसाई-मत में अभी जीवन-शक्ति थी; क्योंकि हजारों वर्षों से रूसवासी इसके लिए संघर्ष करते आ रहे हैं।

2. विजयन्त ईसाई-धर्म तथा रूस :

दसवीं शती के उत्तरार्द्ध में यूरोप के पूर्वी और उत्तरी सीमा पर ईसाई-धर्म का प्रचार खूब जोरों से हुआ; क्योंकि वहाँ के शासकों ने ईसाई-धर्म की दीक्षा ली और इसके बाद ही ईसाईधर्म राज्यधर्म हो गया। स्केण्डिनेविया, पोलैण्ड, हंगरी तथा रूस ने ईसाई-धर्म में प्रवेश किया। स्कैण्डिनेविया, पोलैण्ड तथा हंगरी को रोम के पादरियों ने ईसाई-धर्म में परिवर्तित किया, परन्तु रूस को ईसाई-धर्म विजयन्त से मिला। इसके एक शती पहले ही चेक और दक्षिणी स्लावों के बीच ईसाई-धर्म के प्रचार के कारण साइरिल तथा मेथोडियस स्लावों के धर्मदूत के रूप में ख्याति पा चुके थे। वे कुस्तुन्तुनिया से आये थे, किन्तु वे रोम से बहुत

हिलमिल कर ईसाई-धर्म का प्रचार करते थे। वोहेमिया और अद्रियातिक के मध्य जो अन्ततः ईसाई-धर्म की स्थापना हुई, उसका श्रेय है फ्रांक[1] और लातिन[2] को। बालकन स्लाव कुछ दिनों तक इधर-उधर भटकते रहे, किन्तु अन्ततः ग्रीस के सनातनी पादरियों की शरण में चले गये।

रूस का ईसाई-धर्म में परिवर्तन होना, कीव रूस के साथ विजयन्त-साम्राज्य और वलगेरिया के सैनिक, राजनीतिक और व्यापारिक सम्बन्ध का मिश्रित फल है। इसकी शुरुआत सन् 988 ई० में होती है, जव व्लाडिमीर ने ईसाई-धर्म की दीक्षा ली। वह कीव का महाराजकुमार था। यह वरांगी युद्धनेता अव स्लाव वन चुका था। इसे हम रूस का राजर्षि कह सकते हैं, जिस प्रकार नार्वे में ओलफ तथा हंगरी में स्टीफेन था। ईसाई-धर्म की दीक्षा लेने के वाद शीघ्र ही इसने विजयन्त-सम्राट् की वहन से विवाह किया तथा मूर्त्तिपूजा का विनाश और ईसाई-धर्म का प्रचार आरम्भ किया। कीव और अपने आश्रित रूसी प्रदेशों में उसने ईसाई-धर्म फैलाया। इन रूसी प्रदेशों में इसके परिवार के लोगों का राज्य था, जो समुद्री डाकुओं के सरदार सरिक (मृत्यु सन् ८७० ई०) के वंशज थे। व्लाडिमीर, के अर्द्धशती पहले ही कीव में ईसाई-धर्म फैल गया। यह अमीरों और सामर्थ्यशालियों का धर्म माना जाता था। उसकी नानी (मातामही) और अनेक वैयक्तिक नेता ईसाई हो चुके थे और पश्चिमी यूरोप से सम्वन्ध होने से लातिनों से भी नाता जुट गया था। सरिक-राजघराने की विजयन्त-राजकुमारियों से इतने विवाह न हुए, जितने पश्चिमी यूरोप के राजवंशों से। अतः, धार्मिक वातों में कुस्तुन्तुनिया के अधीन होने पर भी तेरहवीं शती तक अधिक वैवाहिक सम्वन्ध होने से पश्चिमी यूरोप और फलतः लातिन से नाता वढ़ता ही गया। यदि सच पूछा जाय, तो एकादश और द्वादश शतियों में रूस का यूरोप से वहुत अधिक सम्वन्ध था किन्तु उसके वाद इतना सम्वन्ध न रह सका। यद्यपि पन्द्रहवीं शती के अन्त में पुनः यह सम्वन्ध वढ़ने लगा। रूस ने ईसाई-धर्म को ऐसे अवसर पर ग्रहण किया, जव पोप और पादरी-कुलपति में इतना विरोध फैला हुआ था कि पूर्वी और पश्चिमी पादरी दो दलों में खण्डित हो गये थे, किन्तु रूस में पूर्व और पश्चिम का विभेद मंगोल-विजय के कारण हुआ, न कि विजयन्त से ईसाई-धर्म स्वीकार करने के कारण।

तो भी प्रारम्भिक शतियों में मतभेद हो गया था, फूट भले ही न हुआ हो। मध्यकालीन पश्चिमी यूरोप की अपेक्षा रूस में न तो संन्यास-प्रथा थी, न विधिवत्

---

1. फ्रांक जर्मन जाति के थे। फ्रांसोनिया इनका आदि निवास था। पाँचवीं शती में इन्होंने गोल जीता और फ्रांस वसाया।
2. रोम के पास एक जिले का नाम लातियम् था। यहाँ के वासी और भाषा को लातिन कहते हैं।

गिरजाघर की डिग्री, न तपस्वी, न धर्मयुद्ध, न शौर्य, न धर्माधिकारियों द्वारा भौतिक शासन को नीचा दिखाने की चुनौती (आह्वान) और न दार्शनिक या वैज्ञानिक खोज ही। विजयन्त से सनातन ईसाई धर्म विरासत में पाने का यह अर्थ, जो कुछ निश्चित हो चुका है उसी का परिरक्षण करना था और इस तरह अपने सारे इतिहास में रूसी गिरजाघर अध्यात्म-विद्या तथा दार्शनिक सृजन में सदा निर्बल ही रहा है।

इसके चार शती पूर्व इंगलैण्ड में जब धर्मदूत गये तब उनका काम प्रधानतः राजकुमारों और उनके अनुयायियों को ही ईसाई धर्म में परिवर्तन करना था और चतुर्दश शती के मध्य तक उन लोगों ने कोई भी ऐसा काम नहीं किया जैसा केल्ट के ईसाई धर्मदूतों ने। केल्ट के ईसाई धर्मदूतों ने सारे आंग्ल-सैक्सन इंगलैण्ड को ईसाई धर्म में परिवर्तन कर दिया। रूस में भी ऐसा ही हुआ। मूर्तिपूजक डटकर विरोध करने में असमर्थ रहे; क्योंकि स्लाव-जाति का कोई सामान्य धर्म न था और न उनका पौरोहित्य ही दृढ़ था। अतः नूतन ईसाई धर्म के प्रतिकूल उनका कोई निहित स्वार्थ न था। अधिकांश जनता जबकि नाम के लिए ईसाई हो गई थी, तब भी चिरकाल तक अपनी प्राचीन परम्परा और विश्वासों पर चलती रही। इन्द्रजाल, जादू-टोना, डाइनपना तथा शकुन का प्रभाव सोलहवीं शती तक वैसा ही बना रहा जैसा तेरहवीं शती में था। सन् 1274 ई० में पादरी-परिषद् ने नियम बना दिया कि जिस किसी ने भी पहले इन्द्रजाल सीखा होगा, उसे पुरोहित-कर्म में दीक्षित नहीं किया जायगा। रूस के गिरजाघर कुस्तुन्तुनिया के अधीन थे, अतः इनका संगठन और पूजापद्धति भी उसी आधार पर हुई। किन्तु विशाल आकार, सुदूर देश, और विभिन्न सामाजिक तथा राजनीतिक ढांचा होने के कारण दोनों देशों के गिरजा-संगठन और पूजा-पद्धति में बहुत अधिक विषमता थी। नवागंतुक ईसाई धर्मदूत दृढ सम्राट्-शासन तथा राजनीतिक केन्द्रीयकरण के अभ्यस्त थे, किन्तु कीव रूस में इन दोनों का अभाव था। धर्मदूतों की संख्या बहुत कम थी, अतः वे राजनीतिक ढांचा बदलने के प्रयास में असमर्थ रहे। उन्होंने कुरीतियों, विशेषतः राजकुमारों के आन्तरिक कलह को दूर करने का प्रयत्न नहीं किया। इन्हें दूर करने के लिए पादरियों ने प्रायश्चित्त तथा धर्मदण्ड लगाया। लेकिन धर्म-बहिष्कार के अस्त्र का प्रयोग राजकुमारों के विरुद्ध बहुधा नहीं किया जाता था।

कीव के प्रधान पादरी को कुस्तुन्तुनिया का कुलपति नियुक्त करता था और वह उसी के अधीन था। सन् 1037 ई० से कीव का पादरी ही गिरजाघरों का प्रधान बना रहा। अन्य पादरियों को स्थानीय राजकुमार नियुक्त करते थे, किन्तु प्रधान पादरी उनका अभिषेक करता था। सन् 1156 ई० के बाद नवगोरद के पादरी को नगर-सभा नियुक्त करती थी। पहले तो पादरी ग्रीस के होते थे, किन्तु शीघ्र ही

अधिकतर रूस से ही पादरी चुने जाने लगे। इसके विपरीत 200 वर्ष तक तो सभी प्रधान पादरी ग्रीस के हुए। केवल दो व्यक्तियों के विषय में विवाद है। किन्तु उसके बाद दो शतियों में (सन् 1238–1448 ई०) पादरी कुलपति महाराजकुमार तथा रूसी पादरी-परिषद् के हक को रोकने में पूर्ण सफल न हो सके। महाराजकुमार तथा रूसी पादरी-परिषद् चाहती थी कि कीव का प्रधान पादरी रूसी ही हो, किन्तु तो भी 10 प्रधान पादरियों में केवल तीन रूसी थे जबकि पाँच ग्रीस के और दो बल्गेरिया या सर्बिया के। जैसी ग्रीस के पादरियों में प्रथा थी, वही परम्परा यहाँ भी चल पड़ी और आगे नियम बन गया कि पादरियों का चुनाव संन्यासी या कृष्ण वस्त्रधारी पादरियों में से ही हो; क्योंकि ग्रीस के गिरजाघरों में गृहस्थ या श्वेत वस्त्रधारी पादरी विवाह करते थे। प्रधान नगरों में संन्यास-धारण की प्रथा खूब फैल गई। कीव में ख्यात गुहामठ के विशेष प्रभाव के कारण यहाँ के लोगों ने कुस्तुन्तुनिया के स्टुडिअस महामठ की परम्परा को जोर-शोर से सामान्य जीवन में अपनाया।

बड़े-बड़े गिरजाघर और मठों के लिए शीघ्र ही दशांश, भूमि और विभिन्न दान का प्रबन्ध हो गया, किन्तु निम्न श्रेणी के पादरियों के लिए किसी प्रकार का नियमित प्रबन्ध न हो सका। ये निम्न श्रेणी के पादरी मठाधीशों या जमीन्दारों के आश्रित बन गये, जो इनकी नियुक्ति या पदच्युति में मनमाना करते थे। किन्तु सोलहवीं और अठारहवीं शती में इन लघु पुजारियों की नियुक्ति बड़े पादरी के हाथ से होने लगी। कालान्तर में जीविका-विहित लघु पुजारियों और अज्ञात कुल के संन्यासियों की संख्या बढ़ने लगी और धार्मिक एवं सामाजिक अनिष्ट होने लगे। लेकिन इसका सुधार अठारहवीं शती से होने लगा। निम्न श्रेणी के पुजारियों की वंश-परम्परा जाति बन गई। ये अधिकतर अनपढ़ थे। ये सामान्य कृषक-श्रेणी से कुछ ही बढ़कर या प्रायः उनके समान ही थे। किन्तु ये सामान्य जनता से ही उत्पन्न थे और उसके साथ ही रहते थे। ये जनता के पाप-पुण्य में भाग लेते थे और जो सचमुच धार्मिक प्रवृत्ति के थे, उनका प्रभाव बहुत जबर्दस्त था।

ईसाई धर्म स्वीकार करने से विजयन्त-राज्य के वैधानिक सिद्धान्तों का प्रभाव बढ़ गया तथा विजयन्त-सम्राटों के नागरिक और धार्मिक कानून रूस के परम्परागत कानून पर लाद दिये गये। एक प्रकार की धार्मिक कचहरी की प्रथा चल पड़ी। इस कचहरी का क्षेत्राधिकार सभी पादरियों पर था। पश्चिमी यूरोप की अपेक्षा यहाँ पादरी की परिभाषा बहुत व्यापक थी। महान् फौजदारी अपराधों को छोड़कर पादरी-सम्बन्धी मुकदमों का फैसला यही कचहरी करती थी। इसके सिवा यह कचहरी अन्य सभी लोगों के चरित्र, विश्वास तथा ईसाई धर्म के नियम-पालन, वैवाहिक सम्बन्ध और फलतः उत्तराधिकार-संबंधी मुकदमों की देखरेख करती थी।

जिन दीवानी और फौजदारी अभियोगों में पादरी और गैर-पादरी दोनों सम्बद्ध होते, उनका फैसला धार्मिक और नगर-अधिकारी संयुक्त रूप से मिलकर कर लेते थे। दोनों न्यायालयों के क्षेत्राधिकार की सीमा शंकास्पद थी और शतियों में उनमें स्वाभाविक अन्तर होता गया। उनमें कभी-कभी संघर्ष भी हो जाते थे। किन्तु जैसा संघर्ष हेनरी द्वितीय और बेकेट में हुआ वैसा पहले कभी न हुआ था। मास्को के पादरी कुलपति निकन ने धार्मिक प्रभुत्व तथा सम्पत्ति के अधिकार की कटौती को चुनौती दी, जिसे सन् 1649 ई० में विधान-सभा द्वारा स्वीकृति मिली थी। निकन को अंशत: सफलता मिली, किन्तु महान् पीटर के द्वारा नागर कचहरियों की विजय पूर्णरूपेण स्थापित हो गई।

चौदहवीं शती से पादरियों का क्षेत्राधिकार अधिक-से-अधिक प्रमुख होता गया, विशेषाधिकार का क्षेत्र जैसे-जैसे बढ़ा, आय का स्रोत भी उसी अनुपात से बढ़ता गया। मठ और धर्माध्यक्ष बड़े जमीन्दार बन गये। रैयतों और किसानों पर उनका विशेष अधिकार हो गया यद्यपि ये अधिकार घटते-बढ़ते रहे। कर, व्यापार तथा सेवा के संबंध में भी उनके विशेष अधिकार थे। अत: सत्रहवीं शती में जब दासता सामान्य रूप से स्थापित हो गई तब ये पादरी भी साधारण जमीन्दारों की तरह दासों को रखते थे और उन दासों पर उनके अधिकार भी विस्तृत थे। इस विकास-क्रम में रूसी गिरजाघर मध्यकालीन पाश्चात्य गिरजाघरों के ही समान थे। किन्तु इंगलैण्ड और फ्रांस के मध्यकालीन गिरजाघरों से ये एकदम भिन्न थे; क्योंकि इनके अधिकांश प्रशासकीय, नैयायिक और आर्थिक कार्यों को गृहस्थ लोग पादरियों के नाम पर करते थे। इससे राज्य और गिरजाघरों के बीच वैमनस्य भी कम हो गया तथा न्यायालयों और देश की धर्म-निरपेक्षता में भी सहायता मिली। इसका वर्णन आगे होगा।

विजयन्त से रूस को पाँच दान मिले—धर्म, विधि, विश्वदर्शन-कला तथा लेख। सिरिलिक लिपि का आविष्कार नवीं शती में ग्रीक के आधार पर सिरिल के द्वारा किया गया, जो मैथोडियस का भाई था। बलगरों से व्लाडिमीर ने इसे रूस में प्रतिरोपित किया; क्योंकि बलगरों की भाषा रूसी भाषा से बहुत मिलती-जुलती है। इसे पादरियों की स्लावनिक भाषा कहते थे। लिखित भाषा का यही रूप था। जनसाधारण की भाषा, सरकारी आवश्यकता तथा नागरिकों को पठन-पाठन की सुविधा मिल जाने से धीरे-धीरे रूसी भाषा का विकास हुआ, जो उसी लिपि में लिखी जाती थी और पादरियों की स्लावनिक भाषा से धीरे-धीरे विभिन्न होती रही। सत्रहवीं शती तक रूस की लिखित भाषा पर पादरियों की स्लावनिक भाषा का बहुत प्रभाव रहा, किन्तु अठारहवीं शती में यह प्रभाव एकदम समाप्त हो गया।

कीव रूस में जो भी ग्रन्थ लिखे गये, वे प्रधानतः धार्मिक, पादरी-संबंधी या कानून-संबंधी हैं और कुछ इतिहास हैं। इन ग्रन्थों में बाइबिल के अनुवाद, प्रार्थना-पुस्तिका, वृद्धजनों का विजयन्त-संग्रह, पादरी-परिषद् तथा नैयायिक पुस्तकों की बहुलता है। तेरहवीं शती से पहले की मौलिक रचनाओं, जैसे—विजयन्त के नमूने पर आख्यान, भाष्य तथा रूसी संतों के जीवन-चरित्र का प्रायः अभाव है। मुश्किल से उसके पहले के कुछ घोषणा-पत्र बचे हैं। अरबी और विजयन्त-लेखकों के अलावा कीव रूस के इतिहास का मुख्य लिखित स्रोत, वैधानिक कानून, नैयायिक पुस्तक तथा इतिहास है।

विजयन्त-सभ्यता को लिखित विरासत कुछ तो ग्रीक भाषा के सीधे अनुवाद से मिली, किन्तु अधिकतर साहित्य मूल ग्रीक-ग्रन्थों के दक्षिणी स्लाव-संस्करण से मिला। रूस में ईसाई धर्म के प्रारम्भ में बल्गेरिया का प्रभाव विशेष महत्त्वपूर्ण था। बाद में सन् 1350 और 1450 ई० के मध्य दक्षिण स्लाव में साहित्यिक, बौद्धिक और कलात्मक पुनर्जीवन ध्यान देने योग्य है। इनका रूस पर अच्छा प्रभाव पड़ा। अनेक ग्रीक-योगशास्त्र तथा तर्क-ग्रन्थों की रचना हुई, जिन्हें रूस में पहले लोग जानते भी न थे। साथ ही नये इतिहास, लोकगाथा और उपन्यास की रचना हुई। इसी समय कुछ रूसवालों को पहली बार ट्राय-कथा तथा महान् सिकन्दर की कथा का ज्ञान सर्विया के अनुवाद से हुआ। इसी प्रकार दक्षिणी स्लाव के प्रभाव से उस काल में रूस के हस्तलिखित ग्रन्थों की लिखावट में परिवर्त्तन हुआ।

प्राचीन जनसाहित्य प्रायः शून्य है। परन्तु बारहवीं शती के अन्त में 'इगर के मेजवान की कथा' हृदय को पिघला देती है। पश्चिमी यूरोप में यह बोरोडीन की नौटंकी और पोलोवत्सी नाच के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसे संगीत, जनकाव्य तथा लोक-प्रिय भाटों के कवित्व का रूप ही ऐसा था कि उन्हें लिखने की कम आवश्यकता पड़ती थी और पादरी इनकी खूब भर्त्सना करते थे; क्योंकि इन कथाओं का आधार होता था—मूर्त्तिपूजकों की मिथ्या कथाएँ तथा गैर-ईसाइयों के अन्ध-विश्वास। इनके सिवा पादरी सामाजिक नृत्य और खेल-कूद की भी निन्दा करते थे। केवल गत शती में वीरगाथाओं का संग्रह किया गया। इन गाथाओं को किसान तब भी गाते थे और जपते थे। कुछ गाथाओं का उद्गम स्पष्टतः दयालु राजकुमार व्लाडिमीर, जो कीव-राजवंश का सूर्य था अथवा सदको व्यापारी, जो नवगोरद का धनी महाजन था, के स्वर्ण-युग में है। नूतन नगर नवगोरद, नवगोरद था, किन्तु प्राचीन से भी प्राचीन था।

प्राचीन रूस का साहित्यावशेष बहुत ही कम है और उससे बौद्धिक एवं सर्जनात्मक निर्धनता का आभास होता है, तो भी कम-से-कम कीव, नवगोरद, व्लाडिमीर तथा कुछ अन्य स्थानों में ईसाई धर्म-प्रवेश का सौन्दर्य और भौतिक प्रभाव की परिपूर्णता का अवशेष वास्तुकला, चित्रकला तथा लघु-कलाओं में स्पष्ट झलकता

है। ये विजयन्त-साम्राज्य की देन हैं, जो अबतक हैं या कम-से-कम द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले तक रहीं। सोलहवीं शती तक वास्तुकला और चित्रकला पर धर्म का प्रभाव था। ईंट और पत्थर के भवन कम बनते थे और इनपर प्रायः पादरियों का एकाधिकार था। निपुण शिल्पी प्रायः ग्रीस में प्रशिक्षित किये गये होते थे। मास्को का सर्वप्रथम उल्लेख होने के 200 वर्षों के बाद, सन् 1367 ई० तक मास्को कि क्रेमलिन का दुर्ग लकड़ी का ही बना था। यहाँ तक कि सन् 1600 ई० तक, मठों को छोड़कर समस्त मस्कोवी में केवल दस ही पत्थर के दुर्ग थे। कला के क्षेत्र में रूस की वास्तुकला में विशेष ख्याति हुई। उन्नीसवीं शती में प्रचुर और आश्चर्य-जनक साहित्य की वृद्धि हुई। चिरकाल तक रूस ने तीन बार दूसरे देशों, जैसे विजयन्त, पुनर्जागरण और बरोक से सीखा। किन्तु इन विदेशी रूपों को रूस ने अपने जन्मजात तत्त्वों के साथ आत्मसात् कर लिया। काष्ठकला में इनकी योग्यता और निपुणता अपूर्व थी। आरमीनिया, ईरान और बाद में जर्मनी का भी प्रभाव पड़ा। इन सबका फल यह हुआ कि एक प्रकार का रूसी रंग सबपर चढ़ गया और यह वास्तुकला अब किसी प्रकार विदेशी न रही। ग्यारहवीं शती में सन्त सोफिया तथा कुस्तुन्तुनिया के अन्य गिरजाघरों की नकल कुछ हद तक हुई, किन्तु इसके बाद ही बारहवीं शती में विजयन्त-वास्तुकला का रूसी रूप स्पष्ट झलकता है। नवगोरद में पलाण्डु, काँच की शकल का रूसी गुम्बज, इसका ज्वलन्त उदाहरण है। सन् 1350 और 1450 ई० के बीच पुनः जोरों से रूसी नमूने बनने लगे। परन्तु पुनः इटली के शिल्पकारों का मास्को-क्रेमलिन पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा और मास्को-शैली चल पड़ी। इसी प्रकार चित्रकला पर भी प्रभाव पड़ा। काष्ठ की मूर्त्तियाँ बनीं तथा गिरजाघर की दीवालों पर पलस्तर सूखने के पहले चित्र बनाये जाने लगे। यह कला इन्होंने विजयन्त से सीखी। मूर्त्ति-विध्वंसकों से संघर्ष का यह अवश्यम्भावी फल था। इससे एक स्वतंत्र चित्रकला-पद्धति का विकास हुआ, जो रंग में चटक-दार और सौन्दर्य में गंभीर थी। इसमें बहुत ही सुन्दर सजावट थी। मध्यकालीन रूस की चित्रकला का महान् कारीगर रुबलीव इसी पद्धति का कारीगर है, जिसका उदय पन्द्रहवीं शती के आरम्भ में हुआ था।

3. मंगोल और महंथ :

मंगोल-विजय से रूसी जीवन के समस्त पहलुओं का कायापलट हो गया। मंगोल ईसाई धर्म स्वीकार करेंगे, इसकी आशा बहुत कम थी। इसकी आशा भी कम थी कि वे ईसाई धर्म को किसी भी रूप में, चाहे नेस्टोरस[1] मत के रूप में या सनातन

1. नेस्टोरिअस सन् 428 ई० में कुस्तुन्तुनिया का पादरी-कुलपति हुआ। सन् 431 में इफेसस की परिषद् ने इसे गद्दी से उतार दिया। यह ईश्वर को सत्य और ईसा मसीह को मनुष्य मानता था। यह दोनों के सम्मिलन पर विश्वास नहीं करता था और द्वैत मत का था।

मत से या पोप से स्वीकार करेंगे। सनातनी ईसाइयों को धर्माध्यक्षाधिकार मिले थे और बड़े-बड़े लोगों को उन्होंने अपने मत में परिवर्तित किये थे। पोप-मतावलम्बियों ने मंगोलों से सम्पर्क स्थापित करने का घोर यत्न किया और रूस के स्लावों को अपने पक्ष में करने के लिए मंगोलों का भय भी लोगों के सम्मुख रखा। किन्तु चौदहवीं शती के प्रारम्भ से निश्चित रूप से बुखारा और इस्लाम के पक्ष में पासा पलट गया। चार शतियों से वाल्गा-तट पर के बल्गर मुसलमान हो गये थे। राजनीतिक दृष्टि से भी इस्लाम-धर्म की आवश्यकता थी; क्योंकि स्वर्णदल और मिस्र के मामलूकों में फारस में मंगोल-वंश के विरुद्ध सन्धि हो गई थी। मिस्र के मामलूकों का उत्पत्ति-स्थान कृष्ण सागर की स्टेप-भूमि थी। खान ने ईसाई धर्म के प्रति सहिष्णुता की भावना दिखलाई और कुछ परिवर्तन के साथ रूस के पादरियों के क्षेत्राधिकार की स्वीकृति और करों से उनकी मुक्ति का पुनः एलान किया। किन्तु सत्य तो यह है कि सन् 1300 ई० के बाद समस्त स्टेप-भूमि के निवासी मुसलमान ही थे। अतः जब तातारों के प्रतिकूल रूस ने सिर उठाया तब इसने जनसाधारण तथा पादरियों की दृष्टि में एक प्रकार से धर्मयुद्ध का रूप धारण कर लिया। परन्तु सरकार इसे बहुत कम हद तक मानती थी। जबकि तातार-दल पैगम्बर को मानता था, उसके पश्चिम लिथुनियावासी, जो यूरोप में सबसे बाद में ईसाई हुए थे, चौदहवीं सदी में पोप को मानते थे। मंगोलों के आक्रमण से रूस के राज्य भी छिन्न-भिन्न हो गये थे और आपस में बँट भी गये थे। कीव तथा रूस की पश्चिमी भूमि पर लिथुनिया और पोलों का राज्य फैल न सका। लिथुनिया का संयुक्त महाप्रदेश चिरकाल तक पूर्णतः रूसी और स्वभावतः सनातनी बना रहा। किन्तु जबसे लिथुनियावासियों ने कैथोलिक मत स्वीकार किया, पोलों का प्रभाव बहुत बढ़ गया। सन् 1386 ई० के बाद लिथुनिया महाप्रदेश तथा पोलैण्ड का शासन एक ही वंश के अधीन था। इससे पोलों का प्रभाव और भी बढ़ गया। पश्चिमी प्रदेशों में सनातनी और रूसी प्रभाव नष्ट होता जा रहा था।

स्वर्णदल के प्रभुत्वकाल में मस्कोवी के अन्य प्रदेशों की तरह पादरियों को अपने ही पैरों पर खड़ा होना पड़ा, किन्तु इसके बाद ही धार्मिक जीवन में अपूर्व जागृति आ गई। सन् 1350 और 1500 ई० के मध्य लोगों में यति का जीवन बिताने की बहुत अधिक प्रवृत्ति बढ़ गई जैसी न तो पहले कभी थी और न बाद में ही हुई। रूस में ईसाई धर्म की प्रथम साढ़े तीन शतियों में एक सौ से अधिक मठों की स्थापना हुई। अधिकतर मठों की स्थापना सन् 1200 ई० के पहले हुई और करीब-करीब सबकी स्थापना कीव और नवगोरद-प्रदेशों में तथा नगरों में या उनके पास ही हुई। सन् 1340 और 1440 ई० के मध्य मस्कोवी में डेढ़ सौ से कम नये मठ नहीं बने, जिनमें अधिकांश मठ निर्जन वन में बने और उनकी संख्या बढ़ती ही गई।

नूतन मठ-आन्दोलन के विशिष्ट गुण इस प्रकार थे : ये ईसाई धर्म-प्रचार के अनुयायी नहीं थे, बल्कि इसके नेता थे। इसने राजकुमारों के दरबार तथा पादरियों की गद्दी को श्रेय नहीं दिया, बल्कि जंगली शून्य अरण्य को। इसने विभिन्न वर्गों से आबालवृद्धों को भरती किया। कृषकों से इसका सम्पर्क अधिक था यद्यपि यह सम्बन्ध सदा मैत्रीपूर्ण न था। ये किसानों से आगे भी रहे और पीछे भी। यह आन्दोलन वाल्गा नदी के पार उत्तर तक किसानों के साथ रहा और अन्ततः इसने अनेक धार्मिक नेताओं को उत्पन्न किया, जिनमें अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति थी। ये महा-तपस्वी थे और इनमें बाइबिल-विहित गुणों की व्यावहारिक योग्यता थी।

यद्यपि अधिकांश महंथ अल्पकाल के लिए ही विरक्त होते थे और यद्यपि एकान्तवासी योगी तथा विचरणशील खुदा के बन्दे (रामदास) तथा चपल दिव्य-दृष्टि मूर्ख[1] जो ईसा के लिए मूर्ख बने, वर्तमान काल तक जनता में प्रिय पूज्य और ख्यात थे, किन्तु रूस के संन्यासी सदा दान देने तथा चाण्डाल और दोनों की सहायता करने की पालिस्तिन के साम्प्रदायिक आदर्श की रक्षा करते रहे। वे एकान्तवासी मिस्र या सीरिया के योगियों के हठयोग की स्तुति, आदर्श समझ-कर नहीं करते थे। वे ज्ञान, धार्मिक भक्ति या विचारों में श्रेष्ठ नहीं थे। एथौस का प्रभाव पड़ने पर भी यहाँ अध्यात्म-विद्या-पारदर्शी अधिक न हुए। इनकी स्थायी विशेषता यही थी कि ये पवित्रता, विनम्रता, धीरता और प्रेम की भावना के लिए सतत प्रयत्न करते थे। यहाँ के सनातनी इसाई सीरिया के संत एफ्रियम को बहुत श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। रूसी जनता के इतिहास में अधिकतर यही विशेषता पायी जाती है कि वह विनम्र और सहनशील स्वभाव की होती है।

चतुर्दश तथा पंचदश शक्तियों में आदर्श रूप यही था कि वे छोटे उपनिवेश में बन्धु-सदृश रहते थे। इनमें संतों के गुण थे तथा इनका व्यक्तित्व विलक्षण था। पहले ये एकान्त में रहते थे। पुनः मठों में साधारण जीवन साम्प्रदायिक रूप में बिताने लगे और यहाँ से फिर व्यक्ति-रूप में साधु-संन्यासी सुदूर स्थान में जाकर इसी प्रक्रिया को दुहराते थे। इनके सामान्य संगठन के अभाव के कारण ही क्लूनी या सिटाक्स का विकास हुआ। इनके शाखा-उपनिवेश मातृमठ से जुड़ते जाते थे। जब मठों के दुर्दिन आये तब इससे सहज दुर्गुण भी पैदा होने लगे।

---

1. हम ईसा के लिए मूर्ख हैं, किन्तु तुम ईसा से विज्ञ हो। हम निर्बल हैं, किन्तु तुम सबल हो। तुम माननीय हो; किन्तु हम निन्दनीय हैं (कोरिन्थियन 4–10)। किन्तु ईश्वर की मूर्खता मनुष्य से अधिक चतुराई है और ईश्वर की निर्बलता मनुष्य से शक्तिशाली है। ईश्वर ने संसार की मूर्खता को इसलिए चुना कि चतुर चकरा जायँ तथा ईश्वर ने संसार की निर्बल वस्तुओं को इसलिए चुना, जिसमें जो अपने को सबल समझते हों, वे चकरा जायँ। (कोरि-न्थियन 1-25, 7)

नये मठों के सदस्यों का जीवन भी प्राय: उसी प्रकार की कठिनाइयों से बीतता था जिस प्रकार किसानों का। वे किसानों की तरह ही कठिन शारीरिक श्रम करते, गिरजाघर बनाते, लकड़ी काटते, भूमि खोदते तथा मछली पकड़ते थे। अनेक मठों ने वस्तुतः कृषक-बस्तियों की नींव डाली। मठों का विस्तार और उपनिवेशों का संबंध चोली-दामन का हो गया और इसका प्रभाव दूर तक पड़ा ज्योंही मठों को धन और विशेषाधिकार मिले।

चतुर्दश शती में तीन विशिष्ट व्यक्ति हुए। उस समय रूस में वे ही महान् गिने जाते थे तथा आज भी उनका नाम है--रदोनेज्ञ का सेरगियस्, अलेक्सिस महापादरी तथा पर्म का स्टिफेन। सेरगियस् (जन्म लगभग सन् 1314 ई०; मृत्यु सन् 1392 ई०) मास्को के संतों में सबसे अधिक लोकप्रिय हुआ। यह रूस के सभी मठों का मूर्धन्य और गुरु था। यह अपने समय में आध्यात्मिक प्रभाव में सभी लोगों से बढ़कर था। इसने एक मठ की स्थापना की—त्रायत्स्को सेरजियस्की, जो शीघ्र ही सबसे विशाल और रूस में सबसे धनी मठ हो गया। यहाँ पर लोग कठिन और नियमित जीवन व्यतीत करते थे, जिसका आधार स्टुडाइट नियम था। सहसा यह मठ अनेक विभिन्न मठों की जननी और आदर्श बन गया।

सेरगियस् राजनीतिक अड्डे से दूर रहता था यद्यपि कुलिकोवो की विजय का श्रेय उसी को है। उसने लोगों को ललकारा—"वीरता के साथ नास्तिकों का सामना करो, बिना डगमगाये, और तुम्हारी विजय होगी।" वह अपने प्रशंसक अलेक्सिस के ठीक विपरीत था। अलेक्सिस बहुधन्धी था। इसने बहुत देशाटन किया था। यह धार्मिक राजनीतिज्ञ तथा प्रशासक था। यह प्रथम मास्कोवासी महापादरी था। इसका जन्म सन् 1300 ई० के लगभग और मृत्यु सन् 1378 ई० में हुई। जीवन के अंतिम 25 वर्षों में मास्को के महान् राज्य में सबकी दृष्टि इसी पर लगी रहती थी। तीसरी आकृति स्टिफेन है। यह पर्म का प्रथम पादरी था। यह सुदूर उत्तरी भाग का निवासी था। सन् 1396 ई० में इसकी मृत्यु हो गई। यह एकदम भिन्न व्यक्ति था। यह ग्रीक का बड़ा भारी पण्डित और मठों में प्रशिक्षित व्यक्ति था। इसने ईसाई धर्म में परिवर्त्तन का कार्य उत्तर-पूर्व के जंगली प्रदेशों में किया। यह रूसीकरण के विपरीत था तथा जीरियनों को ईसाई धर्म में दीक्षित करने के लिए इसने एक नई लिपिमाला का आविष्कार किया, जिनके मध्य बहुत बहादुरी और व्यावहारिक श्रद्धा से उसने काम किया।

सन् 1300 ई० और 1500 ई० के मध्य 'कीव तथा समस्त रूस' का महापादरी, जो वास्तव में सन् 1300 ई० से ही मास्को में रहता था, प्रतिरोधी राजकुमारों तथा

सामन्तों के खिलाफ मास्को के महाराजकुमार के क्रमिक विकास तथा शक्ति के केन्द्रीकरण का समर्थक हो गया। महापादरी की उपाधि ही कीव के जरिये समस्त रूसी लोगों के संयुक्त होने का स्मरण दिलाती थी। मास्को तथा कुस्तुन्तुनिया के पादरी कुलपति की सहायता से डेढ़ सौ वर्षों तक ये गलिसिया और लिथुनिया में अलग सनातनी महापादरी की स्थापना रोकने के लिए संघर्ष करते रहे, यद्यपि इन्हें सफलता कभी-कभी ही मिलती थी। किन्तु पन्द्रहवीं शती में इन्हें विलगाव के तथ्यों को स्वीकार करना पड़ा। इसलिए यह ध्यान देने की बात है कि लिथुनिया-पोलैण्ड के विरुद्ध मस्कोवी-युद्ध अंशतः सनातनी ईसाइयों के नाम पर, संत व्लाडिमीर के उत्तराधिकारियों की पैतृक सम्पत्ति की पुनः प्राप्ति के लिए लड़ा गया। मास्को यदि तृतीय रोम था तो यह द्वितीय कीव भी था।

4. मस्कोवी-गिरजा :

सन् 1439 ई० में फ्लोरेंस-परिषद् में कुछ क्षणों के लिए लगा कि प्राच्य और पाश्चात्य गिरजाघरों को पुनः मिलाने का चिरकालीन प्रयास सफल हो गया। किन्तु रूस में शीघ्र ही इसे इनकार कर दिया गया। कृष्ण-रक्तांगी महापादरी इसिडोर, जिसने फ्लोरेंस की परिषद् में पुनः सम्मेल के पक्ष में सक्रिय भाग लिया था, को देश छोड़कर भागना पड़ा; क्योंकि महाराजकुमार और मस्कोवी के पादरियों ने मिलकर उसका विरोध किया। मस्कोवी को पक्ष में करने के पोप के सभी प्रयत्न निष्फल रहे। हाँ, पोलैण्ड में जेसुइटों की स्पष्ट विजय हुई। उन्होंने अधिकांश सनातनी ईसाइयों को अलग कर दिया और पोप की देखरेख में उनियात-गिरजाघर की स्थापना की (ब्रेस्ट की एकता सन् 1596 ई०)। फ्लोरेंस-परिषद् (सन् 1439 ई०) तथा कुस्तुन्तुनिया के अपहरण (सन् 1453 ई०) के प्रभाव के कारण मस्कोवी में गिरजाघरों के राष्ट्रीयीकरण तथा स्वतंत्रता की भावना तीव्र होने लगी। अब यह प्रश्न ही न रहा कि महापादरी की नियुक्ति कुस्तुन्तुनिया से हो या महापादरी रूसी न हो। किन्तु सन् 1589 ई० तक इसे मास्को के पादरी कुलपति की उपाधि मिल गई। इस प्रकार रूस ने उदाहरण रखा, जिसका अन्य सनातनी ईसाई देशों ने उन्नीसवीं शती में अनुकरण किया, कि राजनीतिक सत्ता ही पादरियों की स्वतंत्रता की व्याख्या करे।

नये मस्कोवी में धार्मिक राष्ट्रीयता का विकास हुआ। तातार-खनेतों पर आक्रमण होने से यह भावना और शक्तिशाली हो गई। राज्य और गिरजा दोनों सनातनी जार के व्यक्तित्व में एकदम घुल-मिल गये। प्रेस्टर जॉन की कथा के रूसी-अनुवाद में जार की स्थिति स्मरणीय है : "मैं जॉन जार और पादरी दोनों हूँ— भोजन के पहले पादरी और भोजन के उपरान्त जार। मैं 330 जारों पर शासन करता हूँ। मैं सनातन ईसाई धर्म का रक्षक हूँ।" मास्को केवल तृतीय रोम

ही न बना, वल्कि द्वितीय जेरूसलेम और द्वितीय नूह की नौका भी बन गया। यह सनातनी ईसाइयों का संरक्षक और भाण्डार भी था। रूस ईसाइयों का पवित्र रूस बन गया, जिससे ईसाई धर्म का पूर्ण आदर्श और अप्रतिहत स्वामिभक्ति प्रकट होती थी। ईसाई धर्म की यह भावना साम्यवाद की तरह थी। यह धर्म पूर्णरूपेण राष्ट्रीय था तथापि रूस के गिरजाघर ने विज़यन्त की परम्परा को कायम रखा, जो विश्वव्यापी ईसाई धर्म की परम्परा थी। फलतः मस्कोवी में सन्त-परम्परा की कठिन वेड़ियाँ और पूजा-पद्धति भंग होने के पश्चात् भी वहाँ का ईसाई धर्म विश्व-वन्दनीय बना रहा और रूसी विचारधारा तथा भावना में गत सौ वर्षों से इसी की प्रधानता रही।

रूस के ईसाई धर्म ने कभी धर्म-सुधार का स्वप्न नहीं देखा, जिसके दो प्रधान फल हुए—एक, राष्ट्रीय गिरजाघरों की उत्पत्ति तथा दूसरा, गिरजाघरों का अथवा मठों की भूमि का धर्मनिरपेक्षीकरण। ये बातें रूस में प्रायः उसी समय हुईं जब अन्य देशों में धर्म-सुधार के कारण गिरजाघरों का राष्ट्रीयीकरण और उनकी भूमि का राज्यीकरण हुआ। चौदहवीं और पन्द्रहवीं शती में एक धार्मिक भावना जोर से उमड़ पड़ी। उस समय गिरजाघरों की, खासकर मठों की, सम्पत्ति तथा भूमि बहुत बढ़ गई। इससे नियमित राज्य-कर तथा सेवा में बहुत कम सहायता पहुँची। सोलहवीं शती के मध्य में करीब-करीब एक-तिहाई भूमि मठों के कब्जे में थी। वे गृहस्थ जमीन्दारों से स्पर्द्धा करते थे और किसानों को अपनी रियासत में ले जाकर बसाने में सफल हुए। उनके पास नकद रुपये सबसे अधिक थे, अतः वे कर्ज भी खूब लगाते थे और साहूकारी का काम भी करते थे।

अतः मठों के भूमि-सम्पत्ति रखने के विरुद्ध आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। इस आन्दोलन के समर्थक गृहस्थ तथा स्वयं कुछ मठाधीश भी थे, जो विशेपकर वाल्गा नदी के पार उत्तरी प्रदेशों में रहते थे तथा प्राचीन मठ-परम्परा को निभाते चले आ रहे थे। नील सोरस्की (सन् 1433-1508 ई०) इनका नेता था। वह किसान-कुल में उत्पन्न हुआ था। बाइबिल का उसे पूर्ण ज्ञान था और एथोस से वह पूर्ण प्रभावित था। ये चाहते थे कि गिरजाघर या पादरी एकदम पवित्र बने रहें, वे मठ-भूमि को एकदम त्याग दें या उनसे बहुत दूर रहें तथा व्यक्तियों की नैतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर अपना ध्यान लगावें। अपितु धन नहीं रखने की परम्परा के पक्ष में अनेक धनी मठ और पादरी हो गये, जो पहले उच्च श्रेणी के जमीन्दार थे। इन्हीं में से इनका नेता युसुफ भी निकल आया, जो वोले-कोलम्रमस्क का मठाधीश था। इसका जन्म सन् 1439 ई० के लगभग हुआ था और निधन सन् 1505 ई० में। यह महापंडित और भयंकर प्रतिवादी था। यह बहुत ही

निपुण और कड़ा नियम-पालन करानेवाला तथा डटकर काम करनेवाला था। इसने मठों की सम्पत्ति का खुलेआम समर्थन किया। इसका प्रधान तर्क यह था कि मठों का होना आवश्यक है; क्योंकि ये मठ ही धर्म-पुरोहितों के प्रशिक्षा-स्थल हैं और धर्म-पुरोहितों को उच्च वंश का होना चाहिए। यदि मठों के पास भूमि न होगी तो संभ्रान्त और उत्तम कुल के व्यक्ति कैसे प्रण निभायेंगे ?

सन् 1503 ई० की गिरजा-परिषद् में युसुफ के अनुयायियों की विजय हुई। किन्तु गिरजाघर के भीतर और बाहर विरोध की भावना बनी रही। राज्य को आबाद भूमि की विशेष आवश्यकता थी, जिसमें सैनिक सेवा के लिए वह लोगों को जागीर दे सके। और, राज्य इसमें असफल नहीं हो सका था; क्योंकि वह चाहता था कि किसी प्रकार सैनिक सेवाओं में कमी न होने पाये तथा सैनिकों के हाथ में भूमि भी खिसकने न पाये। महान् ईवन ने जब नवगोरद-विजय की (सन् 1478 ई०) तब उसने मठाधीशों से आधी से अधिक भूमि छीन लेने में संकोच नहीं किया। किन्तु न तो स्वयं उसने और न उसके उत्तराधिकारियों ने खास मस्कोवी में इस प्रथा को पूर्णतः लागू किया। इनका कोई क्रियाशील समर्थक न था, जिसकी सहायता से ये राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग पर अग्रसर होते। केवल युसुफ के अनुयायी ही इनके समर्थक हो सकते थे। भयानक ईवन ने यद्यपि महापादरी फिलिप को (सन् 1569 ई०) गद्दी से उतार दिया था और उसे मार डाला था, गिरजाघर की भूमि पर कर्ज बढ़ा दिया और अन्य प्रकार की सेवा लेने लगा, तथापि उसने ऐसा उपाय किया, जिसमें मठों को और अधिक भूमि न मिलने पाये तथा पादरियों का प्रभुत्व एवं विशेषाधिकार सीमित कर दिया। वह इससे आगे नहीं बढ़ा।

इन नियमों का पालन केवल कुछ ही अंश तक हो पाया। किन्तु सत्रहवीं शती के मध्य में सरकार और सेना की आवश्यकताएँ बहुत बढ़ गईं, अतः सरकार ने सभी भूस्वामियों के साथ सन् 1649 ई० की विधि-संहिता के अनुसार व्यवहार किया। इससे गिरजाघरों का प्रभुत्व और आर्थिक शक्ति बहुत घट गई और उनपर बहुत नियंत्रण हो गया। अब सभी मठ एक लौकिक नूतन मठ-विभाग की देखरेख में काम करने लगे। पादरी-कुलपति निकन ने इस पतित विधि-संहिता का खुलेआम विरोध किया। फलतः नूतन मठ-विभाग कुछ काल के लिए बन्द कर दिया गया। किन्तु महान् पीटर इस बात से बहुत प्रभावित हुआ कि करीब 14 प्रतिशत किसान गिरजाघरों के मातहत हैं। उसने धीरे-धीरे गिरजाघरों की भूमि को सेना-भरती और कर के जाल में फँसाया और पादरियों की कचहरियों को प्रायः नष्ट कर दिया।

पुनः अवस्थान्तरित संभ्रान्ति के पश्चात् सन् 1764 ई० में प्रायः गिरजाघरों की समस्त भूमि को लौकिक रूप दे दिया गया। फलस्वरूप तेजी से मठ बन्द होने लगे।

पहले एक सहस्र से अधिक मठ थे, जिनमें आधे से अधिक बन्द हो गये। पहले की अपेक्षा इनकी दशा भी अब बहुत सुधर गई। जितनी भूमि पहले वे जोतते थे, प्रायः उतनी ही भूमि जोतते रहे। जिस प्रकार गृहस्थ दास-स्वामियों को सन् 1861 ई० में राज्य ने खरीद लिया था, उसी प्रकार गिरजाघरों को राज्य ने नहीं खरीदा। राज्य ने गिरजाघरों की भूमि के लगान का केवल 7/8 भाग अपने लिए रखा और शेष पादरियों को दान कर दिया।

महान् पीटर के समय से ही गिरजाघरों की आर्थिक दासता, राज्य की राजनीतिक और धार्मिक अधीनता के साथ चोली-दामन के समान मिल-जुल गई थी। रूस के इतिहास में राजकीय गिरजा और धर्म में कभी भी उतना विभेद नहीं हुआ जितना गत दो शतियों में। गिरजाघर का महत्त्व घट गया और एक तरह से वह राज्य के एक विभाग के रूप में हो गया। सत्रहवीं शती के तृतीय पाद में गिरजाघरों की स्वतंत्रता और सुधार के लिए जो घोर संघर्ष चला, वही इसके कारण हैं। फलतः पादरी-कुलपति का अपमान और फूट दोनों एक ही साथ हुए।

गिरजाघरों को गृहस्थों के नियंत्रण से स्वतंत्र रखने का जबर्दस्त श्रेय पादरी-कुलपति निकन (सन् 1605-81 ई०) को है। उसका जन्म निझनी-नवगोरद प्रान्त में एक किसान-कुल में हुआ था। उसमें तप, विद्या, अभिमान और धृष्टता कूट-कूटकर भरी हुई थी, इस कारण उससे लोग बहुत घबराते थे। न तो उसे आध्यात्मिक और भौतिक शक्ति की समानता पर जोर देने से संतोष था और न दोनों के संतुलन से। अन्ततः वह आध्यात्मिक शक्ति की विशिष्टता पर यहाँ तक बल देने लगा कि जार भी पादरी-कुलपति के अधीन रहे। रूस में ऐसा कभी भी नहीं हुआ था। मध्यकालीन पोपों का तर्क सर्वज्ञात है। इनके अस्त्रागार में थे सूर्य और चन्द्र, दो कृपाण तथा कुस्तुन्तुनिया का दान। अब ये मास्को में प्रकट हुए। इसका विस्तार ही चरम सीमा तक पहुँच गया। हाँ, कृपाण और दान का यह प्रथम प्रयोग न था।

अभी हाल में मास्को में एक ही पादरी-कुलपति था—फिलारेट, जो एक तरह से जार की तरह काम करता था (सन् 1619-33 ई०), किन्तु यह एक विचित्र अपवाद था; क्योंकि वह निर्बल और अनुभवहीन जार माइकेल का पिता था, यद्यपि फिलारेट चिरकाल तक राज्य-कार्यों में डूबा रहा। फिलारेट के पद से लोगों में असंतोष की लहर फैल गई। उसके दो उत्तराधिकारियों ने सम्प्रभु रहने का कोई यत्न नहीं किया। किन्तु निकन ऐसा न था। वह सन् 1652 ई० में पादरी-कुलपति बना।

वह बहुत ही घमण्डी और अव्वल दर्जे का निरंकुश एकतंत्री था। उसके सुधारों का उल्लेख आगे किया जायगा। उसके सुधार-नियमों से पादरियों का एक दल

और भी विरोधी हो गया। अतः अपने वैयक्तिक प्रभुत्व के लिए उसे केवल जार अलेक्सिस पर ही निर्भर रहना पड़ता, जिसमें राज्य और गिरजा दोनों में उसका सर्वोच्च स्थान वना रहे, जिस स्थान को कुछ वर्षों तक उसने सुशोभित किया था। किन्तु यह सुरक्षित आधार न था, जिसपर पादरी-कुलपति का सर्वोच्च स्थान बना रहता। अन्ततः जार का चित्त निकन से उचटता गया और दीर्घकालीन संघर्ष के पश्चात् गिरजा-परिषद् ने जार की निन्दा की और वह गद्दा से उतार दिया गया। इस परिषद् में (सन् 1666 ई०) पूर्व पादरी-कुलपतियों में से दो उपस्थित थे। इसी परिषद् ने घोषणा की कि राज्य में जार को स्वतंत्र अधिकार है तथा गिरजाघर के मामलों में पादरी-कुलपति का, और किसी को एक-दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। 40 वर्ष के पूर्व ही पादरी-कुलपति का अंत हो गया और एक ऐसा जार हुआ, जो पादरी-कुलपति का खुलेआम मजाक उड़ाता तथा महंथों को हरामखोर और सड़ा मांस बतलाकर कलंकित करता था।

5. फूट और इसके फल :

महाशक्तिशाली पादरी-कुलपति के रूप में निकन असफल रहा, किन्तु सुधारक के रूप में उसे अपूर्व सफलता मिली और अपने सुधारों से अनजाने ही उसने रूस के धर्म और गिरजाघर के इतिहास में घोर परिवर्त्तन कर दिया। इन सुधारों का खास संबंध प्रार्थना-विधि और संस्कार से है। इससे बाइबिल के पाठों का, प्रार्थना-पुस्तिका तथा विभिन्न सांस्कारिक तथ्यों का सुधार हो गया। इन्हें सर्वोत्तम ग्रीक-हस्तलिपि और ग्रीक-व्यवहार के अनुकूल किया गया। सुधार के विरोधियों ने इसे ग्रीक-पद्धति बताकर खिल्ली उड़ाई यद्यपि सत्यतः यह प्राचीन परम्परा को अपना रहा था। किन्तु इससे रूस के गिरजाघरों का विकास एक ऐसे आधार पर हुआ था, जहाँ धर्म और राष्ट्रीय भावना का संगम था। लातिन और तुर्की ईसाई धर्म के विरुद्ध रूस का गिरजाघर सनातनी ईसाई धर्म की विशुद्ध मुक्ति और विचित्र कोषागार बन गया था।

प्राचीन पाठों से तुलना करने पर, जिन्हें ग्रीसवालों ने अच्छी तरह सुरक्षित रखा था, यह पाया गया कि रूसी सनातनी ईसाइयों के ग्रन्थ और व्यवहार भिन्न थे और वास्तव में ये दोषपूर्ण थे। सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध में मास्को में (छापाखाना) मुद्रणालय के प्रादुर्भाव के कारण पाठों को सुधारना आवश्यक हो गया। निकन के पादरी-कुलपति बनने के पहले एक पीढ़ी से इसे सुधारने का शांतिपूर्ण प्रयत्न हो रहा था। सौभाग्य से ग्रीस के विद्वानों से सम्पर्क बढ़ता गया। कीव में विद्या की खूब उन्नति हुई। कीव उस समय पोलैण्ड में था और कैथोलिक-

जगत् से उसका घनिष्ठ संबंध था। इसी समय निकन पादरी-कुलपति बना। पादरी कुलपति बनते ही उसने स्पष्ट रूप से और निर्दयता के साथ सुधार-कार्य पूरा किया और उन्हें लागू किया। उसने खुलेआम घोषणा की—"मैं रूसी हूँ और एक रूसी का पुत्र हूँ, किन्तु मेरा धर्म और विश्वास ग्रीक है।" यह ऐसी बात थी, जिसे उसके विरोधी नहीं समझ सके।

विरोध-पक्ष में अधिकांश श्वेत या गृहस्थ पादरी थे। वे अपने को पुरातन धर्मावलम्बी कहते थे। संस्कार के मौलिक महत्त्व पर दोनों दल सहमत थे। संस्कार और पूजा-पाठ से धर्म प्रतिबिम्बित होता है तथा इसका अनुभव होता है और ये दोनों केवल लक्षण ही नहीं, बल्कि उनके विश्वास के महत्त्वपूर्ण अंग थे। अतः यह संघर्ष केवल सूक्ष्म विचार या सूत्र का न था, बल्कि जीवन की आवश्यकता का।

पुरातन धर्मावलम्बियों का नेता था अव्वकुम (जन्म सन् 1621 ई०; अग्निदहन सन् 1681 ई०)। यह साहसी, बहुत दयालु तथा अगाध आध्यात्मिक नेता था। निकन की तरह पहले यह निझनी-नवगोरद प्रान्त का एक पादरी था। यह जनप्रिय था। यह नहीं चाहता था कि दक्षिण या पश्चिम कहीं से किसी प्रकार का विदेशीपन इसमें आये। यह निवेशीपना का कट्टर और अडिग विरोधी था। अतः विरोध पूर्णतः कट्टर राष्ट्रीय तथा मस्कोवी से था। और, इसके धार्मिक उद्गार के अतिरिक्त इसने अपरिपक्व सामाजिक विरोध का रूप धारण कर लिया, जिसमें केन्द्रीयीकरण या उत्पीड़न न तो गिरजाघर करे और न राष्ट्र। किन्तु धार्मिक नेताओं के उत्तेजित होने का प्रधान कारण था तीव्र धार्मिक श्रद्धाभावना, न कि देशभक्ति या राष्ट्रीय सुधार का विरोध। पुरातन धर्मावलम्बी नेता सदा प्राचीन परम्परा से झक्की के समान चिपके रहे, उनके अनुयायी भले ही ऐसे न हों। उनके लिए सनातन ईसाईपना धर्म का राष्ट्रीय रूप न था। रूस पवित्र था और जहाँतक यह पवित्र रहा, इसका कारण यह था कि रूस सनातनी ईसाईपन की रक्त-वाहिनी नलिका था।

निकन के व्यक्तित्व से यह संघर्ष और भी पेचीदा बन गया; क्योंकि वह पादरी-कुलपति बनना चाहता था। आप देख चुके हैं कि वह असफल रहा, किन्तु जिस गिरजा-परिषद् ने उसे गद्दी से उतारा, उसी परिषद् ने उसके संस्कार-सुधारों को मानकर मुहर लगाई और जो लोग इन सुधारों का अन्ततः विरोध करते रहे, उन्हें फूट डालने का अभिशाप मिला। अब सर्वोच्च धर्माधिकारी तथा जार की आज्ञा का पालन करने का प्रश्न उपस्थित हुआ। जार ने इस निर्णय को सब तरह से मनवाया और जिन्होंने नहीं माना, उन्हें जलवा दिया। पुरातन धर्मावलम्बी सत्याग्रह करके इस दुःख को

सहते रहे और डटे रहे। वे अपने को स्वयं जला डालते, भाग जाते तथा सशस्त्र विरोध भी करते थे। सचमुच फूट होकर ही रही।

इसके दो फल हुए—1. सनातनी-ईसाइयों में पुरातन धर्मावलम्बियों की संख्या बहुत अधिक हो गई। प्रारम्भ में कुछ वर्षों के बाद ही इस मत में कुछ उच्च वर्ग के लोग भी सम्मिलित हो गये। इनमें किसान और बनियों की संख्या अधिक थी। इनकी राजनीतिक शक्ति, पृथक् करनेवाली था, जहाँतक ये जारशाही को ईसाई-विरोधी मानते थे; क्योंकि जारशाही ने सनातन ईसाई धर्म से पतित होकर सुधारों को स्वीकार कर लिया था और उसे मानने के लिए वह लोगों को बाध्य करता था तथा पोल और जर्मनों को रूस में आने को प्रोत्साहित करता था। महान् पीटर के पहले राष्ट्रशक्ति की यह विचारधारा घोर प्रजा-पीड़न के रूप में बहुत ही जबर्दस्त थी, किन्तु जब पीटर ने पाश्चात्य जीवन-पद्धति को पूरे तौर पर अपनाया तथा रूसी समाज का पैमाने पर और शक्ति के साथ आमूल परिवर्त्तन करने को ठाना तब इसमें तेजी से वृद्धि हुई। अपितु पुरातन धर्मावलम्बी पृथक्तावादी शक्ति सिद्ध हुए; क्योंकि उन्हें बाध्य होकर सीमान्त पर छोटे-छोटे कबीलों में आकर शरण लेनी पड़ती थी। ये जबर्दस्त उपनिवेशक सिद्ध हुए। इनकी दृढता स्तुत्य है, किन्तु इनके छिट-फुट रूप में बँट जाने से इनकी एकता जाती रही और ये मिलकर राष्ट्र को धक्का पहुँचाने में असमर्थ रहे, यद्यपि ये निम्न वाल्गा तथा दोन के तट पर सदा वर्त्तमान असंतोष का साथ देकर आतंक मचा सकते थे।

पुरातन धर्मावलम्बी पहले यह समझते थे कि उनके सनातन ईसाई धर्म और वर्त्तमान पादरियों की जीत होगी और निकन के सुधारों पर पानी पड़ जायगा। अथवा, ईसा-विरोधी राज्य के आरम्भ होते ही संसार का प्रलय हो जायगा। किन्तु सुधारों पर पानी नहीं पड़ा और ईसा-विरोधी राज्य होने पर भी संसार में प्रलय नहीं हुआ, अतः उन्हें नई समस्याओं का सामना करना पड़ा। दक्षिणपंथियों ने, जो पौरोहित्य और सनातनी ईसामत से चिपके थे, धीरे-धीरे सरकारी गिरजाघरों और राज्य से समझौता कर लिया और भाग्य के उतार-चढ़ाव के पश्चात् अन्ततः सन् 1905 ई० में इन्हें प्रायः पूर्ण स्वतंत्रता मिल गई। वामपंथी एकदम नये मार्ग पर चले। इनका पौरोहित्य न था। ये व्यक्तिगत रूप से छिट-फुट विभिन्न सम्प्रदायों में बँट गये। गिरजाघर की फूट की प्रथम अवस्था से ये सुदूर होते गये। इन्होंने मस्तिष्क की स्वतंत्रता के लिए संस्कार और परम्परा को त्याग दिया। ये मनुष्य के अन्तःकरण के धर्म पर विशेष बल देते थे। अतः फूट एक ऐसी घटना हुई, जो प्राचीन रूस के लिए विदेशी थी। यह किसी भी आधुनिक सनातनी देश के लिए विदेशी हो सकती है। आध्यात्मिक जीवन में यह पूर्णतः प्रयोग-क्रम था और राजकीय गिरजाघरों से एकदम विभिन्न था।

इसी समय, खासकर दक्षिण में, अन्य सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुई। इनका मूल वहुत सन्देहात्मक था और पुरातन धर्मावलम्बियों से इनका कोई भी सम्बन्ध नहीं था। अट्ठारहवीं शती के अन्त तक रूस में सम्प्रदायों की बाढ़ आ गई, यथा—गोस्पेलवादी, न्यायवादी, रहस्यवादी या ईसा मसीह की शरण से मुक्तिवादी। जर्मन प्रोटेस्टैण्ट और वाद में वैपटिस्टी ने भी इनमें सम्मिलित होकर इन्हें प्रभावित किया। कुछ विरोधक कर देने तथा सैनिक-सेवा जैसे प्रश्नों पर वहुत उग्र विचार रखते थे, जो राष्ट्र के लिए महत्त्वपूर्ण है। और, करीव-करीव सभी विरोधक इस पक्ष में थे कि एकतंत्र और अंशतः किसी शासन के प्रतिकूल कोई नूतन सामाजिक संस्था हो।

उत्पीड़न और असहिष्णुता के कारण अनेक सम्प्रदाय छिपकर काम करने लगे। वे अन्तःस्थल में चले गये। वे प्रायः वाहर जाने लगे। अतः उनके विषय में ठीक पता नहीं चलता और वहुत मतभेद है। उनकी द्रवता और विचित्रता से सरल अनुमान कर लेना खतरनाक होगा। मोटे तौर पर गुमराह और दुराचारी तत्त्वों के अलावा इन विरोधकों को हम केन्द्रापसारी और समतावादी शक्ति कह सकते हैं। ये शिक्षा, स्त्रियों की समानता, आत्मावलम्बन तथा स्वतः संगठन पर वहुत वल देते थे। ये सादा जीवन विताते थे तथा इनकी भौतिक उन्नति वहुत अच्छी थी। पुरातन धर्मावलम्बियों और सम्प्रदायवादियों की ठीक संख्या का पता लगाना कठिन है। यद्यपि यह निश्चित है कि सरकारी आँकड़ों में इसे वहुत कम दिखाया गया है। इनकी संख्या दिन-पर-दिन वढ़ती मालूम होती थी और सन् 1905 ई० की क्रांति के समय इनकी कुल संख्या दो-ढाई करोड़ के लगभग रही होगी। ये सम्प्रदाय सदा विलग रहे और इनमें निजी फूट भी थी। राजनीतिक कार्यों से इनका कोई सम्वन्ध नहीं था। इनका प्रभाव स्थानीय था, वहुत सुदूर विस्तीर्ण नहीं।

2. फूट का दूसरा महाफल यह हुआ कि सरकारी गिरजाघर, जिसकी सफलता में राज्य ही सहायक था, दिन-पर-दिन राज्य पर ही आश्रित होने लगा। इस समय रूस में धार्मिक चेतना की विशेष आवश्यकता थी। पाश्चात्य यूरोप का रूस पर जो प्रभाव पड़ा, उसका दृढ़ता के साथ सामना करने के लिए उत्साह और लगन की आवश्यकता थी और इन वातों का इस समय रूसी जनता में वहुत अभाव था। पीटर महान् के दो पीढ़ी पहले से ही मास्को और समाज की उच्च श्रेणी पर यह यूरोपीय प्रभाव वहुत तेजी से वढ़ता गया। सन् 1694 ई० में पीटर के अपने हाथ में वागडोर होने के पहले 20 वर्षों में पाश्चात्य पद्धति के पक्ष और विपक्ष में घोर संघर्ष चलता रहा और यह ज्वलन्त प्रश्न था, जिसका दो पादरी-कुलपतियों ने विरोध किया। अतः जब द्वितीय पादरी-कुलपति मर गया (सन् 1700 ई०) तव पीटर की इच्छा हुई कि कोई भी उत्तराधिकारी नियुक्त न हो। इससे स्पष्ट है कि पादरियों की

शक्ति कितनी क्षीण हो गई थी तथा जार की शक्ति और पद कितना उच्च हो गया था और जार की इच्छा ही सर्वोपरि थी। पीटर का तथा उसके कार्यों का सदा जबरदस्त विरोध रहा। मठाधीश विशेष विरोधी थे और अलेक्सिस, पीटर के ज्येष्ठ पुत्र, पर सभी आशा लगाये हुए थे। किन्तु मठाधीशों में फूट थी। उनका कोई नेता और न था और फूट के कारण और भी विघ्न उत्पन्न हो गये। गिरजाघरों की योग्यता और शक्ति के पुंज थे पादरी, जिन्हें पीटर नियुक्त करता था। जब उसने स्वीडेन की अन्तिम विजय की, तब उसे संयोजित पुनर्निर्माण का अवसर मिला। उसने महापादरी का पद समाप्त कर दिया और एक नूतन प्रशासन-पर्षद् इसके स्थान पर बनाई, जिसका नाम होली सिनड (पूत धर्मसभा, 1721 ई०) था। रूसी पादरियों की सर्वोच्च संस्था का अस्तित्व जार की आज्ञा पर निर्भर था। धर्मसभा के सदस्यों को जार नियुक्त करता था, जिसमें एक सदस्य को छोड़कर शेष सभी पादरी थे। किन्तु उन्हें अपना कर्त्तव्य पालन करना पड़ता था। उनका कर्त्तव्य था आज्ञाकारी प्रजा को नैतिक शिक्षा देना। उन्हें यह काम उसी प्रकार और उसी लगन से करना पड़ता था, जिस लगन से खान और उद्योगशालाओं के सदस्य करते थे।

अब धीरे-धीरे गिरजाघर राष्ट्र के प्रशासन-तन्त्र का एक अंग हो गया। उन्नीसवीं शती में एक पुरातन धर्मावलम्बी की शिकायत में बहुत सत्यता है: "तथाकथित सनातन धर्म, राजा और खजाने का एक लगाव है, यह एक सरकारी चिह्न है। इसमें न तो सच्ची श्रद्धा है और न सत्य-जीवन का आधार। यह सरकारी अस्त्र के समान केवल कर्त्तव्य निभाता है, जिसमें शासन की रक्षा हो।" पूत धर्मसभा में अनेक परिवर्त्तन हुए। सन् 1824 ई० के बाद इसका शासन गृहस्थ सदस्य प्रधान मुख्तार चलाता था, जो राज्यधर्म के लिए जार का मन्त्री होता था। महती कैथरीन और अलेक्जेण्डर प्रथम के समय सहिष्णता का बोलबाला था, किन्तु निकोलस प्रथम (सन् 1825-55 ई०) के राज्यकाल से अन्त.करण की स्वतन्त्रता एक तरह से लुप्त होने लगी; क्योंकि इस नीति का कठोरता से पालन किया जाने लगा कि सभी रूसी (जिनमें उक्रेणवासी विशेष रूप से शामिल थे) सनातन गिरजाघर के ही अनुयायी हों। किन्तु, इसका विपरीत अनुमान, लोग मानने को तैयार न थे कि गैर-रूसी स्वच्छन्दतापूर्वक विना छेड़-छाड़ के जिस धर्म को चाहें, मानें; क्योंकि इस सिद्धान्त को लोग खासकर पोलैण्ड में चुनौती देने लगे। अब पादरी प्रतिक्रियावादी समझे जाने लगे। इसके सरकारी त्रिमूर्त्ति थे— एकतन्त्रवाद, सनातनधर्मवाद तथा राष्ट्रवाद। अतः, उन्नीसवीं शती के सभी क्रान्तिकारी या समाजवादी आन्दोलन पादरियों के घोर प्रतिकूल थे, जैसा अन्य यूरोपीय देशों में हुआ। उदार दल, जब खुल्लम-खुल्ला विपक्ष में नहीं होता, तब पूर्ण सुधार

चाहता था। उच्च और निम्न श्रेणी से पादरियों के मध्य जो पहले खाई थी, अब वह दरार हो गई, जैसा सन् 1789 ई० के पहले फ्रांस में था।

सत्यतः, मास्को ने तीन विचक्षण महापादरियों को उत्पन्न किया। अट्ठारहवीं शती में एक सच्चा सन्त तिखन जदोंस्की (सन् 1724–83 ई०) उत्पन्न हुआ। इसे भी सरकारी तौर पर ऋषि घोषित कर दिया गया था। यह दोस्तोएव्स्की के भ्रातृ करमजव के जोशिमा पादरी का नमूना था। किन्तु, गिरजाघर की सबसे बड़ी आवश्यकता थी एक लियों त्रियोदश, जिसे वह पैदा न कर सका। उसके बदले मिला इसे एक पियूष नवम, पोवेदोनोस्तेव (सन् 1827–1907 ई०), जो सन् 1880 से 1905 ई० तक धर्मसभा का मुख्तार था। उन्नीसवीं शती में सनातन ईसाइयों के धार्मिक जीवन की गाढ़ प्रवृत्ति नई धारा की ओर थी। ओपत्याना मठ के वृद्ध संन्यासी इस प्रकृति के आध्यात्मिक नेता थे। कुछ गृहस्थ-वर्ग भी इनका साथ दे रहा था। स्लवोफिल्स इनका सबसे बड़ा गृहस्थ समर्थक था। इस शती के तीन महान् धार्मिक तत्ववेत्ता तथा लेखक इन्हीं गृहस्थों में से थे। गृहस्थ केवल विद्या और अध्यात्मशास्त्र में ही पारंगत न थे, बल्कि वे गिरजाघरों में भी सुधार करने के लिए सतत यत्न करते रहे। रूसी सनातनी ईसाइयों की सन् 1905 ई० और सन् 1917 ई० की क्रान्तियों में यही विशेषता रही।

जब सन् 1917 ई० का बवण्डर उठा, तब सनातमी गिरजा ही रूस की एक ऐसी संस्था थी, जो अपरिवर्तित रूप में चली आ रही थी। सन् 1860 ई० के सुधारों का या सन् 1905 ई० की क्रान्ति का इस संस्था पर कुछ भी असर नहीं हुआ। सन् 1905 ई० में साम्राज्य के सभी धर्मवालों को विचार की स्वतन्त्रता दी गई थी और इसके बाद व्यवहार में भी इसकी मान्यता दी गई, केवल उनियातों को छोड़कर। किन्तु, सन् 1905 ई० में सनातनी गिरजाघरों और राष्ट्रीय पादरी-परिषद् की सुधार की जो माँगें थीं, उन्हें प्रतिक्रियावादियों ने टाल दिया, जब उन्हें अधिकार मिला। तब भी, निकोलस द्वितीय की निर्बलता के कारण पादरियों की दशा दिन-पर-दिन खराब होती जा रही थी। निकोलस द्वितीय सनातनी ईसाइयों का अभिभावक और वर्त्तमान धर्म का रक्षक तथा सर्वश्रेष्ठ संरक्षक था और इस अर्थ में वह गिरजाघर का प्रधान था। जार दिन-पर-दिन रासपुतीन के आकर्षक प्रभाव में अपने को सौंप देने के कारण बदनाम हो गया था। सम्राज्ञी के ऊपर रासपुतीन का खासकर अधिक प्रभाव था। रासपुतीन साइबेरिया का किसान और यागामी था। यह अपने को ईश्वरीय व्यक्ति तथा आरोग्यकारक बतलाता था और गिरजाघर या राज्य की छोटी-बड़ी सभी नियुक्तियों में इसका बोलबाला था।

दिसम्बर, 1916 ई० में रासपुतीन की हत्या कर दी गई। इसके तीन मास बाद निकोलस द्वितीय को गद्दी छोड़नी पड़ी। वर्ष समाप्त होते-होते धर्मसभा समाप्त हो गई। प्रधानतः गृहस्थों द्वारा निर्वाचित राष्ट्रीय पादरी-परिषद् की स्थापना इसके स्थान पर हुई और पादरी-कुलपति के स्थान को ज्यों-का-त्यों कायम किया गया। अब संविधान-सभा से, जो शीघ्र ही बैठने जा रही थी, आशा की जाती थी कि दान और संस्था का यह विनाश करेगी। दोनों बातें हुईं, किन्तु इन्हें बोलशेविकों द्वारा बहुत उग्र रूप में किया गया। इन्होंने धार्मिक कृत्यों को, यदि इससे जनशान्ति भंग होती हो, बन्द कर दिया तथा सभी विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा पर प्रतिबन्ध लगा दिया। नूतन पादरी-कुलपति तिखन ने समस्त बोलशेविक-दल को धर्मबहिष्कृत करके बदला लिया। सन् 1905 ई० में सुधार पादरियों पर कब्जा कर लेता और उन्हें मजबूत करता। सन् 1918 ई० में क्रान्ति ने पादरियों पर कब्जा कर उन्हें तितर-बितर कर दिया।

पंचम अध्याय

स्लाव

1. रूस और पोलैण्ड

गत छह सौ वर्षों में स्लावों के इतिहास में तीन प्रमुख घटना रही है—उत्तमन्-विजय, जर्मन-शक्ति तथा विस्तार एवं सैनिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक संघर्ष, जिससे रूसी और पोल विलग हो गये। अट्ठारहवीं शती तक दूसरे स्लाव-रूसी का अर्थ केवल पोल ही लगाते थे, जो इनके समीपवर्ती स्लाव-पड़ोसी थे। रूस और पोलेण्ड दोनों के लिए यह स्थायी विरह एक गहरा आघात था। स्लाव-जनों को एक सूत्र में बाँधने का इससे बढ़कर कोई अन्य साधन नहीं हो सकता था।

जुलाई, सन् 1941 ई० से रूसी और पोल कन्धे-से-कन्धा मिलाकर हिटलर की जर्मनी से लड़ते रहे। इतिहास में ऐसा पहले कभी न हुआ था कि सभी रूसी और सभी पोल एक सामान्य शत्रु के विरुद्ध संघर्ष में सम्मिलित हुए हों। एक रूसी लेखक (सन् 1941 ई०) लिखता है : "रूसी और पोलों के बीच जो युगों की पुरानी खाड़ी थी, उसपर सेतु बाँधना सचमुच सरल न था, किन्तु रूसीजन को विरह का बड़ा भारी गौरव है और इससे भी अधिक साहस का।" यह भावना और इसके फल दोनों को परस्पर प्रभावित करते रहेंगे।

भूतकाल में इन दोनों देशों के विभाजन का क्या कारण है? इसका कारण दो विभिन्न सभ्यताएँ, विवादास्पद भूमि, पोलेण्ड का विभाजन तथा स्वतन्त्रता का नाश (सन् 1795 ई०) तथा सन् 1815 ई० से अधिकांश पोलों पर एकशती तक रूस का शासन है। सन् 1919 ई० के बाद अन्तिम दो कारण याद थे, किन्तु ये स्मरण कटु और चिरस्थायी घाव थे। सन् 1939 ई० में सोवियत-जर्मन-बँटवारे से एक पोलैण्ड पुनः अपने रूप में आ गया। विभाजन के पूर्व दो कारण कभी विफल न हुए।

पोल अमीर और रईस, पादरियों से मिलकर पोलैण्ड को सँवारते और इसपर शासन करते थे। पोलैण्ड को इस बात का अहंकार और गौरव था कि वह

अद्र्ध-विजयन्त अद्र्ध-एशियाई बर्बरता के प्रतिकूल कैथोलिक और यूरोपीय संस्कृति का दुर्ग है। विभाजन-काल (सन् 1772–1919 ई०) में विशिष्ट सभ्यता की यह भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी। इसके सिवा रूसी एकतन्त्रता के प्रतिकूल तिरस्कार, घृणा और भय भी था; क्योंकि सन् 1815 ई० के बाद मध्य विस्चुला-प्रदेश में ठोस पोल भूमि को रूस ने अधिकृत कर लिया था। क्रान्ति के बाद जब रूसी साम्राज्य का स्थान सोवियत-संघ ने लिया, तब ये भावनाएँ बोल्शेविकों की नूतन बर्बरता के विरुद्ध सभ्यता की रक्षा के लिए नूतन स्वतन्त्र पोलैण्ड के विचारों में परिणत हो गई। बोलशेविकों ने वर्ग-क्रान्ति को चुनौती दी तथा स्वेच्छा-निर्णय की व्याख्या से मालूम होने लगा कि एक जातीय पोलैण्ड अन्य कारणों के अतिरिक्त स्वतन्त्रता से भी वंचित रहेगा और इसका पूर्वी प्रदेश आवश्यकता पड़ने पर युद्धक्षेत्र हो जायगा।

भय, अहंकार और आशा के मेल के परिणाम-स्वरूप सन् 1920 ई० में पोल-सोवियत गृहयुद्ध छिड़ गया। पिलसुदस्की इसका नेता था। वह स्वयं पूर्व-देश का वासी था और सदा-सतत रूस के लिए लड़ता रहा। उस समय बोलशेविक गृहयुद्ध के कड़ाह में थे, यद्यपि उन्होंने शीघ्र ही पूर्व में कोलचक और दक्षिण में देनिकीन जीता था। युद्ध में पोल कीव तक पहुँच गये। पर, यहाँ उनकी करारी हार हुई और वे जल्दी से भागें। मार्च, 1921 ई० में अन्ततः शान्ति-सन्धि हो गई, किन्तु युद्ध के कारण दोनों देशों में वैमनस्य बढ़ता ही गया। पोलैण्ड अब त्रिशूलधारी न था, किन्तु बोल्शेविकों के प्रतिकूल सुरक्षा-मंच का केन्द्र था। नूतन सोवियत-संघ की पुष्टि को यह रोकने में असमर्थ था। ये पोल बोल्शेविकों को शंका की दृष्टि से देखते थे। वे न तो इन्हें साम्यवादी और न रूसी ही समझते थे। सोवियत-शासन भी पोलैण्ड को सामाजिक और राष्ट्रीय और ऐतिहासिक कारणों से शंका की दृष्टि से देखता था। यह फ्रांस और सामान्यतः पश्चिमी यूरोप के क्रान्ति-विरोधियों का मित्र माना जाता था। दोनों देशों के मध्य कोई आर्थिक बन्धन भी न था, जो काँटेदार सीमा के बन्धन को झटके से तोड़ दे।

प्रथम विश्वयुद्ध में रूस और जर्मनी दोनों की करारी हार हुई। ये दोनों पोलों के ऐतिहासिक शत्रु थे और ये दोनों पोलैण्ड की अगल-बगल खड़े थे। पोलैण्ड का जन्म इन्हीं देशों की भूमि का अंश लेकर हुआ था। पहले की तरह अब भी यह सम्मिश्रित देश था। इसकी कम-से-कम एक-तिहाई प्रजा उक्रेण, श्वेत रूसी, जर्मन लिथुनी या यहूदी थी। पन्द्रह वर्ष तक वे निर्बल रहे। सन् 1934 ई० तक सोवियत-संघ बहुत शक्तिशाली हो गया। इधर हिटलर की देख-रेख में नात्सी जर्मनी विकराल रूप धारण कर रहा था। जर्मनी का आंतक रोकने के लिए फ्रांस

पोलैण्ड के साथ मिलकर कोई निश्चित कदम उठाने को तैयार न था। ग्रेट ब्रिटेन पूर्वी यूरोप में किसी प्रकार की वचनबद्धता से अब भी दूर रहना चाहता था। एक ओर जर्मनी से उत्पन्न खतरों से भय था, दूसरी ओर पोल-समाज की बनावट और संस्कृति को साम्यवाद से भय था, साथ ही उन्हें रूस का अतीत स्मरण था। अतः, पिलसुदस्की ने जान-बूझकर हिटलर का उपहार स्वीकार किया और दस वर्ष के लिए एक समझौता (सन् 1934 ई०) कर लिया।

रूस समझता था कि पोलैण्ड हमारे विरुद्ध जर्मनी का साथ देगा। कालान्तर में यह भावना और भी दृढ होती गई। सन् 1932 ई० में दोनों देशों में शान्ति-भंग नहीं करने के समझौते और कभी-कभी पोलैण्ड के साथ निष्ठुर सम्बन्ध को अच्छा बनाने के बावजूद सोवियत-सरकार एकदम पराई हो गई, जब पोलैण्ड ने मौका पाकर लिथुनिया से अन्तिम चेतावनी देकर मैत्री-सम्बन्ध की माँग की। सन् 1920 ई० में जिस समय पोलों ने विलना हथिया लिया था, उसी समय से यह सम्बन्ध-विच्छेद हो गया था। ठीक इसी समय हिटलर ने आस्ट्रिया पर धावा बोल दिया। इसी समय हिटलर जेकोस्लोवाकिया से झगड़ पड़ा और उसके ऊपर म्युनिक-समझौता लाद दिया और रूस को इस समझौते में शामिल नहीं किया। पोलैण्ड ने मौका पाकर जेकोस्लोवाकिया से तेश्चेन जिला हड़प लिया, जहाँ पोल और जेक साथ-साथ रहते थे और जहाँ कोयला तथा लोहे की प्रचुरता थी। यह सन् 1919 ई० से ही विवादास्पद था। सन् 1939 ई० के ग्रीष्म में जर्मन के घोर आंतक के वावजूद पोलैण्ड लाल सेना को मित्र स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था।

स्तालिन को पोलैण्ड तथा उसके मित्र फांस तथा ग्रेटब्रिटेन दोनों के प्रति घोर अविश्वास था। उसे आशा न थी कि बाल्टिक की सुरक्षा करने में वे लोग उसे पूर्ण स्वतन्त्रता देगें। अतः, उसने सोचा कि हिटलर से समझौता करने में सोवियत-स्वार्थ को बहुत कम धक्का पहुँचेगा। पहले सन्देह भले ही हुआ, किन्तु इससे निकट भविष्य में लाभ पहुँचा। जर्मनी, पोलैण्ड तथा उसके दो मित्रों में युद्ध छिड़ गया। पोलैण्ड का बँटवारा हुआ और सोवियत ने बाल्टिक तट के तीन राज्यों को दखल कर लिया।

जिन देशों को लालसेना ने तेजी के साथ सितम्बर, 1939 ई० में जीत लिया, वे शीघ्र ही उक्रेण तथा श्वेत रूसी सोवियत सामाजिक गणतन्त्र में सम्मिलित कर लिये गये। साम्यवादी तरीके से स्वेच्छा-निर्णय होने के बाद राष्ट्रीय सभा के लिए इन प्रदेशों में निर्वाचन भी हो गया। इन प्रदेशों की पृष्ठभूमि में पोल-राज्य का अंगभंग हो गया था तथा वीर पोल-सेना का जर्मन के साथ तडिद्गति से युद्ध में मुठभेड़ हुई थी।

इन प्रदेशों के ऊपर नजदीकी नातेदारी होने से संघ का हक था और रूस का उत्तराधिकारी होने के कारण इसकी ऐतिहासिक उपाधि थी। ये प्रदेश विवादग्रस्त क्षेत्र के अंग थे और इन्हीं के कारण रूस और पोलैण्ड अतीत काल से आपस में इतने विलग थे। रूस के लिए पश्चिमी प्रदेश और पोलैण्ड के लिए पूर्वी प्रदेश यही भूमि थी। मोटे तौर पर 'पश्चिमी प्रदेश' का वह भाग है, जो डैनपीयर और ड्वीना नदी के पश्चिम में तथा वरा (दलदल) के पूर्व है। इसे रूस ने पोलैण्ड के तीन विभाजन में सन् 1772,1793 तथा 1797 ई० में पाया था और तबसे लगातार सन् 1917 ई० तक, जब इसका विभंग हो गया, उसपर शासन करता रहा। पर, यह 'पश्चिमी प्रदेश' भी उसके हाथ से निकल गया। पोल-सोवियत-युद्ध (सन् 1920 ई०) का यह फल हुआ कि उत्तरी भाग को छोड़कर जो लिथुनिया और लटेविया का अंग बना, वे प्राय: आधे-आधे बँट गये। किन्तु, इसमें विलना शामिल नहीं था, जिसे पोलों ने सन् 1920 ई० में अधिकृत किया था।

सितम्बर, 1930 ई० में जर्मन-सोवियत-विभाजन का यह फल हुआ कि सोवियत-संघ ने समस्त पश्चिमी प्रदेश अधिकृत कर लिया। इसके सिवा इसे पूर्वी गलिसिया भी मिला, जो कभी रूसी साम्राज्य में सम्मिलित न था। प्रथम विभाजन (सन् 1772 ई०) के समय से यह आस्ट्रिया के कब्जे में था और तब पोलैण्ड ने (सन् 1919–20 ई०) जबरदस्ती उक्रेण पर आक्रमण कर इसे पुन: हथिया लिया था।

'पश्चिमी प्रदेश' तथा पूर्वी गलिसिया सदा से गैर-पोल थे। इसका यह अर्थ है कि पूरे तौर पर देखा जाय, तब यहीं के अधिकांश निवासी उक्रेण और श्वेत रूसी या लिथुनी थे। पूर्वी गलिसिया के सिवा ये प्रदेश चौदहवीं शती से लिथुनिया के महाराजकुमार के राज्य के अंग थे। धीरे-धीरे इसका सम्बन्ध पोलैण्ड से अधिक होता गया। सन् 1386 ई० से एक ही सामान्य वंश था तथा सन् 1569 ई० से (लुबलिन-संघ) एक प्रकार का सम्मिलित संघ था। अत:, पन्द्रहवीं से अट्ठारहवीं शती का महापोलैण्ड मस्कोवी-साम्राज्य के समान ही एक मिश्रित राज्य था, जिसके पश्चिमार्द्ध पोल तथा पूर्वार्द्ध रूसी या लिथुनी थे। इस पूर्वार्द्ध में लिथुनी कैथोलिक थे, किन्तु रूसी जनता (उक्रेणी तथा श्वेत रूसी) सोलहवीं शती तक प्राय: कट्टर सनातनी रही। सन् 1596 ई० में ब्रेस्ट-लितोवस्क-संघ बनने के बाद जब कैथोलिकों की आधी माँगें पूरी करने के लिए उनियात-गिरजाघर की स्थापना हुई, रूसी जनता विभाजित हो गई।

लिथुनिया का सम्मिलन कोई विजय न था और न इसके पहले या बाद में पोल लोगों ने पूर्वी दिशा में कोई खास उपनिवेश-आन्दोलन ही किया। हाँ, यह आन्दोलन

अन्ततः ल्वोव और विलना जिलों में हुए। किन्तु, पोलों का पूर्व दिशा की ओर विस्तार रूसवालों के पूर्व दिशा के फैलाव से एकदम विभिन्न था; क्योंकि उन्होंने विजय और उपनिवेश दोनों का आश्रय लिया। 'पश्चिमी प्रदेशों' के उच्चवर्ग तथा विलना और ल्वोव के केन्द्रभाग पोल हो गये या उन्हें पोल में परिवर्तित कर लिया गया। सोलहवीं शती से लिथुनिया और श्वेत रूसी प्रदेशों की संस्कृति पोल-संस्कृति थी, किन्तु दक्षिण-पूर्व के प्रदेशों में ऐसी संस्कृति कम थी।

'पश्चिमी प्रदेशों' को पोल बनाना आत्मीकरण की दिशा में विचित्र सफलता का द्योतक है, किन्तु यह इसीलिए दूषित हो गया कि यह पोलकरण केवल अमीरों और दिहाती रईसों तक ही सीमित रहा। अधिकांश जनता दास ही बनी रही; क्योंकि उनके ऊपर पोल-सभ्यता का लाभ नगण्य था। सन् 1811 ई० में एक फ्रांसीसी पर्यवेक्षक मित्र शोक-पूर्वक कहता है—'यहाँ के लोगों को सीखने में अभी बहुत वर्ष लग जायेंगे, जब वे विचार करने लगेंगे कि किसान भी इन्सान हैं और उनके साथ इन्सान का व्यवहार करना चाहिए।' और, यह उस पोलैण्ड के विषय में लिखा गया है, जहाँ केवल पोल ही रहते थे, न कि 'पश्चिमी प्रदेशों' के लिए, जहाँ अल्पसंख्य पोल भूस्वामी राज्य करते थे। पोलकरण दूषित होने का द्वितीय कारण यह था कि पूर्व की ओर पोल-लिथुनिया राज्य बहुत दूर तक फैल गया था, खासकर स्टेपीज में दक्षिण-पूर्व की ओर, जहाँ प्रत्यक्ष पोल-शासन से सन् 1569 ई० के बाद उक्रेणी शत्रु बन गये। इसका आगे वर्णन किया जायगा। अपितु, जब पोल पूर्व की ओर तेजी से बढ़ते जा रहे थे, तब पश्चिम में बाल्टिक तट पर या उत्तर में जर्मनों के साथ इनका झंझट न कम हुआ था और न जर्मनों के साथ कुछ समझौता ही हुआ था।

पन्द्रहवीं से सत्रहवीं शती तक विवादग्रस्त प्रदेशभाग और भी बढ़ गया। पहले यह भाग ड्वीना और डैनपीयर नदियों के सुदूर पूर्व तक ही फैला था। इन तीन शतियों तक मस्कोवी लिथुनिया और पोलैण्ड के साथ सतत युद्ध करते ही रहे। प्रथम शती में वे असफल रहे, द्वितीय शती में सफलता मिली और अन्तिम शती में पुनः असफलता। अन्ततः (सन् 1654–67 ई०) उन्हें सफलता मिली। मस्कोवी की वैदेशिक नीति महान् ईवन से लेकर अलेक्सीस मिखोलोविच (सन् 1462–1676 ई०) तक लिथुनिया-पोलैण्ड तथा क्रिमिया के तातारों पर ही केन्द्रित रही। गत सौ वर्षों से एक तृतीय स्वीडेन भी इसी घेरे के अन्दर था।

यह पहले कहा जा चुका है कि मंगोल-आक्रमण का एक प्रधान फल कीव-रूस का पूर्ण अंगभंग था। ओका और वालगा के मध्य राज्यों का तथा उत्तर में नवगोरद और पस्कोव का विकास स्वर्णदल के सामन्त के रूप में अपने तरीके पर हुआ। ऊपरी डैनपीयर तथा पश्चिमवर्ती (इनमें कीव भी सम्मिलित था) रूसी राज्यों को

MAP 5.
THE WESTERN LANDS AND THE BALTIC.
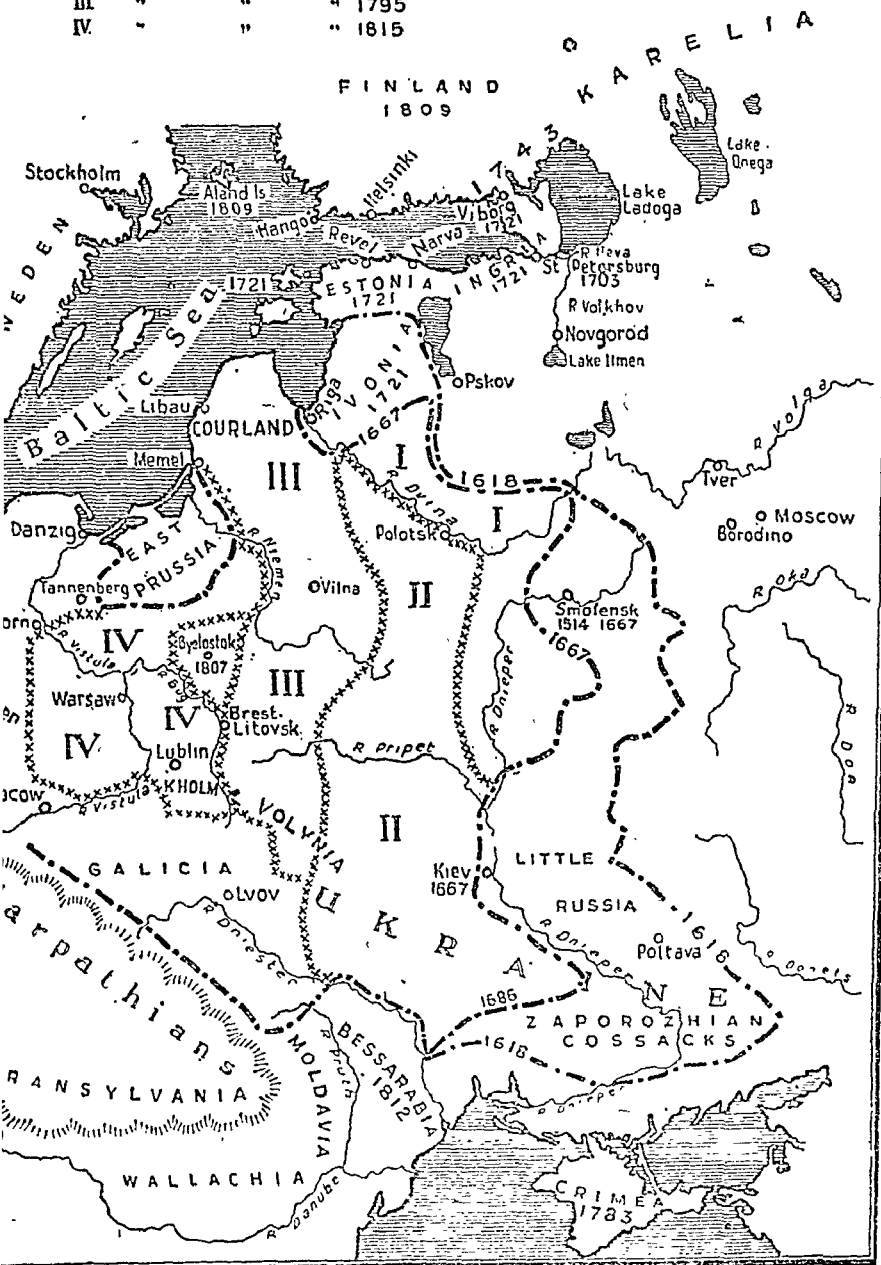
तातार लूटकर बरबाद कर रहे थे और इन राज्यों को बार-बार तातारों को कर देना पड़ता था। अतः, वे धीरे-धीरे लिथुनिया के विशाल साम्राज्य से मिल गये, यद्यपि यह विशाल साम्राज्य केवल नाममात्र का था और इस साम्राज्य के बन्धन बहुत ढीले थे। गलिसिया का धनी प्रदेश, जो तेरहवीं शती में स्वतन्त्र जगमगा रहा था और रूसी भी था, लिथुनिया, पोलैण्ड और हंगरी के लिए झंझट की जड़ हो गया और सन् 1350 ई० में पोलैण्ड के हाथ में चला गया।

अतः, सन् 1250 और 1450 ई० के मध्य मस्कोवी के सुदृढ़ होने के पहले ही लिथुनिया एक प्रमुख रूसी राज्य हो गया। सन् 1450 ई० में लिथुनिया मेमेल के पास बाल्टिक से कृष्णसागर तक फैला हुआ था। डैनस्टीफर और डैन-पीयर मुहानों तक इसका बोलबाला था, यद्यपि यह उतना जबरदस्त नहीं था। यह पश्चिम में बग (दलदल) तक तथा पूर्व की ओर डैनपीयर, स्मोलेंस्क और कीव तक फैला था। लिथुनिया का साम्राज्य मास्को से 100 मील के भीतर ही था तथा भरसक मस्कोवी की वृद्धि रोकने की चेष्टा कर रहा था। वह नवगोरद को खूब चाँप रहा था तथा ऊपरी ओका-तट पर पंख फैला रहा था। साथ ही, डैनपीयर के पार जंगली स्टेप में भी अपना जाल बिछा रहा था।

यह लिथुनिया और रूस के संयुक्त प्रयास का फल था। केवल उत्तर में लिथुनी-जाति ठोस रूस में थी। इस समस्त विशाल प्रदेश में रूसी ही रहते थे, जिनका विकास श्वेत रूसी और उक्रेणी के रूप में हो रहा था। चार विशिष्ट लिथुनी सैनिक सर-दारों ने अपनी शक्ति और यथायोग्य अनुकरण के द्वारा इसे वर्तमान रूप दिया। कुछ तो विजय करके, कुछ वैवाहिक सम्बन्ध से, कुछ सन्धियों से तथा कुछ क्रय करके इस देश का निर्माण किया। इसकी राष्ट्रभाषा एक प्रकार की रूसी थी, जो श्वेत रूसियों की भाषा से मिलती-जुलती थी। सत्रहवीं शती के प्रारम्भ तक, कुछ हद तक यही भाषा रही। अधिकांश जनता का धर्म सनातन ईसाई-धर्म था। प्राचीन पश्चिमी राज्यों की संस्कृति, संस्था तथा विधि पर सन् 1450 ई० तक नये राज्य के बनने का कुछ भी असर न पड़ा। इस नये राज्य की राजधानी थी विलना। पूर्व दिशा में अन्य रूसी राज्यों के साथ कम-से-कम राजकुमारों, सैनिक भूस्वामियों तथा उच्च पादरियों का दृढ़ सम्बन्ध रहा, हमेशा युद्धभाव नहीं। इनमें परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध खूब होते थे और लोग सरलता से मस्कोवी से लिथुनिया की सेवा और लिथुनिया से मस्कोवी की सेवा में आते-जाते रहते थे।

इसी समय जब प्रमुख पश्चिमी रूसी राज्य लिथुनिया अपनी पराकाष्ठा पर था तथा पूर्व में अन्य रूसी प्रदेशों को हड़प रहा था, पश्चिम की ओर यह पोलैण्ड के चक्कर में पड़ता जा रहा था। उत्तर में पूर्व प्रशिया और लिवोनिया के जर्मन-

सरदारों से सामान्य खतरा था, अतः सन् 1358 ई० में यह पोलैण्ड से मिल गया और लिथुनिया के लोग कैथोलिक हो गये। इस मेल का प्रथम फल यह हुआ कि दोनों ने मिलकर सन् 1410 ई० में जेर्मन-सरदारों को ग्रूणवाल्ड या तन्नेवर्ग के युद्ध में करारी हार दी और यह स्थायी विजय कही जा सकती है। उसी समय पोलैण्ड के साथ लिथुनिया का संवैधानिक सम्बन्ध सदा कटु और विवादास्पद रहा। अनेक वार सन्धियाँ होती रहीं। अन्तिम सन्धि सन् 1569 ई० में लुवलीन में हुई। ये सन्धियाँ सन् 1385 ई० की सन्धि का फल थीं। इसका अन्तिम फल वही हुआ, जो कलमार की सन्धि (सन् 1379 ई०) का फल नार्वे और डेनमार्क के लिए हुआ था, भले ही स्वीडेन के लिए न हुआ हो।

लिथुनिया ने पोलैण्ड को जगेलान-वंश दिया। दोनों देशों का एक ही राजा होता था और उसी वंश के राजा चुने जाते थे। पोल-वंशों में जगेलान-वंश सबसे प्रसिद्ध है। पोलैण्ड ने लिथुनिया को कैथोलिक धर्म दिया। इसका फल यह हुआ कि प्रायः समस्त विशाल साम्राज्य के उच्च वर्गों का अन्ततः पोलीकरण हो गया तथा रूसी और सनातन ईसा-धर्म का प्रभाव अशिक्षित किसान जनता और सीमान्त-प्रदेशों में ही सीमित रहा। पोलैण्ड के अमीर और दिहाती रईसों से विशेषाधिकार, संस्था तथा दृष्टिकोण अपनाने की पद्धति बहुत मन्द रही। सन् 1569 ई० तक लिथुनिया अपनी पृथक् संस्था और प्रशासन को बचाये रखा। उसी समय भयावक इवन के धमकी देने पर लिथुनिया ने लुवलीन से सन्धि कर ली और अपने दक्षिणी तथा उक्रेणी प्रान्तों में पोल-राज्य का अन्त कर दिया और घनिष्ठ संघ बनाना स्वीकार किया। इतना होने पर भी यद्यपि इस विशाल राज्य की शक्ति क्षीण हो गई, तथापि इसकी अपनी अलग सेना रहती थी, इसकी स्वतन्त्र प्रान्तीय सभा पोलैण्ड के नमूने पर थी तथा विकेन्द्रीय प्रवृत्तियाँ भी बनी रहीं।

सन् 1569 ई० तक शक्ति-सन्तुलन सौ वर्ष पहले की अपेक्षा बहुत भिन्न हो गया था, जब लिथुनिया-पोलैण्ड ऊपरी ओडर से ऊपरी ओका तक तथा कृष्णसागर से बाल्टिक सागर तक फैला था। महान् इवन (सन् 1462–1505 ई०) तथा उसके उत्तराधिकारियों के काल में मस्कोवी की सुदृढता, क्रिमिया के तातारों की महत्त्वपूर्ण शक्तियों और उत्तमन-साम्राज्य के विस्तार के फलस्वरूप विशाल राज्य दिन-पर-दिन धनी और शक्तिशाली पोल-साम्राज्य पर निर्भर रहने लगा। इन्हीं सौ वर्षों के बीच मस्कोवी ने लिथुनिया को ले लिया और नवगोरद तथा पस्कोव को मिलाकर लिवोनिया में जर्मन-शासन स्थापित किया, लिथुनिया को आका से डैनपीयर खदेड़ दिया और स्मोलेंस्क का दुर्ग अधिकृत कर लिया (सन् 1514 ई०)। महान् इवन सदा घोषणा करता था कि समस्त रूसी भूमि कीव, स्मोलेंस्क तथा अन्य नगर भगवान्

की इच्छा से हमारे पुरुषों की है और हमारी विरासत है। मास्को का यह दावा कि हम कीव रूस के उत्तराधिकारी हैं और इस कारण 'पश्चिम प्रदेश' एक सनातन रूस में पुनः मिल जाय, और भी बुलन्द हो गया, जब लिथुनिया में पोलों का कैथोलिक प्रभाव निर्णयात्मक होने लगा। पहले तो आन्तरिक रूस में ही विद्वेष था, अब इस रूसी पोल ने भी महान् झंझट का रूप धारण कर लिया।

भयावह इवन को पूर्व दिशा में कजान और अस्त्रखान जीतने में (सन् 1552–56 ई०) अपूर्व सफलता मिली। अब वह पश्चिम की ओर मुड़ा और बाल्टिक सागर में निकास के लिए वर्षों के (सन् 1558–83 ई०) घमासान युद्ध में कूद पड़ा। यहाँ उसे लिबोनियन शासन, स्वीडेन तथा पोलैण्ड से भी युद्ध करना पड़ा। कुछ काल तक तो उसे अपूर्व सफलता मिली, किन्तु वह उन्हें न नीचा दिखा सका और न उन्हें अपने देश से मारकर भगा सका। उसने अपने देश पर बहुत भारी बोझ लाद दिया और असफल सिद्ध हुआ। राजा स्टिफैन बेथोरी के नेतृत्व तथा सैनिक संगठन के कारण अन्ततः पोलैण्ड की जीत हुई।

इधर विपत्काल (सन् 1604–13 ई०) में मस्कोवी नपुंसक हो रहा था। उधर पोलैण्ड का सिगिसमुण्ड तृतीय सुधार के प्रतिकूल उठ खड़ा हुआ। वह पूर्वी नीति के साथ आगे बढ़ा, ताकि पोलैण्ड और लिथुनिया का फिर से स्थायी सम्बन्ध और सुदृढ़ और अन्ततः पक्का हो जाय। एक ही पोल-भार्या से पहले एक कपटी जार और पुनः द्वितीय जार पोल-सेना की सहायता से उठ खड़े हुए। मस्कोवी के विशाल क्षेत्र अधिकृत हो गये या बरबाद कर दिये गये। इक्कीस मास के घेरे के बाद स्मोलेंस्क छीन लिया गया। पोलों ने भी दो बार मास्को घेर लिया था। अन्ततः, सिगिसमुण्ड का पुत्र और उत्तराधिकारी ब्लाडिस्लाव जार के रूप में गद्दी पर बैठा (सन् 1610–12 ई०)। मस्कोवी के अमीरों के एक दल ने भी उसे जार बनने में मदद की। किन्तु, अन्ततः राष्ट्रीय विरोध की लहर कें कारण उसे गद्दी छोड़कर भागना पड़ा। पादरियों ने साथ दिया। बोल्गा से और उत्तरी जिले से मिनिन और पोझरस्की ने विद्रोह का संगठन किया और युवक माइकेल, रोमानव जार चुना गया (सन् 1613 ई०)। पोल-राज्यकाल का कटु स्मरण लोगों को चुभता रहा। मिनिन और पोझरस्की के नाम की इज्जत रूसी तभी से करते हैं। ये देशभक्ति के आदर्श हैं, जिन्होंने हमारे शत्रु पोल और हमारे ईसाई-धर्म के भ्रष्ट करनेवाले लिथुनियों के विरुद्ध झण्डा उठाया।

यद्यपि मास्को पुनः मिल गया और पोल-जार भगा दिया गया, तथापि मस्कोवी बहुत निर्बल था। फलतः, स्मोलेंस्क तथा अन्य प्रदेशों को, जिन्हें पोलों ने हथिया लिया था, जीतने में असमर्थ था। उत्तर-पच्छिम में स्वीडेन ने जो प्रदेश जीता था,

उसे भी यह जीत नहीं सका। सन् 1500 ई० के पहले जहाँतक मस्कोवी का राज्य था, वहीं यह खदेड़ दिया गया। विजित भूमि को पुनः जीतने के प्रथम प्रयास (सन् 1632–34 ई०) में इसे मुँह की खानी पड़ी। बीस साल के बाद यह कुछ ताकतवर हो गया। उक्रेण के कजाकों ने बोहदन खमेलनित्स्की के नेतृत्व में पोलैण्ड के विरुद्ध उपद्रव किया। सनातन ईसाई-धर्मानुयायी जार ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। छोटा रूस या उक्रेण का बायाँ तट या डैनपीयर नदी के बायें तट का प्रदेश मस्कोवी में मिल गया। जार अलेक्सिस ने 'पश्चिमी प्रदेशों' के लिए पोलैण्ड से पुनः लड़ाई ठान दी (सन् 1654 ई०)।

इसके बाद एक युग (12 वर्ष) का काल पोलैण्ड के इतिहास में प्रलय के नाम से ख्यात है, जिस प्रकार शती के प्रथम दो दशक राजद्रोह के रूप में मस्कोवी में प्रसिद्ध है। सन् 1667 ई० में मास्को ने कीव जीत लिया और सन् 1686 ई० में यह सदा के लिए उसे मिल गया। स्मोलेंस्क, डैनपीयर नदी के ऊपरी और मध्य भाग का बायाँ तट तथा छोटे रूस की उर्वरा स्टेप-भूमि भी रूस ने सफलतापूर्वक जीत ली।

एक सौ वर्ष तक यही राजनीतिक सीमा रही। कृष्णसागर, बाल्टिक, तुर्की तथा स्वीडेन अब 'पश्चिमी प्रदेश' बन गये। इन्हीं दिशाओं में तथा पोलैण्ड में रूसी विस्तार का मुख्य निर्देशन था। ये अब रूस के प्रमुख शत्रु हो गये। 'पश्चिमी प्रदेश' के लिए ठहरा जा सकता था; क्योंकि आर्थिक दृष्टि से वे इतने आकर्षक न थे। केवल ड्वीना का जलमार्ग तथा पोलों के उक्रेण ही आकर्षण के विषय थे। इन्हें रूस तभी अपने कब्जे में अच्छी तरह रख सकता था, जब स्वीडेन और तुर्की की शक्ति क्षीण हो जाय। अपितु, अब पोलैण्ड के प्रति भावना बदल गई थी। वह अब स्वीडेन तथा तुर्की का भी शत्रु हो गया था। सबसे बड़ी बात यह थी कि पोलैण्ड से अब कोई डरता न था। 'प्रलय' से यह बहुत कमजोर हो गया और थरथर काँप रहा था। उसमें आन्तरिक फूट थी। सत्रहवीं शती समाप्त होते-होते पोलैण्ड की कमजोरियाँ साफ दिखाई देने लगीं। इस देश में राजनीतिक विशेषाधिकार केवल एक ही वर्ग को था—अमीरों को। इनके अलावा मामूली रईस थे। इन दोनों में खूब फूट थी, अतः आन्तरिक कलह और भी प्रचण्ड हो गया। प्रान्तीय धर्मसभाओं की शक्ति बढ़ती जाती थी और उनमें विकेन्द्रीय प्रकृति थी। जब स्वीडेन, प्रशिया और रूस नूतन आधुनिक सेना तैयार कर रहे थे, पोलों ने अपनी सेना के नवीकरण की ओर ध्यान भी नहीं दिया; क्योंकि उन्हें अपनी ज्वलन्त सैनिक-परम्परा का अभिमान था और राजा जानसोबेस्की का क्षणिक प्रताप चमक रहा था; क्योंकि उसने सन् 1683 ई० में वियाना की रक्षा की थी। और, जब पोल भी अपनी सेना को नूतन बनाने को सोचने लगे, तब काफी देर हो चुकी थी।

महान् पीटर युद्धस्थल में स्वीडेन के चार्ल्स द्वादश से लड़ने के लिए कूद पड़ा। चार्ल्स पोलैण्ड का मित्र था। उन्होंने महान् उत्तरी युद्ध (सन् 1700–21 ई०) लड़े, जो सारे देश में छिड़ गया। कभी वह हारता था, कभी यह। प्रत्येक का समर्थक पोलैण्ड का विप्रतिपक्षी राजा था। अन्त में रूस की विजय हुई और पीटर के उपजीवी अगस्तस द्वितीय के लिए सैक्सनी के प्रधान का पद सुरक्षित हो गया। इससे रूस को अपनी नूतन शक्ति का पुनः ज्ञान हो गया। शेष शती-भर रूसी राजनीतिज्ञ तथा सेना उसी प्रकार व्यवहार करते रहे, जैसा युद्ध के अन्तिम दिनों में उन्होंने सीखा था। वे पोलैण्ड में उसी प्रकार विचरते थे, मानों यह उनकी बपौती हो। वे सोने की वर्षा करके वहाँ के प्रतिद्वन्द्वी अधीन कुलीनों, रईसों और राजा को एक-दूसरे के खिलाफ नचाते रहे। पोलैण्ड के अंगभंग करने की योजना पुनः पनप गई। पहले पीटर भी इसी विचार के पक्ष में था, किन्तु उसने यही समझा कि जैसा कमजोर पोलैण्ड है, वैसा सदा बना रहे। नाम के लिए वह स्वतन्त्र बना रहे, किन्तु रूस के अधीन रहे।

जब अगस्तस द्वितीय के उत्तराधिकारी को चुनने का प्रश्न आया, तब पोल-उत्तराधिकार-युद्ध छिड़ गया (सन् 1733–35 ई०)। इस युद्ध में रूसी सेना ने उसके पुत्र को सफलतापूर्वक गद्दी पर बैठा दिया। इससे उसके विपक्षी स्तानिलस लेसेजिंस्की की करारी हार हुई। पहले यह चार्ल्स द्वादश का उपजीवी था। अब फ्रांस भी इसका सहायक था। इसके बाद दो सौ वर्षों तक फ्रांस सदा, किन्तु दूर से ही पोलैण्ड और पोलों का सहायक रहा और 140 वर्षों तक रूस का विरोधी बना रहा, भले ही कभी-कभी विरोधी नहीं रहा हो।

ऐसा ही बीच का कार्यक्रम, सप्तवर्षीय युद्ध (सन् 1756–63 ई०) था। पोलैण्ड नाम के लिए तटस्थ रहा, किन्तु सचमुच रूस ने पोलैण्ड को अपने युद्ध-स्थल का आधार बनाया। पोलैण्ड ने हेप्सबर्ग से अपनी मित्रता बनाये रखी, किन्तु अब महान् फ्रेडरिक के प्रशिया का शत्रु बन गया। सन् 1762 ई० में महारानी एलिजाबेथ के निधन पर रूस ने पैंतरा बदल दिया। यह पैंतरेबाजी पोलैण्ड के भविष्य तथा युद्ध के प्रवाह के लिए अन्तिम था। महान् फ्रेडरिक की विजय के एक पीढ़ी बाद पोलैण्ड का अन्त हो गया।

2. बँटवारा तथा तदुपरान्त :

महान् फ्रेडरिक तथा महती कैथरीन (सन् 1762–96 ई०) में विभिन्नता और कठिन सौदा करने की प्रवृत्ति भले ही हो, किन्तु उनमें मौलिक समानता इस बात पर थी कि पोलैण्ड निर्बल बना रहे और वहाँ किसी प्रकार का सुधार न होने पाये;

क्योंकि सुधार से सम्भव है, रूस का पाँव उखड़ जाय। राजा की मृत्यु होने पर (सन् 1763 ई०) सामान्य निर्वाचन-संघर्ष का निबटारा इस बार बिना युद्ध के हुआ। कैथरीन ने फ्रेडरिक की स्वीकृति से स्तानिलस पोनाथतोवस्की पर आरोप लगाया। यह पोलैण्ड का अन्तिम राजा (सन् 1764–95 ई०) था। यह एक पोल अमीर था। उसे पहले कोई नहीं जानता था और पहले कैथरीन का प्रेमी भी था। आगे चलकर यह बहुत सुसंस्कृत व्यक्ति निकला और इसके प्रयास सफल हुए। किन्तु, सन्देह की शृंखला में जकड़े रहने के कारण और विशाल ऋण होने से यह कैथरीन का पूरा वृत्तिभोगी बन गया।

सुधारों पर रूस-प्रशिया का, पूर्ण निषेध न था। एक प्रकार के सुधार की केवल अनुमति ही न थी, बल्कि माँग की जाती थी और अन्त में उस सुधार को सेना के बल से लादा जाता था। यह सुधार था—विरोधक, सनातनी तथा प्रोटेस्टेण्टों (आर्यसमाजी) को धर्म, हक और छूट की पूर्ण स्वतन्त्रता देकर पुनः पदस्थापित करना। इस समय (सन् 1766 ई०) से 'पश्चिमी प्रदेशों' में सनातनियों का प्रश्न रूस की नीति और प्रवृत्ति में पुनः प्रधान लक्षण हो गया।

इसके दो शती पहले प्रति-सुधार तथा जेसुयिटों के आने से पोलैण्ड में युद्धक उत्तेजना का अभ्युदय हुआ। इससे पोलैण्ड की प्राचीन सहिष्णुता जाती रही। सन् 1596 ई० में उनियात-गिरजाघर की स्थापना हुई और यह खूब फूला-फैला। यह सनातनियों को कुचलने का अस्त्र था। अट्ठारहवीं शती में पूर्वी पोलैण्ड में सनातनियों की स्थिति, जो चाण्डाल के समान थी, और भी खराब हो गई और निःसन्देह वहाँ आमूल परिवर्त्तन की आवश्यकता थी। धार्मिक परिवेदना, विशेषकर पोल-उक्रेण में, उद्विग्न सामाजिक असन्तोष का लक्षण थी। अट्ठारहवीं शती में पोलों की जमीन्दारी और उनियात-गिरजाघरों को फिर से जगाने और बढ़ाने का यत्न किया गया। इससे उक्रेण के किसान गुण्डा बन गये। इन्होंने सीमान्त के जनप्रिय कज़ाक-डाकुओं से जिन्हें हैदाम भी कहते थे, मैत्री कर ली। इसमें रूस की भी कुछ गैर-सरकारी सहायता सम्मिलित थी। इसी समय कैथरीन ने अपना मतलब साधने के लिए सनातनियों की दशा का उपयोग किया और कुछ अपीलें, जो उसके पास हुईं, वे राज्य द्वारा संयोजित थीं।

विरोधकों के पक्ष में रूसी माँगों तथा अन्य आकांक्षाओं, जैसे पोलैण्ड पर एक प्रकार से रूस के संरक्षक शासन की माँगों को पोल-सभा (सन् 1767–68 ई०) पर जबरदस्ती लादा गया। किन्तु, पोलों की प्रतिक्रिया बहुत भीषण हुई और अनेक पोल युद्ध के लिए उद्यत हो गये। तुर्की मैत्री के लिए तैयार था, जिसने रूस से शीघ्र ही युद्ध छेड़ दिया (सन् 1768–74 ई०)। फ्रांस से भी कुछ मदद मिली, जो

तुर्की का मित्र था, तब भी वे असफल रहे। पोलों में फूट थी। वहाँ के अमीरों में सदा एक दल ऐसा था, जो रूस से मैत्री करने के पक्ष में रहता था। उसमन-साम्राज्य इतना जबरदस्त न था कि करारी हार को टाल सके, साथ ही वह इतना दुर्बल भी न था कि पूरी तरह हार जाय। अतः, प्रशिया ने आस्ट्रिया से मिलकर पोलैण्ड को वाध्य किया कि वह रूस को तुर्की पर विजय प्राप्त करने का मूल्य चुकाये। और, सन् 1772 ई० में प्रथम बँटवारा हो गया।

रूस का हिस्सा 'पश्चिमी प्रदेशों' का उत्तर-पूर्व भाग था, जहाँ पूर्ण रूप से श्वेत रूसी रहते थे। वे सामान्यतः दरिद्र थे। किन्तु, सामरिक और व्यापारिक दृष्टि से रूस के लिए यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण था; क्योंकि अब रूस ने डेनपीयर नदी का समस्त पूर्वी तट और ड्वीना नदी का उत्तरी तट सुरक्षित कर लिया। अतः, अब रीगा का स्मोलेंस्क से एकदम सीधा सम्पर्क हो गया। सन् 1721 ई० से ही रीगा रूसी था। इस प्रदेश को अन्ततः मिला लेने की स्वीकृति कैथरीन ने दस वर्ष पहले ही अपने परामर्शकों की गुप्त बैठक में दे दी थी, और सामान्यतः यह मत कि इस प्रथम बँटवारे में फ्रेडरिक ने उसे चकमा दिया, गलत है। हो सकता है, उसे इस बँटवारे को मानने के लिए मजबूर होना पड़ा हो। इसका वैदेशिक मन्त्री पनिन निश्चयरूपेण इस बँटवारे के विरुद्ध था।

इस प्रदेश में पोलों की संख्या बहुत कम थी। और, यदि केवल इसी प्रदेश को ध्यान में रखा जाय, तो पोलैण्ड को बहुत घाटा नहीं हुआ। सबसे बड़ी गम्भीर बात यह थी कि इसकी प्राप्ति, सन् 1667 ई० की प्राप्ति की अपेक्षा, तीन प्राच्य शक्तियों के समझौते के फलस्वरूप हुई। अब से 'पश्चिमी प्रदेशों' के प्रश्न का समझौता यदि रूस के पक्ष में होने की बात हो, तो यह प्रशिया और आस्ट्रिया की चाल से भी सम्बद्ध रहेगा, जिनकी पृष्ठभूमि में रूस की उपेक्षा किसी प्रकार की धार्मिक, राष्ट्रीय या ऐतिहासिक भावना नहीं थी। अब यह स्लावों की आन्तरिक समस्या न थी, बल्कि यूरोपीय कूटनीतिक चाल थी।

बीस वर्ष के बाद दूसरे और तीसरे बँटवारे में (सन् 1793 , 1795 ई०) समस्त 'पश्चिमी प्रदेश' रूस के हाथ लगा। प्रशिया और आस्ट्रिया ने शेष पोलैण्ड को बाँट लिया। अब पहले-पहल उनकी सीमा रूस की सीमा के समीप हो गई। रूस को और कुछ हद तक प्रशिया को भी, पोल-सेना से कठिन लोहा लेना पड़ा। पोल-सेना का नेता कोई बड़ा अमीर न था, बल्कि साधारण सरदार कोशिजको था। इसका जन्म भी अन्य प्रमुख पोलों की तरह विवादग्रस्त पूर्व-प्रदेश में हुआ था। यह अतलान्तिक पार (अमेरिकन) दूसरे स्वतन्त्रता-युद्ध का वीर अभियन्ता था। पोल किसान जनता पर से विश्वास उठ गया, जब यह स्पष्ट हो गया कि इस राष्ट्रीय

स्वतन्त्रता के युद्ध में किसानों को अपने पोल-स्वामियों से मुक्ति न मिलेगी। अन्तिम युद्ध (सन् 1794 ई०) के प्रारम्भ में पहले तो उन्हें आशतीत सफलता मिली, किन्तु शीघ्र ही पोल हार मान गये, खास कर रूसी सेना का बागडोर सुवोरव के हाथ में मिला। इस प्रकार की स्वतन्त्रता, खास कर रूस की सेना के कारण, पोलों की आँखों से ओझल हो गई। रूसियों ने कत्लेआम (सामान्य हत्या) से भूमि लाल कर दी। उनके देश का पोल-हृदय प्रशिया और आस्ट्रिया में बँट गया।

पोलैण्ड का विनाश पोल-जनता के प्रति एक अपराध था। यह उस काल के अन्तरराष्ट्रीय नैतिक मापदण्ड के भी प्रतिकूल था और बाँटनेवाले सभी शक्तियों के लिए यह अभिशाप सिद्ध हुआ। प्रथम बँटवारे के लिए महान् फ्रेडरिक विशेष उत्तरदायी था और शेष दो बँटवारों के लिए महती कैथरीन। यद्यपि यह ठीक है कि कभी-न-कभी प्रशिया पोलों का पोसेन-प्रान्त, जर्मन-नगर डांजिग और थॉर्न को हड़पने का जिद्द किसी-न-किसी प्रकार करता ही।

रूस की नीति में निर्णयात्मक चाल स्वयं कैथरीन (जन्म : सन् 172। ई०, राज्य-काल : सन् 1762–96 ई०) की थी। उसमें साहस, आत्मविश्वास तथा कूटनीति की प्रवीणता थी। उसके पास चंचलता और मोहकर्ता जैसे अनेक तीर थे। वह रूखा-सूखा तैयार मसविदे को पसन्द नहीं करती थी। वह घूम-घुमैया और अटकलबाजी पर अधिक विश्वास करती थी। अतः, उसकी पोल-नीति का ठीक-ठीक निर्णय करना कठिन है और इसके सम्बन्ध में बहुत मतभेद है।

प्रारम्भ से ही उसने इस नीति का तिरस्कार किया कि पोलैण्ड में किसी प्रकार का सुधार हो और वह शक्तिशाली बने। रूस से पोलैण्ड की मैत्री थी और समय पर आस्ट्रिया के बदले में तुर्की के विरुद्ध सहायता कर सकता था। उसके प्रथम वैदेशिक मन्त्री पनिन ने इसी नीति को अपनाने की प्रार्थना की; किन्तु कैथरीन फ्रेडरिक के तर्कों से मात हो गई। उसके अन्य परामर्शकों ने भी यही राय दी और पनिन असफल रहा। इसमें एक स्पष्ट कठिनाई यह थी कि हो सकता है, पालैण्ड रूस का मित्र न बना रहे और सुधर जाने पर तथा शक्तिशाली होने पर रूस के लिए और भी भयावह हो जाय। अपितु, पनिन की नीति थी कि 'पश्चिमी प्रदेशों' में घुसने की नीति को एकदम ठप्प कर दिया जाय और यह नीति रूस के अनेक प्रभावकारी क्षेत्रों में अप्रिय हो जाती।

प्रथम बँटवारे के बाद कैथरीन ने फिर बँटवारे को सोचा ही नहीं, जबतक पोलों ने पुनरुत्थान (सन् 1788–91 ई०) की प्रतिज्ञा न कर ली। इसी बीच प्रशिया और रूस में क्षणिक कलह भी हो गया। तब वह सोचने लगी कि हमें धमकाया जा रहा है, यह मेरा अपमान है और सन्त पीटर्सबर्ग में इस नीति का

जबरदस्त समर्थन होने लगा कि पोलैण्ड का अधिकतर भाग ले लिया जाय या उसका पूर्ण रूप से अंग-भंग कर दिया जाय। उसके परामर्शक आपस में झगड़ते रहते थे। किन्तु, उसके अन्तिम वर्षों में सभी अन्तरंग परामर्शकों ने राय दी कि पोल-उक्रेण को रूस में सम्मिलित कर लिया जाय। इन परामर्शकों में एक उक्रेणी था, दूसरा था नूतन रूस का राज्य-प्रतिनिधि और पोलैण्ड के विरुद्ध दोनों की महत्त्वाकांक्षी योजनाएँ थीं। कैथरीन भी उस समय तक काफी रूसी राष्ट्रवादी हो गई थी। अब वह विश्वमित्र-प्रमोदन की चिन्ता कम करने लग गई थी और चाहती थी कि किसी प्रकार भी हमारे साम्राज्य की वृद्धि हो।

तीनों बँटवारों से रूस को चिर विवादग्रस्त समस्त 'पश्चिमी प्रदेश', लिथुनि के प्राचीन महाकुमार की रियासत, जिसमें 60 लाख नूतन प्रजा रहती थी, मिले। सन् 1807 ई० में अधिकांश पोल जिला, वियलिस्तोक को रूस में ले लेने के बाद भी रूस की पश्चिमी सीमा ठीक बनी रही, जो सन् 39 ई० की शरद् ऋतु में नूतन सोवियत की सीमा थी, यदि इससे पूर्वी गलिसिया निकाल दें। पोल या पोलकृत उच्च श्रेणी, कैथोलिक तथा उनियात-पादरियों के सिवा, इन प्रदेशों के पूर्वी भाग में पूर्णरूपेण श्वेत रूसी और दक्षिण उक्रेणी थे। ये दोनों मिश्रित सनातनी और उनियात थे। स्वतन्त्रता के अन्तिम युद्ध के लिए इन्हें उभारने में कोई सफलता नहीं मिली। पश्चिमी भाग में पोलों की संख्या खासकर विलना में बहुत अधिक थी और पोलों का प्रभाव जबरदस्त था। उत्तरी भाग में अशिक्षित लिथुनी किसानों की बहुलता थी। सभी बातों पर विचार किया जाय और यदि 'पश्चिमी प्रदेशों' का प्रश्न बँटवारे से अलग रखा जाय, तो यह कहना उचित होगा कि प्रथम और द्वितीय बँटवारों से रूस को जो प्राप्ति हुई, वह न्यायसंगत था। किन्तु, तृतीय बँटवारा इतना न्यायसंगत नहीं रहा।

अधिकाश जनता के लिए रूस में मिल जाने से कुछ काल के लिए केवल दो बातों के सिवा कुछ भी अन्तर नहीं पड़ा। सनातनियों को पूर्ण स्वतन्त्रता थी और नगरों में अपेक्षाकृत अधिक सुविधा थी। इन प्रदेशों में रूस को पहले-पहल यहूदी-समस्या का बड़े पैमाने पर सामना करना पड़ा। साथ ही, सेमिटिक विरोधियों से भी पाला पड़ा, जिनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी और जहाँ स्थानीय कटुता बहुत तीव्र थी। एक शती के बाद प्रतिक्रियावादी जारशाही ने जान-बूझकर इस कटुता को और भी उग्र कर दिया। दासता पूर्ववत् बनी रही। यह दासता बहुत ही दुःखदायी थी, यद्यपि साम्राज्य के अन्य भागों की अपेक्षा यह कम स्वेच्छित था। विधि और परम्परा मूलतः पूर्ववत् बनी रहा। कैथोलिकों के प्रति सहिष्णुता थी, तो भी यहूदियों का पक्ष लिया जाता था। पोल उच्च श्रेणी अल्पसंख्य थे। उन्हें स्वयं युद्ध के लिए जाना पड़ता था। इसके सिवा व्यक्ति-

गत रूप में उन्हें अनेक यातनाएँ सहनी पड़ती थीं। इनमें से अधिक रईसों के पास अपनी भूमि थी। रूसी सरदारों को खासकर राज्य और गिरजाघरों की भूमि दे दी गई थी। पोल, अनेक देश के शासक भले ही न रहे, किन्तु स्थानीय शासन में उनका अपना पूर्ववत् स्थान था। केवल उसी प्रदेश में उनका हाथ नहीं था, जो प्रथम बँटवारे में मिला था; क्योंकि उस भाग को रूसी अधिकारियों के हाथ सौंप दिया गया था और वह भाग शीघ्र ही रूस में मिल गया।

इस भाग के सिवा जो अन्य प्रदेश, जो दो बँटवारों में मिले, उनका शासन विशिष्ट ढंग से होता था। पाल (सन् 1796–1801 ई०) और अलेक्जेण्डर प्रथम (सन् 1801–25 ई०) के काल में, खासकर अलेक्जेण्डर के काल में पोलों के प्रति मैत्री भावना झलकती है। स्थानीय प्रशासन खासकर पोलों के हाथ में थी। 'लिथुनि-दल' एक विशेष सेना थी, जिसका सम्बन्ध वारसा से था, न कि सन्त पीटर्सबर्ग से। जारतोरस्की पोल-सरदारों के सर्वश्रेष्ठ वंश में उत्पन्न था। वह पहले अलेक्जेण्डर का विश्वासी और वैदेशिक मन्त्री था। उसे वियना में एक विश्वविद्यालय बनाने की अनुमति दी गई, जो 20 वर्षों तक शिक्षा के केन्द्र तथा 'पश्चिम प्रदेशों' के लिए पोल-संस्कृति का केन्द्र (सन् 1803–23 ई०) रहा। एक तरह से इस विश्वविद्यालय ने, पोल राष्ट्रवादी आकांक्षाओं पर एक नई पीढ़ी को जन्म दिया।

आकांक्षाओं का भरण-पोषण ही सबसे बड़ी बात थी। पोल-राज्य का सन् 1795 ई० में ही अन्त हो चुका था, किन्तु पोलों की राष्ट्रीय भावनाओं का अन्त नहीं हुआ था। पोलैण्ड दो विभिन्न सभ्यताओं और एक विवादग्रस्त प्रदेश द्वारा विभक्त थे। अब विभाजन का एक तीसरा कारण भी हो गया—स्वतन्त्रता का नाश। सन् 1815 ई० के बाद एक और चौथा कारण अधिकांश पोलों का रूस में सम्मिलित करना बन गया और (सन् 1830 ई०) के बाद उन्हें रूसी यातनाएँ दी जाने लगीं।

विभाजक राष्ट्रों के प्रति पोलैण्ड की घृणा इस बात से और भी बढ़ गई कि उन्होंने ठीक उसी समय पोलैण्ड का विनाश किया, जब सर्वतोमुखी सुधार की चेष्टा की जा रही थी और (सन् 1791 ई०) में नया संविधान बन चुका था। वारसा में फ्रान्सीसी प्रभुत्व दृढ था। कैथरीन ने पोल राष्ट्रभक्तों की खुली भर्त्सना की कि ये नामधारी राष्ट्रवादी पोल सामाजिक शान्ति के घृणित शत्रु हैं। ये ईश्वरहीन, विक्षिप्त, हिंस्र और सर काटनेवाले फ्रान्सीसी क्रान्तिकारियों की नकल करते हैं। पोलों का फ्रान्स की क्रान्ति के प्रति मिश्रभावना थी; किन्तु सन्

1795 ई० के बाद फ्रान्स और नेपोलियन, भागे हुए फ्रान्सीसी देशभक्तों के लिए युद्ध के आकर्षण बन गये। इयलो और फ्रीडलैण्ड के बाद उन्हें कुछ सन्तोष हुआ जब अलेक्जेण्डर नेपोलियन कोवारसा में महाकुमार की रियासत, (सन् 1807-13 ई०) स्थापित करने से रोक नहीं सका। इसमें बँटवारे के जो भाग प्रशिया और आस्ट्रिया को मिले थे, वे ही सम्मिलित थे, रूस का कोई भी अंश नहीं। किन्तु, नेपोलियन का साम्राज्य सैनिक चौकी होने के कारण दुगुना भयानक था और भविष्य में स्वतन्त्र पोलैण्ड का यह बीज हो सकता था। इस हालत में अलेक्जेण्डर का कुछ भी हाथ पोलैण्ड में नहीं होता। आरम्भ से ही अलेक्जेण्डर नहीं चाहता था, किन्तु नेपोलियन को रोकने में वह असमर्थ था।

पोल-प्रश्न, महाद्वीपीय पद्धति (काण्टिनेण्टल सिस्टम) तथा तुर्की के प्रश्न ने नेपोलियन को (सन् 1812 ई०) में युद्ध करने को बाध्य किया। इसके एक वर्ष पहले अलेक्जेण्डर ने महाकुमार की रियासत से युद्ध करने का जो जाल फैलाया था, यह उसी का उत्तर था। नेपोलियन स्वयं (सन् 1812 ई०) के युद्ध को द्वितीय पोल-युद्ध के नाम से पुकारता था। जैसे ही युद्ध छिड़ा, वारसा की सभा ने पोलैण्ड की पूर्वावस्था की घोषणा की और उसने 'पश्चिमी प्रदेशों' को विप्लव करने का आह्वान किया कि (सन् 1812 ई०) में राष्ट्रीय पुनर्विजय का युद्ध होनेवाला था। यह आह्वान कुछ अधिक सफल न हुआ, किन्तु नेपोलियन की विशाल सेना में 85,000 पोल थे और उत्साह और वीरता में उन्हें कोई भी मात नहीं कर सकता था।

तीन वर्ष बाद नेपोलियन सन्त हेलना द्वीप पहुँचा और वियना-कांग्रेस में शक्तिशाली राष्ट्रों के बीच बहुत झंझट के पश्चात् पोलैण्ड का चौथा बँटवारा हुआ। पोसेन, थॉर्न और डॉजिंग प्रशिया को लौटा दिये गये। महाकुमार की रियासत का शेषांश अलेक्जेण्डर को मिले, जिन्हें सरकारी तौर पर पोल-राज्य तथा गैर-सरकारी तौर पर पोल-महासभा कहते थे। क्रे को छोड़कर, पूरा गलिसिया आस्ट्रिया के पास रहने दिया गया। क्रे को एक लघु स्वतन्त्र राज्य बना दिया गया। निकोलस प्रथम ने जिद्द की कि इस विशाल नूतन षड्यन्त्र की स्थली का अन्त हो; क्योंकि इसकी शाखाएँ समस्त पूर्व पोल-प्रान्तों तक बिखरी थीं। अतः, सन 1846 ई० में इसे आस्ट्रिया से मिला दिया गया।

सन् 1815 ई० में सर्वप्रथम रूस पोलैण्ड से मिल गया। केन्द्रीय विस्चुला-प्रदेश, वारसा में केन्द्रित था। यहाँ प्रायः 30 लाख पोल और दो-तीन लाख यहूदी थे। यह पोल-महासभा पहले रूसी साम्राज्य से एकदम विलग था। रोमानव-

वंश ही परम्परा से इसका राजमुकुट धारण करता था। फिनलैण्ड के महा रियासत के समान ही, जिसे सन् 1809 ई० में अलेक्जेण्डर ने स्वीडेन से जीता था, पोल-राज्य का भी अपना अलग संविधान था। इस संविधान को पोलों ने परिमित उदार ढाँचे पर तैयार किया था। उनकी अपनी प्रतिनिधि-सभा (पार्लियामेण्ट), पूर्ण आन्तरिक स्वायत्त-शासन, जिसमें अलग विरद तथा शुल्क-सूची थी और अपनी सेना थी। एक रूसी अधिकारी ने इसका विरोध किया और कहा कि यह सर्प के समान अपना फन हमारे ऊपर फैलाये हुए है। किन्तु, यहूदियों को कोई सुविधा न थी। इस शासन में पन्द्रह वर्ष तक पोलों ने बहुत ही सफलतापूर्वक अपनी आर्थिक-संवृद्धि का संगठन किया। किन्तु, रूसियों ने इस संविधान को नहीं माना। उन्होंने समझा और ठीक ही समझा कि 'पोल-राज्य' एक पहली सीढ़ी है और आगे चलकर 'पश्चिमी प्रदेशों' को इसमें सम्मिलित कर लिया जायगा। इसके लिए पोलों ने सन् 1894 ई० और सन् 1812 ई० में युद्ध किया था और इसके लिए पुनः सन् 1830 ई० और सन् 1863 ई० में भी युद्ध करेंगे।

रूसी मत और पोल-राजा अलेक्जेण्डर के बीच मौलिक विदलन था। अलेक्जेण्डर भले ही नकाब (छद्मवेष) धारण किये हो, किन्तु यह छद्मवेष मोम का न था, जैसा उसकी पितामही कैथरीन समझती थी। वह बहुत जिद्दी था और उसने अपनी पोल-नीति को छोड़कर अन्य कहीं इतना अधिक प्रभाव नहीं दिखलाया, यद्यपि अन्त में वह हार मान गया। अपने बाल्य-सखा तोरिस्की के प्रभाव में अलेक्जेण्डर ने ईमानदारी के साथ पोलैण्ड का पुनर्निमाण चाहता था, यदि इसे वह स्वयं कर पाता। वियना-कांगरेस में उसने पोलों की अधिकतम संख्या को पुनःस्थापित राज्य में शामिल करने का प्रयत्न किया। यदि पोल-राज्य में वारसा और गलिसिया के महारियासत होते, अर्थात् प्रशिया और आस्ट्रिया के बँटवारे के हिस्से होते, तो यह सम्भव था कि इससे पोल-राष्ट्रीयता को बल मिल जाता और वे अपने पूर्वी नियोग को छोड़ देते। किन्तु, प्रशिया और आस्ट्रिया में विद्वेष होने के कारण और प्रचण्ड शक्तिशाली रूस के सामान्य भय होने के कारण यह सम्भावना नष्ट हो गई। लोग डरते थे कि रूस पोलैण्ड को अपने शतरंज का प्यादा न बना ले।

तब भी अलेक्जेण्डर ने पोलों को सब तरह से जीवनदान दिया। उसने सन् 1812 ई० को एकदम भुला दिया। उसने पोल-राज्य को उदार तथा राष्ट्रीय ढंग पर चलाया और जान-बूझकर दरवाजा खोल दिया कि पूर्व की ओर फैल सकें। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, वह इस पक्ष में था कि 'पश्चिमी प्रदेशों' के अधिकतर भाग में नाममात्र का पोल-शासन रहा। सन् 1815 ई० के बाद लगभग एक दशक तक यह सम्भावना थी कि समझौते से कोई ऐसा साधन निकल पायगा, जिससे इन

प्रदेशों का एक भाग पोल-महासभा में मिल जाय और शेष भाग रूसी साम्राज्य में निश्चित रूप से घुलमिल जाय। इन सभी प्रयासों में अलेक्जेण्डर सदा अपने सभी रूसी परामर्शकों और अधिकांश रूसी मत के प्रतिकूल कपट-चाल चल रहा था।

रूसी लोग 'पश्चिमी प्रदेशों' और पोलैण्ड-महासभा में तीक्ष्ण विभेद करते थे: 'पश्चिमी प्रदेशों' में पोल न थे, अतः इसे पोलैण्ड को कभी नहीं लौटाना चाहिए और इसका शासन सदा इससे विभिन्न होना चाहिए। काँगरेस पोलैण्ड के सम्बन्ध में मतविभेद था। कुछ लोगों का विचार था कि जब सन् 1812 ई० में नेपोलियन भगा दिया गया, तब रूस को अपनी सीमा पर डटा रहना चाहिए था। महा-रियासत को अपने भाग्य पर छोड़ देना चाहिए था और पोलों को तिलांजलि दे देनी चाहिए थी। बाद में इस समाधान को उत्सुकता तथा ध्यानपूर्वक बार-बार उच्च श्रेणी तक के लोग भी सोचने लगे। इसके दो महान् दोष थे। सन् 1815 ई० के बाद इसका यह अर्थ होता कि पोल-राजा के रूप में जार ने संन्यास ले लिया और यह सर्वथा असम्भव कदम था। और, इसका यह भी अर्थ था कि इससे प्रशिया और सम्भवतः आस्ट्रिया की शक्ति बढ़ जाती, जिससे बेहिसाब अन्तरराष्ट्रीय उलझनें उत्पन्न हो जातीं।

पोल-महासभा को संवैधानिक शासन मिल जाने से अनेक रूसियों ने समझ लिया कि इससे पश्चिमी प्रदेशों' में अत्यन्त भयावह प्रभावों का केवल मार्ग ही न खुल गया, बल्कि यह शेष रूसी साम्राज्य में जार के पद से मेल नहीं खायगा। सभी नहीं, किन्तु अधिकांश रूसी पाश्चात्य ढंग पर संवैधानिक सम्राट् के रूप में जारशाही के परिवर्तन के लिए तैयार नहीं थे। स्वयं अलेक्जेण्डर भी यह नहीं चाहता था। अनुदार राष्ट्रीयता की लहर ने, जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति निकोलस प्रथम में हुई, सन् 1815 ई० में पोलैण्ड के प्रश्न पर बहुत जोर पकड़ लिया। पोल-विरोधी अतिराष्ट्रीयता जो रूसी समाज में सर्वत्र जगमगा रही थी, उसका केवल एक ही प्रतिकारक था कि रूस में उदार आन्दोलन खूब फैले। किन्तु, इस पोल-नीति के समर्थन के लिए अलेक्जेण्डर प्रोत्साहन नहीं देता था। अपने पिता पाल की तरह ही अलेक्जेण्डर भी एकतन्त्री निरंकुश शासक रहना पसन्द करता था। उदार सुधारों के प्रति वह सहिष्णु था, किन्तु केवल उतना ही, जितना कि वह स्वयं कर सके और वह बिना आलोचना के कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया जाय। यह अन्तिम प्रबोधशील निरंकुश शासक था, इसलिए मूलतः उदार भावना से उसका मेल नहीं खाता था। स्टेल बीबी से वह पूर्ण रूप से सहमत था। जब उसने उससे कहा था—"प्रजा के लिए तुम्हारी आत्मा सर्वोत्तम संविधान है। देश में और पोलैण्ड में वह धीरे-धीरे दक्षिणांघ्रि होता गया और एक तरह के नैतिक तुषार में लिपट गया।

और, उसके अन्तिम वर्ष (सन् 1820–25 ई०) चिर ग्रहण के कारण अन्धकारमय लगते थे।

सन् 1820 ई० से ही अलेक्जेण्डर के 'पोल-राज्य' नीति से लवंग-कण उत्पन्न हो रहे थे। वह पोलों के कट्टर शत्रुओं की बातों में आ जाता था। संविधान का मनमानी उलट-फेर किया जाता था और कपट से रूसी नियन्त्रण भी किया गया। सन् 1825 ई० से निकोलस प्रथम ने 'पश्चिमी प्रदेशों' में एक नया तरीका अपनाया। वारसा में लोकप्रिय होने के लिए वह सचेत यत्न करता था, किन्तु अपने भाई को स्टेनटाइन से इसकी नहीं पटती थी। इसका भाई गदहा और अस्थिर था, किन्तु उसकी पत्नी एक पोल थी। पोल और लिथुनी सेना उसके भाई के पक्ष में थी और उसका भाई ही सेनापति था। पोल-महासभा में रूसी हस्तक्षेप अधिक-से-अधिक आलोचना-प्रद होने लगा। सन् 1830 ई० में फ्रांस और बेलजियम की क्रान्ति से उत्तेजित होकर, पोल राष्ट्रवादी संस्थाओं ने निकोलस को गद्दी से बहिष्कृत करने की घोषणा कर दी। उन्हें भय था कि प्रतिक्रिया होने पर पोल-सेना को कहीं पश्चिम यूरोप में न भेज दिया जाय। सेना ने विद्रोह किया। इन्होंने स्वतन्त्र पोलैण्ड की माँग की, जिसमें 'पश्चिमी प्रदेश' भी शामिल हो, न कि सन् 1815 ई० के संविधान के अनुसार उन्हें पूर्ण अधिकार मिले।

सन् 1830 ई० की घटना केवल उच्च तथा मध्य श्रेणी के राष्ट्रवादियों का विद्रोह न थी, बल्कि सन् 1863 ई० के छापामारी संघर्ष की अपेक्षा, सुव्यवस्थित और प्रशिक्षित पोल-सेना तथा लिथुनी सिपाहियों के जमाव से पूरे पैमाने पर एक युद्ध थी। तो भी, अन्ततः रूस की विजय अवश्य होती, यदि विदेशी सहायता नहीं आती। बाहर से सहायता न मिली। पोल आशा करते थे कि फ्रांस से सहायता मिलेगी, किन्तु सदा की तरह इस बार भी उनकी आशा पर पानी फिर गया।

पोल-विद्रोह होने से निकोलस प्रथम बेलजियम-क्रान्ति को सुलझाने में किसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं कर सका तथा इसी विद्रोह के कारण वह पोलैण्ड की ओर से भी अपना प्रभावशाली हस्तक्षेप करने में असमर्थ रहा। सन् 1863 ई० के विप्लव में जब नेपोलियन तृतीय ने रूस के प्रतिकूल अपनी कूटनीतिक चाल चली और फ्रांसीसी तथा अँगरेजों ने पोलों के प्रति सहानुभूति दिखाई, तब रूस में पोलों और आक्षेपकों के विरुद्ध राष्ट्रीय भावना और प्रचण्ड हो गई। लोग समझने लगे कि यह स्लावों को स्लावों से लड़ाने की चाल और प्राचीन घरेलू झगड़े में दखल है। यूरोपवाले इसे समझ सकते थे और इनसे उनका कोई सम्बन्ध भी नहीं था। इंगलैण्ड खासकर आयरलैण्ड को अधिक याद करता था।

तब भी सन् 1830 ई० और सन् 1863 ई० के मध्य पोल-प्रश्न यूरोपीय अन्तरराष्ट्रीय सम्पर्क में एक तहलका मचानेवाला श्येन था। जो पोल-सरदार भागकर पेरिस पहुँचे और अपना अद्र्ध-सरकारी शासन वहीं से चला रहे थे, वह निकोलस प्रथम के लिए एक सतत पूर्वधारणा थी। किसी भी हालत में, यदि पश्चिम को छोड़ भी दिया जाय, तो भी पोल प्रश्न केवल आन्तरिक समस्या नहीं कहा जा सकता था; क्योंकि प्रशिया और आस्ट्रिया में पोलैण्ड की स्थिति बनी रही। सन् 1830 ई० में तीव पूर्वी राष्ट्र और सन् 1863 ई० में रूस और प्रशिया सचमुच कदम-से-कदम मिलाकर चलते थे। इस अन्तिम बार आस्ट्रिया ने साथ नहीं दिया।

सन् 1830 ई० में रूस की प्रतिक्रिया यह थी कि पोलैण्ड-महासभा को विजित देश माना जाय, भले ही यह साम्राज्य के अन्य भागों से विलग रहे। सन् 1815 ई० का संविधान स्वाहा हो गया और सन् 1855 ई० तक रूस पोलैण्ड का गला चाँपता जा रहा था। इसी समय निकोलस की मृत्यु हो गई। अब 'पश्चिमी प्रदेशों' को शेष साम्राज्य के साथ पूरा मिला देने की परिपाटी चल पड़ी। पोल-प्रतिघाती अनेक उपाय किये गये तथा उनियात-गिरजाघरों के प्रतिकूल जबरदस्त आन्दोलन चला। सन् 1848 ई० क्रान्तियों का वर्ष थी। और, यह आश्चर्य की बात है कि क्रिमिया-युद्ध (सन् 1854–56 ई०) के समय रूसी पोलैण्ड में किसी प्रकार की गड़बड़ी न हुई। प्रशिया-पोलैण्ड में विप्लव नष्ट हो गया। रूसी सेना की शक्ति और वारसा या पश्चिमी नेतृत्व के अभाव में किसी को सर उठाने की हिम्मत नहीं हुई। किन्तु, क्रिमिया-युद्ध में रूस की हार से बहुत परिवर्त्तन हो गया। अलेक्जेण्डर द्वितीय के प्रारम्भिक वर्षों में रूस में आन्तरिक संकट पैदा हो गया, जिसका पोलैण्ड-महासभा की नीति पर प्रभाव पड़ा। पोल-सरदार विलेपोलस्की की अध्यक्षता में अनेक सुधार हुए, जिनसे पोलों को विकास का कुछ अवसर मिला। ऐसा प्रतीत होता था कि साधारण सुधार के कट्टर पक्षपाती पोल और रूसियों में कुछ समझौता हो जायगा। किन्तु, यह असम्भव सिद्ध हुआ। सरकार की जबरदस्त भूलों से उत्तेजित होकर राष्ट्रवादी संस्थाओं ने विद्रोह कर दिया। उन्होंने अलेक्जेण्डर को गद्दी से उतारने तथा 'पश्चिमी प्रदेशों' के साथ पोलैण्ड की स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।

रूस ने अलेक्जेण्डर का साथ दिया। अलेक्जेण्डर ने सन् 1815 ई० की परिस्थिति को भी मानने से इनकार कर दिया। उसे भय था कि कहीं यह सन् 1772 ई० का सोपान न बन जाय। उसका भाई पोलैण्ड में राजप्रतिनिधि था। उसने ठीक विद्रोह के पूर्व अपने भाई को रहस्यादेश में लिखा—राष्ट्रीय-सेना या खास कर संविधान का प्रश्न ही नहीं उठता। मैं इसको या उसको किसी रूप में मानने को

तैयार नहीं हूँ। इसे स्वीकार करने का अर्थ है पोलैण्ड का परित्याग और इसकी स्वतन्त्रता को मान्यता देना। रूस के लिए इसका बुरा परिणाम होगा। जो कुछ भी पोलैण्ड ने अतीत में जीता है, उससे हाथ धोना पड़ेगा, जिसे पोल देशभक्त अपना समझते हैं।

विप्लव को रक्त-क्रान्ति से कुचल दिया गया। रूस में जो प्रतिक्रिया हुई वह, सन् 1830 ई० से भी कठोर थी। जिस किसी वस्तु का सम्बन्ध पोलों से समझा जाता था, उनपर चुन-चुनकर क्रमानुसार आक्रमण किया जाने लगा। पोल लोगों पर स्लाव-जगत् में लातिनी सशस्त्र प्रचार का दोष लगाया जाता था। अब प्रशासन में सभी रूसी थे। अतः, बहुत निर्दयता के साथ लोगों को प्रशासन द्वारा कुचला गया, जैसा पहले नहीं हुआ था। हद हो गई, जब प्रत्येक ग्राम की पाठशाला में भी रूसी भाषा पढ़ने को बाध्य किया गया और पोल-भाषा में धार्मिक शिक्षा बन्द कर दी गई। रूस की नीति से कई बातों में किसानों को और औद्योगिक विकास को कई प्रकार से लाभ पहुँचा; क्योंकि इससे पोलीकरण रुक गया।

पोलों में सामाजिक और राजनीतिक भेदभाव नहीं था। इससे पोलों के हित को बहुत धक्का लगा। आयरलैण्ड में आयरिश लोगों को भी इतना धक्का न लगा था। फ्रांस की क्रान्ति के प्रभाव से यह भेदभाव और भी बढ़ गया था और देश तथा भगेड़ू शिविरों में भी यही भेदभाव था। सबसे बड़ी बात यह थी कि 'पोलैण्ड-महासभा' के अधिकांश पोल पिछड़े किसान थे। उन्नीसवीं शती के मध्य में तीस-चालीस प्रतिशत किसान भूमिहीन थे। तकनीकी और सामान्य स्तर में ये रूसी किसानों से कुछ बढ़कर न थे। सन् 1807 ई० में नेपोलियन ने सुधार के लिए स्वतन्त्रता की घोषणा की। इसके पहले भी प्रयास हो चुके थे, किन्तु इससे पोल-भूस्वामियों के शासन में व्यावहारिक रूप से बहुत कम परिवर्तन हुआ।

इस असफलता से रूस ने लाभ उठाया। सन् 1846 ई० से रूस ने भूमिसुधार-नीति का अवलम्बन किया। इसका उद्देश्य रूसी जार को पोल-कृषकों के मित्र के रूप में चित्रित करना था, पोल भू-स्वामी जिसके विपरीत थे। सन् 1830 ई० के विप्लव में किसानों ने बहुत कम भाग लिया और सन् 1863 ई० में इन किसानों ने केवल गौण रूप में भाग लिया। यद्यपि उस समय, क्रान्तिकारी सरकार ने, सन् 1830 ई० की अपेक्षा बहुत लम्बे-लम्बे वादे किये थे। इनके मुजरे में और रूस में दासों की मुक्ति के बदले में रूस-सरकार ने 'पोलैण्ड-महासभा में, एक भूमि-कानून (सन् 1864 ई०) पास किया, जो पोल-भूस्वामियों के विरुद्ध था। इस कानून

से किसानों को प्राय: चौगुनी भूमि मिली, जितनी कि रूसियों को मध्य रूस में मिली थी, और उन्हें यह भूमि बहुत सस्ती दर पर और सुगम तरीके से मिल गई।

सन् 1863 ई० के विद्रोह में अगुआ थे—अल्पसंख्यक, किन्तु वर्द्धमान व्यावसायिक पोल, लघु मध्यम वर्ग तथा निम्न श्रेणी के रईस। सन् 1830 ई० में ये सरदारों और महा-भूस्वामियों के अधीन थे। सन् 1863 ई० के बाद, सन् 1830 ई० की अपेक्षा, बहुत लोग बाहर न गये। नगरों में पोल और यहूदियों के कार्यकर्ताओं की संख्या बढ़ गई। व्यावसायिक मध्यम वर्ग भी तेजी से बढ़ रहा था; क्योंकि पोलैण्ड-महासभा (खासकर सूती कारखाने और कोयलों) में औद्योगिक विकास हुआ था। सन् 1851 ई० में पोलैण्ड तथा रूस के मध्य चुंगा-सीमा समाप्त हो जाने से औद्योगिक विकास को अच्छा मौका मिल गया। इसका फल यह भी हुआ कि पोल-व्यापारियों के लिए रूस की विशाल हाट खुल गई। ठीक इसी समय रेल-निर्माण, यन्त्रशास्त्र तथा अन्य व्यवसायों में पोलों की कुशलता के विकास के लिए रूस में विशाल क्षेत्र खुल गया। सन् 1863 ई० के पश्चात् की पीढ़ी के लिए यह सब आर्थिक आधार था। इसे हम मार्मिक कार्य या वारसा-धन कह सकते हैं। इसकी अपेक्षा पिछली पीढ़ी को लड़ाका राष्ट्रवाद और मुक्तिदायिनी कल्पना कहते हैं। इस काल के प्रतीक हैं तीन महान् भगेड़ू राष्ट्रभक्त कवि की चित्रमूर्त्ति—मिकवीच, क्रासिनस्कि तथा स्लोवाकी।

सन् 1900 ई० में नई पीढ़ी के लोगों को आर्थिक सुधार तथा परित्यक्त दक्षता से अब सन्तोष नहीं रहा। किन्तु, पोलैण्ड के आर्थिक ढाँचे में परिवर्त्तन से दोनों दलों को लाभ पहुँचा। ये दल थे—राष्ट्रीय प्रजातन्त्र दल, जो मोवस्की के नेतृत्व में बढ़ रहा था तथा अति लघु और विभक्त समाजवादी दल। इनके ऊपर, पोलैण्ड के आर्थिक ढाँचे में परिवर्त्तन के कारण और रूस से इसके आर्थिक सामीप्य के कारण, विभिन्न प्रकार से जबरदस्त प्रभाव पड़ा। अपने पोल-राज्य में जर्मनी पोल-विरोधी नीति को प्रोत्साहित करता था। वह खासकर जर्मनों को वहाँ उपनिवेश बसाने को भेजता था। रूस ने अपने पोल-राज्य में ऐसी नीति कभी नहीं अपनाई थी। इस कारण मोवस्की तथा अधिकांश पोलों ने, सामान्य शत्रु रूस के साथ क्षणिक सहयोग करने का यत्न किया क्योंकि; इससे कम हानि की सम्भावना थी। वे आशा करते थे कि उदार और क्रान्तिकारी आन्दोलन के कारण सरकार से पोलैण्ड को सुविधा मिल सकेगी।

सन् 1905 ई० में क्रान्ति से सुविधाएँ मिलीं, किन्तु रूसी शासन में किसी प्रकार का भौतिक परिवर्त्तन न होने से पोलों की आशा चौपट हो गई। सन्

1907 ई० के बाद पुनः प्रतिक्रिया शुरू हुई और जो कुछ भी सुधार हुए थे या होनेवाले थे, वे बन्द कर दिये गये या उनका पुंस्त्व-हरण हो गया। जार-सरकार ने पोलों को फिर शत्रु बना लिया; क्योंकि सन् 1912 ई० में जार ने खोलम जिले को पोलैण्ड-महासभा से अ ग कर दिया। यह जिला पोल और उक्रेणों को, उनियात और सनातन ईसाइयों की समर-भूमि था। सन् 1815 ई० के बाद पोलैण्ड-महासभा की सीमा का यह प्रथम परिवर्त्तन था और केवल यही परिवर्त्तन किया गया।

सन् 1914 ई० में विश्वयुद्ध छिड़ने के समय पोल निश्चित रूप से विभक्त थे। रूसी पोलों ने आशातीत साथ दिया; क्योंकि सेनापति महाड्यूक निकोलस के हस्ताक्षर से एक घोषणा-पत्र सर्वत्र भिजवा दिया गया था। किन्तु, जार के ऊपर प्रतिक्रियावादी रूसी राष्ट्रीयता का गहरा असर रहा। फ्रांस और ग्रेट-ब्रिटेन के विचारपूर्ण दबाव होने पर भी पोलैण्ड के पक्ष में जार ने कुछ सुविधा नहीं दी। रूस के उदार और क्रान्ति-दल इस बात को मानने को तैयार थे कि नृवंशीय पोलैण्ड स्वतन्त्र बना रहे। सन् 1917 ई० के मार्च की क्रान्ति के बाद उन्होंने इसे ऐसा मान भी लिया। परन्तु, ऐसा अर्थ उन्होंने कभी नहीं लगाया कि पोलैण्ड में 'पश्चिमी प्रदेश' का कोई विशाल भाग भी सम्मिलित है। इसी बीच सन् 1917 ई० में केन्द्रीय शक्तियों ने इसे तथा समस्त पोलैण्ड-महासभा को जीत लिया। यदि इनमें आपसी फूट-विरोध न होता, तो ये मित्रराष्ट्रों के सम्मुख पोल-प्रश्न का पूर्वकृत आस्ट्रिया-जर्मन-सुलझाव उपस्थित कर सकते थे। किन्तु, बात कुछ ऐसी ही थी। मिल सुदस्वी ने सन् 1914 ई० के ग्रीष्म में ठीक ही कहा था: "पोल-प्रश्न का निर्णय हम लोगों के पक्ष में होगा, यदि जर्मनी रूस पर विजय पाता है और स्वयं फ्रांस से पराजित होता है।"

3. उक्रेणी प्रश्न

मंगोल-विजय के बाद पूर्वी स्लाव दो भागों में विभक्त हो गये। रूस का पोलैण्ड से झगड़े के कारण और अन्य स्लावों के साथ रूस के सम्पर्क में स्लावों का विभाजन ही मुख्य बात थी। एक दल महारूसी कहलाया। फिनिश जातियों से इनका खूब मेल-जोल और परस्पर सम्बन्ध हो गया। ये ओका-वालगा-प्रदेश से तथा नॉर्थ से मस्कोवी-राज्य और साम्राज्य में फैल गये और कालान्तर में रूसी साम्राज्य में छा गये। दूसरे दल का विकास विभिन्न प्रकार से चार शतियों में लिथुनिया और पोलैण्ड में हुआ। इस दूसरे दल को सोलहवीं शती में श्वेत रूसी भाषा बोलनेवालों के नाम से पुकारते हैं। इस भाग को श्वेत रूसी क्यों कहते हैं, इसका मूल ज्ञात नहीं है। ये डेनपीयर, डवीना और भग-नदियों के ऊपरी भाग

में प्राय: पश्चिमी प्रदेशों के पूर्वी मध्य भाग में बसते थे। और, जो उक्रेणी-भाषा बोलते थे वे, पहले तो 'पश्चिम प्रदेशों' के कुछ भाग में और कालान्तर में समस्त पश्चिमी भाग में बस गये।

उन्नीसवीं शती तक उक्रेणी-भाषी साधारणत: अपने को रूसी कहते थे। कुछ लोग मोस्कल या मस्कोवी से विभेद बतलाने के लिए अपने को कजाक भी कहते थे। किन्तु, सत्रहवीं शती में जिस प्रदेश में वे रहते थे, उसे उक्रेण या उक्रेण-रूस कहते थे। मोटे तौर पर यह उस समय वह भाग था, जिसे आजकल उक्रेणी सोवियत-समाजवादी गणतन्त्र कहते हैं। साम्राज्यवादी रूसी उसे लघु रूस के नाम से पुकारते थे। पश्चिमी यूरोपीय लेखक इसे सथेनिया कहते थे, खासकर आस्ट्रिया के अधीनस्थ के उस भाग को, जो पूर्वी गलिसिया है। उक्रेण शब्द का अर्थ है उपान्त भूमि। उक्रेणी सदा ऐसे भाग में बसते आये हैं, जिसकी सीमा सदा बदलती रही है, जो मिश्र वन-प्रदेश की भूमि है, जहाँ जंगली स्टेप और खुला स्टेप मिले-जुले थे, जहाँ विभिन्न राष्ट्र और विभिन्न जीवन-प्रणालियों का सम्मेलन होता था; यथा मस्कोवी, पोल, तातार और तुर्की और जहाँ उनकी युद्ध-भूमि थी। इनके इतिहास में तरलता और अस्थिरता का प्रमुख कारण यही है कि वे सीमान्त की स्वतन्त्रता को अनुशासन और स्थायी प्रभुत्व के साथ सम्मेलन न कर सके। राष्ट्र के निर्माण और स्थिति के लिए अनुशासन और प्रभुत्व आवश्यक है। इसके बिना राज्य नहीं चल सकता।

गत सौ वर्षों में उक्रेणियों ने एक राष्ट्रीय आन्दोलन खड़ा किया। इसका आधार था सामान्य उक्रेणी-भाषा, जन-परम्परा, विलग उक्रेणी-इतिहास तथा नष्ट उक्रेण-स्वतन्त्रता को पाने का जन्मसिद्ध अधिकार। उन्नीसवीं शती में प्रगति करनेवाली अन्य स्लाव-जातियों ने भी ऐसा ही आन्दोलन किया था।

उक्रेणी एक अलग भाषा है या रूसी की बोलचाल की एक प्राकृत भाषा। इस विषय में घोर विवाद हुआ। जारशाही शासन के उत्पीडन के कारण यह एक राजनीतिक समस्या बन गई। लोगों ने समझा कि यदि उक्रेणी-भाषा होती, तो उक्रेणी राष्ट्र भी बन जाता। इसका विलोम भी लोग सत्य मानते थे। किन्तु, हमें अन्तत: इसी निर्णय पर पहुँचना पड़ेगा कि आधुनिक साहित्यिक उक्रेणी-भाषा का निर्माण राष्ट्रवादी बुद्धिजीवियों ने उक्रेणी-भाषा के एक मापदण्ड के लिए किया। युगोस्लाव, आधुनिक बलगेरिया तथा जेक में भी ऐसा ही हुआ था। अभी तक उक्रेणी-भाषा का विकास विविध स्पष्ट लोक-साहित्य के आधार पर विभिन्न बोलियों में हुआ था, जो परस्पर सम्बद्ध थे। इनके मुद्रण में या तो गिरजाघरों की स्लावनिक या रूसी लिपि का प्रयोग किया जाता था।

गत अस्सी वर्षों में उक्रेणी-इतिहासकारों ने सक्रिय कदम उठाया। अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, किन्तु अध्यावसाय से उन्होंने उक्रेण में इतिहास की योजना का विकास किया, जिसका रूसी इतिहास से मौलिक मतभेद है। उक्रेणियों को पूर्वी स्लावों की एक विभिन्न शाखा बतलाया जाता है। इनकी अपनी अलग भाषा और इतिहास था। अतीत में दो बार इनके स्वतन्त्र राष्ट्र थे। पहले तो कीव-रूस था, जिसमें सभी पूर्वी स्लाव सम्मिलित थे। इसका उत्तराधिकारी उक्रेण था, न कि मस्कोवी। उक्रेण ने एक नई धारा ही आरम्भ कर दी और इसका विकास भी विभिन्न तरीके से हुआ, कुछ तो रूसी, कुछ फिनिश और कुछ तातार। दूसरी स्वतन्त्रता उक्रेण को सत्रहवीं शती में मिली। बोहदन खमेल-नितस्की और कजाक इनके नेता थे। पोलैण्ड के विरुद्ध इन्होंने राष्ट्रीय विप्लव किया। इन्होंने उक्रेणी-स्वतन्त्रता की रक्षा के हेतु मास्को से सहायता की याचना की और अपने को नाम के लिए जार का सामन्त मान लिया। यह स्वतन्त्रता अट्ठारहवीं शती में नष्ट हो गई और उक्रेण-राष्ट्र महारूसी निरंकुशता का दास बन गया।

यह सत्य है कि अभी तक रूस का इतिहास मास्को और साम्राज्यवादी रूस की दृष्टि से लिखा गया हैं। इसका फल यह हुआ कि 'पश्चिमी प्रदेशों' के विशिष्ट विकास और उक्रेणियों की विशिष्टता तथा करतूतों को या तो निम्न दिखाया या उन्हें टाल दिया गया। यह भी सत्य है कि उक्रेणी के राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने अपनी खोज से विशाल ज्ञान-भाण्डार का नूतन क्षेत्र खोल दिया है। तब भी यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि केवल अतीत इतिहास की दुहाई देकर किसी भी राष्ट्र के वर्त्तमान अस्तित्व को सिद्ध करना असम्भव है। सम्भव है, इस प्रकार की दुहाई से किसी राष्ट्र के निर्माण या पुनर्जीवन में सहायता मिले। अतः गत सौ वर्षों के राष्ट्रीय तथा राजनीतिक सिद्धान्तों पर प्राचीन इतिहास को लिखना इतिहास का गला घोंटना है।

सोवियत-इतिहासकारों ने बहुत ही तार्किक सामान्य इतिहास की रूप-रेखा तैयार की है। वे अन्य रूसियों की अपेक्षा उक्रेण के विकास में विशेष अन्तर बतलाते हैं। वे इनपर कुछ सामान्य प्रभाव भी बतलाते हैं। विजय और ऊपरी स्टेपों के उपनिवेशीकरण, दक्षिण का आधुनिक ढंग से औद्योगिकीकरण तथा जारशाही के प्रतिकूल सामान्य प्रतिक्रिया होने के कारण ये एक दूसरे के अधिक नजदीक हो गये। रूसी इतिहासकारों का कहना है कि सत्रहवीं शती में सामाजिक और आर्थिक विभाजन के कारण उक्रेणी अपना स्वतन्त्र राष्ट्र न बना सके। उनके लिए स्वतन्त्र राष्ट्र बनाना असम्भव था; क्योंकि उनके अगल-बगल तीन सुगठित राष्ट्र थे—पोलैण्ड, मस्कोवी और तुर्की। रूस में मिल जाने में इन तीनों से कम

हानि गी। यह सत्य है कि उक्रेणी जनता पोलों की जानी दुश्मन थी। महारूस के प्रति उनकी शत्रुता इतनी सतत गाढ़ी न थी, जितना पोलों के प्रति।

यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि उक्रेण ने कभी पूर्ण स्वतन्त्र राष्ट्रीय राज्य की स्थापना न की। तीन शतियों तक लिथुनिया पोलैण्ड के अधीन रहने के बाद सत्रहवीं शती में ये पोलैण्ड से स्वतन्त्रता के लिए लड़े। मस्कोवी से भी लड़े, किन्तु उतनी एकता के साथ नहीं। इसका फल यह हुआ कि पोलैण्ड, मस्कोवी तथा तुर्की ने इन्हें आपस में बाँट लिया। पोलैण्ड के बँटवारे के समय से सन् 1918 ई० तक ये रूस और आस्ट्रिया के बीच बँटे रहे। सन् 1920 से 1939 ई० तक अधिकांश उक्रेणी, उक्रेण सोवियत-समाजवादी गणतन्त्र में सम्मिलित हो गये। ये सोवियत-संघ के अंग हो गये। किन्तु, इनकी प्रमुख अल्प संख्या, पूर्वी गलिसिया में थी, जो पोल-शासन के अधीन थी। वे भी सन् 1939 ई० की शरद् ऋतु में उक्रेणी सोवियत-समाजवादी संघ में शामिल हो गये। पाँच लाख व्यक्ति कारपेथियन के दक्षिण उपकार-पेथियन रूथेनिया में मिले हुए थे। वे सितम्बर, सन् 1938 ई० में इपुनिक-विघटन तक जेकोस्लोवेकिया में शामिल कर लिये गये। इसके कुछ मास बाद ही इन्हें हंगरी ने पुन: ले लिया, जिसके अधीन सन् 1919 ई० के पहले वे सदा रहे थे। वेसरविया और उत्तरी बुकोर्वीना में भी कुछ लोग रहते थे, जिनसे नूतन रूमानिया (सन् 1919 ई०) बना। सोवियत ने इन प्रान्तों को सन् 1940 ई० के ग्रीष्म में दखल कर लिया। अत:, जब जर्मनी ने सं० सो० ग० पर सन् 1941 ई० में आमक्रण किया, तब यूरोप के सभी उक्रेणी, हंगरी के अल्पसंख्यको को छोड़कर, एक राष्ट्र के अन्दर संगठित थे।

उक्रेणी केवल राजनीतिक दृष्टि से ही विभाजित न थे, धार्मिक दृष्टि से भी वे विभक्त थे। सन् 1596 ई० में ब्रेस्ट लितोवस्क संघ हुआ। उसी समय उनियात-गिरजाघर की स्थापना हुई, जिसमें वे ही सनातनी ईसाई थे, जो अपना संस्कार तथा कर्मकाण्ड कायम रखते हुए पोप की श्रेष्ठता को स्वीकार करते थे। प्रति-सुधारवादी दल तथा जेसुमिटों को 'पश्चिमी प्रदेशों' में कुछ दिनों तक खूब सफलता मिली। पोल और कैथोलिक प्रभाव फैलाने के काम में ये सफल रहे। बहुत-से अमीर और रईस इनके पक्ष में आ गये और उक्रेणी निर्बल पड़ गये। चिरकाल के बाद गत सौ वर्षों में पूर्वी गलिसिया में उनियात-गिरजाघर पोलो के लिए ऐसा अमोघ बाण सिद्ध हुआ कि जो मारकर फिर लौट आये। अब यही क्षेत्र उक्रेणी राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र बन गया।

'पश्चिमी प्रदेशों' में सनातनी बहुत गिर गये थे। किन्तु, सन् 1620 ई० के बाद इनकी आत्मा में पुन: जागृति हुई तथा सनातनियों को पुन: सफलता मिल गई।

सनातनी ईसाईयों का केन्द्र पहले ल्वोव था। अब उक्रेण में कीव ने यह स्थान पा लिया और एक शती तक यहाँ अपूर्व बौद्धिक और शैक्षणिक क्रिया-कलाप होते रहे। मस्कोवी की संस्कृति पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। सबसे बड़ी बात यह हुई कि सनातनी अब पोल-शासन के विरुद्ध सामाजिक और आर्थिक संघर्ष में भाग लेने लगे, जिसका नेतृत्व कजाक करते थे।

उक्रेणी कजाक उन्हीं सीमान्त परिस्थितियों में विकसित हुए, जिन परिस्थितियों में मस्कोवी के कजाक विकसित हुए थे। किन्तु, दोन का अपेक्षा उक्रेण में कजाकों की संख्या बहुत अधिक थी। जंगली स्टेप में तातारों से सतत युद्धशीलता में, कजाकों के एक स्वच्छन्द समाज का विकास हुआ था, जिनमें शिकारी, पशुपालक तथा किसान थे। पोल-सरकार इनकी रजिस्ट्री करके सैनिक सेवा के लिए इनपर नियन्त्रण रखना चाहती थी। सोलहवीं शती के अन्त में बहादुरी के जोश से जोपोरोभियन पोषकों का निर्माण हुआ। ये कजाकों से बढ़-चढ़कर थे। ये पंखघास-प्रदेश में रहते थे। ये डैनपीयर-जलप्रपात के पार रहते थे। ये जल और थल दोनों पर डाका डालते थे। ये ठीक दोन कजाकों के समान रहते थे। निबन्धित कंजाकों से इनका घना सम्पर्क था और ये पोलैण्ड से अर्द्ध-स्वतन्त्र थे। ये कजाक पोलों के लिए अनेक बार बहुत लाभदायक सिद्ध हुए, खासकर उन दिनों में, जब आपत्काल में पोलों ने केन्द्रीय मस्कोवी को रौंद डाला था। किन्तु, पोल-सरकार ने इन्हें सैनिक बनाने का यत्न किया। वह चाहती थी कि कृष्णसागर-तट के इर्द-गिर्द तातार और तुर्कों पर इनकी वीरतापूर्ण लूट को नियन्त्रित रखा जाय। मस्कोवी-सरकार बलहीन थी, अतः दोन कजाकों पर नियन्त्रण रखने में असमर्थ थी।

सन् 1569 ई० में लुबलिन-संघ ने पोल-सम्राट् को लिथुनिया के महाकुमार-रियासत के उक्रेण-भाग या दक्षिण भाग को सीधे सौंप दिया, अतः वहाँ पोल-जागीर, दासता, पोल-प्रशासन तथा सैनिक संगठन चल पड़ा। दोन-तट की ओर मस्कोवी का प्रसार बहुत ही कम हुआ था। अतः, कजाकों के अतिरिक्त उक्रेण-किसान भी अलग रखे गये। उन्होंने सदलबल कजाकों का साथ दिया अथवा कजाकों की सामाजिक क्रान्ति के सैनिक नेता के रूप में प्रतीक्षा करने लगे। सन् 1593 और 1648 ई० के मध्य कजाक और पोल-सेना से पाँच बार सैनिक संघर्ष हुआ। यद्यपि पोल विजयी हुए और निबन्धित कजाकों की विशेष सुविधाएँ समाप्त कर दी गईं, तथापि पोल-शासन अथवा पोलकृत रईस और अमीरों के प्रतिकूल घोर, अश्रद्धा और घृणा उत्पन्न हो गई, भले ही यह पोल-राजा के प्रति न हो।

सन् 1648 ई० में पोलों के विरुद्ध महान् उक्रेणी विद्रोह हुआ। बोहदन खेमेल-नितस्की (जन्म : सन् 1595 ई०; निधन : सन् 1657 ई०) इस विरोध का नेता था। यह निबन्धित कजाक भूस्वामी अधिकारी और निपुण अनुभवी कूटनीतिक योद्धा था।

अपने अन्त्येष्टि-वाक्य मे इसके सचिव ने कहा था —यह हमलोगों का प्रिय नेता वृद्ध रूसी ओडोसर, प्रसिद्ध स्कान्दरवर्ग, समस्त विजयी जपोरोझियन फकौप तथा समस्त कजाक-रूस-उक्रेण का हेटमान था। छह वर्षों तक वह लड़ता रहा तथा पोलों से सन्धि-वार्त्ता करता रहा। पहले तो उक्रेण स्टेप-भूमि के लिए पोलों की देख-रेख में पूरी स्वाधीनता और बाद में पोल-राज से भी विलग होकर उक्रेण की पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए लड़ता रहा।

किन्तु, मस्कोवी या तुर्की की सैनिक सहायता के विना स्वतन्त्रता पा जाना असम्भव था। चिरकाल पैंतरेबाजी के बाद, जिसमें क्रिमिया के तातारों के साथ मैत्री भी सम्मिलित है, सन् 1654 ई० में खमेलनितस्की ने कजाकों से उनकी स्वतन्त्रता और सनातन धर्म की रक्षा के लिए और जार से रक्षण की माँग करने के लिए सन्धि कर ली। जार अलेक्सिस के साथ जो सन्धिनामा तैयार हुआ, उसके अनुसार परस्पर सद्भावना के सिद्धान्त की परिभाषा भी ठीक से नहीं की गई थी। एक-दूसरे के प्रति ठीकेदारी का नैतिक बन्धन था। जार को कजाकों द्वारा उपस्थापित प्रार्थना-पत्र को स्वीकार करना था। कजाक उसकी नई प्रजा हो गये और उसके प्रति शपथ ली। उस समय कजाकों ने इस सन्धि की शर्तों को अच्छी तरह नहीं समझा था और इस सन्धिनामा के विषय में तब भी और आधुनिक काल में भी बहुत विवाद है। किन्तु, इतना स्पष्ट है कि इसके बाद आधी शती तक, उक्रेण में जो वास्तविक परिस्थिति थी, उसके कारण दोनों दल इस सन्धि से कुछ लाभ उठाने में असमर्थ रहे, जिसे उन्होंने प्रारम्भ में साथ रखा था।

सन् 1567 ई० में उक्रेणों के महान् नेता खमेलनितस्की के निधन के बाद पोलैण्ड के प्रलयकाल की तरह उक्रेण के विनाश के दिन समीप आ गये। चौबीस वर्षों तक कजाकों के विपक्षी दल जो डैनपीयर के दोनों तट पर बसे थे, आपस में लड़ते रहे। मस्कोवी, पोलैण्ड, क्रिमिया, तातार तथा तुर्की से कभी एक दल मिलता और कभी दूसरा। लघु रूस या उक्रेण के वाम भाग में (अर्थात्, डैनपीयर और कीव के पूर्वी भाग में) मस्कोवी के विरुद्ध मैत्री लोकप्रिय नहीं थी। उल्टे मस्कोवी के सीमान्त-प्रदेश स्लेवोदस्कय-उक्रेण में पूर्व दिशा की ओर अनेक लोग जाकर बस गये। उक्रेण के दक्षिण भाग में तुर्की के साथ मैत्री जनता में बहुत अप्रिय हो गई। 'विनाश' का फल यह हुआ कि उक्रेण बँट गया। कीव तथा वामतट (कालान्तर में जपोरोझियन कजाक भी) मस्कोवी के अधीन स्वीकार किया गया। दक्षिण तट उक्रेण पोलैण्ड और तुर्की में बँट गया। किन्तु, यहाँ सदा असन्तोष और खून-खराबी होती रही और अनेक वर्षों तक यहाँ अशान्ति रही।

स्वतन्त्रता-युद्ध असफल रहा। इसका प्रधान कारण यह था कि यह युद्ध उक्रेणियों की स्वतन्त्रता के लिए न था, बल्कि सैनिक-दल कजाकों के विशेषाधिकार के लिए था। कजाक स्वयं आपस में संगठित न थे तथा उन्होंने कभी दोन कजाकों के विद्रोही सिपाहियों से मिल-जुलकर काम नहीं किया। अतः, मस्कोवी के लिए सरल था कि परस्पर विरोधी स्वार्थों के साथ खिलवाड़ करे और धीरे-धीरे उक्रेण के वाम भाग पर प्रभावशाली शासन स्थापित करे। कजाकों ने अपने हेटमान सेनापति की देख-रेख में अपनी वित्तीय और सैनिक स्वाधीनता तथा अपनी परम्परागत स्वायत्त शासन का रूप बनाये रखा। हेटमान ने स्वतन्त्र रूप से बहुत कम बार मास्को से वैदेशिक सम्बन्ध स्थापित किये।

कजाक, दोन-तट के कजाकों की तरह धनाढ्य, अधिकारी शासकवर्ग, सैनिक तथा जपोरोझिन कजाकों में, जो सुदूर दक्षिण के जंगली प्रदेशों रहते थे, बँटे थे। अधिकांश उक्रेणी किसान थे। पहले ये पोल-मालिकों के दास थे। अब ये इनसे स्वतन्त्र हो गये थे। कजाकों की सामान्य जनता से इनका निकटतम सम्पर्क था। कजाक धनी-वर्ग के न थे और वे केवल धर्म में ही सामान्य थे, अन्यथा धनियों से इनकी कुछ समता न थी। धनी वर्ग इनसे श्रम और कर चाहता था। नगरवासी कजाकों के शासन को नापसन्द करते थे। इनके अपने अधिकार थे। मास्को इन्हें अपने पास आने के लिए प्रोत्साहित करता था। उच्च पादरियों के पास यथेष्ट भूमि थी। कुछ काल तक तो ये धार्मिक बातों में मास्को से स्वतन्त्र रहने के लिए डटे रहे; किन्तु धीरे-धीरे मास्को के दास बन गये और मास्को की संस्कृति पर इनका जबरदस्त प्रभाव पड़ा। इसका फल यह हुआ कि लघु रूस के विकास से कजाको को बहुत स्वतन्त्रता मिल गई। मस्कोवी का भी प्रभाव बढ़ता गया। अनेक नगरों में सेनागार और पदाधिकारी होते थे। भूमि कुछ विशिष्ट कजाकों की उच्च श्रेणी के हाथ में पहुँचती गई और किसानों के हाथ से भूमि निकलती गई, जो दासता की ओर बढ़ते जा रहे थे।

इन्हीं मुख्य बातों को विद्रोहियों ने तोड़-मरोड़ कर, अपना स्वार्थ सिद्ध किया। मजेपा महान् उत्तरी युद्ध के समय इस विद्रोह का नेता था। इस युद्ध में महान् पीटर ने सन् 1909 ई० में लघु रूस के पोलतवा में स्वीडेन के चार्ल्स द्वादश को पूरी तरह हराया। मजेपा सन् 1687 ई० से हेटमान था, यह महान् निर्माता पादरियों और शिक्षा का प्राश्रयदाता था; किन्तु धोखेबाज, चलता-पुरजा धनी पुरुष, नूतन समर्थशील उक्रेणी उच्च वर्ग का प्रतिनिधि तथा प्राचीन कजाकों के परम्परागत समता का शत्रु था। पीटर पर इसे विश्वास न था और सोचता था कि कहीं उसके पक्ष में जाने से हार न हो जाय। उसने चार्ल्स द्वादश से मैत्री की।

इसका लक्ष्य यह था कि स्वीडेन या पोलैण्ड की देख-रेख में सभी उक्रेणी किसी प्रकार मिल जायें और एक होकर रहें। पीटर का शासन कड़ा होने से लोगों में असन्तोष भले ही हो, किन्तु जनता ने मजेपा का साथ नहीं दिया। पोलतवा के युद्ध से सभी बातें स्पष्ट हो गईं।

इसके बाद लघु रूस का शासन या तो कठपुतली हेटमान करता था या सन्त पीटर्सबर्ग द्वारा नियुक्त एक पर्षद्। कैथरीन द्वितीय तक इनकी स्वाधीनता में बहुत काट-छाँट होती रही। कैथरीन द्वितीय केन्द्रीकरण की नीति सदा अपनाती रही और साम्राज्य के प्रशासन, वित्त, सेना तथा धार्मिक पद्धति में इसे पूर्णरूपेण मिला लिया (सन् 1782, 1783, 1786 ई०)। दासता और भी बढ़ती गई। जपोरोझियन पोषक अब अपनी पूर्वशक्ति की छायामात्र थे। सन् 1775 ई० में इनका अन्त हो गया। इसके पास जो कुछ भी बची-खुची भूमि थी, वह नव बासिन्दों को दे दी गई। नूतन रूस का निर्माण होने लगा। बहुत भटकने के बाद अन्ततः जपोरोझियन कजाक सीमान्त-सुरक्षा-सेना में पुनः भरती हो गये। ये कृष्णसागर-तट पर सीमा की रक्षा करने लगे और कुबान ने इन्हें भरती किया।

लघु रूस का विलयन उक्रेण के कजाक-अफसरों को मिलाने से हुआ। स्लोबोदस्कय-उक्रेणों की अपेक्षा इनके पास अधिक दास थे और ये बहुत अमीर थे। ये चाहते थे कि इन्हें भी उसी प्रकार का विशिष्ट पद मिले, जो रूस के अमीरों को प्राप्त है और सन् 1785 ई० में इन्हें वही पद मिल गया। जिस प्रकार पहले पश्चिमी उक्रेण के उच्चवर्ग पोल बन गये थे, ठीक उसी प्रकार अट्ठारहवीं शती में पूर्वी उक्रण का उच्च वर्ग रूसी बन गया। अब उक्रेणी रूसी जीवन के विभिन्न अंगों में प्रमुख भाग लेने लगे।

रूसी शासन में उक्रेणी किसान इस प्रकार बढ़ गये कि इन प्रान्तों के दिहाती क्षेत्रों की आबादी बहुत घनी हो गई। यह क्षेत्र कृषि-असन्तोष का प्रमुख केन्द्र हो गया तथा यहाँ से लोग जीविका खोजने के लिए अधिक संख्या में बाहर जाने लगे। सन् 1703 ई० में पोलैण्ड के द्वितीय बँटवारे के बाद रूस का शासन उक्रेण के दक्षिण तट तक फैल गया था। इन उक्रेणियों की अपनी विशिष्ट भाषा, भवन-निर्माण-पद्धति, जीवन-प्रणाली तथा कृषि-प्रणाली पूर्ववत् बनी रही, तब भी इन लोगों ने बोलगा, उत्तरी काकेशिया और साइबेरिया के उपनिवेशीकरण में महारूसी जनता का साथ दिया तथा कृष्णसागर-स्टेपीज में नेतृत्व किया। उन्नीसवीं शती में शेष साम्राज्य के साथ उक्रेण का आर्थिक सम्पर्क और भी दृढ हो गया; क्योंकि नये चुकन्दर-चीनी के उद्योग का विकास हुआ। कृष्णसागर के बन्दरगाह से अन्न का

निर्यात होने लगा। कोयला और खनिज लोहे की खानें डोनेट बेसान में तथा क्रिवोई रोग में मिलने से और भी दृढ सम्पर्क हो गया।

इस प्रकार, उक्रेण और रूस के मिल जाने से दोनों को लाभ पहुँचा। किन्तु, इससे जारशाही की केन्द्रीय शक्ति और नौकरशाही की दासता भी उक्रेण को सहनी पड़ी, जो उसकी विशिष्ट परम्परा के प्रतिकूल थी। सन् 1863 ई० के बाद रूसीकरण नीति और भी बढ़ गई। उक्रेणी-भाषा में सभी प्रकार के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लग गया (सन् 1876 ई०)। इससे जार-शासन के प्रतिकूल उत्तेजना फैली और नूतन उक्रेणी राष्ट्रीय आन्दोलन को पर्याप्त बल मिला।

यह आन्दोलन लगभग सन् 1840 ई० से ही चल रहा था। इसका आरम्भ पहले कीव से हुआ। बाद में आस्ट्रिया की सीमा से ल्वोव पहुँचा। इस आन्दोलन के दो आधार थे। प्रथम आधार था राजशक्ति के विरुद्ध धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक शिकायत तथा दूसरा था पश्चिमी यूरोप की राष्ट्रीय भावना। राष्ट्रकवि शेवचेंको (सन् 1814–61 ई०) ने सत्रहवीं शती में कजाकों के उत्पीडन-संघर्ष की स्तुति की। शेवचेंको स्वयं एक मुक्त दास था। उसने उक्रेण के किसानों को अपनी पूर्व-परम्परा की याद दिलाई।

राजनीतिक विचारधारा के राष्ट्रवादी अल्प संख्या में थे। नगर के कुछ व्यावसायिक और नगरपालिका और जेमस्तवा के कार्यकर्त्ता ही अधिकतर राष्ट्रवादी थे। प्रारम्भ में इनकी चेष्टा उक्रेणी-साहित्य और संस्कृति का पुनः उद्धार करने की थी, किन्तु अन्तिम राजनीतिक उद्देश्य किसी रूप में स्थानीय स्वाधीनता की प्राप्ति थी, जिसमें रूस का पुनर्निमाण संघ के तरीके पर हो या उक्रेण-राष्ट्र स्वतन्त्र बन जाय। प्रत्येक दशा में यह आशा की जाती थी कि किसी प्रकार उक्रेण आस्ट्रिया-हंगरी में शामिल हो जाय।

सन् 1905 ई० की क्रान्ति में उक्रेण में पहले और बाद में भी खून-खराबी हुई, यद्यपि इसपर कोई राष्ट्रीय रंग नहीं चढ़ा था। किन्तु, उदार सुधार और विकेन्द्रीकरण की काफी माँग थी, जिससे उक्रेण में राष्ट्रीय आन्दोलन को और भी उत्तेजना मिली। इसे रूस में भरपूर विकास करने का सुअवसर मिल गया। सन् 1907 ई० के बाद जो प्रतिक्रिया हुई, उससे काम न बना; क्योंकि पोलों के विरुद्ध उक्रेणियों का साथ देने को वे तैयार थे।

तब भी जारशाही सरकार उक्रेणियों को सांस्कृतिक स्वाधीनता भी देने को तैयार न थी। यह सदा उनका विरोध करती रही। यह सत्य है कि उक्रेणियों का अब इतना प्रचण्ड दमन नहीं होता था। सम्भव है, यदि उन्हें सांस्कृतिक स्वाधीनता

मिल जाती, तो यह गृह-शासन का सोपान बन जाता और एक दिन वे विलग हो जाने की विचारधारा को प्रोत्साहित करते। कृष्णसागर में पहुँच की महत्ता और दक्षिण में विशाल उद्योगों के खुल जाने से सभी महारूसी, केवल सरकार ही नहीं, उक्रेणों में एक विशिष्ट प्रकार के राजनीतिक आन्दोलन के विकास को शंका की दृष्टि से देखने लगे। सन् 1917 ई० की अस्थायी सरकार की स्थापना में ये दोनों बातें विशेष प्रधान थीं। सोवियत-शासन के लिए यह और भी आवश्यक था।

इस विषय में घोर विवाद है कि सन् 1917 ई० में राजनीतिक राष्ट्रवादियों के आन्दोलन की जड़ कितनी दृढ और कितनी विस्तीर्ण थी। तो भी आगामी कुछ वर्षों के उलझे इतिहास से इस मत का समर्थन होता है कि रूस के उक्रेण में राष्ट्रवादी आन्दोलन का दृढ आधार प्रशासन और सांस्कृतिक क्षेत्रों में था, न कि राजनीतिक राष्ट्रीय क्षेत्र में। लोग जारशाही कुशासन और उत्पीडन की दिल से भर्त्सना करते थे, न कि महारूस के साथ सामान्य जीवन व्यतीत करने के सिद्धान्त की। सम्भव है, रूस में उक्रेणी राष्ट्र का निर्माण हो रहा हो, किन्तु राष्ट्र कभी बना नहीं। घटनाओं से पता चलता है कि उनके राजनीतिज्ञ राष्ट्रवादी थे, किन्तु राष्ट्रीय नेता नहीं।

अन्तरराष्ट्रीय पहलुओं और रूस और आस्ट्रिया-हंगरी में विद्वेष के कारण, जिनके पीछे जर्मनी था, उक्रेणी प्रश्न और भी जटिल हो गया। सन् 1907 ई० में आस्ट्रिया के निर्वाचन-सुधार के फलस्वरूप पूर्वी गलिसिया में उक्रेण के राजनीतिक कार्यों के लिए खुला रास्ता मिल गया। गलिसिया में सुदृढ राष्ट्रवादी आन्दोलन जोरों से चल रहा था। अधिकांश उक्रेणी पोलों के विरुद्ध संगठित थे। ये अधिकतर उनियात ईसाई थे, किन्तु इनमें कुछ सनातनी ईसाई भी थे। किन्तु, रूस के प्रति इनकी भावना विभिन्न थी। आस्ट्रिया उक्रेणी राष्ट्रीयता का व्यवहार रूस के विरुद्ध और कुछ हद तक पोलों के विरुद्ध करना चाहता था; किन्तु आस्ट्रिया के पास उक्रेण-समस्या का कोई हल नहीं था, जबतक पोलों को एकदम शत्रु न बना दे और हंगरी से युद्ध न करे। हंगरी स्वयं रूसी उपकारपेथियन-रूथेनिया में अशिक्षित उक्रेणियों के एक छोटे शिक्षित दल के रूसीकरण की प्रवृत्ति से परेशान था।

सन् 1914 ई० के पहले से ही जर्मनी चाहता था कि उक्रेणियों का व्यवहार, यदि सम्भव हो सके, तो रूस को कमजोर बनाने और पूर्व की ओर जर्मन-शक्ति के विस्तार में किया जाय। सन् 1917 ई० में युद्ध और क्रान्ति ने जर्मनी को सुअवसर दिया। अब रूसी साम्राज्य के लोगों के लिए स्वाधीनता या विलगाव के जलद्वार खुल गये। कीव में स्वाधीन उक्रेणी सरकार स्थापित हो गई। नवम्बर, सन् 1917 ई० में बोलशेविक राज्य-विप्लव के बाद उक्रेण ने अपने को स्वतन्त्र घोषित

कर दिया। अब ये अपने विपक्षी के प्रतिकूल सहायता के लिए केन्द्रीय शक्तियों का मुँह देखने लगे; क्योंकि बोलशेविक उक्रेणी शासन का केन्द्र था खरकोव का औद्योगिक केन्द्र। केन्द्रीय राष्ट्रों ने सोवियत रूस को ब्रेस्ट-लितोवस्क की सन्धि के द्वारा उक्रेण से इस्तीफा देने को बाध्य किया। उक्रेण से बोलशेविक भगा दिये गये। उनकी सेना आगे देश पर अधिकार करने लगी और छापामार सेना से पीड़ित देश से, जितना हो सके, रसद वसूल करने लगी; क्योंकि इस समय उन्हें रसद की विशेष आवश्यकता थी। मार्च से नवम्बर सन् 1918 ई० तक जर्मनी ब्रेस्ट-लितोवस्क नीति पर चलने में समर्थ रहा और अपने ग्राहक राज्यों की परिधि बनाता रहा। उनमें उक्रेण भी नाममात्र का एक स्वतन्त्र राज्य था, जो एक राजतन्त्रीय कठपुतली सरकार के अधीन था। पश्चिमी यूरोप में पराजय से जर्मन-नियन्त्रित उक्रेण का अन्त हो गया।

इसके बाद दो वर्षों तक उक्रेण-भूमि गृहयुद्ध का क्षेत्र बना रहा। यहाँ जो संकट उत्पन्न हुआ, वह विनाश से भी बढ़कर था। कीव में पेतल्पुरा के नेतृत्व में क्रान्तिकारी स्वतन्त्र सरकार बनी, किन्तु यह बोलशेविक-विरोधी थी। श्वेत रूसी उक्रेणी राष्ट्रीयता के शत्रु ही थे, किन्तु उक्रेणी बोलशेविकों की नई पद्धति के वे शत्रु नहीं थे। अन्त में, फ्रांस और इंगलैण्ड ने डेनिकिन के नेतृत्व में रूसी श्वेतों की सहायता की, पेतल्पुरा की नहीं। किन्तु, बोलशेविकों के जंगली गृहयुद्ध में डेनिकिन और पेतल्पुरा दोनों हार गये। बोलशेविकों को उक्रेण के औद्योगिक कार्यकर्ताओं से बहुत सहायता मिली। कुछ समय के लिए तो अराजक किसान-दल से भी सहायता मिली। जिन्हें पौराणिक छापामार नेता मखनों ने उभारा था। पेतल्पुरा भाग गया और अन्त में उसने पोलों से सन्धि कर ली। मित्रराष्ट्रों ने उक्रेणों को रोकना चाहा, किन्तु पोलों ने सेना के बल से पश्चिमी उक्रेण के एक स्वतन्त्र सरकार को समाप्त कर दिया (सन् 1919 ई०), जिन्होंने पूर्वी गलिसिया में अपनी शक्ति बढ़ा ली थी और पेतल्पुरी उक्रेण के साथ संघीय शासन की घोषणा कर दी थी। एक वर्ष के बाद सोवियत-पोल युद्ध हुआ; क्योंकि पोल बोलशेविज्म से और 'पश्चिमी प्रदेशों' में उनके अभिप्राय से डर गये थे। इसका वर्णन पहले हो चुका है।

इसका फल यह हुआ कि सन् 1914 ई० के पूर्व की तरह उक्रेणी विभक्त रहे। पोलैण्ड ने आस्ट्रिया का स्थान लिया। पोलैण्ड को पूर्वी गलिसिया के सिवा वोलिनिया भी मिला। बोलशेविकों के हिस्से में अधिकांश उक्रेणी पड़े और उनकी अर्द्ध-विनष्ट भूमि भी। इससे उक्रेणी सोवियत सामाजिक गणतन्त्र बना। उक्रेणी राष्ट्रवादी दलों ने पश्चिमी यूरोप की शरण ली और स्वतन्त्र उक्रेण को जीवित रखने का भरसक प्रयत्न किया। इस कार्य में उत्तरी अमेरिका में असंख्य उक्रेण-देशवासियों से सहायता मिली।

बोलशेविकों की सफलता के कारण थे उनकी अपनी शक्ति तथा निर्दयता और विशेषतः विपक्षियों के भूल तथा उनकी फूट तथा स्वयं उक्रेणियों की आन्तरिक फूट। अधिकांश उक्रेणी किसानों के लिए सामाजिक क्रान्ति अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई, न कि राष्ट्रीय नारे। बोलशेविकों ने खुलेआम विद्यालयों में उक्रेणी-भाषा के प्रयोग की छूट दे दी। वे अन्य प्रकार से भी छूट देने को तैयार थे। नूतन प्रशासन सोवियत-ढंग पर काम करने लगा। उक्रेणी सो० सा० गणतन्त्र में एक तरह से सभी संलग्न क्षेत्र संघ में सम्मिलित थे, जहाँ उक्रेणी रहते थे। सन् 1926 ई० में सोवियत-संघ में सभी मिलकर तीन-चौथाई उक्रेणी (2,30,00,000) रहते थे। उक्रेणी सा० सा० ग० में जनसंख्या के 80 प्रतिशत थे। इनमें किसानों की संख्या सबसे अधिक थी, जिनकी संख्या उस समय नगरवासियों की अपेक्षा चौगुनी थी।

प्रायः दस वर्षों तक उक्रेण के साम्यवादियों को और उनके सहकारी कार्यकर्त्ताओं को एक तरह से पूरी छूट थी, यद्यपि मुख्य नीति का निर्धारण मास्को से होता था। सन् 1928 ई० के बाद मास्को ने उक्रेणीकरण के प्रतिकूल कठोर-से-कठोर नियमों को अपनाना आरम्भ किया। उसने दक्षिणपन्थी राष्ट्रीयता की भी भर्त्सना की और कस-कर बदला लेना शुरू किया। स्वाधीनता को एकदम काट-छाँटकर कम कर दिया गया। 'रूप में राष्ट्रीय, अन्तरंग में समाजवादी' सूत्र को कठोरता के साथ पालन किया जाने लगा। सबसे बड़ी बात यह हुई कि कृषि में पूर्ण सामूहिकीकरण लाद दिया गया। इस प्रदेश में पहले व्यक्तिगत कृषि की प्रणाली चिरकाल से जड़ पकड़े हुए थी। नूतन आर्थिक नीतिकाल में व्यक्तिगत प्रेरणा मिलती थी। अतः, इस सामूहिकीकरण का हिंसात्मक प्रतिरोध हुआ। अनेक लोग देश से बाहर निकाले गये और सन् 1932–33 ई० में घोर दुर्भिक्ष पड़ा। सोवियत-दल की शुद्धि के लिए बहुत लोग बहिष्कृत हुए। इससे संघ तथा उक्रेण दोनों पर बहुत प्रभाव पड़ा। इसके बाद ही मास्को में सन् 1936—38 ई० में महान् अभियोग चला, जिसमे उक्रेण में जर्मनों की चाल को विशेष स्थान दिया गया। इसमें हिटलर, रोसेनबर्ग तथा कुछ चतुर राजनीतिज्ञों की पूर्वदिशा में अस्पष्ट रूप से फैलने की चाल थी।

साम्यवादी नीति के विरोध और मास्को से कठिन नियन्त्रण से सामूहिकीकरण रुका नहीं। उक्रेण के महान् कृषि-साधन का प्रयोग उसी प्रकार से हुआ, जिस प्रकार संघ के शेष भागों का। इसी समय ख्यात डनीयेरस्ट्रोई विद्युत्-गृह बना और पंचवर्षीय योजना के अन्दर विशाल उद्योगों का खूब विकास और विस्तार हुआ। संघ के पूर्वी भाग में भी कुछ नूतन औद्योगिक केन्द्र बने। किन्तु, सन् 1940 ई० में संघ का दक्षिणी भाग ही सोवियत कोयला, लोहा और इस्पात के मूल का पचास-साठ प्रतिशत

पैदा करता था। अब उक्रेण और शेष रूस का परस्पर आर्थिक अवलम्बन पहले की अपेक्षा और भी बढ़ गया।

कारखानों और खानों में नये कर्मियों के आ जाने से उक्रेण का स्वरूप बहुत बदल गया। सन् 1939 ई० में इस गणराज्य के एक-तिहाई से अधिक लोगों की गणना शहरी में होने लगी। महारूसी और उक्रेणी पहले की अपेक्षा अब और अधिक घुल-मिल गये। उक्रेणी किसानों की संख्या में, पूर्ण रूप में तथा अनुपात में भी, भारी क्षति हुई; क्योंकि कुछ मर गये, और कुछ उद्योग-क्षेत्रों में तथा अन्यत्र चले गये। यहाँतक कि इस गणराज्य की जनसंख्या भी सन् 1933 ई० की अपेक्षा सन् 1939 ई० में बहुत कम हो गई। सन् 1939 ई० में कुल संख्या केवल 3, 10, 00, 000 ही थी।

गत 12 वर्षों में उक्रेण में क्रान्ति ने भले ही नृशंसता से जड़ उखाड़ने का प्रयास किया, किन्तु इसकी प्रतिक्रिया में वहाँ किसी प्रकार की पृथक् राष्ट्रीय प्रवृत्ति उत्पन्न न हुई। उक्रेणी सांस्कृतिक क्रिया-कलापों तथा उक्रेणी-भाषा के प्रयोग को नये रूप में प्रोत्साहित किया जाता रहा। सन् 1939–40 ई० में पूर्वी पोलैण्ड और रूमानिया के उक्रेणों को उक्रेणी सो० सा० गणतन्त्र में सम्मिलित कर लिया गया। इसका सभी लोगों ने स्वागत किया; क्योंकि इससे बन्धुरक्त-सम्मेल हो गया तथा सभी उक्रेणियों की एकता कायम हुई। अनुपात से उक्रेण में साम्यवादी दल की संख्या इतनी ही विशाल है, जितनी अन्य सोवियत गणतन्त्रों में। लाल सेना में उक्रेणियों ने अनेक प्रमुख नेताओं को भेजा है। उक्रेण में सोवियत-देशभक्ति का खूब प्रचार है। वे सन् 1918 ई० में जर्मन-उत्पीडन के प्रतिकूल छापामारी तथा वोहदन खमेलनितस्की के पराक्रम का सर्वदा पुनः स्मरण करते हैं। द्वितीय जर्मन-विजय से उक्रेण में किसी प्रकार का कठपुतली-प्रशासन कायम नहीं हुआ या न शेष रूस से चिरकालीन परस्पर सम्मेल या सोवियत-संघ के भाग्यफल में साझीदार होने के विरुद्ध घृणा ही उत्पन्न हुई। घृणा वहाँ खूब है, किन्तु यह घृणा नात्सी नये शासन के जंगली उपदेशकों के प्रति है।

4. सर्वस्लाववाद :

अब जर्मनी अपने को पहले की अपेक्षा खुल्लमखुल्ला स्लाव-जनों का शत्रु घोषित करता है। उनके साथ रूसी युद्ध-क्षेत्र में घमासान युद्ध हो रहा है और रूस के गले पर छुरी चलाने को तैयार है। अपने अधिकार-ग्रस्त क्षेत्र में उप-मानव स्लावों के शरीर और आत्मा को कुचल रहा है। प्रथम विश्वयुद्ध की तरह आज भी पोल, जेक और युगोस्लाव सैनिक-विभाग रूस के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर अपने सामान्य शत्रु, जर्मन और मग्यार से युद्ध कर रहे हैं। अगस्त, सन् 1941–1942 ई०

और पुनः सन् 1943 ई० में सभी स्लाव-सम्मेलन, फासिस्ट दास-निर्माताओं को दोषी ठहराने और जर्मन-फासिस्ट कुत्तों को विरुद्ध सभी स्लावों और स्वतन्त्रताप्रिय राष्ट्रों के महान् वीरता-संघर्ष में महारूसी जनता की ऐतिहासिक योजना की घोषणा करने के लिए, मास्को में ही हुए और इस बात पर जोर दिया गया कि यह सर्वस्लाववाद को पुनर्जीवित करने का प्रयास नहीं है। सर्वस्लाववाद को जारशाही तथा प्रतिक्रियाशील अतिराष्ट्रीयता का हथकण्डा बताकर इसे प्रत्याख्यात कर किया गया। किन्तु, यह एक शती से विशेषत: रूसी इतिहास की पुकार थी, जिसमें स्लाव-प्रेमियों से सहानुभूति और पीडित स्लाव-बन्धुओं की परम्परा रूसी जनता में शक्ति-संचार कर रही थी। रूस की नीति में यह एक नया प्रस्थान था।

अक्तूबर-क्रान्ति से सभी देशों में स्लाव-जनसंगठन के विचारों का स्थान विश्व-कर्मकार-दल के संगठन ने ले लिया। सन् 1920 ई० में पोलैण्ड से सोवियत के पराजित होने, गृहयुद्ध की पीडा, मित्रराष्ट्रों के हस्तक्षेप तथा दुर्भिक्ष से साम्यवादी बहुत निर्बल हो गये थे। वे अपनी आन्तरिक समस्याओं में बहुत ही मग्न थे, अतः एक बार बलगेरिया को छोड़कर स्लाव-राज्योंकी ओर ध्यान देने का उन्हें समय ही नहीं था। सोवियत-शक्ति पूर्वदिशा की ओर तथा सोवियत-एशिया के विशाल तटप्रदेश की ओर लगी हुई थी, न कि बालकन और डेन्यूब दोन की प्राचीन पच्चीकारी की ओर। नूतन सोवियत-जगत् के निर्माण में स्लाव-जगत् की पुरातन भावनाओं या स्लावों के बीच सामान्य मेल का विचार ही नहीं किया गया।

प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी और रूस हार गये। अन्य स्लाव-जन (बलगेरिया को छोड़कर) विजयी रहे। उनकी विजय अपूर्व पैमाने पर हुई। इस विजय का कारण रूसी सेना की वीरता थी, किन्तु इसका श्रेय मिला पाश्चात्य मित्रराष्ट्रों की वीरता को। अतः, नूतन स्लाव-राज्य पश्चिमी और राष्ट्रसंघ (लीग ऑव नेशन्स) का मुँह ताकने लगे। उनके लिए साम्यवाद दुःस्वप्न या हौवा था। सोवियत ने धर्म पर कुठाराघात किया। इसमें सनातनी पादरी विरुद्ध हो गये। पहले सनातनी पादरी ही रूसी प्रेम के जबरदस्त स्रोत थे। सनातनी स्लावों के लिए 'पूतरूस' की पुरानी प्रार्थना जाती रही। श्वेत रूसी प्रवासियों ने रूस-विरोधी भावना का खूब प्रचार किया, खासकर युगोस्लाविया में, जहाँ जार के हत्यारों और रूस में सम्राट-वाद के सिद्धान्त के घातकों से श्वेत रूस के वंशजों ने किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना ही अस्वीकार कर दिया। बलगेरिया में रूढिवादी किसानों का रूस से परम्परागत सम्बन्ध बहुत जबरदस्त था। अतः, सोवियत-संघ के बाहर बलगेरिया में साम्यवादी दल को बड़ा भारी आश्रय मिल गया। किन्तु, साम्यवाद ने क्रान्ति और आतंकवाद (सन् 1923–25 ई०) फैलाने का यत्न किया। इससे इसको गहरा धक्का लगा और एक दशक तक यह शून्यप्राय रहा।

सन् 1933 ई० में नात्सियों के हाथ में शक्ति आई। शीघ्र ही सोवियत-नीति में पश्चिम के सम्बन्ध में तथा सोवियत और नये स्लाव-राज्यों के परस्पर सम्बन्ध में परिवर्त्तन हो गया। जेकोस्लोवाकिया सदा ही सो० सा० गणतन्त्र-संघ से मैत्री-भाव रखता था। इससे सन् 1935 ई० में सन्धि कर ली गई। [उस समय सोवियत और फ्रान्स में मैत्री थी। म्युनिक दुःखान्तिका से दोनों देशों में मैत्रीभाव और बढ़ गया। बलगेरिया ने तुरत पैंतरा बदला और सोवियत-शासन को मान्यता दे दी। (सन् 1934 ई०)। फलतः, सोवियत का प्रभाव इतना प्रचण्ड हो गया कि जर्मनी के के प्रभाव के बावजूद सन् 1940–41 ई० की शरद् ऋतु में जर्मनी के विरुद्ध इसी से मैत्री हो गई। बलगेरिया-सरकार ने रूस और युगोस्लाविया के प्रतिकूल अपने लोगों को भिड़ाने का साहस न किया। मार्च, सन् 1941 ई० में बलगेरिया ने नात्सी-दासता के विरुद्ध विद्रोह किया। उसने मास्को की ओर देखा और वहाँ उसका स्वागत किया। इसी प्रकार, जब सोवियत-संघ पर नात्सी-आक्रमण हुआ, तब पोलैण्ड ने अपने सामान्य शत्रु के प्रतिकूल रूस से मैत्री की। केवल स्लोवाक टुकड़ी और एक मुट्ठी क्रोटों ने रूस के विरुदध जर्मन की सहायता की, अन्यथा सभी स्लाव-जन रूस के साथ थे।

सामान्य शत्रु के भय से सभी स्लाव-जन एकत्र हो गये, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। अन्य स्लावों को रूस के साथ बाँधने में सबसे दृढ शक्ति, एक ही बन्धन और तुर्क, मग्यार तथा जर्मनों के विरुद्ध सामान्य शत्रुता की भावना सदा रही है। सन् 1917 ई० के पहले एक शती से अधिक तक केवल रूस ही शक्तिशाली स्लाव-राज्य था, जो स्लाव तुर्की, सर्व, मोण्टेनिग्रिन्स तथा बलगर को स्वतन्त्र करनेवाला चुम्बक था। ये सभी सनातनी ईसाई थे। सन् 1917 ई० के पहले आधी शती तक रूस को आस्ट्रिया-हंगरी के स्लावों के लिए एक प्रकार से वही आकर्षण था। इनमें कुछ तो सनातनी थे, किन्तु अधिकांश कैथोलिक थे और इनमें खूब फूट थी।

रूस का बलगरों से तथा विजयन्त-साम्राज्य के अधीन सबसे प्रमुख धार्मिक तथा सांस्कृतिक सम्पर्क था। किन्तु, उत्तमन-साम्राज्य के काल में यह सम्बन्ध बहुत ढीला पड़ गया था। पुनः अट्ठारहवीं शता में बालकन के स्लाव लोगों से रूस का लगातार महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध पुनः स्थापित हो गया। तब अट्ठारहवीं शती में मोलडाविया और वलाशिया-राज्य तथा वेसरविया के रूमानियन ही रूसी राजनीतिक और सैनिक हित के केन्द्र रहे; क्योंकि वे रूस के सबसे नजदीकी थे। रूमानियन सनातनी थे, स्लाव नहीं। सौ वर्षों के अन्दर (सन् 1711–1812 ई०) रूमानियों को पाँच बार रूसी सेना का अनुभव हुआ था। पुनः सौ वर्ष (सन् 1828–1218 ई०) में फिर पांच बार रूसी सेना से लोहा लेना पड़ा और वे इसे पसन्द नहीं करते थे।

बालकन के ईसाइयों पर बर्बरों ने जो दासता लादी थी, महान् पीटर ने खुले आम उसकी निन्दा की और मौण्टेनिग्रिन्स के साथ मैत्री कर ली, जो दो शतियों तक चलती रही। किन्तु, बर्बरों ने पथ में (सन् 1711 ई०) पीटर को हरा दिया। इससे उसकी सभी योजनाएँ विनष्ट हो गईं। महती कैथरीन ने इस काम को पूरा किया। उसने धर्मरक्षक तथा सनातन ईसाइयों का पक्ष लिया। तुर्की के साथ उसने जो प्रथम युद्ध आरम्भ किया, उसमें रूसी जहाजी बेड़ा सर्वप्रथम भूमध्य-सागर में उतरा। यह बेड़ा बाल्टिक सागर से चला था। इसी समय ग्रीस में भी विद्रोह छिड़ गया, यद्यपि लोगों ने विद्रोह के लिए पूरी तैयारी नहीं की थी। ग्रीस में विद्रोह को शीघ्र ही कुचल दिया गया। इजियन सागर में तुर्की जहाजी बेड़ा नष्ट करने, स्थल-विजय तथा कुचुक-केनर्दजी (सन् 1774 ई०) की सन्धि का बहुत स्थायी प्रभाव पड़ा। इस सन्धि से रूस को मोलडाविया और वलिशिया के राज्यों में विशेषाधिकार मिल गये और इसी आधार पर वह समस्त तुर्की में सनातनियों की रक्षा के बहाने हस्तक्षेप करने का अधिकार जताता रहा, जबतक कि सन् 1856 ई० में क्रिमिया-युद्ध में रूस की हार न हुई।

बाद में, कैथरीन की बालकन-नीति ग्रीस की ओर अच्छी तरह फैली। यूरोप में तुर्की को रूस और आस्ट्रिया ने बाँट लिया और एक टुकड़ा वेनिस को दे दिया गया (सन् 1782 ई०)। किन्तु, इस बँटवारे का आधार स्लावों के आधार पर नहीं किया गया था। किसी भी तरह आस्ट्रिया से लड़ना आसान न था और तुर्की का नाश करना भी सरल न था। किन्तु, रूसी सेना ने तुर्की को हरा दिया (सन् 1787–92 ई०) और तुर्की ने आस्ट्रिया को हराया। तुर्की का महान् नेता मनीषी सुवोरावे था। तुर्की ने कैथरीन का लोहा मान लिया। किन्तु, इससे बालकन-प्रदेशों पर उनका रोब नष्ट न हुआ।

जब अलेक्जेण्डर प्रथम ने राज्यों (मोलडाविया और वलिशिया) के लिए युद्ध ठाना (सन् 1806–12 ई०), तब पहली बार रूसियों का एक जबरदस्त विद्रोहियों ने साथ दिया। मौण्टेनिग्रिन्स ने भी साथ दिया था। यह विद्रोह था सर्बिया के किसानों का। इनका नेता था काला जॉर्ज (कारा जॉर्जविच, जो युगोस्लाविया के वर्त्तमान राजा का पूर्वज था)। सर्ब कहीं से भी अस्त्र और धन लेने के लिए तैयार थे, परन्तु रूस को प्राथमिकता देते थे। यदि आवश्यकता पड़ी, तो आस्ट्रिया से और आवश्यकता पड़ने पर नेपोलियन से भी सहायता लेने को वे तैयार थे। अनेक रूसी अभिकर्त्ता सर्बिया में बहुत सक्रिय थे, किन्तु भौतिक सहायता देने में हिचकिचाहट थी तथा उनकी नीति निश्चित नहीं थी। क्षण-भर के लिए (सन् 1812 ई०) अलेक्जेण्डर ने एक बालकन-स्लाव-संघ की योजना बनाई, जिससे

नेपोलियन और उसके नाममात्र के मित्र आस्ट्रिया के पृष्ठभाग में किसी प्रकार लोगों का मन विचल जाय। किन्तु, यह कल्पना नेपोलियन की विशाल सेना के बादल में ओझल हो गई और सर्वों को तुर्कों की दया पर ही निर्भर रहना पड़ा।

अन्ततः, जब नेपोलियन पूर्ण परास्त हो गया, तब अलेक्जेण्डर ने दृढ निश्चय किया कि वियना-कांगरेस उस्तमन-साम्राज्य में छेड़छाड़ न करे। उसने पोलों की उपेक्षा सर्व और ग्रीस की बातों को सुना ही नहीं। तुर्क गलत समझ बैठे थे कि धार्मिक संश्रय का उद्देश्य किसी भी तरह उन्हीं के विरुद्ध धर्मयुद्ध छेड़कर किया जायगा। यह धर्मयुद्ध सनातनी धर्म का जनक सिद्ध हुआ।

जिस समय रूस के बाहर सभी स्लाव अपने अतीत का पुनरुत्थान कर रहे थे और अपने भविष्य का निर्माण राष्ट्रीयता की नई मूषा में कर रहे थे और इधर रूस में निकोलस प्रथम (सन् 1825–55 ई०) यूरोप के सिपाहियों की तरह अपना निरंकुश शासन फैला रहा था। यह राजसिंहासन और संवैधानिक सत्ता का पोषक था और अनेक दुर्जन सर्वनायकों का विरोधी। जार के वैदेशिक मन्त्री जारतोरस्की (पौलेण्डवासी) और ग्रीक कपोदिस्त्रियस के दिन बीत गये थे। कपोदिस्त्रियस का उत्तराधिकारी नेसेलरोद, जिसके माता-पिता जर्मन थे, सन् 1822—56 ई० तक लगातार रूस का वैदेशिक मन्त्री बना रहा। यह स्लावों के किसी प्रकार के आन्दोलन पर झुँझला उठता था; क्योंकि सम्भव था कि इससे क्रान्तिकारी सिद्धान्तों को कुछ और मसाला मिल जाय। नेसेलरोद और उसके घनिष्ठ मित्र सर्वों को लुटेरा समझते थे। सनातनी ईसाइयों को तुर्कों से पूर्ण मुक्त करने से इनकी नीति का कोई सम्बन्ध न था। वे किसी प्रकार के आन्दोलन को प्रोत्साहित करना नहीं चाहते थे, जिससे हैप्सबर्ग-साम्राज्य बुरी तरह प्रभावित हो।

सरकारी नीति का यही सनातनी निर्देशक ढंग था, किन्तु तीन बातों से इस नीति में परिवर्त्तन हो गया, जिससे पच्छिमी यूरोप, खासकर ग्रेटब्रिटेन को अश्रद्धा या शत्रुता हो गई। निकोलस प्रथम स्वयं दो तरह की बातें बोलता था। अनेक रूसी पदाधिकारी, जिनकी उत्पत्ति स्वयं बालकन से हुई थी, अपने उच्च पदाधिकारियों से विभिन्न नीति अपनाते थे। तीसरी बात यह थी कि रूसी सरकार के लिए, तुर्कों के कुशासन और सनातनी ईसाइयों के पुनरुत्थान और रूस से उनकी प्रार्थना की ओर ध्यान नहीं देना असम्भव था। यदि यह क्रान्ति को प्रोत्साहित नहीं कर सकता था तो भी यह उन्हें प्रोत्साहित कर सकता था या सुविधाओं की माँग कर सकता था और इस तरह कुछ हद तक क्रान्ति का रक्षक प्रतीत हो सकता था।

वियना में बिना अद्भुत प्रतिक्रिया के स्लाव-झण्डे को ऊँचा उठाना सम्भव नहीं था; क्योंकि उस्तमन की अपेक्षा हॉप्सबर्ग में अधिक स्लाव रहते थे।

निकोलस को अन्त तक आस्ट्रिया के साथ अपनी सन्धि की दृढता पर विश्वास बना रहा। तुर्की के विरुद्ध सन् 1828–29 ई० के युद्ध में उसने दलित ईसाइयों से भी प्रतिध्वनित प्रार्थना नहीं की थी। सर्वों में कुछ भी उत्तेजना नहीं हुई और बलगरों का कुछ भी व्यवहार नहीं किया गया। निकोलस ने अपने अन्तिम प्रयास में क्रिमियन युद्ध के अवसर पर अंगरेजी बन्दूकों पर बन्धन डालने के लिए स्लावों की इच्छाओं के सामने घुटने टेक दिये और तुर्की में ईसाईयों को हथियारबन्द करना पसन्द किया। उसने सनातनियों की रक्षा के लिए उन्हें जाग्रत् होने की सलाह दी, परन्तु स्लाव-राज्य को नहीं। तब भी उसने यह आदेश दिया कि जबतक रूसी सेना डेनुबे नदी को पार न करे, उस प्रार्थना को जारी नहीं किया जाय। किन्तु, रूसी सेना ने डेनुबे को पार नहीं किया। सेना प्रथ नदी पार करके रूस में घुस गई। सिलिस्त्रिया से सेवास्तोपोल तक दृश्य सहसा बदल गया।

क्रिमिया-युद्ध से (सन् 1853–56 ई०) भयानक भ्रम हो गया। आस्ट्रिया द्रोह-भाव से तटस्थ था। उसने फ्रांस और इंगलैण्ड का साथ दिया। उसने सन्त पीटर्सवर्ग को अन्तिम चेतावनी दे दी, जिससे रूस को सन्धि स्वीकार करनी पड़ी। यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात थी। रूस न तो कभी इसे भूला और न कभी सच्चे दिल से क्षमा ही कर सका। वह समझता था कि आस्ट्रिया ने धोखा दिया। अब रूसी-आस्ट्रिया-विद्वेष इतना प्रचण्ड हो गया कि इन दोनों वंशों के सनातनी स्वार्थ क्षीण होने लगे, भले ही कभी-कभी वे इसे भूल जायँ। अब रूस का अन्य स्लावों के साथ नया अध्याय प्रारम्भ हुआ और बालकन-क्षेत्र यूरोपीय कूटनीति का मर्मस्थल बन गया।

अलेक्जेण्डर द्वितीय (सन् 1855–81 ई०) और उसके वैदेशिक मन्त्री गुरचकोव के समय सरकारी रूस डरते-डरते राष्ट्रीय भावना का प्रभाव व्यक्त करने लगा। रूस सदा से स्लावों को अनुज कहकर स्वागत करता था और पूतरूस योजना में विश्वास रखता था, जिससे धर्मद्रोही मुसलमानों से और पश्चिमी संक्रामकों से इनकी रक्षा हो सके।

स्लावप्रेय-आन्दोलन क्रिमिया-युद्ध के दो दशक पूर्व से पनपने लगा, किन्तु इसकी न तो कोई संस्था थी और न राजनीतिक कार्यक्रम। किन्तु, स्लाव-प्रेमियों की अगाध राष्ट्रीयता प्रसिद्ध थी। ये रूस के महान् भाग्य की स्तुति करते थे; क्योंकि इसका ऐतिहासिक विकास विचित्र है और पश्चिम से इसमें आकाश-पाताल का अन्तर है। वे रूस के इतिहास का पुनर्निर्माण करना चाहते थे और इसके आधार थे—सनातनीपन, मस्कोवी-स्लावों की मीर-परम्परा, आरटेल तथा

जन-परम्परा। इन्होंने भविष्यवाणी की कि एक दिन रूस विश्व को एक नई संस्कृति, एक नई स्लाव-प्राच्य सभ्यता देगा, जो गिरती हुई रोमन-जर्मन यूरोपीय सभ्यता का स्थान ले लेगी।

स्लाव-प्रेमी एँड़ी से चोटी तक सनातनी थे। वे पाश्चात्य विचारधारा और साहित्य से खूब परिचित और प्रभावित थे, तथापि वे पाश्चात्यीकरण के मौलिक विरोधी थे। स्लाव-प्रेमी बहुत धर्मनिष्ठ थे और पाश्चात्य मूलतः तार्किक। पाश्चात्यीकरण के विरोधी थे—बामेलिंस्की महान् समालोचक या क्रान्तिकारी हरजेन। इनके नेता रूस की भूमि से सम्बद्ध थे और इनका जन्म और पोषण पादरी कुलपतियों के दास-स्वामी के रूप में हुआ था। इनकी राजधानी थी मास्को और सन्त पीटर्सबर्ग क्रोध को उगलने का कठौता। वे कट्टर सनातनी थे, किन्तु शासन-यन्त्र के खूब विरोधी। इनका कहना था कि शासन-यन्त्र विदेशी दुःस्वप्न है, जिसे पीटर ने उनपर लाद दिया है और इसका नियन्त्रण बाल्टिक के जर्मन तथा अन्य नौकरशाही करते हैं। रूसी राष्ट्रीय जीवन की सच्ची योग्यता से इसका कोई नाता नहीं है। क्रिमिया-युद्ध में जब नौकरशाही बुरी तरह मुँह के बल गिरी और सन् 1856–67 ई० में सुधार होने लगे, तब स्लाव-प्रेमियों ने इस सुधार-आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया। इन्होंने दासों की मुक्ति पर विशेष ध्यान दिया। उनके लिए आन्तरिक सुधार प्रथम आवश्यकता थी और केवल स्वस्थ और स्वच्छ रूस ही स्लाव-जगत् का रक्षक हो सकता था, ऐसा वे सोचते थे।

क्रिमिया-युद्ध के पहले स्लाव-प्रेमियों ने, कुछ अपवाद के साथ समस्त स्लाव-जगत् के उत्थान में बहुत कम उत्सुकता दिखाई, यद्यपि उस समय उनकी भाषा और संस्कृति का पुनरुत्थान तेजी से हो रहा था। सन् 1856 ई० के बाद समय ने पलटा खाया। स्लाव-भाषी उदार समिति की स्थापना हुई। सरकार ने इसे मान्यता दे दी। सांस्कृतिक आदान-प्रदान होने लगा और बलगरों के मध्य शिक्षा का खूब प्रचार हुआ। सन् 1867 ई० में मास्को में स्लाव-भाषी नृवंश-प्रदर्शन हुआ। इस प्रकार का यह प्रथम प्रदर्शन था। रूस में इसका खूब छूटकर प्रचार हुआ। विदेशों में टीका-टिप्पणी होने लगी कि राजनीतिक प्रचार का यह सूक्ष्म सांस्कृतिक परिधान है।

इस प्रदर्शन का कुछ अधिक फल न हुआ। केवल सामान्य स्लाव-सहानुभूति की सैद्धान्तिक घोषणा-मात्र कर दी गई। चालीस वर्षों के बाद ही इसकी पुनरुक्ति हो सकी। इस प्रदेश में पोलों की अनुपस्थिति से स्लाव-जगत में फूट कटु प्रतीत होती थी। उसी वर्ष एक पोल ने कहा—जब रूसी तातारों के समान व्यवहार करते हैं और लोग उनसे घृणा करते हैं, तब आश्चर्य ही क्या ? उन्हें शिकायत किस

बात की ? यदि रूस सचमुच हमारा स्लाव-बन्धु है, तो कहना पड़ेगा कि वह अबेल के लिये कैन के समान है ।

सर्वस्लाववाद का एक तत्कालीन रूसी समालोचक कहता है कि स्लाव-जगत् एक स्फिनिक्स (नृसिंहिनी), एक पहेली है । यह एक प्रकार का अगठित, मौलिक और बिना किसी विशिष्ट आकृति का है । यह सुदूर के विशाल बादल की तरह दिखता है, जिसके विभिन्न रूप उत्पन्न हो सकते हैं । यही कारण था कि यह भयानक शक्ति हो सकती थी, खासकर पश्चिम की आँखों में । सर्वस्लाववाद न तो कोई विशिष्ट धर्म था और न दल । इसकी कोई स्पष्ट नीति भी न थी । किन्तु, यह एक तरफ तो महारूसी राष्ट्रीयता और दूसरी ओर अन्य स्लावों का पुनर्जन्म तथा भावी उज्ज्वल भविष्य के लिए संघर्ष था ।

आदिकाल में स्लाव-प्रेमी कवियों की तरह महाग्रीस-रूसी सनातन साम्राज्य का स्वप्न देखते थे, जिसका प्रधान सर्वस्लाव जार होता । किन्तु, वे सनातन धर्म की मोक्षदायिनी शक्ति पर अधिक बल देते थे और कहते थे कि रूस का मसीहा एक दिन विश्वमानव की रक्षा करेगा । बाद में अधिकांश स्लाव-प्रेमी और सर्वस्लाव इस मसीहा के सन्देश का श्रेय सनातनी स्लावों को देते थे । दोस्तोवेस्की एक अपवाद है, जो स्लाव-प्रेम और सर्वस्लाव को सम्मिश्रित कर देता है । जबतक सनातनी भावना और धर्मप्रमुख ने स्थान ग्रहण किया, तबतक रूस का सर्वस्लाव-सिद्धान्त केवल बलगर और सर्बों के बीच ही गूँज सका था । आधे से अधिक स्लाव रूस के बाहर हैप्सबर्ग-साम्राज्य की सीमा में रहते थे । इनमें अधिकांश कैथोलिक थे । शतियों से इनपर पाश्चात्य प्रभाव गहरा पड़ा था, खासकर पोल और जेकों पर ।

सन् 1856 और 1878 ई० के बीच जब समीपस्थ पूर्वदेशों में संकट उत्पन्न हुआ, तब रूसी स्लाव-प्रेम ने रूसी राष्ट्रीयता सर्वस्लाववाद का चपल और वक्र स्वरूप धारण किया । अब सनातनीपन पर कोई खास बल न था, किन्तु स्लावों के हित का ध्यान दिया जाने लगा, खासकर जर्मन, मग्यार और तुर्की से उनकी सामान्य शत्रुता की ओर । 'पूर्वी प्रश्न का निबटारा केवल आस्ट्रिया में ही किया जा सकता है, न कि तुर्की में । कुस्तुन्तुनिया जाने का मार्ग वियना से है ।' सर्वस्लाव-जन अट्ठारहवीं शती के पूर्वार्द्ध की रूस-सरकार की वैदेशिक नीति की कड़ी आलोचना करते थे । वे चाहते थे कि एक स्वतन्त्र यूरोप-विरोधी नीति अपनाई जाय, जो अपनी शक्ति से अन्य स्लाव-जनों की उदीयमान राष्ट्रीयता का उपयोग करके रूस को इतना शक्तिशाली बना दे कि उसमन और हैप्सबर्ग दोनों साम्राज्य नष्ट हो जायँ । इनके स्थान पर एक दक्षिणी-पूर्वी यूरोप-साम्राज्य हो । वह एक प्रकार का संघ हो, जिसका नियन्त्रण और रक्षा रूस करे । कुस्तुन्तुनिया और जलडमरूमध्य भी रूस के ही नियन्त्रण में या उसी के हाथ में रहे ।

इस सिद्धान्त के अनेक समर्थक हो गये। प्राचीन स्लाव-प्रेमियों के दृष्टिकोण से यह सिद्धान्त मिलता-जुलता था। इसके समर्थकों में थे—साम्राट्-परिवार के लोग (किन्तु स्वयं अलेक्जेण्डर द्वितीय नहीं), पादरी, सेना (विग्रहमन्त्री नहीं) और वैदेशिककार्यालय (वैदेशिक मन्त्री गोरचाकोव नहीं)। इन समर्थकों का एक जबदरस्त प्रस्तावक था इग्नत्येव। यह बहुत ही योग्य और निपुण था। यह कुंस्तुन्तुनिया में सन् 1864 से 1877 ई० तक राजदूत रहा। सभी राष्ट्र इसके प्रति शंकालु हो गये। खासकर ग्रास्ट्रिया-हंगरी इसके शत्रु बन गये।

सन् 1876 ई० में रूस में बहुत खलबली मच गई; क्योंकि बोसनिया-हरजेगोविना के ईसाइयों ने विद्रोह किया। बलगेरिया में आमहत्या हुई। सर्विया और मौण्टेनिग्रो और तुर्की में युद्ध छिड़ गया। बोसनिया-हरजेगोविना में तो कुछ ही, किन्तु मौण्टेनिग्रो में सर्वस्लाव-षड्यन्त्र के कारण ही विद्रोह खड़ा हुआ था। राष्ट्रीयता की भावना चिरकाल तक बलवती रही। इसने ऐसा विकराल रूप धारण किया, जैसा सन् 1863 ई० में पोल-विद्रोह में भी न हुआ था। अब सर्वप्रथम जनमत के लिए संस्थाएँ खुलने लगीं—सर्वस्लाव-समितियाँ खुलीं। तुर्की के विरुद्ध ईसाइयों की सहायता के लिए स्वयसेवक तथा धन आने लगे।

इस आन्दोलन में बनावटीपन तथा क्षणभंगुरता अधिक थी। टॉलस्टॉय के 'अन्ना करेनिना' के अन्तिम पृष्ठों से यह साफ झलकता है कि पहले इस ग्रन्थ पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। किन्तु, उस समय भी और बाद में भी इस लोकप्रिय उत्तेजना में दो अगाध प्रेरक शक्तियाँ थीं। सर्वस्लाववाद के बाह्य रूप में भी भले ही देशाभिमान का ढोंग और बाह्याडम्बर हो, इसने आत्मविश्वास और क्रियाशीलता का आह्वान किया। इसने रूस की महती शक्ति में विश्वास दिलाया, जिसने विश्व के इतिहास को पलट दिया और अपनी योजना भी पूरी कर ली। सर्वस्लाववाद ने राष्ट्रीय मान्यता की इच्छा का प्रत्युत्तर दिया। क्रिमिया-युद्ध में पराजय के कारण लोग अपने को हीन समझने लगे थे। अतः, इस राष्ट्रीय पुकार ने ठीक मौके पर काम दिया। इटली और जर्मनी अपने भाग्य का निर्माण करने में सफल हुए। कालान्तर में, सन् 1904–5 ई० में जापान के साथ युद्ध में भी रूस को अपमान सहना पड़ा। सन् 1908–9 ई० में बोसनिया में संकट पैदा हो गया। इन कारणों से देश में जारशाही के प्रति और विदेशों में जर्मनशाही के प्रति प्रतिकूल भावना उत्तेजित हो उठी। दूसरी प्रेरक शक्ति थी पाश्चात्य यूरोपीय सभ्यता के विरुद्ध प्रतिक्रिया। स्लाव-प्रेम और सर्वस्लाववाद के अंग-प्रत्यंग से यह प्रतिक्रिया झलकती थी। वे एक ऐसी सच्ची सभ्यता कायम करना चाहते थे, जिसे अन्य सभी अपनायें या अपना रहे हों। नये सोवियत रूस में यह प्रतिक्रिया विभिन्न रूप में प्रबल शक्ति का काम करती रही है।

सन् 1876—78 ई० के संकटकाल में रूस की द्वैतनीति को छिपाना असम्भव था। जार और गोरचाकोव की सरकारी नीति थी कि आस्ट्रिया-हंगरी से मिल-जुलकर काम किया जाय। गुप्त रूप से जार ने सन्धि कर ली थी कि बोसनिया-हरजेगोविना के स्लाव-प्रान्त को आस्ट्रिया-हंगरी को सौंप दिया जाय। इग्नेत्येव और सर्वस्लाव की गैर-सरकारी नीति थी कि बालकन के स्लावों को युद्ध करने को प्रोत्साहन दिया जाय और रूस उसमें शामिल होकर पूर्वी प्रश्न का निबटारा स्वयं करे।

सर्व हताश हो गये और सर्वस्लाव उनसे झगड़ने लगे। अब वे बलगरों का पक्ष करने लगे। भविष्य के लिए इसका बहुत बुरा फल हुआ। अब ये दोनों विच्छिन्न हो गये। आगामी पच्चीस वर्षों तक सर्विया आस्ट्रिया-हंगरी के (सन् 1878–1903 ई०) कक्ष में लुढ़कता रहा। किन्तु, राष्ट्रीय भावना के डर से अलेक्जेण्डर द्वितीय को तुर्की के साथ युद्ध करना पड़ा (सन् 1877 ई०)। सन् 1878 ई० में अन्तिम संकट उपस्थित हुआ। ग्रेटब्रिटेन तथा आस्ट्रिया-हंगरी के सैनिक विरोध और इग्नत्येव के शानदार सनस्तेफेनो की सन्धि के कारण, जार को बर्लिन की सन्धि माननी पड़ी। यह सन्धि यूरोपीय हस्तक्षेप के कारण हुई। बहुत-से प्रदेश, जो रूस के हाथ लगे थे, उनमें कटौती हो गई और रूस की प्रतिष्ठा कम हो गई।

अब भी रूस के पास यथेष्ट प्रदेश थे, किन्तु लोगों को घोर निराशा हुई। यह असन्तोष इस हेतु और भी कटु हो गया कि रूस की वीर सेना ठीक कुस्तुन्तुनिया-अपहरण के पहले ही रोक दी गई। अब रूसवाले केवल ग्रेटब्रिटेन तथा आस्ट्रिया-हंगरी के प्रति ही उग्रभाषी नहीं थे, बल्कि नया जर्मन बिस्मार्क के नेतृत्व में रूस के विरुद्ध समस्त यूरोपीय संघ के प्रति भी। नया जर्मन-साम्राज्य, जो स्लाव-प्रदेश के विरुद्ध जर्मनशाही का घेरा था, सर्वस्लावों के लिए सामने आ गया। उनके लिए अब कुस्तुन्तुनिया पहुँचने का मार्ग बर्लिन होकर था।

सन् 1878 ई० से ही आन्तरिक संकट विकराल होता जा रहा था। अन्ततः, सन् 1881 ई० में अलेक्जेण्डर द्वितीय की हत्या हो ही गई। बलगेरिया में रूस की आशा पर पानी फिर गया। इससे सर्वस्लावों का प्रभाव एकदम कम हो गया। रूस को मुक्ति का बीड़ा उठाने में किस तरह की परेशानियाँ हो सकती हैं, बलगेरिया में इसका ज्वलन्त उदाहरण मिल गया। सन् 1860 ई० के आसपास महान् सुधारों के बावजूद रूस एक निरंकुश राज्य था और वहाँ के लोग बहुत ही कट्टर या लकीर के फकीर थे। अन्य स्लाव-देशों में राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रति जारशाही मूलतः विरोधी था। इन स्लाव-देशों पर पाश्चात्य उग्र सिद्धान्त तथा कृषकों की सामाजिक

क्रान्तिपूर्ण विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था। द्वितीय विचारधारा ही रूस में अधिक जनप्रिय थी। किन्तु, जारशाही ने इसका विरोध किया। अतः, जनता या नरोदनिकी आगे चलकर सामाजिक क्रान्तिकारी दल में विकसित हुए। गोरचाकोव सदा सर्वस्लाववाद का विरोधी था। -वह ठीक ही कहता है— मुझे विश्वास नहीं हो सकता कि स्लाव-जन निरंकुश रूस के साथ सहानुभूति कर सकेंगे।

अतः, बलगेरिया की गति में विरोधाभास हो गया, जो सब तरह से राष्ट्रीय अभ्युत्थान और तुर्की से मुक्ति में रूस का ऋणी था। बलगेरिया के राष्ट्रभक्तों का प्रशिक्षण एक पीढ़ी तक (सन् 1856–78 ई०) रूस के खर्च पर होता रहा। इनमें जो लौटकर आते, उनमें आधे तो ऐसे थे, जिन्हें जारशाही के उदार शासन में विश्वास ही नहीं था और न वे पक्के सनातनी ही बन सके। उलटे जारशाही के उत्पीडन से उन्हें घृणा हो गई थी। वे सशस्त्र क्रान्ति में विश्वास करने लगे और चाहते थे कि जनतान्त्रिक गणराज्य की स्थापना हो, जहाँ सभी को समानाधिकार हो। जब शिशु बलगेरिया पर (सन् 1878–86 ई०) रूसी सेनापति और प्रतिक्रियावादियों ने अपना मत लादने का यत्न किया, तब उन्ह मालूम हुआ कि अधिकांश बलगर स्वच्छन्द वायु में साँस लेने के लिए निश्चित हैं, रूसी नथुने से नहीं। फल यह हुआ कि बलगेरिया ने प्रथम श्रेणी का अन्तरराष्ट्रीय संकट (सन् 1885–87 ई०) उत्पन्न कर दिया, जिसका अन्त अलेक्जेण्डर तृतीय की पूर्ण पराजय से हुआ।

सन् 1878 ई० से आन्तरिक समस्याएँ उलझती गईं। इसका विस्फोट सन् 1905 ई० की क्रान्ति में हुआ। इधर नूतन एशियाई साम्राज्यवाद का विकास हो रहा था, जिसके कारण (सन् 1904–5 ई०) जापान के साथ भीषण युद्ध हुआ, लोगों का ध्यान अन्य स्लाव-देशों से हट गया, लेकिन सरकार की आँख कुस्तुनतुनिया और जलडमरूमध्य पर लगी थी। अब सर्वस्लाववाद के दुर्दिन आ गये। इसका स्थान इसका युग्मभ्राता सर्वरूसवाद ने लिया। सरकार इसका नेतृत्व करती थी। अलेक्जेण्डर तृतीय (सन् 1881–94 ई०) तथा निकोलस द्वितीय (सन् 1894–1917 ई०) दोनों ने देश में रूसीकरण पर विशेष बल दिया, केवल उक्रेण, पश्चिमी प्रदेश और पोलैण्ड-महासभा में ही नहीं, बल्कि बाल्टिक प्रदेशों और अन्ततः फिनलैण्ड में भी। अब पुलिस जान-बूझकर सेमिटिकों का विरोध करने को प्रोत्साहित करती थी। काकेशस-प्रदेश में आरमिनिया और तातारों की पुरानी दुश्मनी को और उभाड़ा जाता था। अतः, जब सन् 1905 ई० में क्रान्ति हुई, तब सारे साम्राज्य के प्रायः सभी गैर-रूसियों की, महारूसियों की व्यर्थ देशभक्ति के प्रतिकूल भीषण प्रतिक्रिया हुई।

क्रान्ति का फल यह हुआ कि अन्य स्लावों से पुनः सम्बन्ध हो गया। यहाँ-तक कि अब पोलों से भी सम्पर्क हुआ। अब यह नवस्लाववाद कहलाने लगा। कुछ

पुरातन विचारवाले तथा उदार दलवाले चाहते थे कि साम्राज्य के अन्दर जो महारूसी नहीं हैं, उनके प्रति नीति में परिवर्त्तन हो और कुछ काल के लिए रियायतें कर दी गई। किन्तु, सुदूरपूर्व से प्रतिक्रिया हुई और यूरोप तथा बालकन-प्रदेशों के प्रति लोगों का पुनः झुकाव हो गया। रूस की वैदेशिक नीति अब इजवोलस्की (सन् 1906–10 ई०) के हाथ में थी, जिसकी महत्त्वाकांक्षा जलडमरूमध्य पर लगी थी। अब वैदेशिक नीति से भी नवस्लावाद को प्रोत्साहन मिलने लगा।

नवस्लाववाद, जिसमें खासकर चेकों ने प्रमुख भाग लिया, दक्षिण-पूर्व यूरोप के नये विकास का फल है। आस्ट्रिया-हंगरी ने अग्रसर-नीति का अवलम्बन किया। सन् 1908 ई० में उसने बोसनिया-हरजेगोविना को अपने राज्य में मिला लिया। उसने दस वर्ष तक रूस के साथ मिलकर रहने की सन्धि की थी, जिसमें बालकन-प्रदेश शान्त रहे, किन्तु अब उसने इस नीति का परित्याग कर दिया। ठीक इसी समय (सन् 1907 ई०) आस्ट्रिया में सभी पुरुषों को मतदान का अधिकार मिल गया। हंगरी पर भी इसका प्रभाव बिना पड़े नहीं रह सकता था। इससे उनकी स्लाव-जातियों की समस्या और भी विषम हो गई। अब यह जर्मन-मग्यार[†] प्रभुत्व के लिए भयानक चुनौती थी, यद्यपि स्लावों में अभी तक फूट थी। जर्मन-मग्यार-प्रभुत्व का आधार था द्वैत राजतन्त्र, जिसका जन्म सन् 1867 ई० में हुआ था।

युगोस्लाव सबसे अधिक खतरनाक थे। युगोस्लाव की सीमा पर सर्विया था। सन् 1903 ई० में वहाँ राज्य-विप्लव हुआ। वहाँ रूस-प्रेमी करगियोर्गेविच-वंश की पुनः स्थापना हुई। इसने आस्ट्रिया-हंगरी से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया और पुनः रूस से सम्पर्क स्थापित किया और बलगेरिया के पक्ष में हो गया। सन् 1908 ई० में नवतुर्कों ने क्रान्ति की। सन् 1908–9 ई० में बोसानिया में संकट उत्पन्न हुआ। इसमें आस्ट्रिया-हंगरी और जर्मनी के हाथ रूस और सर्विया को अपमानित होना पड़ा। बालकन के साथ मैत्री हुई और दो बालकन-युद्ध हुए (सन् 1912–13 ई०)। प्रथम बालकन-युद्ध तुर्की के साथ हुआ। फिर, बलगेरिया के साथ युद्ध हुआ। इस प्रकार, समस्त स्लाव-प्रदेश अन्तरराष्ट्रीय सम्पर्क का रणक्षेत्र बन गया। रूस में इसके लिए तीव्र भावना और उत्सुकता फैल गई।

नवस्लाववाद ने नवीनता ला दी। अनेक वार्षिक स्लाव-सम्मेलन होने लगे। सन् 1908 से 1912 ई० के बीच प्राग, सन्त पीटर्सबर्ग, सोफिया और बेलग्रेड में सम्मेलन हुए, किन्तु वारसा में नहीं। इनमें बालकन तथा आस्ट्रिया-स्लावों के विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों तथा रूसियों ने भाग लिये, किन्तु हंगरी और जर्मनी के लोग नहीं।

[†] मग्यार हंगरी की प्रधान जाति थी। यह हंगरी की मूल भाषा है।

सनातनीपना को पूर्णरूपेण तिलांजलि दे दी गई; क्योंकि नवस्लाववाद का यही प्रधान राग था, किन्तु पूर्वी गलिसिया में नहीं। स्लावों के सांस्कृतिक और आर्थिक सम्पर्क बढ़ाने की योजना बनाई गई। यह सामान्य सम्पर्क अन्त में किस तरह का राजनीतिक रूप धारण करेगा, यह सन्देहात्मक रहा; किन्तु इतना निश्चित विश्वास था कि द्वैत राजतन्त्र का शीघ्र ही विनाश होगा। इसके लिए युद्ध भी अवश्य करना पड़ेगा, जिसमें अन्य स्लावों को रूस से सहायता लिये बिना काम भी नहीं चलेगा। बुडापेस्ट या वियना की अपेक्षा स्लाव-राज्यों का सबसे बड़ा शत्रु बर्लिन था। जर्मनशाही के विरुद्ध भावना सदा अग्रगामी रही। इसी कारण से पोलों ने भी स्लाव-सम्मेलनों में प्रारम्भिक भाग लेना आरम्भ किया। कालान्तर में बालकन तथा सर्व एवं बलगरों के पारस्परिक सम्बन्ध खूब बढ़े। रूसी वैदेशिक कार्यालय में तथा गैर-सरकारी प्रतिनिधि संस्थाओं में भी ये खूब भर गये। सर्बिया† और बलगेरिया को सन् 1912 ई० के बालकन-संघ में ग्रीस और मौण्टेनिग्रो के साथ एक सूत्र में बाँधने में पहले तो स्लावों को सफलता मिली; किन्तु आगामी वर्ष द्वितीय भ्रातृयुद्ध या सन् 1915 ई० में तृतीय युद्ध को रोकने में ये असफल रहे।

रूस में नवस्लाववाद का सनातनी मत तथा सरकार से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। कुछ उदारंजन व्यक्तिगत रूप से भी इसका समर्थन करते रहे। सन् 1907 ई० के बाद जारशाही की जो प्रतिक्रिया हुई और स्लावों के नेतृत्व में डेन्यूब-क्षेत्र में जनतन्त्र ने जो नूतन रूप धारण किया, उनमें आकाश-पाताल का अन्तर था। जैक इसकी कड़ी आलोचना करते थे। इससे नवस्लाववाद के ऊपर गहरी प्रतिच्छाया पड़े बिना नहीं रह सकता था। स्लावों के सामान्य प्रयत्न केवल रूस के पुरातन निरंकुश शासन द्वारा ठुकराने और सर्व तथा बलगरों के दूषित सम्बन्ध के कारण ही विफल नहीं हुए, बल्कि रूस और पोलों के बीच की पुरानी शत्रुता के कारण भी उनके सामान्य प्रयत्न विफल हुए। नवस्लाववाद का प्रथम उद्देश्य था इस झगड़े को शान्त करना, किन्तु इसमें उसे सफलता नहीं मिली। रूसी वैदेशिक कार्यालय को सजोनोव (सन् 1910–16 ई०) के तत्त्वावधान में यह मान लिया गया कि कुस्तुन्तुनिया पहुँचने का मार्ग वारसा होकर है। किन्तु, सजोनोव ऐसा पुरुष नहीं था, जो गृहमन्त्री के विपरीत अपनी मान्यताओं की कुछ भी पुष्टि कर सकता। उसने अगस्त, सन् 1914 ई० में महाकुमार निकोलस के नाम से पोलों के प्रति घोषणा जारी करवा दी, किन्तु इससे उन्हें किसी प्रकार की प्रत्यक्ष सुविधा नहीं मिल सकी।

---

† सर्बिया-बलगेरिया का प्रथम युद्ध सन् 1885 ई० में हुआ, द्वितीय युद्ध सन् 1913 ई० में और तृतीय युद्ध सन् 1915 ई० में। केवल प्रथम युद्ध में ही बलगेरिया विजयी हुआ।

स्लावों में विभिन्न प्रकार के विलगाव और नवस्लाववाद से कुछ ठोस फल निकलने के बावजूद सन् 1914 ई० में रूस का अन्य स्लावों के साथ पारस्परिक सम्पर्क बहुत सुदृढ़ और सघन हो गया था। इन स्लावों में पोल भी सम्मिलित थे। ऐसा दृढ़ सम्पर्क पहले कभी नहीं हो सका था। रूस सन् 1941 ई० तक सदा सोचता रहता था कि स्लाव-राज्य और जर्मनशाही में एक दिन मुठभेड़ अवश्य होगी।

षष्ठ अध्याय

सागर

1. बालटीक सागर :

रूसी साम्राज्य के समान ही सोवियत-संघ एक विशाल महादेश है। पाँच सागर—वालटीक, कृष्णसागर, कास्पियन सागर, उत्तर-ध्रुवीय सागर तथा प्रशान्त महासागर इसका अंचल धोते हैं। प्रथम तीन पृथ्वी से घिरे हैं। ये सभी पूर्णतः या अंशतः साल के अधिक भाग तक बरफ से ढके रहते हैं। रूस की नदियाँ भी ऐसी ही हैं, जो इनको उर्वरा बनाती है तथा इन नदियों ने रूस के इतिहास में महत्त्वपूर्ण काम किया है। ऐसा कोई भी राष्ट्र नहीं है, जिसके ध्रुवीय तट-प्रदेश का 15,000 मील भूमि उत्तर ध्रुवीय सागर में हों। किन्तु, अन्य चार सागरों का नियन्त्रण या विवाद सदा से अन्य राष्ट्र करते आये हैं : यथा ग्रीस, तुर्की, ईरानी, स्केण्डिनेविया, जर्मनी, चीन या जापान।

क्षीरसागर के तट-प्रदेश पर प्रायः नव शतियों से रूसी बसे हैं। अन्य सागरों के तट पर या तो रूसी कभी अच्छी तरह बसे ही नहीं या बसे भी हैं, तो कुछ अपवाद के साथ गत दो सौ वर्षों के अन्दर ही। सुदूर प्रशान्त महासागर-तट पर रूसी मध्य सत्रहवीं शती में बसने लगे थे, किन्तु वे कुछ लोम और मत्स्य-अड्डों पर भी सीमित रहे। किन्तु, चीन ने सन् 1860 ई० में आमूर नदी का निम्नभाग और व्लाडिवास्तक रूस को दे दिया। कीव रूस ने खानाबदोशों को लागातार चुनौती देने की चेष्टा की, किन्तु सब वेकार हुआ। कृष्णसागर के स्टेपीज 6 शतियों के लिए रूस के हाथ से निकल गया था। इस काल में कृष्णसागर प्रधानतः तातारों या तुर्कों की झील था, कुछ काल के लिए भले ही जिनेवा या वेनिस के सौदागर और कालान्तर में कजाकों के लुटेरे नौका चलाते रहे हों। केवल महती कैथरीन के राज्यकाल से (सन् 1762–96 ई०) रूसी, कृष्णसागर-स्टेपीज में दक्षिण की ओर फैलने लगे और शीघ्र ही डेन्यूब से काकेशस तक फैल गये। जिस बालटीक सागर-भूमि को सन्

1700 ई० और सन् 1809 ई० के मध्य जीता गया था, वह सन् 1919 ई० में रूस के हाथ से एकदम निकल गया। किन्तु, सन् 1940 ई० में ये प्रदेश पुनः रूस के हाथ आ गये। इस सागर-तट पर रूसी कभी नहीं बसे, किन्तु लगभग सात शतियों से सदा लिथुनो, लेत्त, एस्तोनिया और फिन्स बसते आये हैं। इनमें जर्मन और स्वीड बहुत अल्प संख्या में होने पर भी प्रभुत्व रखते थे। जलवायु, भौगोलिक परिस्थिति, जनसंख्या तथा सेना का प्रभाव तो रहा ही, साथ ही यूरेशिया की विशाल भूमि ने सबसे अधिक प्रभाव डाला। इस कारण रूसी लोगों के जीवन में समुद्र का स्थान सदा गौण रहा। नारवे, डच तथा ब्रिटेन के लोग जिस प्रकार समुद्र से प्रभावित हुए, उस प्रकार रूस के लोग कभी प्रभावित नहीं हुए थे। रूसी समुद्र के लिए लालायित रहते हैं, यह अतिशयोक्ति भले ही हो, किन्तु जबसे महान् पीटर ने अपनी नई राजधाना की नींव डाली (सन् 1703 ई०), तबसे समुद्र ही राज्य की नीति में निणयिक सिद्ध हुआ। इसके पहले भी वैदेशिक व्यापार और सम्पर्क के लिए समुद्र अपरिहार्य स्रोत था। सन् 1914 ई० तक रूस का तीन-चौथाई निर्यात समुद्र-मार्ग से होता था। प्रायः आधा आयात समुद्री रास्ते से ही होता था। सोवियत-शासनकाल में यह अनुपात बहुत बढ़ गया है, यद्यपि विदेशी व्यापार की मात्रा बहुत कम हो गई है।

सन् 1940 ई० में बालटीक-तट के तीन गणराज्य—एस्तोनिया, लतेविया और लिथुनिया—सोवियत-संघ में सम्मिलित हो गये। मर्मभेदी युद्ध के बाद फिनलैण्ड का भी एक भाग सम्मिलित हुआ, जो सन् 1939 ई० की शरद् ऋतु में पूर्वी पोलैण्ड के सोवियत-संघ में सम्मिलित होने के समय उसका एक लटकन था। प्रथम विश्वयुद्ध तथा सन् 1919-20 ई० में जो सीमा-समझौते हुए थे, उन्हीं के ये दोनों परिवर्तन थे। इनके लिए बोलशेविक जान की बाजी लगाने को तैयार थे, किन्तु उन्हें सन्तोष करना पड़ता था। सोवियत-संघ के लिए बालटीक-समुद्रतट की वही महत्ता थी, जो रूस-साम्राज्य के लिए। पश्चिम के लिए यह दरवाजा था तथा युद्धनीतिक रक्षा की दृष्टि से भी इसका महत्त्व था। महान् पीटर की विरासत को लोगों ने स्पष्टतः अपनाया और प्रथम विश्वयुद्ध तथा गृहयुद्ध के खतरों की लोगों ने परवाह ही नहीं की।

प्रथम विश्वयुद्ध से स्पष्ट सिद्ध हो गया था कि बालटीक का कितना महत्त्व है। जर्मनी ने रूस के लिए साउण्ड में प्रवेश बन्द कर दिया। कील नहर के लिए इसका युद्धनीतिक महत्त्व बहुत था। कील नहर सन् 1895 ई० में यातायात के और सन् 1914 ई० में सामरिक पोतों के लिए खुला। बालटीक एक प्रकार से रूस के विरुद्ध जर्मनी की बढ़ती सेना का वाम पक्ष था। रूसी बेड़े की शक्ति का इस

सुरंग-क्षेत्र के साथ बहुत महत्त्व था। अपितु, बालटीक-प्रदेश, जो ड्वीना नदीतट के मध्य पड़ते थे, बहुत ही मूल्यवान् थे। रूस की सच्ची भूमि और सन्त पीटर्सबर्ग के सम्मुख यह ढालवीं भूमि थी। अतः, बालटीक सागर का महत्त्व अपूर्व था। सन् 1917 ई० की क्रान्ति स्थल-सेना और नौ-सेना के बेकाम हो जाने पर जर्मनी ने रीगा तथा उत्तरी तटप्रदेश पर कब्जा कर लिया। मार्च, सन् 1918 ई० में ब्रेस्टलितोवस्क की जो सन्धि हुई, उससे बालटीक प्रदेशों में जर्मनी के फैलाव की काफी गुंजायश रही, जिन्हें बोलशेविक सरकार को इन्हें सौंपना पड़ा। फिनलैण्ड की स्वतन्त्रता की घोषणा हो चुकी थी। फिनलैण्ड के श्वेतों के नेता जनरल मानेरहीम की सहायता के लिए जर्मन-सेना मैदान में उतर पड़ी थी। फिनलैण्ड में साम्यवादियों के विरुद्ध खूँखार गृहयुद्ध चल रहा था। इनमें कुछ तो रूसी थे, किन्तु अधिकतर फिनिश ही थे।

पश्चिम में पराजय होने से बालटीक-प्रदेशों में जर्मनों की आशा पर पानी फिर गया। अब बोलशेविकों को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-आन्दोलनों का तथा जर्मनी के बदले मित्रराष्ट्रों के हस्तक्षेप का सामना करना पड़ा। जिस समय गृहयुद्ध पराकाष्ठा पर था (सन् 1919 ई०), उसी समय एस्तोनिया के श्वेत रूसियों ने ब्रिटिश-सेना की सहायता से पेट्रोगार्ड पर संगठित होकर दो बार जबरदस्त धावा बोल दिया। मित्र-राष्ट्रों की सेना का नेतृत्व ब्रिटेन कर रह था। इस सेना ने मुरमनस्क और आरखंजेल पर अधिकार जमा लिया। मुरमनस्क रूस का एक बन्दरगाह था, जहाँ बरफ नहीं जमती थी। यहाँ पेट्रोगार्ड से रेलमार्ग भी था। किन्तु, सन् 1920 ई० के प्रारम्भ में ही मित्रराष्ट्र-सेना को वहाँ से भागना पड़ा। फिनिशों ने सीमान्तर पर युद्ध करने को ठाना, जिसमें करेलिया पर उनका हक बना रहे। इस हालत में अधिक-से-अधिक मुरमनस्क रेलवे को ही समाप्त कर देना पड़ता।

बोलशेविक बालटीक-राज्यों में तथा फिनलैण्ड में आत्मनिर्धारण की अपनी व्याख्या को कार्यान्वित करने का यत्न करते-करते थक गये थे। अतः, सन् 1920 ई० में उन्होंने उनकी स्वतन्त्रता और नई सीमा को मान लिया। बालटीक-तट पर सोवियत को पैर रखने के लिए केवल एक तंग हिमाच्छन्न छिद्र फिनलैण्ड की खाड़ी के एकदम पूर्वी कोने पर था। वायुसेना की वर्द्धमान शक्ति के सामने इसकी रक्षा करना और भी कठिन था। एस्तोनिया की सीमा पेट्रोगार्ड से 90 मील से भी कम थी। फिनलैण्ड की सीमा तो केवल 23 मील ही थी। बोलशेविक इस बात को भूल नहीं सकते थे कि सर्वप्रथम जर्मनी ने ही बालटीक-प्रदेशों को और फिनलैण्ड को टुकड़े-टुकड़े कर दिया था और रूस तथा क्रान्ति की पराजय के लिए प्रथम सोपान की तरह इनका व्यवहार किया था। ग्रेटब्रिटेन और फ्रांस ने इन

प्रदेशों को स्वतन्त्र होने में सहायता की थी और प्रतिक्रान्ति का इन्हें आधार बनाया था। संक्रामक रोग को दूर रखने के लिए यह एक घेरे की तरह था। दुःखकाल के समय लेनिनग्राड के ऊपर क्या-क्या आपत्तियाँ आईं, वे इस बात को भूल नहीं सकते थे।

लेनिन की मृत्यु के बाद सन् 1924 ई० में नगर का नाम लेनिनग्राड पड़ा। पहले इसका नाम पेट्रोगार्ड था। जर्मनों के आक्रमण का भय था, अतः सन् 1918 ई० के प्रारम्भ में ही यहाँ से राजधानी हट गई। मास्को पुनः राजधानी बनी। दो सौ वर्षों के इतिहास में यह महत्त्वपूर्ण घटना थी। किन्तु, लेनिनग्राड महत्त्वपूर्ण केन्द्र बना रहा। यह अक्तूबर-क्रान्ति की सफलता का चिह्न था। तो भी मास्को ने सोवियत-संघ के संगम के रूप में इसे बौना बना दिया। स्तालिन के दो जबरदस्त समर्थकों की उत्साहपूर्ण देखरेख में लेनिनग्राड का पुनरुद्धार हुआ। फिर, इसका दुर्ग बना। अब लेनिनग्राड पुनः प्रथम श्रेणी का औद्योगिक और सांस्कृतिक केन्द्र बन गया। तथा विदेशी व्यापार का सबसे बड़ा बन्दरगाह। स्तालिन के दो प्रधान समर्थक थे किरोव (जन्म : सन् 1886 ई०; हत्या : सन् 1934 ई०) तथा झंदनोव (जन्म : सन् 1896 ई०), जिन्होंने वीरता के साथ लेनिनग्राड की रक्षा की। यहाँ से निपुण शिल्पी निकले, जिन्होंने दशकों सोवियत-औद्योगिक उत्पादन-क्षेत्रों का पुनरुद्धार किया और उनका विस्तार किया; यथा जहाजों के कारखाने, यन्त्रशास्त्र, अस्त्र-शस्त्र-उत्पादन-कारखाना इत्यादि (सन् 1939 ई०)। पुनः विश्व के महान् नगरों में इसका अपना स्थान हो गया। यहाँ 30 लाख से अधिक आबादी थी और यह मास्को से ईर्ष्या करने लगा। भले ही खून से इसकी भूमि लाल हो गई हो, किन्तु सोवियत जनता के लिए यह मन्दिर का काम देता है; क्योंकि यह अक्तूबर-क्रान्ति और नात्सी-हत्या के प्रचण्ड विरोध का संक्षेपक मूर्त्ति है।

बीस वर्षों तक (सन्] 1920–39 ई०) बालटीक-तट पर के नूतन स्वतन्त्र राष्ट्रों के साथ, खासकर फिनलैण्ड के साथ सोवियत का सम्पर्क कुछ प्रमुख घटनाओं के कारण अशान्त हो गया। यद्यपि यह सम्पर्क कटु था। इन चारों राज्यों में इनके अपने ही लोग रहते थे। इन सबका विकास द्रुतगति से हुआ, खासकर फिनलैण्ड का। इन सबका आर्थिक सम्पर्क इंगलैण्ड से अधिक और जर्मनी के साथ उससे कुछ कम था। फिनलैण्ड के लिए यह कोई नई बात न थी; क्योंकि सदा से यह पच्छिम की तरफ दिवस्थापित रहा है। किन्तु, एस्तोनिया, लिथुनिया और खासकर लतेविया का साम्राज्य के महत्त्वपूर्ण बन्दरगाहों और औद्योगिक नगरों से सम्पर्क एकदम टूट गया। इसी के बाजारों पर ये सदा निर्भर रहते थे। इसके सिवा लिथुनिया-पोलैण्ड के साथ, विलना नगर के प्रश्न पर, जहाँ

पोल और यहूदी सामान्य रूप में रहते थे और जो इसकी मध्यकालीन राजधानी थी, अनवरत झंझट में फँस गया; क्योंकि सन् 1920 ई० से ही इसे पोलैण्ड ने अधिकृत कर लिया था। समुद्र में इसके विकास का एक ही स्थान था मेमेल, जो जर्मनी से लिया गया था; अतः बर्लिन से इसका सम्बन्ध स्थायी रूप से अन्धकारपूर्ण था। अतः, लिथुनिया सोवियत-संघ के अति समीप आ गया, भले ही उत्तर में पोलैण्ड इन दोनों देशों को एक पच्चड़ से अलग करता हो।

वैदेशिक वार्ता का कमिसार लितविनोव था। उसने समीपस्थ पाश्चात्य पड़ोसियों के साथ अनाक्रमण-समझौते की सोवियत-नीति का आशाजनक विकास किया। उसने इन देशों के साथ छोटे पैमाने पर व्यापार को भी पुनः स्थापित करने का यत्न किया। सन् 1934 ई० में सोवियत 'लीग ऑव नेशन्स' (राष्ट्रसंघ) में सम्मिलित हो गया। इस हेतु आशा और भी बढ़ गई। किन्तु, सब कुछ उल्टा ही हो गया; क्योंकि जर्मनी में नात्सी-क्रान्ति हुई और विश्व में आर्थिक संकट उपस्थित हो गया। अतः, बालटीक राष्ट्रों की स्थिरता संकटमय हो गई। इन देशों का पश्चिमी राष्ट्रों के साथ सम्पर्क को सोवियत शंका की दृष्टि से देखता था। जब जर्मनों का प्रभाव वहाँ बढ़ने लगा, तब तो वह डरकर अधिक शंकालु हो गया और प्रथम विश्वयुद्ध के स्मरण से उत्तेजित भी हो गया।

सन् 1939 ई० के वसन्त में हिटलर ने मेमेल पर कब्जा कर लिया। ठीक इसी समय उसने प्राग में प्रवेश करके जेकोस्लोवेकिया को नेस्तनाबूद कर दिया। अब लिथुनिया (28,00,000), लतेविया (20,00,000), एस्तोनिया (11,00,000, और कुछ हद तक फिनलैण्ड (40,00,000 से कम) की भी हालत बहुत नाजुक थी। उनकी आन्तरिक कठिनाइयाँ तो थीं ही, इससे बढ़कर उनकी युद्धनीतिक अवस्था थी; क्योंकि वे विश्व की दो सर्वशक्तिशाली राष्ट्रों के मध्य स्थित थे। दो वर्ष पहले ही मोटे शब्दों में इन्हें चेतावनी दी गई थी कि "कुत्तों के समान भूँको मत और न फासिस्टों का दाँत कटकटाओ। जर्मन-फासिस्ट सोवियत-संघ के विरुद्ध युद्ध की तैयारी कर रहे हैं। छोटे देशों को महान् साहसिक कार्यों में कूद जाने से कोई लाभ नहीं होता।" (झडनोव, दिसम्बर, 1936 ई०)। द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ जाने के तीन मास पहले ही मोलोतोव ने खुले आम कहा था कि इस प्रकार के छोटे राष्ट्रों के लिए सम्भव नहीं कि वे अपनी तटस्थता की रक्षा कर सकेंगे (मई, 1939 ई०)।

सोवियत चाहता था कि बालटीक-राज्य और फिनलैण्ड हमें मिल जाय। यह प्रधान कारण हो या न हो, किन्तु ग्रीष्म ऋतु में मास्को में ग्रेटब्रिटेन और फ्रांस के

साथ जो सन्धिवार्त्ता चल रही थी, भंग हो गई। सितम्बर मास में सोवियत-संघ ने जर्मनी से खुल्लम-खुल्ला बलपूर्वक एक ऐसी शर्त्त मनवा ली, जो बालटीक-राज्यों पर एक कोरा चेक था। सोवियत-जर्मन-सन्धि के दो मास के अन्दर ही द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ होते ही लाल सेना ने पूर्वी पोलैण्ड को रौंद डाला और एस्तोनिया, लतेविया और लिथुनिया को बाध्य होकर सोवियत सामाजिक गणतन्त्र-संघ (सो० सा० ग० सं०) से गाढ़ी मैत्री करनी पड़ी तथा नाविक और सैनिक अड्डे बनाने की स्वीकृति देनी पड़ी। सोवियत ने विलना लिथुनिया को दान कर दिया। इससे उसे पूरा लाभ हुआ। विलना सोवियत को अभी हाल में ही पोलैण्ड से सोवियत-जर्मन-बँटवारे में मिला था। इन तीनों देशों में सोवियत-शासन को प्रवेश नहीं दिया गया। हाँ, सोवियत के सांस्कृतिक और आर्थिक कार्यों को खूब उत्साहपूर्वक अग्रसारित किया गया। सोवियत-रक्षक सेना का विनय-अनुशासन स्तुत्य था। वह सदा आत्मनिर्भर रही।

जून, 1940 ई० में फ्रांस का पतन हुआ। इसका मुख्य कारण अनुमानतः सैनिक हो सकता है। सोवियत ने महत्त्वपूर्ण स्थानों को अधिकृत करने और प्रभुत्व स्थापित करने की नीति को इस समय त्याग दिया, जिससे वे संघ में सम्मिलित हो जायें। सेना पूरी तरह से अधिकार किये हुए थी। नये वामपक्षी सरकार की स्थापना की गई। साम्यवादियों की देख-रेख में राष्ट्रीय सभा के लिए जल्दी से निर्वाचन किया गया। राष्ट्रीय सभा ने सो० सा० ग० संघ में सम्मिलित होने का मत दिया। अगस्त में मास्को में इसकी औपचारिक रूप से पुष्टि कर दी गई। सोवियतकरण की प्रारम्भिक अवस्था में दस मास तक इन तीनों देशों को कठोर यातना सहनी पड़ी। व्यक्तिगत रूप में भूमि-विभाजन का स्थान सामूहिक कृषि ने ले लिया। बीस वर्ष पहले जर्मन भूस्वामी यहाँ से खदेड़ दिये गये थे। पहले यह खेती करनेवाले किसानों का गढ़ था। किन्तु, यहाँ पर सामूहिक कृषि का आरम्भ नहीं किया गया था, जैसा पूर्वी पोलैण्ड में हुआ था।

जब जर्मनी की विध्वंसक तोप का मुँह जून, 1941 ई० में सोवियत-संघ की ओर घूमा, तब संघ के बाह्य-सुरक्षकों ने महत्त्वपूर्ण केन्द्रों की अपेक्षा पूरी तैयारी कर ली थी। ये बहुत शक्तिशाली नहीं थे तथा बालटीक-तट के लोगों में शत्रुता के कारण कुछ कमजोर पड़ गये थे। किन्तु, ये केन्द्र से आगे अवश्य थे। यदि लाल सेना बालटीक-प्रदेशों को और पूर्वी पोलैण्ड को अपने हाथ में न रखती, तो सम्भव है कि जर्मन, मास्को तथा लेनिनग्राड पहुँच जाते। लाल सेना विबोर्ग तथा फिनलैण्ड की ओर करेलियन-स्थल डमरूमध्य को भी अधिकृत किये हुए थी।

सन् 1939 ई० की उसी शरद् ऋतु में फिनलैण्ड से युद्धस्थलों को सौंपने की माँग की गई। अब सोवियत की जड़ तालिन्न (रेवेल) से लिवाऊ तक बालटीक-तट पर जम गई थी। फिनलैण्ड से युद्धनीतिक माँग की गई कि समुद्र और लदोगा भील (मानेरहीम-रेखा) के मध्य करेलियन-स्थल डमरूमध्य का कुछ भाग सोवियत को स्वयं सुपुर्द कर दे तथा हंगो को जहाजी अड्डा बनाने के लिए पट्टे पर दे दे, जिससे फिनलैण्ड की खाड़ी में सोवियत का पूर्ण हुकूमत जम सके। फिन्स ने इस बात को पूर्णरूपेण मानने से इनकार कर दिया। मास्को ने युद्ध ठान दिया (दिसम्बर), और एक प्रतिद्वन्द्वी कठपुतली सरकार की घोषणा कर दी, जिसका प्रधान बना फिनलैण्ड का एक साम्यवादी शरणार्थी। अन्तरराष्ट्रीय साम्यवादी दल में चिरकाल तक यह उच्च पद पर रह चुका था। जाड़े के कड़ाके में युद्ध चलता रहा। मास्को ने इधर अपनी कठपुतली सरकार को उखाड़ फेंका। इधर फिनलैण्ड ने सोवियत की मूल माँगों के सामने घुटने टेक दिये। इनके सिवा विवोर्ग तथा अन्य प्रदेशों को भी दे दिया, जिन्हें लाल सेना ने जीत लिया था (मार्च, 1940 ई०)। अब लेनिनग्राड से सीमान्त 100 मील की दूरी पर था।

सोवियत-फिनिश-युद्ध के अन्य भी महत्त्वपूर्ण फल हुए। सेना का प्रारम्भ भले ही बुरी तरह हुआ हो, और संसार इसकी करतूतों पर आक्षेप लगाता रहा, किन्तु अन्त में इसने अपने को आधुनिक युद्ध-कला का भयानक अभियान सिद्ध कर दिया। इसने महासुदृढ मानेरहीम सुरक्षा-पंक्ति पूर्ण-रूपेण अधिकृत कर ली। इसमें लड़ाकों के पूरे गुण आ गये, जो प्राचीन रूसी सेना में थे। आधुनिक शीत-युद्ध में पाश्चात्य परिस्थितियों में अनुभव के पश्चात् आलाकमान ने बहुत उत्साह के साथ अपनी बुराइयों को सुधारने का कार्य आरम्भ कर दिया। फिनिस-सेना को संघर्ष में यश मिला। किन्तु, इतने बड़े महान् शत्रु के साथ अन्त में हार निश्चित थी, जबतक बाहर से सहायता न मिले। सारे संसार ने फिनलैण्ड के साथ अपनी सहानुभूति दिखलाई। अन्तरराष्ट्रीय जगत् में सोवियत-संघ का स्थान बहुत निन्दित हो गया। इसे राष्ट्रसंघ (लीग ऑव नेशन्स) से निकाल दिया गया। फ्रांस और इंगलैण्ड ने फिनलैण्ड को कुछ अस्त्र देने के अतिरिक्त उसकी सहायता करने के लिए हस्तक्षेप भी करनेवाले थे। नारवे में नार्विक के मार्ग से तथा स्वीडेन के उत्तर से वे सीधे सहायता पहुँचा सकते थे। उत्तरध्रुवीय सागर-तट पर मेतसामों से भी सहायता पहुँच सकती थी। उस समय जर्मनी में खनिज का मुख्य प्रदान नार्विक-प्रदेश से ही होता था। लाल सेना की शक्ति के सामने कोई ठहर नहीं सकता था, और स्वीडेन ने जर्मनी के सामने नकारात्मक भाव अपनाया, जिससे द्वितीय विश्वयुद्ध में ऐंठन नहीं आ सकी। हो सकता है, इससे पश्चिमी यूरोप का भाग सदा के लिए रसातल चला जाता। सोवियत में मित्रराष्ट्रों के प्रति कटुता और शंका की

भावना दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी। सन् 1918 ई० का पाठ स्मरण था। यदि मास्को को विश्वास हो जाता कि कभी-न-कभी, इच्छा या अनिच्छा से फिनलैण्ड हिटलर को अपने बन्दरगाहों को दे ही देगा, तो यह शंका और भी दृढ हो जाती। उधर फिनलैण्ड में हार तथा परस्पर दोषारोपण से सोवियत-संघ के प्रति फिन्नों का स्थायी क्रोध कम न हुआ। रूस का डर पूर्ववत् बना रहा, हल्के छद्मवेश में या सामाजिक क्रान्ति के प्रचारक के रूप में। मार्च, 1940 ई० में करेलियन का स्वतन्त्र गणराज्य का इतना विस्तार हुआ कि इसमें विबोर्ग भी सम्मिलित कर लिया गया और इस संघ के संवैधानिक गणराज्य का पद इतना उच्च कर दिया गया कि इसे करेलियन-फिनिस सोवियत समाजवादी गणतन्त्र के अशुभ नाम से अभिहित किया जाने लगा। इस सरकार का प्रधान बना फिनलैण्ड का एक लाल शरणार्थी, जो गृह-कलह के समय से ही शरणार्थी था। अतः, इससे और भी डर हो गया। अप्रैल-जून, 1940 ई० में जर्मनी ने सम्पूर्ण नारवे जीत लिया। अब फिनलैण्ड पूर्ण रूप से पृथक् हो गया। अब जर्मनी को पुनः फिनलैण्ड की स्वतन्त्रता के रक्षक का रूप धारण करने का सुअवसर हाथ लगा, जैसा सन् 1918 ई० में उसने किया था। प्रथम सोवियत-फिनिस-युद्ध के पन्द्रह मास बाद जर्मनी ने ऐसा ही किया, जब जून, सन् 1941 ई० में फिनलैण्ड उसके साथ मिल गया और सोवियत के राष्ट्रीय शत्रु मानेरहीम के साथ मिलकर युद्ध में कूद पड़ा।

फिनलैण्ड और बालटीक-राज्य दोनों रूसी-जर्मन-संघर्ष तथा बीसवीं शती के दो विश्वयुद्धों से इस प्रकार आपस में घुल-मिलकर रूस के अधीन आ गये थे कि बालटीक के लिए रूस और स्वीडेन में दूसरा संघर्ष होना सम्भव था। महाउत्तरी युद्ध (सन् 1700–21 ई०) में यह अपनी चरम पराकाष्ठा पर पहुँच गया था, जब महान् पीटर ने विबोर्ग से रीगा तक समस्त समुद्रतट जीत लिया। सन् 1809 ई० में इसकी पूर्णाहुति हो गई। अलेक्जेण्डर प्रथम ने समस्त फिनलैण्ड को जीतकर रूस में मिला लिया। किन्तु, स्वीडेन के साथ सात शतियों से लगातार युद्ध की यह चरम सीमा थी। रूस बार-बार और असफल प्रयत्न करता रहा कि किसी प्रकार बालटीक में एक सुरक्षित निकास मिल जाय और उसका विस्तार हो जाय, जिसमें वह स्वीडेन, पोलैण्ड तथा जर्मनों का मुकाबला कर सके।

सन् 1700 ई० से पहले कम-से-कम एक सहस्र वर्षों तक पूर्वी स्लावों के लिए बालटीक की सतत व्यापारिक महत्ता थी। अष्टम और नवम शतियों में स्कैण्डिनेविया से वरांगी के समुद्री डाकू पहुँचते थे। उनके भाई-बन्धु पश्चिमी यूरोप तथा ब्रिटिश-द्वीपपुंज तक धावा मारते थे। ये करीब रूस से सैनिक बढ़ाव तथा सम्पर्क स्थापित करने में अग्रसर थे। इन्होंने रूसी भूमि का सम्बन्ध विशेषतः

नवगोरद का बालटीक से तथा उसके पार के प्रदेशों से सुदृढ़ किया। नवगोरद अन्य रूसी राज्यों से सामान, विजयन्त की विलास-सामग्री तथा पूर्व से जो विलासिता की वस्तु आती रहती थी, उन्हें, स्कैण्डिनेविया और जर्मनी के जहाज और व्यापारी पश्चिम दिशा की ओर पहुँचाते थे। पूर्व से सामग्री लाने में वालगा और डैनपीयर का प्राचीन जलमार्ग काम में आता था। यह वरांगी से ग्रीस तक का मार्ग था।

होलस्तीन से विस्तुला तक बालटीक का दक्षिण तट पहले पश्चिमी स्लावजनों के हाथ में था। किन्तु, महान् ओटो (सन 936–73 ई०) के बाद तीन शतियों में जर्मनों ने इन्हें अपने अधिकार में ले लिया या ये डेनमार्क-साम्राज्य के करद राज्य हो गये। पूर्वी स्लाव सदा बालटीक-जन (प्रशिया, लिथुना, लेत्त) से सागर के द्वारा, विलग रहे, जो विस्तुला से रीगा की खाड़ी तक फैले थे। वे फिनिशों से भी अलग रहे, जो फिनलैण्ड की खाड़ी के आस-पास फैले थे।

रूस के लिए बालटीक में प्रवेश करने के दो ही प्रमुख मार्ग थे। पश्चिमी ड्वीना अथवा फिनलैण्ड की खाड़ी के दक्षिण-पूर्व का जलमार्ग, जो कालान्तर में इंगरिया कहलाने लगा। वे इलमेन झील पर नवगोरद से वलखोव होते लदोगा-झील पहुँचते और वहाँ से नेवा होते हुए बालटीक सागर, जहाँ अब लेनिनग्राड है। पोलोतस्क-राज्य के रूसियों ने ड्वीना मुहाने पर कभी अधिकार नहीं जमाया। किन्तु, नवगोरद का एस्तोनिया-जन से घनिष्ठ सम्बन्ध था और नवगोरद इंगरिया-तटवासी तथा फिनिस-जनों से सदा कर लिया करता था, जो उत्तर-पूर्व से क्षीरसागर तक सर्वत्र झील-प्रदेश में फैले थे। अतः, नवगोरद को फिनलैण्ड की खाड़ी में एक तंग निकास मिल गया था।

तेरहवीं शती में तीन निर्णायक घटनाओं के कारण नवगोरद के महाराज का बालटीक की ओर किसी प्रकार विस्तार न हो सका। नवगोरद का सामन्त प्सकोव बहुत विक्षुब्ध था और रूस के पश्चिमी बुर्ज पर था। सन् 1348 ई० के बाद यह नवगोरद से स्वतन्त्र हो गया। जर्मनों ने एस्तोनिया, लिवोनिया और पूर्वी प्रशिया जीत लिया। इस विजय का श्रेय कृपाणधारी और तूतन शूरों को है, जो ईसाई-धर्म फैलाने में अग्रसर थे। स्वीडेन ने फिनलैण्ड जीत लिया। तीसरी बात यह है कि मंगोलों ने रूस देश जीत लिया, अतः नवगोरद स्वयं ही मंगोलों का करद राज्य बन गया और बालटीक सागर तक पहुँचने में रूस के अन्य राज्यों से उसे सम्मिलित सहायता न मिल सकी। तीन महान् दुर्ग और व्यापार-केन्द्रों ने रीगा (सन् 1201 ई०) में स्थापित, रेवेल (ताल्लिन्न, सन् 1219 ई०) और विवोर्ग

(सन् 1293 ई०) रूसियों को बालटीक मार्ग से रोक दिया। इन बालटीक-प्रदेशों को आग और कृपाण की सहायता से कैथोलिक (सोलहवीं शती से प्रोटेस्टेण्ट) यूरोप के लिए जीता गया। उनकी सभ्यता का विकास भी रूस के सनातनी ईसाइयों की अपेक्षा विभिन्न ढंग से हुआ।

किन्तु, स्वीडेन और जर्मन नवगोरद-राज्य का अल्प अंश ही ग्रहण कर सके। उन्हें नवगोरद को उसके राज्य से वर्जित करने में सफलता नहीं मिली। उन्होंने दो बार आक्रमण किया, किन्तु व्लाडिमीर के महाराजकुमार अलेक्जेण्डर नेवस्की ने उन्हें करारी हार दी। यही अलेक्जेण्डर नेवस्की महान् पीटर तथा उसके उत्तराधिकारियों का संरक्षक सन्त था। सोवियत-काल में पुन: देशरक्षक वीर के रूप में इसकी पूजा की जाती थी। उसने नेवा (सन् 1240 ई०) में स्वीडेन को पराजित कर उपाधि प्राप्त की। जर्मनों का प्सकोव-झील के तट पर सन् 1242 ई० में हराया और उनपर कौओं के समान टूट पड़ा। उस समय वहाँ बहुत खून-खराबी हुई। भाले की खटखटाहट और कृपाण के झंकार के साथ वे बरफीले समुद्र पर धुआँधार लड़ रहे थे। बरफ कहीं दिखाई नहीं देती थी; क्योंकि वह रक्त से ढक गया था।

इसके बाद दो शतियों तक सीमान्त-युद्ध चलता रहा। नवगोरद बालटीक से वंचित रहा। केवल इसके पास इंगरियन का पतला निकास रहा। किन्तु, उसने इस निकास को सुरक्षित रखा और इसका विस्तार किया। उसने अपने देवदारु के वन-प्रदेशों के नदी-साम्राज्य को उत्तरी ध्रुव से उरल तक फैलाया। व्यापारिक केन्द्र का समृद्धि इसी पर निर्भर थी। चौदहवीं और पन्द्रहवीं शती के आरम्भ में इसका समृद्धि पराकाष्ठा पर पहुँच गई। हेनसियाटीक (जर्मना के) नगरों के साथ आर्थिक सम्बन्ध का प्रभाव अधिक था, अत: नवगोरद एक प्रकार से पश्चिमी देशों से एकाधिकार व्यापार का पूरा केन्द्र बन गया।

सारा अधिकार कुछ चुने हुए अमीरों के हाथ था। वे ही राज्य करते थे। 275 वर्षों में दो प्रमुख पद पर केवल चालीस ही परिवार के लोग रहे। इन अमीरों के सिवा व्यापारी, श्रेष्ठी, धर्माध्यक्ष तथा धनी मठाधीश भी सर्वत्र शासन करते थे। जाति-वर्ग के उपद्रव मचाने पर इनकी शक्ति बहुत ही मृदुल हो जाती थी। नगरों की जनता का अपना प्रभावशाली संगठन था। संकट पड़ने पर वह खूब काम देता था। परम्परागत जनप्रिय सभा ही नगर में सम्प्रभु थी। स्थानीय कुमारों की शक्ति बहुत क्षीण हो गई थी। सन् 1272 ई० के बाद वे पूर्णरूपेण अलग हो गये थे। अत:, मंगोल-काल में राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से नवगोरद और प्सकोव का विकास रूस के अन्य स्थानों की अपेक्षा विभिन्न प्रकार का हुआ। परम्परागत जनप्रिय

सभा व्लाडिमीर या मास्को के महाकुमारों की अधीनता स्वीकार करती थी, स्वर्णदल (होर्ड) को कर भी देती थी; किन्तु सब काम एक प्रकार से स्वतन्त्ररूपेण करती थी। किन्तु, इसकी एक खास कमजोरी थी। खाद्य-सामग्री के लिए इसे प्रायः वॉलगा-ओका-प्रदेश पर निर्भर रहना होता था।

पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में वालटीक-प्रश्न का रूप बदलने लगा। अब स्वतन्त्र नवगोरद की घड़ी नजदीक आ गई थी। उसके दिन अब गिने-गिनाये थे। लिथुनिया-पोलैण्ड की वृद्धि तथा इवन महान् (सन् 1462–1505 ई०) के काल में मस्कोवी के सुदृढ हो जाने से गहरा असर पड़ा। नवगोरद (सन् 1471,1478 ई०) और प्सकोव (सन् 1510 ई०) मस्कोवी में मिल गये, न कि लिथुनिया-पोलैण्ड में। हेनसियाटीक-संघ सर्वत्र क्षीण हो रहा था। सन् 1494 ई० में इवन ने इसका विशेषाधिकार समाप्त कर दिया। अब प्रतिद्वन्द्वी व्यापारी—स्कैण्डिनेविया, डच, हालैण्ड और अँगरेज—वालटीक होकर मस्कोवी व्यापार को धक्का पहुँचाने लगे। तेतुनिक शूरों पर पोलैण्ड की विजय हुई; क्योंकि तनेनबर्ग (सन् 1410 ई०) में उसकी जीत हुई थी। अब विस्तुला के मुहाने पर वालटीक सागर में पोलैण्ड की पुनः धाक जम गई। लिवोनिया और एस्तोनिया में जर्मनी की शक्ति भी क्षीण हो रही थी। इवन महान् ने इवनगोरद का दुर्ग बनाया, जिससे जर्मनी के प्रधान केन्द्र नरवा पर आक्रमण कर सके। वह जर्मनी की शूरसेना से सन् 1501 ई० में पराजित हुआ। उसने डेनमार्क से मैत्री की और स्वीडेन से (सन् 1493–96 ई०) युद्ध किया। इससे भविष्य का चित्र साफ झलकता था। आगामी तीन शतियों में रूस और स्वीडेन में वालटीक-प्रदेशों के लिए नव बार युद्ध हुए। डेनमार्क से पाँच बार रूस के साथ मैत्री हुई, किन्तु सब विफल हुआ। किन्तु, मस्कोवी और स्वीडेन दोनों के लिए पोलैण्ड ही प्रधान शत्रु था।

महान् इवन की आधी शती के बाद यह प्रश्न अच्छी तरह युद्ध का विषय बन गया कि वालटीक-प्रदेश किसके पास रहे। पहले पोलैण्ड के पक्ष में फिर स्वीडेन के पक्ष में और अन्ततः पीटर महान् के रूस के पक्ष में निर्णय हुआ।

सोलहवीं शती में मस्कोवी पश्चिमी यूरोप में खुला निकास चाहता था। इसके तीन उद्देश्य थे : आग्नेयास्त्र और युद्ध-सामग्री का संचय, शिल्पी अभियन्ता तथा स्वार्थी मजदूर और सामान्य व्यापार। पोलैण्ड-लिथुनिया, लिवोनिया-शासन तथा स्वीडेन पश्चिम से संचार-व्यवस्था को रोकें हुए थे या अड़चन लगाये हुए थे। इसका भारी प्रभाव पड़ा। उदाहरण के लिए, जब सन् 1547 ई० में 124 विशेषज्ञ मस्कोवी में नौकरी के लिए जा रहे थे, लुबेक तथा लिवोनिया-शासन ने उन्हें जाने से रोक

दिया। बालटीक पहुँचने का एक वैकल्पिक मार्ग भी क्षीरसागर होकर था, जिसका अभी हाल में ही पता चला था (सन् 1553 ई०) और जिसका अँगरेजों और डचों ने शीघ्रता से विकास किया था। किन्तु, यह विकल्प उचित नहीं था; क्योंकि यह बड़ा घुमावदार था, दूर था तथा बालटीक की अपेक्षा अधिक दिनों तक बरफ से ढका रहता था। बरफ-रहित एक निकास के पास मुरमनस्क था, जहाँ एक रूसी उपनिवेश पहले से ही था। इससे कुछ व्यापार भी होता था, किन्तु मास्को से यहाँ पहुँचना कठिन था और इस शती के पहले इसका कोई महत्त्व न था। सन् 1915 ई० में रेलमार्ग यहाँतक बन गया और सोवियत ने नॉर्थ का खूब विकास कर दिया। भयानक इवन (सन् 1558 ई०) के नरवा पर अधिकार करने के पश्चात् पोलैण्ड के राजा ने डरकर महारानी एलिजावेथ के पास पत्र लिखा कि अँगरेजी व्यापार को कितनी क्षति पहुँचेगी। "हमलोग मस्कोवीवासी को जानते हैं। वे स्वर्ग के नीचे सभी तरह की स्वतन्त्रता के शत्रु हैं। नरवा में जो भी सामान पहुँच सके, उन्हें पहुँचाकर वे दिन-प्रतिदिन शक्तिशाली होना चाहते हैं। वे वहाँ से केवल सामान ही नहीं खरीदते, बल्कि उन अस्त्रों को भी, जिनके नाम भी उन्होंने कभी नहीं सुने हैं। वे शिल्पी तथा कला भी अपने साथ ले जाते हैं। इन उपायों से वे इतने शक्तिशाली होते जाते हैं कि अन्य सभी को वे जीत लेंगे।"

लिवोनिया-युद्ध (सन् 1558–83 ई०) आरम्भ हो गया था। यह मस्कोवी और पोलैण्ड-लिथुनिया के चिर-संघर्ष का अंग था। किन्तु, इसे हम मस्कोवी का प्रथम महान् प्रयत्न भी कह सकते हैं कि उसने ड्वीना के मार्ग से बालटीक तक जीतने का प्रयास किया। भयानक इवन कहता था कि ड्वीना के तट का मूल्य चाँदी से तथा उसके जल का मूल्य सोने से तौलकर दिया जा सकता है। बालटीक-प्रदेशों में जर्मनी की आन्तरिक शक्ति इतनी क्षीण हो गई थी कि इवन समझने लगा कि एक दिन पोलैण्ड, स्वीडेन या डेनमार्क इन प्रदेशों को जरूर हड़प लेंगे। 25 वर्षों तक युद्ध और कूटनीति चलती रही और अन्त में इवन की बहुत बुरी तरह हार हुई। डेनमार्क से मैत्री करके और क्रिमिया के तातारों से मिलकर अन्त में उसे स्वीडेन और पोलैण्ड से युद्ध करना पड़ा। पहले तो इसे पोलोतस्क के युद्ध में सफलता मिली। लिवोनिया में या नरवा और एस्तोनिया में भी सफलता मिली। एस्तोनिया में रेवेल (तालिलन्न) स्वयं स्वीडेन से मिल गया और इसे जीतना दुर्गम हो गया। किन्तु, अपनी युद्ध-विजय को इवन चिरकाल तक न रख सका। अन्ततः, इवन को मजबूर होकर मानना पड़ा कि पोलैण्ड ही लिवोनिया, स्वीडेन और एस्तोनिया का मालिक है। उसे लाभ कुछ न हुआ और जहाँ से चला था, वहीं खदेड़ दिया गया। अब वह इंगरियन-निकास में ही सीमित रह गया।

विपत्काल (सन् 1604–13 ई०) में वह भी हाथ से जाता रहा। आन्तरिक फूट के कारण स्वीडेन और पोलैण्ड इसे लूटने की स्पर्धा करने लगे। यहाँतक कि वे मस्कोवी की राजगद्दी भी हथियाने को सोचने लगे। सारा उत्तर-पच्छिम का प्रदेश, जिसमें नवगोरद तथा प्सकोव भी शामिल थे, कुछ काल के लिए स्वीडेन के हाथ लग गये। किन्तु, अन्त में देशभक्तों ने रोमानव-वंश के प्रथम जार माइकेल की छत्रच्छाया में शरण ली। इन्होंने पोल और स्वीड दोनों से मस्कोवी को मुक्त किया, किन्तु सन् 1617 ई० के पहले स्वीडेन से सन्धि न हो सकी। नवगोरद और प्सकोव तो पुनः हाथ आ गये, किन्तु इंगरिया से हाथ धोना पड़ा। अब मस्कोवी को बालटीक में पैर रखने की भी जगह न थी।

विपत्काल के बाद चालीस वर्ष पहले ही मस्कोवी सफलतापूर्वक पश्चिम की ओर अग्रसर हो सका था। किन्तु, सबसे पहले यह पोलैण्ड के विरुद्ध (सन् 1654 ई०) में बढ़ा था। अब बालटीक में परिस्थिति एकदम बदल गई थी; क्योंकि गुस्तावुस अडोलफस ने वहाँ स्वीडेन का प्रभुत्व बढ़ा दिया था और महान् एलेक्टर के कारण प्रशिया का उत्थान हो रहा था। लिवोनिया स्वीडेन के हाथ था। सन् 1648 ई० में वेस्टफालिया की सन्धि ने उत्तरी जर्मनी में स्वीडेन का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया था। अब स्वीडेन इस परिस्थिति में था कि साउण्ड के पूर्वी भाग से जब चाहे डेनमार्क को खदेड़ दे (सन् 1658 ई०)।

अब पोलैण्ड के लिए प्रलयकाल (सन् 1654–67 ई०) आ गया था। यह प्रलय केवल मस्कोवी तथा उक्रेण के कजाकों के लिए ही नहीं था, बल्कि ब्रण्डेनबर्ग और सबसे बढ़कर स्वीडेन के लिए था, जिसका वर्णन पहले हो चुका है। पोलैण्ड से मस्कोवी ने बहुत जीता; यथा स्मोलेंस्क, कीव और लघु रूस। किन्तु, मास्को में लोग एक राय पर नहीं पहुँच सके थे। अभी तक लोग स्वीडेन और बालटीक को भूले नहीं थे। जार अलेक्सिस का एक मुसाहिब ओरडीन-नशचोकिन (मृत्यु : सन् 1680 ई०) बहुत अनुभवी था। यह पाश्चात्यीकरण का सर्वदा पक्षपाती था। इसका जन्म प्सकोव में हुआ था, जब प्सकोव स्वीडेन की सीमा पर था। उसका कथन था कि पोलैण्ड की अपेक्षा स्वीडेन से अधिक डर है और डैनपीयर और कीव की अपेक्षा ड्वीना और रीगा अधिक मूल्यवान् हैं। स्वीडेन के साथ कुछ अल्प युद्ध भी (सन् 1656–8 ई०) हुआ, किन्तु इसका फल कुछ भी नहीं हुआ। लोगों ने अन्ततः परामर्श दिया कि पोलैण्ड से ही झगड़ना ठीक है और यही तय रहा। जार अलेक्सिस लिखता है : 'सनातनी ईसाइयों की रोटी का एक भी ग्रास कुत्ते को भी खाना उचित नहीं है।' उक्रेण में अनेक सनातनी ईसाई थे, जिन्हें मुक्त करने की आवश्यकता थी; किन्तु बालटीक में सनातनी ईसाई नहीं थे। भयानक इवन के

विपरीत अलेक्सिस स्वीडेन और पोलैण्ड से एक ही वार या एक ही समय चुनौती देना ठीक नहीं समझता था। चालीस वर्ष बाद ओरडिन नशचौकिन के स्वीडेन के विरुद्ध पोलैण्ड से मैत्री करनेवाला सिद्धान्त महान् पीटर के साथ प्रतिफलित हुआ।

पीटर कृष्णसागर की ओर देखता था, न कि बालटीक की ओर। इसने क्रिमिया के तातारों और तुर्कों पर नये आक्रमण की नीति को अपनाया। इसने पोलैण्ड और आस्ट्रिया से मैत्री कर ली। पोलैण्ड से मैत्री करना ओरडिन नशचौकिन की द्वितीय देन थी। किन्तु, पीटर की प्रथम यूरोप-यात्रा (सन् 1697–98 ई०) ने उसे बतला दिया कि आस्ट्रिया अब केवल लुईस चतुर्दश और स्पेन के उत्तराधिकार-प्रश्न के विषय पर ही सोचता है, न कि सुलतान के विषय में। पोलैण्ड का नया राजा अगस्तस द्वितीय सेक्सनी का राजकुमार था। वह डेनमार्क के साथ मिलकर स्वीडेन के विरुद्ध बड़ा जाल फैला रहा था। पीटर भी इसी में मिल गया। उसने शीघ्रता से तुर्की के साथ सन्धि की और दो सप्ताह के भीतर ही स्वीडेन से युद्ध ठान दिया, जो इक्कीस वर्ष तक चलता रहा और जो महान् उत्तरी युद्ध के नाम से विख्यात हुआ (सन् 1700–21)।

प्रतीत होता था कि किसी भी महायुद्ध में इतनी शीघ्र जीत युद्ध-प्रारम्भ के पहले ही नहीं हो जायगी, जितनी इस युद्ध में। स्वीडेन अकेला पड़ गया। डेनमार्क, सेक्सनी, पोलैण्ड और रूस ने उसपर आक्रमण कर दिया। स्वीडेन-साम्राज्य में कुल 25,00,000 से अधिक लोग नहीं थे और इनमें भी केवल 15,00,000 ही स्वीड थे। परन्तु, रूस में कुल जनसंख्या में प्रायः 80,00,000 लाख रूसी थे, और इनके सिवा अन्य भी थे। एक पीढ़ी से निरंकुश शासन चल रहा था तथा रईसों की पूछ नहीं थी। इससे आन्तरिक कलह पैदा हो गया था, जो कटु था। स्वीडेन के बालटीक-प्रदेशों में इससे कम कलह न था। वहाँ पर जर्मन-जमीन्दारों का अधिकार भूमि-नीति के कारण कुचल दिया गया था। उसका नया राजा केवल 18 वर्ष का किशोर था। किन्तु, वह था चार्ल्स द्वादश। और, जहाँ भी वह स्वयं नेतृत्व करता, स्वीड पुराने जमाने के स्वीडों के समान उसका अनुसरण करते।

ऐसा प्रतीत होता था कि प्रथम वर्ष में भी इस युद्ध में विजय हो जायगी। कापेनहेगन अधिकृत कर लिया गया और डेनमार्क को जबरन सन्धि करनी पड़ी। सेक्सन लड़खड़ाते हुए रीगा से भागे। रूसी नरवा में अपमान-पूर्वक कुचल दिये गये। एक उल्का चमक रहा था, जो अपने युग और मार्लबरा तथा यूगेने के युग का भी लोकप्रिय आकर्षक शीर्षक था।

वर्षों बाद पीटर ने स्पष्टत: स्वीकार किया कि मुझे सूझता नहीं था और मैंने गलत समझा था। किन्तु, नरवा में बुरी तरह से हारने पर भी वह डरा नहीं और पहली बार वह किस धातु है, इसका स्पष्टीकरण कर दिया। चार्ल्स का पीटर से पाला पड़ा। वही इसके जोड़ का था। पीटर भी वैसा ही जिद्दी था और उसमें बहुमुखी और प्रचण्ड शक्ति थी। अन्त में, वह समझ गया कि रूस के विशाल वरिष्ठ साधनों को किस प्रकार संगठित किया जाय।

चार्ल्स पोलैण्ड और सेक्सनी में अगस्तस द्वितीय के साथ घमासान युद्ध में लगा था। उस समय पीटर पश्चिमी ढंग पर नई सेना की तैयारी में मग्न था। उसने भरसक अगस्तस को रोकने की चेष्टा की। इस नूतन सेना से उसने इंगरिया फिर जीत लिया और नरवा जीतकर (सन् 1704 ई०) इसका बदला लिया। उसने सन् 1703 ई० में नये सन्त पीटर्सबर्ग नगर में बालटीक-नौसेना की सृष्टि की। अपने देश में उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अस्त्रखान में विद्रोह मच गया (सन् 1705–6 ई०)। दोन-तट पर बुलविन-विप्लव हुआ (सन् 1707–8 ई०)। बशकीरों के साथ चिरकाल तक गृहयुद्ध (सन् 1705–11 ई०) हुआ। किन्तु, चार्ल्स को पूर्व की ओर जैसे ही देखने का अवसर मिला, वैसे ही पीटर के महान् संकट दूर हो गये। उसने चतुराई से क्रिमिया के तातारों और तुर्कों को चार्ल्स के पक्ष में हस्तक्षेप करने से रोक दिया। चार्ल्स को पोलों से कोई भी सैनिक सहायता न मिली। अब पीटर की सेना विशाल और सुसज्जित थी। पोलतवा की विजय (सन् 1709 ई०) से इसकी सेना को चार चाँद लग गये।

पोलतवा-संग्राम कोई अशिष्ट जुआड़ी का अनवधान पाशा न था, जैसा चार्ल्स द्वादश के आलोचकों ने अधिकतर चित्रित करने का यत्न किया है। लघु रूस का उक्रेणी हेटमान, मजेपा चार्ल्स के साथ था। यदि वह उक्रेणियों को अपने झण्डे के अन्दर लाने में सफल होता, तो फल उल्टा ही हो जाता। किन्तु, हम देखते हैं कि संग्राम में उनका सत्यानाश हो गया। चार्ल्स प्राय: अकेला ही रह गया। वह घायल हो गया। बीमार पड़ गया और दक्षिण में भागकर तुर्कों के पास पहुँच गया। पोलतवा का युद्ध इस अर्थ में निर्णायक था कि अब से युद्धनीतिक उपक्रम रूस को ही करना था। स्वीडेन को बाध्य होकर सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करना पड़ा। यद्यपि इसमें बारह वर्ष लग गये। किन्तु, स्वीडेन को सदा ही अपने बचाव की चिन्ता रही। उसकी शक्ति समाप्त हो गई; क्योंकि यह संग्राम विषम था। रूस की सैनिक शक्ति उससे बहुत अधिक थी। स्वीडेन की आपत्तियाँ दिन-पर-दिन बढ़ती ही जाती थीं। डेनमार्क और सेक्सनी-पोलैण्ड अब रूस से मैत्री करके पुन: रणक्षेत्र में उतरे। प्रशिया और हनोवर भी बाद में (सन् 1714 ई०) अनुयायी बने।

पोलतवा के बाद शीघ्र ही रूस ने (सन् 1710 ई०) लिवोनिया और एस्तोनिया जीत लिया। स्वीडेन को राई, पटुआ और सन यहीं से मिलता था। रूस ने विवोर्ग भी जीता, जो सन्त पीटर्सबर्ग का दृढ उपधान था। पीटर का जल्दीबाजी में किया गया बेसरबिया में तुर्की के खिलाफ़ खतरनाक युद्ध, स्वीडेन के लिए लाभदायक नहीं साबित हुआ। सन् 1713–14 ई० में समस्त फिनलैण्ड (जहाँ से स्टाकहोलम पर झपट्टा मारकर लूटा जा सकता था) रूस के हाथ लगा। पीटर के नये युद्धपोत, जिसने उत्तरी पहाड़ी द्वीपपुंज के घेरों के नौसेना-युद्ध में क्रान्ति मचा दी थी, हंगो के पास महत्त्वपूर्ण विजय प्राप्त की।

उसी समय यूट्रेक्ट की सन्धि हुई। स्पेन के उत्तराधिकार-युद्ध का अन्त हो गया (सन् 1713 ई०)। अब पश्चिमी और जर्मनी-राष्ट्र बालटीक की ओर अधिक ध्यान देने लगे। अब सैनिक युद्ध की अपेक्षा कूटनीतिक युद्ध अधिक बढ़ गया। स्वीडेन के विपक्ष संघ के सदस्यों में तथा स्वयं स्वीडेन के विरुद्ध भी कूटनीतिक चाल थी। उत्तरी-जर्मन-समुद्रतट स्वीडेन के कब्जे में थे। यहीं पर युद्ध हुए और इसी के लिए होड़ मची थी, इस कारण पीटर उत्तरी जर्मनी की राजनीति में अधिक-से-अधिक फँसता गया। इतिहास में यह प्रथम अवसर था कि रूसी सेना इस क्षेत्र में उतरी और लोगों ने इसका स्वागत किया। रूस की आँख मेकलेनबर्ग पर लगी थी। होलस्तीन-प्रश्न आगामी पचास वर्षों तक सन्त पीटर्सबर्ग की राजनीति में सदा प्रमुख रहा। रूस होलस्तीन पर भी आँख गड़ाये था। महान् उत्तरी युद्ध के अन्तिम वर्षों में ये कूटनीतिक युद्धकला और अर्थशास्त्र की केन्द्रीय गुत्थी बन गये। इसी समय हनोवर का कुमार इंगलैण्ड का जॉर्ज प्रथम बना। इधर पीटर ने होलस्तीन के राजा को स्वीडेन की गद्दी के लिए खड़ा कर दिया। बाद में वह पीटर का जामाता बना।

रूस में विशाल सैनिक शक्ति हो जाने से और बालटीक में नौसेना के निर्माण से सर्वत्र भय छा गया और लोग थरथरा गये। सन् 1718 ई० में नारवे के एक दुर्ग के सामने चार्ल्स द्वादश मारा गया। अब स्वीडेन को अन्य राष्ट्रों से सन्धि करने में कुछ सुविधा हो गई। किन्तु, उसने पीटर के सन्धि-शर्तों को मानने में हिचकिचाहट दिखलाई और जिद्द पकड़ ली। इसके लिए उसे गहरा मूल्य चुकाना पड़ा। अन्तिम वर्षों में (सन् 1719–21 ई०) रूस के युद्धपोत और लुटेरा-दलों ने स्वीडेन के तटीय प्रदेशों में तबाही मचा दी। वे जंगली के समान लूट मचाने लगे। वे स्टाकहोलम के सरहद पर पहुँच गये। वहाँ पर समुद्र में ब्रिटेन के युद्धपोत से निर्लज्जता से सैनिक मध्यस्थता हुई।

न्यास्ताद में अन्ततः सन्धिनामा पर हस्ताक्षर हुआ (सन् 1721 ई०)। प्रजा ने पीटर का 'महान्' की उपाधि से स्वागत किया। उसे लोग 'पितृभूमि का पिता' कहने लगे। उसने रूस के लिए विवोर्ग से रीगा तक बालटीक-समुद्रतट जीत लिया था। ये दोनों मिलकर इतने बड़े गवाक्ष थे, जिसकी कल्पना भी वह प्रारम्भिक वर्षों में नहीं कर सकता था। उसने रूस को पश्चिम की ओर खींचा, जिससे लाभ और हानि दोनों हुए। उसने नई राजधानी बनाई। कांसटाट का दुर्ग इस राजधानी का रक्षक था। यह रूस की नई प्राच्य स्थिति का सतत पर्यवेक्षक था तथा बालटीक-राष्ट्र का नूतन स्थान। अब रूस की गणना यूरोप के महान् राष्ट्रों में होने लगी। उसने स्वीडेन को शरणार्थी बना दिया। उसे पदच्युत किया। एक शती तक फ्रांस, प्रशिया और इंगलैण्ड के साथ स्वीडेन की राजनीति में रूस स्पर्धा करता रहा। अन्ततः, सन् 1809 ई० में स्वीडेन को फिनलैण्ड से वंचित कर दिया। महान् उत्तरी युद्ध के ये ही प्रधान फल हैं। रूस के लिए इस युद्ध का आर्थिक और सांस्कृतिक प्रभाव महत्त्वपूर्ण है। नई राजधानी से बालटीक का द्वार खुल गया।

सन्त पीटर्सवर्ग का आरम्भ सन् 1703 ई० में हुआ। इसका निर्माण मजदूर सेनाओं द्वारा भयंकर परिस्थितियों में हुआ। चार वर्ष में ही 15,00,000 लोग नेवा की दलदली में काम करने को भेज दिये गये। पीटर की मृत्यु के बाद शीघ्र ही प्राचीन राजधानी ने प्रति-चुनौती दी और मास्को कुछ वर्षों के लिए पुनः राजधानी बन गया। सन्त पीटर्सवर्ग महान् नगर हो गया और सन् 1918 ई० तक ऐसा ही रहा। यह सुन्दर रूसी बरोक और उच्च वास्तु-कला का प्रतीक बन गया। इटली से अनेक शिल्पी पहुँचे। बारटोलेम्यू राष्ट्रेली (सन् 1700–71 ई०) की प्रतिभा अद्वितीय थी। उसने नगर को खूब सजाया। शीघ्र ही यह विद्या और उदात्त निरंकुश शासन का सांस्कृतिक केन्द्र बन गया, जिसे पश्चिमी देशों में लाया गया था। बालटीक के द्वार से रूस पाश्चात्य विचारों से भर गया। इसके पहले लोग केवल सन्धि या विग्रह को ही प्रधानता देते थे। अन्य नई राजधानियों की भी स्थापना हुई; यथा वाशिंगटन, ओटावा, कैनबेरा या प्रिटोरिया। किन्तु, सन्त पीटर्सवर्ग केवल शासन का ही केन्द्र नहीं था। यह वित्तीय तथा व्यापारिक राजधानी भी था। पीटर ने शीघ्र ही विदेशी व्यापार भी नई राजधानी में केन्द्रित किया। अब आर्केंजिल अपनी पूर्व महत्ता से वंचित रहा। पीटर के राज्य की समाप्ति होते-होते आर्केंजिल भी महत्त्वहीन हो गया। जिस विदेशी व्यापार को सन्त पीटर्सवर्ग नहीं करता था, उसका व्यापार रीगा करता था। तब भी रीगा रूसी साम्राज्य का महान् केन्द्र नहीं बन सका, जबतक पोलैण्ड का बँटवारा न हो गया।

अट्ठारहवीं शती में रूस का यूरोप के साथ वैदेशिक व्यापार खूब तेजी से बढ़ा। अधिकतर व्यापार बालटीक से ही होता था और दो-तिहाई व्यापार सन्त पीटर्सवर्ग होकर होता था। उन्नीसवीं शती के मध्य से विदेशी व्यापार में बालटीक की आर्थिक श्रेष्ठता घटने लगी। अब शुष्क मार्ग से भी पश्चिम यूरोप से क्रमशः व्यापार की महत्ता बढ़ने लगी। कृष्णसागर-मार्ग से नये गल्ले का व्यापार कुल समुद्र-मार्ग के निर्यात का एक-तिहाई कहा जा सकता था। वर्त्तमान शती के प्रारम्भ में बालटीक के विरुद्ध पलड़ा बहुत भारी हो चुका था, यद्यपि अब भी समुद्र-मार्ग से अधिक निर्यात बालटीक-मार्ग से ही होता था। तब भी बालटीक रूस के लिए एक आवश्यक धमनी बना रहा। दक्षिण में बहुत विकास हुआ। इससे कृष्णसागर की आर्थिक महत्ता पहले की अपेक्षा बहुत परिवर्त्तित हो गई। बालटीक में रूस के आर्थिक भार का पता इसी से चल जाता है कि रूस को कुल हरजाने का एक-तिहाई देना पड़ा। सन् 1857 ई० में अन्तरराष्ट्रीय समझौते से साउण्ड की चुंगी समाप्त कर दी गई। डेनमार्क को जो मुआवजा चुकाना पड़ा, वह ग्रेटब्रिटेन के हिस्से से कुछ ही कम था और मुआवजे का सबसे अधिक हिस्सा अँगरेजों को ही देना पड़ा। इससे रूस के आर्थिक बोझ का स्पष्ट पता लगता है।

मध्य उन्नीसवीं शती के पहले जहाज पाल से ही चलते थे, किन्तु अब वाष्प का प्रयोग पूर्णरूपेण अभिमान के साथ होने लगा। अभी तक बालटीक-देशों से ही नौका के लिए काष्ठ और पश्चिमी यूरोप के लिए काष्ठ-सामग्री आती थी। इस दृष्टि से रूस के बालटीक में प्रवेश का आर्थिक और युद्धनीतिक प्रभाव सहसा और स्थायी पड़ा। रूसी व्यापार का तीव्र विस्तार, ब्रिटिश और डच-व्यापारियों के लिए सुनहला अवसर था। रूस के पास कोई जहाज व्यापार के लिए नहीं था, अतः अट्ठारहवीं शती-भर इंगलैण्ड और हालैण्ड के नौका-व्यापारियों ने खूब लाभ उठाया। अब रूस ने भी अपनी नौसेना का निर्माण किया। ये नौसैन्य स्वीडेन, डेनमार्क या ब्रिटेन के सामुद्रिक जहाजों की अपेक्षा तकनीकी दृष्टि से भले ही हीन हों, किन्तु बालटीक सागर में अब पलड़ा बदल गया। रूस के पास विशाल साधन थे, जिनसे वे जहाज और युद्ध-सामग्री बना सकते थे। अपितु, पीटर ने नूतन युद्ध-पोतों का निर्माण बहुत बड़े पैमाने पर किया। पीटर के जीवनकाल में ही रूसी बेड़ों को अँगरेज दुःखदायी समझने लगे थे। वे कहते थे कि 'यह विश्व को उद्विग्न कर देगा।'

सन् 1716 ई० में ब्रिटेन का राष्ट्रसचिव लिखता है: 'यह हमलोगों का दुर्भाग्य है कि इस क्षण हमलोगों के सामुद्रिक जहाज पर इतना कम माल है। इनमें पटुआ की सबसे कमी है। यह सब मस्कोवी की शैतानी है। यदि व्यापारियों का

बेड़ा बालटीक सागर में जाय और दुर्घटना में डूब जाय या नष्ट हो जाय तो ब्रिटिश-सरकार एक साल तक कोई भी युद्धपोत तैयार न कर सकेगी। इसका फल यह होगा कि इंगलैण्ड के समस्त जहाज एकदम बेकार हो जायेंगे।' जॉर्ज प्रथम के राज्यकाल में ग्रेटब्रिटेन का रूस के साथ यह उलझन, मुख्यतः इनके उत्तरी जर्मन-प्रदेशों के स्वार्थ के कारण थी; क्योंकि जॉर्ज हनोवर का कुमार था और पीटर जैकोबाइट* को शरण देता था। किन्तु, किसी भी दशा में ग्रेटब्रिटेन रूस और बालटीक के साथ फँसने के लिए मजबूर था, जिसका कारण उसकी नौसेना और युद्धपोतों की सामग्री थी। बालटीक से सामग्री प्राप्त करना ब्रिटेन के लिए आवश्यक था। उसे इस बात की भी चिन्ता थी कि उसके प्रमुख शत्रु फ्रांस को सामान नहीं पहुँचाने पायें। इंगलैण्ड और रूस में व्यापारिक सन्धियाँ सन् 1734 और 1766 ई० में हुईं। पुनः सन् 1780 और 1800 ई० में सशस्त्र तटस्थता की सन्धि हुई। अतः, कालान्तर का इतिहास इस बात का साक्षी है कि काष्ठ और नौका-सामग्रियों की कितनी महत्ता थी। अँगरेजों ने दो बार कोपेनहेगेन पर (सन् 1801 और 1807 ई०) आक्रमण किया। इसका मुख्य कारण यही था कि डेनमार्क साउण्ड का नहर कहीं बन्द न कर दे और अँगरेजों का प्रवेश रोक दे। अँगरेज इससे डर गये थे। रूस और फ्रांस डेनमार्क की तरफ थे।

अधिकांश काष्ठ पोलैण्ड, नारवे, स्वीडेन और फिनलैण्ड से आता था। मस्तूल के लिए प्रथम श्रेणी की लकड़ी रीगा से आता था। इन प्रदेशों पर रूस का प्रत्यक्ष नियन्त्रण न था। किन्तु, नौका-सामग्री तथा पटुआ, सन, जहाजी रस्सा, टाट या किरमिच, राल तथा अलकतरा बालटीक-प्रान्तों से तथा खास रूस से ही मिल सकता था। अभी पोलैण्ड का बँटवारा न हुआ था और फिनलैण्ड रूस के हाथ नहीं आया था, तब भी रूस का स्थान मजबूत था। अट्ठारहवीं शती के अन्त में ग्रेटब्रिटेन पटुआ के लिए रूस पर ही बहुत अधिक निर्भर करता था। रूस के सन पर उससे कुछ कम निर्भर रहता था। सन् 1807 ई० में नेपोलियन ने अलेक्जेण्डर प्रथम को इंगलैण्ड के विरुद्ध महाद्वीप-पद्धति (काण्टिनेण्टल सिस्टम) में सम्मिलित होने को बाध्य किया। इसका फल यह हुआ कि एक साल के अन्दर ही इंगलैण्ड में पटुआ और सन का मूल्य दुगुने से भी अधिक हो गया। बालटीक-काष्ठों का मूल्य आसमान पर चढ़ गया। किन्तु, सन् 1811 ई० में रूस ने नीति बदल दी। तब-तक नौका-सामग्री प्राप्त करने में इंगलैण्ड को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

---

* इंगलैण्ड के राजा जेम्स द्वितीय तथा उसके वंशजों के अनुयायी। जॉर्ज प्रथम के गद्दी पर बैठने पर जेम्स के वंशज गद्दी के लिए झंझट करते थे।

महान् उत्तरी युद्ध का सबसे बड़ा फल यह हुआ कि रूस के लिए बालटीक का फाटक खुल गया, जिससे उसका आर्थिक और सांस्कृतिक प्रभाव बढ़ गया। दूसरा फल यह हुआ कि रूस का स्वीडेन के साथ सम्बन्ध अब बदल कर मित्रवत् हो गया। रूस ने सन् 1809 ई० में फिनलैण्ड जीत लिया था, किन्तु अब स्वीडेन के साथ संघर्ष की शती समाप्त हो गई।

प्रायः युद्ध से एकदम तनाव और बिलगाव हो जाता है, किन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि युद्ध अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहता। प्राचीन काल में रूस ने युद्ध-बन्दियों से बहुत सीखा था। पीटर ने स्वीडेन के कैदियों से बहुत लाभ उठाया। उसने स्वीडेन की शासन और सैनिक प्रणाली का गहरा अध्ययन किया, जिसमें उनके आधार पर अपना आन्तरिक सुधार कर सके। पीटर की मृत्यु के बाद स्वीडेन के अल्पतन्त्र संवैधानिक विचारों का प्रभाव रूस पर भी पड़ा। इसका वर्णन पहले हो चुका है। स्वीडेन में रूस का प्रभाव मुख्यतः राजनीतिक क्षेत्रों में पड़ा। स्वीडेन के इतिहास में यह एक विचारणीय विषय रहा है। चार्ल्स द्वादश की मृत्यु के बाद अर्द्धशती (सन् 1719–72 ई०) का काल स्वतन्त्रता-युग के नाम से विख्यात है। पहले स्वीडेन में एक निरंकुश शासन था। स्वीडेन ने इसे एकदम बदल-कर अल्पतन्त्र का सीमित शासन स्थापित कर दिया। ये अल्पजन सदा शक्ति के लिए आपस में राज्य की सभा में झगड़ते रहते थे। इन्हें विदेशों से पर्याप्त सहायता मिलती थी; यथा रूस, फ्रांस, प्रशिया तथा ब्रिटिश।

रूस प्रायः प्रशिया से मैत्री और फ्रांस से सदा वैमनस्य रखता था। रूस चाहता था कि पोलैण्ड के समान स्वीडेन का राजा भी नपुंसक बना रहे और उसके होलस्तीन-कुमार का गद्दी पर अधिकार सुरक्षित हो जाय। इस समय (सन् 1743–44 ई०) स्वीडेन में राजनीतिक फूट इतना तीव्र थी कि रूस-प्रेमी दल के विपक्षियों का दमन करने के लिए रूसी युद्धपोत और सेना को बुलाने की आवश्यकता पड़ गई। महती कैथरीन के राज्यकाल प्रथम दशक (सन् 1762–72 ई०) में जब वैदेशिक मन्त्री पनिन उत्तरी पद्धति का जाल बिछा रहा था, रूस से बहुत सोना स्वीडेन पहुँच गया। उधर फ्रांस भी सहायता पहुँचाने में बाज नहीं आता था। किन्तु, रूस ने फ्रांस को मात कर दिया।

सन् 1772 ई० में नया राजा गुस्तावुस तृतीय ने राज्य-विप्लव कर दिया। इससे रूस का प्रभाव जाता रहा। उसने राजा का पूर्वशासन पुनः स्थापित किया। गुस्तावुस को फ्रांस की सभी वस्तुओं से प्रेम था। महती कैथरीन तुर्की और पोलण्ड से युद्ध के झंझट में फँसी थी, अतः वह प्रभावशाली प्रतिक्रिया न कर सकी। किन्तु;

उसने स्वीडेन और पोलैण्ड में विपक्षियों को अपने पक्ष में लाने का भरसक प्रयत्न किया। अब फिनलैण्ड गुस्तावुस तृतीय की ओर हो गया था। गुस्तावुस की वैदेशिक नीति खासकर रूस के विरुद्ध युद्धनीति में वह असावधान था।

न्यास्ताद की सन्धि के बाद स्वीडेन केवल एक ही बार अपने नष्ट राज्यों को पुनः पाने के लिए रूस से फिर युद्ध ठान दिया (सन् 1741–43 ई०)। इस युद्ध का प्रधान कारण था फ्रांस की कूटनीति, जिसमें वह आस्ट्रिया के उत्तराधिकार-युद्ध में रूस को आस्ट्रिया के साथ मिलने से रोकना चाहता था। इस युद्ध में स्वीडेन को बार-बार मुँह की खानी पड़ी। सौभाग्य से उसे केवल फिनलैण्ड के एक छोटे टुकड़े से ही हाथ धोना पड़ा। अब रूस की सीमा प्रायः वहीं हो गई, जो सन् 1940 ई० में सोवियत-फिनिस-युद्ध के बाद थी।

कैथरीन के द्वितीय तुर्की-युद्ध से गुस्तावुस को मौका मिल गया और उसने रूस पर आक्रमण कर दिया (सन् 1788 ई०)। उत्तर में तैयारी ठीक नहीं थी। अतः कैथरीन ने गुस्तावुश के विरुद्ध स्वीडेन-फिनलैण्ड की सहायता से षड्यन्त्र खड़ा कर दिया। इस प्रकार, नये शत्रु को कुचलने में उसे प्रारम्भिक सफलता मिली। किन्तु, रूस की हालत दिन-पर-दिन खराब होती गई; क्योंकि इसका एक मित्र डेनमार्क बेकाम हो गया। ग्रेटब्रिटेन रूस के विरुद्ध सशस्त्र तैयारी कर रहा था और प्रशिया युद्धक्षेत्र में कूदनेवाला ही था। कैथरीन लिखती है : 'केवल जादू या परमात्मा की कृपा से ही बातें अच्छी तरह सुलझ सकेंगी।' गुस्तावुस की आन्तरिक कठिनाइयाँ और भी अधिक थीं। स्वीडेन की नौसेना ने अपूर्व विजय से पुनः अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। अब दोनों दल सन्धि करने को तैयार थे (सन् 1790 ई०)। एक वर्ष से कुछ ही अधिक समय के अन्दर कैथरीन ने अस्थिर गुस्तावुस पर विजय प्राप्त कर उससे गुप्त सन्धि कर ली। इस सन्धि का उद्देश्य यूरोप में प्रशिया और ग्रेटब्रिटेन के विरुद्ध समानता तथा फ्रांस में राजसत्ता की पुनः स्थापना करना था।

फ्रांस की क्रान्ति और नेपोलियन युद्ध के कारण रूस की बालटीक-नीति में अक्सर हेरफेर और परिवर्त्तन होते रहे। अन्त में, फिनलैण्ड के लिए स्वीडेन पर ही रूस को भरोसा करना पड़ा। सन् 1741–43 ई० और सन् 1788–90 ई० में दो युद्ध वहीं पर समुद्र में हुए थे, बालटीक-प्रदेशों में नहीं। रूस की दृष्टि में, सन्त पीटर्सबर्ग से फिनलैण्ड का सामीप्य तथा फिनलैण्ड की खाड़ी के उत्तरी तट का स्वीडेन के अधिकार में रहने से उत्पन्न भय पूर्णरूपेण प्रमाणित हो चुका था। अलेक्ज़ेण्डर प्रथम तथा नेपोलियन में तिलसित (सन् 1807 ई०) की सन्धि हो गई। स्वीडेन महाद्वीप-पद्धति में सम्मिलित कर लिया गया और फिनलैण्ड से उसे हाथ धोना पड़ा।

फिनलैण्ड के स्वीड की, प्रभुत्वशाली उच्च वर्ग में अलग रहने की प्रवृत्ति थी। रूसी इससे चिरकाल तक लाभ उठाते रहे। एक पाखण्डी ने भागकर सन् 1788 ई० में रूस की शरण ली। वह स्वीडेन-फिनलैण्ड का एक प्रमुख नेता था। बीस वर्ष बाद इसी के कारण रूस को फिनलैण्ड हथियाने में सहायता मिली। फिनलैण्ड की अपनी अलग स्वाधीनता बनी रही। इसे हथियाने में मामूली युद्ध भी करना पड़ा (सन् 1808–9 ई०)। युद्ध में रूस ने समस्त देश ही जीत लिया। स्वीडेन को बाध्य होकर फिनलैण्ड और आलैण्ड-द्वीपपुंज सौंपना पड़ा। इंगलैण्ड से सर जॉन मूर के नेतृत्व में सेना की एक टुकड़ी भी पहुँची थी। किन्तु, इसके साथ मिलकर युद्ध करने में स्वीडेन असफल रहा।

रूस और स्वीडेन का चिरयुद्ध समाप्त हो गया। तब से सन् 1809 ई० तक वे शान्तिपूर्वक रहे। नेपोलियन के पतन के अन्तिम चरणों में (सन् 1813–15 ई०) रूस और स्वीडेन ने सम्भावित उत्तराधिकारी वर्णदत्त के साथ नेपोलियन के विरुद्ध संघ बनाये। किन्तु, प्राचीन काल के वैमनस्य, रूस के निरंकुश एकतन्त्र शासन के प्रति स्वीडेन की अरुचि और सोवियत-साम्यवाद के कारण स्वीडेन अपने महान् पड़ोसी को शंका की दृष्टि से देखने लगा तथा अन्य प्रभावों के कारण वह जर्मनी या इंगलैण्ड से मिल गया।

नेपोलियन युग के बाद रूस को बालटीक में, खासकर इंगलैण्ड से ही भिड़ना पड़ा। किन्तु, उन्नीसवीं शती के बाद से जर्मन-साम्राज्य ने शक्ति-सन्तुलन को बदल दिया। ब्रिटेन के युद्धपोत अट्ठारहवीं शती के आरम्भ में और नेपोलियन युद्ध के समय बार-बार बालटीक में जाते रहे, किन्तु एक ही (सन् 1808 ई०) बार उन्होंने वहाँ खुलकर युद्ध किया। वह युद्ध साउण्ड नहर के भीतर हुआ। किन्तु, रूस को सदा ऐसे युद्ध के लिए तैयार रहना पड़ता था। तब से (सन् 1808 ई०) दो बार रूस को ब्रिटेन के नौसेना-युद्ध में हार खानी पड़ी—एक तो क्रिमिया-युद्ध में और फिर सन् 1919 ई० में।

इंगलैण्ड और रूस की प्रतिस्पर्धा की कसौटी बालटीक में क्रिमिया-युद्ध (सन् 1854–6 ई०) थी। ब्रिटेन और फ्रांस के महावरिष्ठ युद्धपोतों ने समुद्र पर बाजी मार ली, किन्तु नये और शक्तिशाली रूसा तट-प्रतिरक्षा का बाल भी बाँका न कर सके। परन्तु, उन्होंने आलैण्ड-द्वीपपुंज जीत लिया। अब रूस की शंका बढ़ने लगी कि कहीं फ्रांस और ग्रेटब्रिटेन के बहकावे में आकर स्वीडेन युद्ध में न कूद पड़े। परन्तु, ऐसा नहीं हो सका। किन्तु, पामर्शटन ने फ्रांस से मिलकर स्वीडेन से सन्धि कर ली (सन् 1855 ई०)। शर्त यह थी कि यदि रूसी

स्वीडेन या नारवे की स्वतन्त्रता पर खतरा करेगा तो, इंगलैण्ड और फ्रांस उसको सैनिक सहायता करेंगे। पामर्शटन 20 वर्ष पहले से ही रूस के प्रति बहुत शंकालु हो गया था। वह सोचता था कि कहीं रूस नारवे के बरफहीन सुदूर तट फिनमार्क को अधिकृत न कर ले। उस समय नारवे स्वीडेन में था।

रूस के प्रति इस अश्रद्धा से बहुत नुकसान पहुँचा। सन् 1856 ई० में जब पेरिस की सन्धि हुई, तब रूस पर और भी कठिन दासता लाद दी गई। रूस को मना कर दिया गया कि आलैण्ड-द्वीपपुंज में वह कोई अड्डा या किलेबन्दी न करे। इस दासता के साथ ही स्वीडेन को रूस के विरुद्ध सार्वजनिक प्रत्याभूति दी गई। इससे रूस को बहुत आघात पहुँचा और व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी बढ़ गईं। सन् 1905 ई० में नारवे स्वीडेन से विलग हो गया। अब इजवोलस्की नया वैदेशिक मन्त्री था। उसने मौका पाकर स्कैण्डिनेविया के प्रति सक्रिय नीति अख्तियार की (सन् 1906–8 ई०)। यह महती कैथरीन के 'उत्तरी समझौते' का नवीन संस्करण था। उसने स्वीडन और जर्मनी से आल-द्वीपपुंज की किलेबन्दी करने की अनुमति भी पाने की भरसक चेष्टा की। इजवोलस्की की चाल का कुछ व्यावहारिक प्रभाव नहीं पड़ सका। किन्तु, जब प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ा, तब रूस ने उस आलैण्ड-द्वीपपुंज की स्वतः किलेबन्दी आरम्भ कर दी।

जब युद्ध समाप्त हुआ, रूस में क्रान्ति शुरू हो गई थी। फिनलैण्ड स्वतन्त्र हो चुका था। आलैण्ड-द्वीपपुंज सदा से फिनलैण्ड से ही लगा हुआ था, यद्यपि यहाँ की आबादी स्वीडों की थी। अब झगड़ा हुआ कि आलैण्ड-द्वीपपुंज किसके पास रहे। राष्ट्रसंघ (लीग ऑव नेशन्स) ने फिनलैण्ड के पक्ष में निर्णय दिया (सन् 1921 ई०), किन्तु यह भी शर्त रही कि इस द्वीपपुंज की किलेबन्दी फिर से तोड़ दी जाय। ये द्वीपपुंज स्टाकहोल्म के बहुत ही समीप हैं और बोथनिया की खाड़ी के मुहाने पर हैं, जहाँ खनिज लोहे का बन्दरगाह है। इसका युद्धनीतिक महत्त्व है और हवाई जहाज और पनडुब्बी के कारण यह महत्त्व और भी बढ़ गया है। यह सत्य है कि सोवियत-सरकार इस द्वीपपुंज को भूली नहीं है। जब फिनलैण्ड, स्वीडेन और पश्चिमी राष्ट्रों ने समझौता कर लिया कि इस द्वीप-पुंज की पुनः किलेबन्दी की जाय, तब सोवियत-सरकार ने संसार को चेतावनी दे दी कि (मई, 1939 ई०) सो० सा० ग० सं० एक बालटीक शक्ति है और उससे अवश्य ही इस विषय पर परामर्श लेना चाहिए। इसका फल यह हुआ कि इस योजना को त्याग दिया गया। इसके बाद की घटनाओं से स्पष्ट है कि सोवियत-संघ आलैण्ड-द्वीपपुंज में रूस-साम्राज्य से कम उत्सुक नहीं है; क्योंकि आलैण्ड-द्वीपपुंज पहले रूस के ही अन्दर था।

2. कृष्णसागर तथा स्थल-डमरूमध्य

मंगोलों ने तेरहवीं शती में रूस-विजय की। इसके पहले कृष्णसागर बालटीक की अपेक्षा सांस्कृतिक मार्ग के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण था। अधिकतर कीव रूस का व्यापार दक्षिण से होता था और बालटीक से व्यापार की अपेक्षा यह प्रायः अधिक लाभप्रद था। इसके बाद आर्थिक मार्ग के लिए बालटीक का व्यापार नितान्त आवश्यक हो गया। उन्नीसवीं शती तक यह महत्ता बनी रही। सन् 1700 ई० से रूस के यूरोपीकरण का वही प्रमुख मार्ग था। कृष्णसागर, जो पहले सांस्कृतिक द्वार था, चिरकाल से इसका महत्त्व कम हो गया था। किन्तु, अट्ठारहवीं शती के मध्य से रूस के इतिहास में कृष्णसागर का स्थान विभिन्न तरीके से बालटीक की तरह ही महत्त्वपूर्ण हो गया है। उन्नीसवी शती में तो यह और भी महत्त्वपूर्ण हो गया था। साउण्ड नहर की, रूस के इतिहास में कभी चर्चा न हुई, जितना स्थल-डमरूमध्य की। इंगरिया के तंग किनारों के सिवा, बालटीक-समुद्रतटों को रूसियों ने कभी उपनिवेश नहीं बनाया। कृष्णसागर का उत्तरी समुद्रतट, जो डैन्यूब से काकेशश तक फैला है, दो सौ वर्षों से रूसी लोगों के दक्षिण विस्तार का अन्तिम क्षेत्र रहा है। मिश्रवन से स्टेप-क्षेत्र में ऐतिहासिक विस्तार और नये रूस के कृष्णसागर के उत्तर में महान् परिवर्त्तन का वर्णन प्रथम अध्याय में किया जा चुका है। आधुनिक रूसी इतिहास में कृष्णसागर के विषय में यही मुख्य बात है।

यह विस्तार कुछ तो पूर्वयोजना के साथ था और कुछ स्वतन्त्र लोगों की स्वेच्छा से हुआ। दोनों दशा में तातार लोगों के साथ खासकर क्रिमिया के तातारों के साथ सशस्त्र युद्ध करना पड़ा था। ये तातार उस्तमन-साम्राज्य की प्रजा या सामन्त थे। रूस ने कृष्णसागर-स्टेप पर विजय प्राप्त की। इस विजय की दो विशेषताएँ हैं। एक तो कृषकों की खानाबदोशों पर विजय थी और दूसरी, संघटित रूस-राज्य की संघटित उस्तमन-राज्य पर विजय थी।

सत्रहवीं शती के अन्त में मस्कोवी ने दक्षिण में आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। सन् 1676 और 1812 ई० के मध्य सात बार आक्रमण किया। रूस और तुर्की कुल तीस वर्ष से अधिक खुल्लम-खुल्ला युद्ध करते रहे। रूस ने वेसरबिया तथा आधुनिक नोवोरोसिक के पास तुर्की दुर्गों को अधिकृत कर लिया। डैन्यूब से काकेशश तक रूस महान् चाप का मालिक था। सन् 1812 ई० तक रूस डैन्यूब से काकेशश तक के महान् वृत्त-खण्ड का मालिक बन गया।

वह बुरी तरह असफल रहा। अपने दि्वतीय प्रयास (सन् 1696 ई०) में एजव को अधिकृत कर महान् पीटर ने महत्त्वपूर्ण सफलता पाई और रूसी युद्ध-पोत को कृष्णसागर में उतारकर उसने पोलों को भयभीत कर दिया, जो अभी तक इसे अपनी ही झील समझते थे। किन्तु, इसके बाद अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति तथा रूस के अन्य स्वार्थों के कारण पीटर का ध्यान बालटीक की ओर पलट गया। जब चार्ल्स द्वादश पोलतवा से भागकर तुर्की पहुँचा और पुनः युद्ध करने को उसे प्रेरित किया गया, तब पीटर को प्रथ में महान् आपत्ति का सामना करना पड़ा। यदि तुर्की के बड़े वजीर को धन का लोभ नहीं दिया जाता, तो नरवा भी हाथ से निकल जाता। एजव तथा अन्य स्थानों को, जिसे पीटर ने जीता था, त्याग करना पड़ा।

चार वर्ष (सन् 1735–39 ई०) युद्ध करने के बाद पुनः कृष्णसागर पर पाँव रखने का स्थान मिला। रूसी सेना विजयी हुई, असंख्य प्राणियों का क्रूरता-पूर्वक संहार हुआ। रूस की विजय बार-बार हुई, किन्तु बेलग्रेड की सन्धि (सन् 1739 ई०) एक निर्लज्ज मजाक के समान थी। यह सन्धि फ्रांस की कूट-नीतिक विजय थी। वह सदा से सुलतान का समर्थक रहा था। अन्त में, तुर्कों ने एजव सागर के सिवा कुछ नहीं दिया और एजव सागर या कृष्णसागर में रूसी जहाज के प्रवेश पर उसे अधिकार मिला।

तब भी उत्तमन-साम्राज्य को सदा अपने बचाव की ही चिन्ता बनी रही। महती कैथरीन के समय रूस ने डेनस्टर से कूबन तक सारा तट-प्रदेश जीत लिया (सन् 1768–74, 1787–92 ई०)। इसमें क्रिमिया भी सम्मिलित था (सन् 1783 ई०)। अलेक्जेण्डर प्रथम के समय बेसरबिया और अन्य प्रदेशों (मोलडाविया और वलिसिया, आधुनिक रूमानिया का पूर्वी भाग) को पुनः जीत लिया गया (सन् 1806–12 ई०)। नेपोलियन के भावी आक्रमण के कारण रूस तुर्की को बेसरबिया के अतिरिक्त अधिक देने को बाध्य नहीं कर सका। अब रूस डैन्यूब के मुहाने पर जम गया।

कृष्णसागर स्टेपीज की विजय एक महान् निष्पत्ति है। इसमें वीरता के कार्य जगमगा रहे हैं। इसके साथ प्रसिद्ध सेनापतियों के नाम लगे हैं। सुवोरव और कुतुजोव सदा सेना में अग्रसर रहे। तान बार आस्ट्रिया रूस का मित्र रहा (सन् 1697–1700, 1735–39, 1787–91 ई०)। तीन बार तुर्की को पोलों से (सन् 1768–72 ई०) या स्वीडेन से (सन् 1711, 1788–90 ई०) सक्रिय सहायता मिली और एक बार प्रशिया से (सन् 1790 ई०) या इंगलैण्ड से (सन् 1791 ई०)।

तुर्की को सदा फ्रांस से सहायता मिली। इसका प्रभाव भी बहुत पड़ा। किन्तु, मुख्य लड़ाई रूस और तुर्की की भिड़न्त थी।

दूरी, रसद और अस्त्र की कठिनाई तथा संगठन-व्यय की कमी के कारण रूस को बहुत घाटा उठाना पड़ा और व्यक्तिगत विजयों के फल से उसे वंचित रहना पड़ा। उत्तमन-राष्ट्र के पीछे हटने और उत्तमन-सेना के हठ के कारण वे रूसी सेना को कृष्णसागर-तट तक नहीं हटा सके, किन्तु उन्होंने रूस के हाथ में प्रदेशों को नहीं रहने दिया। उत्तमन-साम्राज्य का उत्तरी स्टेप-अंचल ही अभी तक वष्ट था। एक रूसी सिपाही का कथन हड्डी में चुभ जाता है: "तुर्क ढरकी के समान टूट पड़ते हैं, किन्तु परमात्मा की कृपा से हमारे जवान डटे रहते हैं, भले ही उनका धड़ ही बचा हो।"

अट्ठारहवीं शती में कृष्णसागर के लिए संघर्ष मुख्यतः उत्तरी प्रदेशों के लिए था, न कि बालकन-प्रदेश, कुस्तुन्तुनिया या स्थल-डमरूमध्य के लिए और कालान्तर में काकेशश के लिए। तुर्की के बँटवारे की योजना और स्वप्न, महती कैथरीन की ग्रीक-योजना, बालकन-प्रदेश के ईसाइयों का विप्लव, सनातनी के नाम पर रयाहों का पक्ष लेना, ये सभी, योजना और स्वप्न ही बने रहे, भले ही भविष्य में ये फलदायी हुए। उत्तमन-राष्ट्र अब भी बहुत शक्तिशाली था। रूसी सुदूर थे, जबतक कृष्णसागर के स्टेपीज में उन्हें कोई दृढ अड्डा दक्षिण में न मिल गया था। इन्हीं दो बातों से स्पष्ट हो जाता है कि यूरोपीय तुर्की ने अट्ठारहवीं शती में पोलैण्ड के समान क्यों काम नहीं किया। इन दो बातों के अलावा अस्ट्रिया से स्पर्धा रहती थी, पोलैण्ड और स्वीडेन परिवर्तनशील थे, प्रशिया और ग्रेटब्रिटेन की नीति अलग थी और फ्रांस सुलतान की सहायता करता था।

उन्नीसवीं शती में कृष्णसागर रूसी इतिहास में अपना स्थान बदल देता है। नये रूस का अभ्युदय, कृष्णसागर और स्थल-डमरूमध्य का आर्थिक स्थान परिवर्तित कर देता है। जार की सेना और युद्धपोत ऐसे स्थान पर पहुँच जाते हैं, जहाँ से वे उत्तमन-साम्राज्य के मर्मस्थल पर आघात आसानी से कर सकते हैं। ट्रान्स काकेशश की विजय से पूर्वी कृष्णसागर और समीपवर्ती प्रदेशों का रूप ही बदल जाता है। अब रूस बालकन-प्रदेश के ईसाइयों के लिए चुम्बक से भी अधिक आकर्षक हो जाता है। अब आधुनिक राष्ट्र के रूप में उनका पुनर्जन्म हो रहा है। अतः, नूतन राष्ट्रों के पुनर्जन्म की चुनौती और पाश्चात्य जगत् के प्रभाव से उत्तमन-साम्राज्य की जड़ हिलती जा रही है। आरटीचोक की पत्तियाँ छील दी गई हैं। अब हृदय सन्देहयुक्त है।

कुछ लोगों का निदान है कि 'तुर्की अब मृत्युशय्या पर है। हम उसे कुछ काल तक जीवित रखने का प्रयास कर सकते हैं, किन्तु सफल नहीं हो सकेंगे। वह मरेगा और जरूर मर जायगा।' अतः, यह आवश्यक है कि 'राष्ट्र पहले से ही सचेत हो जायँ। सुदूर से ही कुछ उपाय सोच लें, जिसमें उसके मरने पर हम सब हक्का-बक्का न हो जायँ।' (निकोलस प्रथम, सन् 1844 और 1853 ई०)। दूसरों का कहना है कि कोई भी साम्राज्य टुकड़ों में विभक्त नहीं हो सकता, यदि अपने पैरों पर उसे खड़ा रहने दिया जाय और दयालु पड़ोसी इसे बलपूर्वक टुकड़े-टुकड़े न करें। (पालमर्शटन, सन् 1836 ई०)। विभिन्न शंका और प्रतिस्पर्धा से कारण कुंस्तुन्तुनिया और स्थल-डमरूमध्य की केन्द्रीय समस्या उलझती जाती है। रूस के लिए स्थल-डममरूध्य गृह-द्वार के समान है। कृष्णसागर में प्रवेश और निर्गम का प्रश्न तथा तटों की सुरक्षा रूस के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं। किन्तु, तुर्की के लिए स्थल-डमरूमध्य गृह-द्वार ही नहीं है, वल्कि घर का, राजधानी का और कुंस्तुन्तुनिया का केन्द्र भी है। अतः, कृष्णसागर और स्थल-डमरूमध्य यूरोपीय विवाद के सतत कण्टक-स्थल हो जाते हैं; क्योंकि इसमें उत्तमन-साम्राज्य के मर्मस्थल का प्रश्न है।

रूस के दृष्टिकोण से प्रथम विश्वयुद्ध के बाद रूस और तुर्की का सम्बन्ध चार विभिन्न, किन्तु परस्पर मिली हुई समस्याओं के कारण जटिल बन जाता है: बालकन-प्रदेश के ईसाई तथा कालान्तर में स्लाव-प्रदेश, अन्य विभिन्न महान् राष्ट्रों की भाव-भंगिमा, कुंस्तुन्तुनिया और स्थल-डमरूमध्य तथा काकेशश, जिसे पश्चिमी राष्ट्र प्रायः भूल जाते हैं या जिसे हेय समझते हैं।

स्थल-डमरूमध्य आदि से अन्त तक रूसी चाल के अतिरिक्त आर्थिक दृष्टि से भी रूस के लिए आवश्यक थे। इनकी महत्ता दिन-पर-दिन बढ़ती जाती थी। नूतन रूस का विकास और समृद्धि पश्चिम के सम्पर्क पर निर्भर थी। इन्हीं स्थल-डमरू-मध्य के मार्ग द्वारा यूरोप से सरलता के साथ सम्पर्क हो सकता था। महती कैथरीन ने कुचुक-कैनर्दजी की सन्धि (सन् 1774 ई०) में इस डमरूमध्य को अधिकृत किया था। उसी समय से रूस की नीति का यह महत्त्वपूर्ण विषय था। रूसी सौदागर कृष्णसागर में नौका चलाते थे और डमरूमध्य से उनका आवागमन होता था तथा उत्तमन-साम्राज्य के भीतर भी उन्हें व्यापार की कुछ सुविधा मिली थी। इससे कृष्णसागर पर उत्तमन-राज्य का एकाधिकार विनष्ट हो गया। किन्तु, रूस को कृष्णसागर हथियाने में मोटे तौर पर आधी शती लग गई। अब तुर्की वासफोरस मार्ग से आनेवाले जहाजी माल को स्वेच्छा से जब्त नहीं कर सकता था। नौ-संचालन और व्यापार की सुविधा को कार्य-रूप में परिणत किया गया। इस हेतु रूस और

तुर्की में कई बार सन्धि हुई। रूस ने अन्य राष्ट्रों के हक का भी समर्थन किया कि वे डमरूमध्य के मार्ग से व्यापार कर सकते हैं और इसमें रूस सफल रहा। रूस की नीली व्यापारी नौका के ह्रास होने के कारण दूसरे राष्ट्रों को इस प्रकार की सुविधा दिलाना आवश्यक था। अद्रियानोपल की सन्धि (सन् 1829 ई०) से रूस का उद्देश्य पूरा हो गया। इसके बाद असैनिक पोतों का डमरूमध्य से जाने में कोई बाधा नहीं पहुँची है। उनके लिए मार्ग खुला है। उनको रोकने का प्रश्न ही नहीं उठता, जबतक तुर्की में शान्ति और अमन-चैन है।

अलेक्जेण्डर प्रथम (सन् 1805–25 ई०) के समय सरकार दक्षिण-प्रदेश के नये गेहूँवाले प्रदेशों पर बहुत ध्यान देती थी। उन्नीसवीं शती के अन्त तक रूस के गल्ले के प्रधान निर्यात का यही मुख्य स्रोत था। यहाँ गल्ला खूब उपजता था। रूस के आर्थिक उत्थान में इस निर्यात का विशिष्ट स्थान है। अलेक्जेण्डर के राज्यकाल में गल्ले के निर्यात का स्थान तृतीय हो गया। सन और पटुआ के बाद इसी का स्थान आता है। पहले गल्ले का स्थान गौण था। राई का स्थान मुख्य था। अब गेहूँ ने प्रमुख स्थान ले लिया, जिसका निर्यात दक्षिण में डमरूमध्य के मार्ग से होता था।

रूसी (सोवियत) गल्ले का निर्यात सदा से विभिन्न वर्षों में घटता-बढ़ता रहा है। अन्य कारणों से भी इसके प्राप्त आँकड़ों में गड़बड़ी हो जाती है। तब भी यह सत्य है कि सन् 1850 ई० तक लगभग रूस के कुल निर्यात का तृतीयांश, गल्ले का निर्यात हो गया था। सन् 1875 ई० में गल्ले का निर्यात आधे से अधिक हो गया, किन्तु सन् 1910 ई० में आधे से अधिक न हो सका। गेहूं सदा कृष्णसागर के बन्दरगाहों के जहाजों से ही बाहर जाता रहा। गल्ले के निर्यात में प्रतिवर्ष गेहूं का अंश ही सबसे अधिक रहा और यही दशा सन् 1870 ई०. तक रही। उसके बाद इसका अंश न्यून होने लगा। किन्तु, गेहूँ की मात्रा अधिक ही रही। अन्य अनाजों को भी जहाज द्वारा कृष्णसागर के मार्ग से ही भेजा जाता रहा।

वर्तमान शती के प्रथम दशक में, रूस विश्व में अनाज का सर्वमहान् निर्यातक हो गया। इसने अपना स्थान पुनः प्राप्त कर लिया। यूरोप में सबसे अधिक गेहूँ देनेवाला रूस ही था। यूरोप के गेहूँ-आयात का 29 प्रतिशत, खासकर जर्मनी और इटली को रूस ही देता था। सन् 1870 ई० में इसका स्थान संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने अपहरण कर लिया था। रूस अब विश्व के गेहूँ-निर्यात का चतुर्थांश, जई का करीब आधा, राई का एक-तिहाई से कुछ अधिक और यव का तीन-चौथाई भेजता था। इस विशाल व्यापार का अधिकांश माल कृष्णसागर-मार्ग से ही जाता था।

सन् 1880 ई० से काकेशश से तेल और दक्षिण रूस से कोयला तथा धातुशोधक उद्योगों के लिए, दौड़-धूप आरम्भ हो गई थी। अतः, रूस कृष्णसागर तथा डमरूमध्य के मार्ग पर और भी निर्भर हो गया। सन् 1913 ई० में वैदेशिक मन्त्री सजोनोव ने जार के पास प्रतिवेदन किया—"यदि डमरूमध्य किसी जबरदस्त राष्ट्र के हाथ रहा, तो इसका यह अर्थ होगा कि दक्षिणी रूस के आर्थिक विकास के लिए उसी राष्ट्र पर पूर्णतया निर्भर रहना पड़ेगा।" इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं थी।

तुर्की से युद्ध का (सन् 1828–29, 1853–56, 1877–78, 1914–18 ई०) फल यह हुआ कि रूस की आर्थिक दशा को बहुत जबरदस्त धक्का लगा। रूस का प्रवेश बालटीक में बन्द हो जाने से लगता था कि यह मिला हुआ नहीं है, जैसा पहले दो बार हुआ था (सन् 1853–56, 1914–11 ई०)। सन् 1911 ई० में इटली ने तुर्की को युद्ध के समय डारडेनेल्स की नाकेबन्दी करने की धमकी दी। यह रूस की सक्रिय कूटनीतिक सफलता का द्योतक है। यदि तुर्की स्वयं शान्ति से रहे, तब भी रूस के शत्रु एजियन सागर का नियन्त्रण कर सकते हैं, जैसा जून, 1943 ई० में हुआ और इस प्रकार डारडेनेल्स का द्वार बन्द हो जाता है। अब फिर, जैसा प्रथम विश्वयुद्ध में हुआ था, रूस की पहुँच, स्थल-डमरूमध्य या साउण्ड के मार्ग से अपने मित्रों तक नहीं रही।

कृष्णसागर तथा डमरूमध्य की आर्थिक महत्ता का सम्बन्ध रूस के लिए अनेक प्रकार से है: यथा युद्धनीतिक आवश्यकता, सुरक्षा, राजनीतिक तथा धार्मिक सिद्धान्त। रूस तुर्की के सनातनी ईसाईयों की रक्षा का भी बोझ लेता है और अन्ततः यह स्लावों का योद्धा भी बन जाता है। महती कैथरीन ने अपने अन्तिम वर्षों में तुर्की के विरुद्ध अपनी फैलाव की नीति को बढ़ाया था। वह चाहती थी कि प्रदेशों (रूमानिया का पूर्वी भाग) को किस प्रकार अधिकृत किया जाय और यूरोपीय तुर्की का विघटन हो जाय। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि कैथरीन के द्वितीय पौत्र का नाम कांस्टेनटाइन (कुस्तुन्तुनिया) रखा गया था। इसके बाद से इस सामान्य नीति के अनेक जबरदस्त समर्थक हो गये। इसका समर्थन देशवासी तथा सन्त पीटर्सबर्ग भी करता था। अलेक्जेण्डर प्रथम ने भी कुछ काल के लिए (सन् 1806–12 ई०) इस नीति को अपनाया। निकोलस प्रथम (सन् 1844–54 ई०) ने इसे अपनाने में आनाकानी की। परिवर्तित रूप में यह सर्वस्लाव का शुभ वार्त्ता का अंश था। अठारहवीं शती के अन्त में बालकन-राज्यों के अभ्युत्थान के साथ रूस डमरूमध्य पर पहले की अपेक्षा अधिक ध्यान देने लगा।

पॉल और अलेक्जेण्डर के राज्यकाल में विपरीत नीति का अवलम्बन किया गया, जिससे तुर्की निर्बल बना रहे और कुस्तुन्तुनिया में रूस का प्रभुत्व रहे। जब

नेपोलियन ने मिस्र पर आक्रमण किया, तब रूस ने पैंतरा बदल दिया। वह फ्रांस के विरुद्ध तुर्की का मित्र बन गया (सन् 1799 से 1805 ई०)। सन् 1833 ई० के बाद कुछ वर्षों के लिए रूस ने केवल एक ही बार तुर्की से मैत्री की। इस नीति में विभिन्न परिवर्त्तन होते रहे और राजकीय क्षेत्रों में विस्तार-नीति से स्पर्धा होती रही। वैदेशिक मन्त्री नेसेलरोद इस नीति का जबरदस्त समर्थक था। वह सन् 1822 से 1856 ई० तक लगातार वैदेशिक मन्त्री रहा। तब भी सन् 1914 ई० के एक युग (12 वर्ष) पहले रूस में कुछ ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति और संघ थे, जो चाहते थे कि कुंस्तुन्तुनिया और डमरूमध्य तुर्की के हाथ में ही रहें। वे तुर्की से समझौता भी करना चाहते थे, जिससे रूस का स्वार्थ सिद्ध हो। 'यदि तुर्की को बेदखल कर दिया जाय, तो कुंस्तुन्तुनिया और डमरूमध्य की क्या हालत होगी।' इस समस्या से गम्भीर कठिनाइयाँ और उलझनें पैदा हो जाती थीं, जो एक दूसरे की अपेक्षा और भी उलझती जाती थीं (नेसेलरोद, सन् 1829 ई०)। यह कहना अनुचित होगा कि यह उतना बुरा नहीं था और इससे एक प्रकार से लाभ ही था। अच्छा होता कि जैसा है, वैसा ही यह बना रहे। खैर, पहले तो तुर्की को बेदखल करना था, लेकिन वे कभी बेदखल नहीं किये जा सके।

सर्वप्रथम सन् 1829 ई० में रूसी सेना ने बालकन-प्रदेशों को रौंद डाला। अद्रियानोपल अधिकृत कर लिया गया। अब कुंस्तुन्तुनिया रूस की दया पर था। इस संकटकाल में पीछे का दृश्य देखें। यदि तुर्क उसकी शर्तों को ठुकराते, जो उन्होंने नहीं किया, तो निकोलस (प्रथम) उनकी राजधानी और डारडेनेल्स अधिकृत करने और किसी भी देश के बेड़ों को उधर से पार नहीं होने देने के लिए तैयार था। किन्तु, उसकी इच्छा एकदम नहीं थी कि वह कुंस्तुन्तुनिया का स्वामी बने और फलतः यूरोप में उत्तमन-साम्राज्य का तख्ता पलट जाय। उलटे उसने एक राजकीय समिति के मत का समर्थन किया कि तुर्की के बने रहने में हानि की अपेक्षा लाभ अधिक है। रूस स्वयं ही विशाल था और इसे अब अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं थी। कुंस्तुन्तुनिया और डमरूमध्य अधिकृत करने से भले ही कृष्णसागर में शत्रु का युद्धपोत नहीं आ सकता, किन्तु यह तभी सम्भव था, जब तुर्की-साम्राज्य का सामान्य बँटवारा होता। किन्तु, इससे रूस को भूमध्यसागर में प्रवेश करने की सुविधा नहीं मिल सकती; क्योंकि यह निश्चित था कि फ्रांस और ग्रेटब्रिटेन एजियन द्वीपपुंज को अधिकृत कर लेंगे या इसपर उनका प्रभुत्व रहेगा। रूस को तुर्की की निर्बलता और अयोग्यता के बदले फ्रांस और ग्रेटब्रिटेन की शक्ति और योग्यता का सामना करना पड़ेगा। इसके सिवा एक दूरदर्शी सुझाव यह भी था कि यदि तुर्की को यूरोप से धक्का देकर एशिया माइनर में पुनः भगा दिया जाय, तो सम्भव है, वहाँ वह एक सुदृढ़ राज्य बन जायगा और काकेशश के लिए और भी खतरनाक हो

डमरूमध्य के इतिहास में लन्दन-प्रतिज्ञा मील के पत्थर के समान थी। यह प्रथम अवसर था कि तुर्की तथा अन्य राष्ट्रों के बीच वे अन्तरराष्ट्रीय समझौतों द्वारा नियन्त्रित हुए थे। अभीतक सुलतान सदा इन्हें अपना प्रादेशिक समुद्र समझता था। रूस ने समझ लिया था कि ग्रीस के प्रश्न से यूरोप को दिलचस्पी है। सन् 1829 ई० में अद्रियानोपल में जो शानदार सन्धि रूस ने की, उससे यह स्पष्ट था। किन्तु उत्तमन-साम्राज्य में उसके अन्य स्वार्थों का नियन्त्रण केवल रूस और तुर्की ही मिलकर कर सकेंगे, उसने यह समझ लिया कि डमरूमध्य का सम्बन्ध यूरोप से है। क्रिमिया में पराजय और पेरिस की सन्धि (सन् 1856 ई०) से मजबूर होकर रूस को मानना पड़ा कि उत्तमन-साम्राज्य के सभी प्रश्नों का सम्बन्ध यूरोप से है।

क्रिमिया-युद्ध के कुछ ही पहले निकोलस प्रथम ने अपने मन में सोच लिया था कि सभी बुरे सम्मिलन में जो सबसे कम बुरा हो, उसे ही अपनाना चाहिए। कुंस्तुन्तुनिया स्वतन्त्र नगर हो सकता है। एक रूसी सेना बासफोरस पर और एक आस्ट्रिया की सेना डारडेनेल्स पर रहे। बाद में उसी वर्ष (सन् 1853 ई०) उसने सम्राट् फ्रांसिस जोसेफ (यूसुफ) को सुझाव दिया कि कुंस्तुन्तुनिया स्वतन्त्र नगर बने और बासफोरस और डारडेनेल्स के दुर्ग तोड़ दिये जायँ। युद्ध की कटु पंचायत तभी समाप्त हुई, जब दुर्गों को तोड़ दिया गया। किन्तु, वे दुर्ग रूस के थे, तुर्की के नहीं।

सन् 1856 ई० में पेरिस की सन्धि ने, तुर्की में रूस का प्रभाव आसमान में पहुँचा दिया। सन् 1870 ई० में सेदान की सन्धि तक कुंस्तुन्तुनिया में फ्रांस प्रभावशाली रहा, ग्रेटब्रिटेन का द्वितीय स्थान रहा। सेबास्तोपुल रूसी नौ-सेना का अड्डा था। उसे फ्रांस ने छीन लिया। उसके युद्धपोत तहस-नहस या विनष्ट कर दिये गये। सन्धि के द्वारा उसे मना कर दिया गया कि कृष्णसागर में पुनः युद्धपोत की किलेबन्दी न करे तथा इसके तट पर किसी प्रकार का शस्त्रागार न बनाये। तुर्की भी कृष्णसागर में जकड़ दिया गया। किन्तु, मारमरासागर या भूमध्यसागर में तुर्की अपना जहाज रख सकता था और यदि रूस के साथ युद्ध छिड़े, तो बासफोरस से आ-जा सकता था। इससे सिद्ध होता है कि तुर्की पर इतना कड़ा बन्धन नहीं था। डमरूमध्य के सम्बन्ध में सन् 1841 ई० का लन्दन-संगमन दुहराया गया। किन्तु, ग्रेटब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रिया और तुर्की से गुप्त सन्धि हुई कि यदि तुर्की को आवश्यकता पड़ेगी, तो पश्चिमी राष्ट्रों के लिए डमरूमध्य के मार्ग खुले रहेंगे। रूस को इस सन्धि का पता चल गया। रूस को दक्षिणी बेसरबिया से हाथ धोकर डेन्यूब के मुहाने से हट जाना पड़ा। काकेशिया के पार कार्स का प्रभुत्वशाली दुर्ग था। इसे रूस ने दो बार (सन् 1855, 1829 ई०) जीत लिया था। इसे भी

वापस लौटाना पड़ा। रूस को अपने सभी पूर्वाधिकार और हक से हाथ धोना पड़ा। प्रदेश (आधुनिक रूमानिया के पूर्वी भाग) और सरबिया इसके हाथ से जाते रहे। अब रूस को सुलतान की सनातनी ईसाई प्रजा के ऊपर भी अधिकार नहीं रह गया।

कृष्णसागर के तटस्थीकरण तथा बेसरबिया को सुपुर्द कर देने से रूस का असह्य अपमान हुआ। अलेक्जेण्डर द्वितीय (सन् 1855–81 ई०) ने दो दुःस्वप्नों से पिण्ड छुड़ाने का संकल्प कर लिया था; क्योंकि वह इन्हें दुःस्वप्न ही कहता था। सन् 1877–78 ई० के युद्ध में उसने अपने नष्ट राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया। सन् 1856 ई० के कुछ वर्ष बाद ही लोगों ने आपस में समझ लिया कि रूसी बेड़ों को कृष्णसागर में अनन्तकाल तक निषेध करना असम्भव है। अलेक्जेण्डर का वैदेशिक मन्त्री गोरचाकोव सन् 1866 ई० में इस निषेध का प्रत्याख्यान करना चाहता था। किन्तु, सन्त पीटर्सबर्ग ने उसे ऐसा नहीं करने दिया। सेदान से चार वर्ष बाद उसे मौका मिल गया। इंगलैण्ड के ग्लडस्टोन-सरकार ने इस बात पर घोर आपत्ति की कि रूस को स्वतः इस सन्धि को एकाकी भंग करने का अधिकार नहीं है। किन्तु, उसने भी स्वीकार कर लिया कि निषेध को हटा देना चाहिए। सन् 1871 ई० के लन्दन-सम्मेलन में अन्य राष्ट्रों ने तथा तुर्की ने इसे मान लिया और केवल युद्धपोतों को डमरूमध्य आने-जाने पर पहले जैसा ही प्रतिबन्ध बना रहा (सन् 1856, 1841 ई०)। किन्तु, एक शर्त्त यह भी पीछे जोड़ दी गई और शान्तिकाल में भी युद्धपोतों को आने-जाने की अनुमति देने का अधिकार सुलतान को दिया गया, यदि उस्तमन-साम्राज्य की स्वतन्त्रता और अखण्डता बचाये रखना अन्य राष्ट्रों को (रूस भी इसमें सम्मिलित था) वांछित हो। सन् 1856 ई० में यह निर्णय किया गया था।

सन् 1877–78 ई० का युद्ध सन् 1828–29 ई० से भी अधिक कुंस्तुन्तुनिया और स्थल-डमरूमध्य के प्रश्न का निबटारा करने के लिए जरूरी हो गया; क्योंकि उनपर रूस का कब्जा था। युद्धस्थल में रूसी सेनापति ने रूस की विजयी सेना को कुंस्तुन्तुनिया और डारडेनेल्स के ठीक मार्ग पर रोक दिया। सेना थक गई थी। इससे अलेक्जेण्डर द्वितीय और रूसी जनता को बहुत क्षोभ हुआ। इसी बीच डमरूमध्य के मार्ग से ब्रिटेन का युद्धपोत गोल्डेन हॉर्न (स्वर्णशृंग) पहुँचा। सुलतान को जबरदस्ती अनुमति देनी पड़ी, अब महीनों तक रूस ग्रेटब्रिटेन और आस्ट्रिया-हंगरी के साथ युद्ध के कगार पर खड़ा था। मार्च, 1878 ई० में स्तेफनों की सन्धि हो गई। यह सन्धिकर्त्ता इग्नात्येव की चरम पराकाष्ठा थी। इससे डमरूमध्य के शासन में कुछ भी परिवर्त्तन न हुआ। इग्नात्येव ने भरसक यत्न किया कि सुलतान किसी प्रकार इस समझौते को मान ले, जिसमें डमरूमध्य केवल

रूसी युद्धपोतों के लिए खुला रहे, और अन्य राष्ट्रों के लिए बन्द हो जाय। किन्तु, अन्ततः गोरचाकोव के प्रयास की जीत हुई और डमरूमध्य को अन्तरराष्ट्रीय समझौते पर छोड़ दिया गया।

बर्लिन-कांगरेस (जुलाई 1878 ई०) ने सान स्तेफनों की सन्धि को संशोधित कर दिया। इससे डमरूमध्य के बनिस्बत रूस की स्थिति में कुछ सुधार न हुआ। बर्लिन-सन्धि ने सन् 1871 ई० के अभिसमय को केवल नूतन कर दिया। किन्तु बर्लिन-कांगरेस में रूस और अँगरेज-प्रतिनिधियों के सरकारी वक्तव्यों से स्पष्ट था कि दोनों सरकारें सन् 1871 ई० के अभिसमय के अतिरिक्त उस वाक्य के अर्थ लगाने में कितना मतभेद रखती हैं। अँगरेजों के वक्तव्य से रूसी सरकार ने अच्छी तरह समझ लिया कि यदि समुचित समय आ गया अथवा कुंस्तुन्तुनिया की हालत खराब हुई, तो अँगरेज पुनः अपना युद्धपोत डारडेनेल्स के मार्ग से भेजेंगे, जैसा उन्होंने कुछ मास पहले किया था।

आगामी पच्चीस वर्ष तक ब्रिटेन और रूस की शत्रुता, समीप और मध्यपूर्व से सुदूरपूर्व में फैल गई।† दोनों पक्ष को शंका हो गई कि दूसरा दल कहीं कुंस्तुन्तुनिया में विप्लव न करे। खासकर इसी समय मध्य एशिया और बलगेरिया में सन् 1815–87 ई० में संकट उपस्थित हो गया तथा अरमिनिया में सामान्य हत्याएँ सन् 1895–96 ई० में हुईं। सन् 1880 ई० में रूस ने अपने कृष्णसागर युद्ध-पोत का पुर्ननिर्माण करना आरम्भ किया था। वे अभिक्रम के लिए तैयार नहीं थे, किन्तु इस बात का उन्होंने निश्चय कर लिया था कि यदि कहीं अँगरेजों ने नियन्त्रण करना शुरू किया या यूरोप ने कुंस्तुन्तुनिया में हस्तक्षेप किया, तो वे बासफोरस पर धमाके से टूट पड़ेंगे और इसकी तैयारी भी उन्होंने कर ली थी।

सम्राट् अलेक्जेण्डर तृतीय (सन् 1881–94 ई०) अच्छी तरह समझता था कि रूस अभी युद्ध करने को तैयार नहीं है, किन्तु उसे आशा थी कि कभी-न-कभी रूस तैयार हो ही जायगा। सबसे बड़ी बात है कि समय मत खोओ और सुअवसर हाथ से न निकलने दो। सन् 1885 ई० में वह लिखता है: 'हमलोगों का एक प्रधान उद्देश्य होना चाहिए कुंस्तुन्तुनिया को अधिकृत करना, जिसमें हमलोग सदा डमरूमध्य पर बने रहें और यह जान जायँ कि ये डमरूमध्य हमारे हाथ में रहेंगे। इसी में रूस का स्वार्थ है और यही हमारी आकांक्षा होनी चाहिए। इसके अलावा

† यूरोप के पूर्वदेशों को ईस्ट (पूर्वी देश) कहते हैं। समीप ईस्ट से तुर्की, बालकन-प्रदेश आदि एवं मध्यपूर्व से तुर्की और भारत के मध्यदेश तथा सुदूरपूर्व से चीन-जापान आदि का बोध होता है।

बालकन के प्रायद्वीप में जो कुछ होता है, वह सब हमलोगों के लिए गौण है। रूस के सत्यस्वार्थ को धक्का पहुँचाने के लिए पर्याप्त प्रचार हो चुका है। अब स्लावों को रूस की सेवा करनी चाहिए और हम उनकी सेवा न करें।'

अलेक्जेण्डर तृतीय की इन गुप्त स्पष्टोक्तियों से प्रथम विश्वयुद्ध के तीस वर्ष पहले डमरूमध्य के प्रति रूस की प्रमुख धारणा का पता चल सकता है। अपितु, रूस में विभिन्न प्रभावशाली विचारधारा थी, जिसने रूस को अपना ध्यान सुदूरपूर्व की ओर ले जाने, आस्ट्रिया-हंगरी से सन्धि करने और तुर्की के साथ किसी प्रकार का समझौता करने को विवश किया। भले ही कुछ लोग इस विचारधारा से विमत हों। रूस को बासफोरस पहुँचने में सदा भारी तकनीकी कठिनाइयाँ थीं, अतः वहाँ पहुँचना खतरे से खाली नहीं था, भले ही इससे यूरोपीय युद्धाग्नि सुलगने की आशा कम हो और कभी-कभी कुछ विशेषज्ञ भले ही आशावादी हों।

रूसी साम्राज्यवाद का विस्तार मध्यपूर्व और खासकर सुदूरपूर्व में हुआ। फलतः, रूसी-जापानी युद्ध (सन् 1904–5 ई०) में और सन् 1905 ई० में क्रान्ति हुई और इसी कारण बालकन-प्रदेशों ने सन् ई० तक अग्रसर-नीति का अवलम्बन नहीं किया। उस समय तक इंगलैण्ड से नया समझौता कर (सन् 1907 ई०) रूस शक्तिशाली हो गया था। उसने फ्रांस से भी सन् 1893 ई० में मैत्री कर ली थी। अब वह खासकर इसी बात पर नहीं तुला था कि अँगरेज कुस्तुन्तुनिया से दूर रहे। वह विदेशी युद्धपोतों को कृष्णसागर से बाहर रखने पर ही केवल सन्तुष्ट न था। अब रूस परिवर्त्तन चाहता था कि यथासम्भव डमरूमध्य रूस के लिए खुला रहे, किन्तु दूसरों के लिए बन्द रहे। यदि यह सम्भव न हो सके, तो डारडेनेलस सभी युद्धपोतों के लिए खुल जाय, किन्तु बासफोरस केवल रूस के लिए ही हो।

इजवोलस्की सन् 1906 से 1910 ई० तक रूस का वैदेशिक मन्त्री रहा। वह बहुत ही सक्रिय और महत्त्वाकांक्षी था। वह इसी ढंग पर काम करने लगा। सन् 1905 ई० की क्रान्ति से रूस में कुछ आन्तरिक निर्बलता हो गई थी, तब भी उसने अपनी कूटनीति से सुदूरपूर्व में रूस के ऐतिहासिक ध्येय की पूर्त्ति का यत्न किया। रूस का प्रधानमन्त्री स्तोलिपिन बहुत शक्तिशाली था। उसने इजवोलस्की को चेतावनी दी थी कि अपनी दृढ नीति के लिए किसी प्रकार के समर्थन की आशा मत करना।

सन् 1907 ई० में अँगरेज-रूस की सन्धि हुई, जिसमें डमरूमध्य का नाम भी नहीं लिया गया। इजवोलस्की ने ठीक ही समझा कि अँगरेजी सरकार चाहती है कि

रूस का स्थान दृढ़ और शक्तिशाली हो। परन्तु, उसका यह समझना गलत था कि रूस के लाभ के लिए अँगरेज तुर्की की नई क्रान्ति का विना खयाल किये, जो सन् 1908 ई० की जुलाई में कुस्तुन्तुनिया में हुई थी, किसी प्रकार डमरूमध्य के नियमों में परिवर्त्तन करने में कभी सहायता करेंगे। इजवोलस्की ने सोचा कि रूस को वांछित मार्ग मिल जायगा। उसने सोचा कि अन्ततः बोसानिया-हरजेगोबिना को आस्ट्रिया-हंगरी में सम्मिलित करने का सौदा करके वह आस्ट्रिया-हंगरी को मोड़ देगा। किन्तु, यह बात थी कि आस्ट्रिया-हंगरी ने शीघ्र इन प्रदेशों को मिल जाने की घोषणा कर दी (सितम्बर 1903 ई०) और इजवोलस्की डमरूमध्य के विषय में नई तुर्की-सरकार या किसी भी महान् राष्ट्र से कोई समझौता नहीं कर पाया। उसने स्लावों के हित का परित्याग किया और उसके बदले उसे कुछ भी नहीं मिला। इसके लिए देशवासियों ने उसे दोषी ठहराया और वह खतरनाक बोसानिया-संकट को, जिसका अन्त आगामी जर्मनी और आस्ट्रिया-हंगरी द्वारा रूस और सरबिया के अपमान के साथ हुआ था, बिगाड़ दिया।

किन्तु, इजवोलस्की की असफलता से रूसी कूटनीति का प्रयत्न कम नहीं हुआ। वे सदा प्रयत्न करते रहे कि डमरूमध्य के विषय में कोई नया समझौता हो जाय। सन् 1911 ई० में इटली-तुर्की युद्ध हुआ। यह अच्छा अवसर था। रूस के वैदेशिक कार्यालय के एक दल ने इससे लाभ उठाया। वे चाहते थे कि तुर्की-प्रेमनीति को पुनः अपनाया जाय और तुर्की के साथ समझौता हो जाय, जिसमें रूस को डमरूमध्य से रास्ता मिले। बातचीत से कोई फायदा नहीं हुआ। इसका मुख्य कारण यह था कि रूसी सर्वस्लावों ने इसका घोर विरोध किया। सर्वस्लाव चाहते थे कि रूस के तत्त्वावधान में बालकन-संघ का निर्माण हो। अतः, वे एक विरोधी नीति का समर्थन करते थे।

बालकन-संघ के कारण बालकन-युद्ध (सन् 1912–13 ई०) हुए। यूरोपीय तुर्की का और भी अंगभंग हो गया। सन् 1913–14 ई० में रूस का सम्बन्ध तुर्की से बहुत बदतर हो गया; क्योंकि जर्मन जनरल लिमनवान सैण्डर्स तुर्की पहुँचा और एक प्रकार से तुर्की सेना का वास्तविक सेनापति बन गया। तुर्की को आरमिनिया में रूसी सुधार-योजना से और रूस को सर्व-तुरान और सर्व-इस्लाक प्रचार से भय था।

सन् 1914 ई० के आरम्भ में रूस-सरकार समझती थी कि डमरूमध्य का प्रश्न यूरोपीय युद्ध से ही सुलझ सकता है, जो अब होना ही चाहता था। कुंस्तुन्तुनिया पहुँचने का मार्ग बर्लिन होकर है, यही सोचा जाने लगा, जैसा लोग सन् 1886–87 ई० में सोचते थे। किन्तु, सन्त पीटर्सबर्ग के गुप्त परिषदों में लोग यह मानते थे कि सन् 1916 ई० तक रूस तुर्की की अपेक्षा नौसेना में निम्न ही

रहेगा और वासफोरस पर संयुक्त आक्रमण नहीं कर सकेगा। सेना के प्रधान समझते थे कि पश्चिमी मोर्चे पर रूस सर्वेसर्वा है और यदि युद्ध हुआ, तो स्थल-डमरूमध्य का प्रश्न आपही हल हो जायगा।

अगस्त, 1914 ई० में यूरोपीय युद्ध छिड़ गया। उसके साथ ही गोवेव और ब्रेसलाऊ कुंस्तुन्तुनिया पहुँचे। नई तुर्की-सरकार ने जर्मनी के साथ अपनी सन्धि को मजबूत कर लिया और अक्तूबर के समाप्त होते ही युद्धक्षेत्र में उतरा। पश्चिमी मित्रों से रूस का सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया और अन्त तक यह सम्बन्ध विच्छिन्न ही रहा, भले ही गलिपोली के संग्राम में रूस ने महान् साहस का परिचय दिया हो।

अन्ततः, युद्ध और रूस की विशाल जनशक्ति का विचार करते ही कुंस्तुन्तुनिया और उत्तमन-साम्राज्य का भविष्य ही एकदम बदल गया। रूसी जनता का पूत और चिरस्मरणीय स्वप्न रूस के लिए साकार हुआ। रूस के प्रधान मन्त्री ने भी मार्च, 1917 ई० की क्रान्ति के तीन मास पहले खुलेआम इसकी घोषणा की थी। रूस के मित्रों ने स्वीकार कर लिया (सन् 1915 ई०) कि कुंस्तुन्तुनिया और डमरूमध्य रूस के पास रहे। साथ ही, थ्रास का पूर्वी भाग तथा डारडेनेल्स के पास दो द्वीप भी रूस के पास रहे। इनके अतिरिक्त (सन् 1916 ई०) रूस अनातोलिया का सुविस्तृत पूर्वोत्तर प्रदेश एवं आरमिनिया के प्रदेश, जिनमें इरजेरूम का दुर्ग तथा त्रेबिजन्द के बन्दरगाह हैं, भी मिला लेगा। रूसी सेना ने इन दोनों को जीत लिया था।

उन्नीसवीं शती में यूरोप के उत्तमन-साम्राज्य को धीरे-धीरे वालकन लोगों ने बाँट लिया था। बीसवीं शती में यह आशा की जाती थी कि एशिया के उत्तमन-साम्राज्य को मित्रराष्ट्र आपस में बाँट लेंगे। तुर्की अपने घर अनातोलिया में खदेड़ दिये जायँगे। सन्त सोफिया पर पुनः ईसा का चक्र (क्रॉस) चमकेगा और इतिहास में यह प्रथम अवसर होगा, जब समस्त रूस का जार महान् कांस्टैण्टाइन के नगर में राज्य करेगा।

यह सभी बातें सफलतापूर्वक युद्ध के अन्त होने पर निर्भर करती थीं। इसका निर्णय पश्चिमी मित्रराष्ट्र करेंगे, न कि रूस। क्रान्ति ने रूसी जनता की पूत एवं चिरस्मरणीय स्वप्न की रत्ती-भर परवाह नहीं की। जब बोलशेविकों ने अस्थायी सरकार को उखाड़ फेंका, तब उन्होंने जार के सभी गुप्त सन्धियों, लगावों और क्षतिपूर्ति की भर्त्सना की और उनका त्याग किया। किन्तु, वे कुंस्तुन्तुनिया और स्थल-डमरूमध्य के भाग्य का बाल भी बाँका नहीं कर सके।

जब सन् 1918 ई० की शरदृतु में तुर्की का पतन हुआ, तब स्थल-डमरूमध्य और कृष्णसागर का नियन्त्रण अँगरेज और फ्रांसीसियों के हाथ में चला गया। अब बोलशेविकों को मित्रराष्ट्रों के हस्तक्षेप से पाला पड़ा। मित्रराष्ट्र जनरल डेनिकिन तथा बोलशेविक-विरोधी आन्दोलनों का समर्थन करते थे। तुर्की के साथ शान्ति-समझौता करने के लिए चिरकाल तक संघर्ष (सन् 1919–23 ई०) चलता रहा। कभी सुलझता था, तो कभी उलझ जाता था। किन्तु, रूस की नई शासन-व्यवस्था अपने जीवन के लिए लड़ रही थी। इसने बाकू का आवश्यक तैलक्षेत्र तथा काकेशिया-पार का अधिकांश क्षेत्र पुनः प्राप्त कर लिया। मार्च, 1921 ई० में कार का मुख्य दुर्ग, जहाँ बाकू से रेलमार्ग तथा पीपे की नाली का अन्त होता है, तुर्की को सौंप दिया गया, किन्तु बातूम नहीं। उसी सन्धि में यह भी तय हुआ कि मुस्तफ़ा कमाल की तुर्की और लेनिन के सोवियत रूस में एकदम नया सम्बन्ध स्थापित हो। लेनिन सदा जारशाही साम्राज्यवाद की आक्रमण-नीति की भर्त्सना करता था। वह चाहता था कि एशिया के लोग यूरोप के बन्धन से मुक्त हों।

मार्च, 1921 ई० में सोवियत-तुर्की-सन्धि हुई। इससे डमरूमध्य के भविष्य के सम्बन्ध में सोवियत के विचारों का पता चल गया। सभी देशों के व्यापार के लिए इनका दरवाजा खोल दिया गया। किन्तु, युद्धपोत के आने-जाने के नियम अन्तरराष्ट्रीय समझौते के आधार पर बननेवाले थे। इस अन्तरराष्ट्रीय समझौते में केवल वे ही राष्ट्र भाग ले सकेंगे, जो कृष्णसागर-तट के आसपास हैं। तुर्की की स्वतन्त्रता तथा कुंस्तुन्तुनिया की सुरक्षा का पूर्ण ध्यान रखा जायगा, ये बातें आशा-मात्र थीं। किन्तु, यथार्थ में ऐसा समझौता हुआ, जिससे बढ़कर सोवियत-संघ के लिए कोई बुरा समझौता हो ही नहीं सकता। सन् 1923 ई० में लगभग लासेन की सन्धि हुई। यह सन्धि तुर्की और पश्चिमी राष्ट्रों के बीच हुई। सोवियत-संघ तीव्र विरोध करता ही रह गया।

लासेन की सन्धि से कुंस्तुन्तुनिया और डमरूमध्य तुर्की के पास रहे, किन्तु अन्तरराष्ट्रीय पर्यवेक्षकों की देखरेख में इनका विसैन्यीकरण हो गया। यह फैसला पूर्व रूसी विचारधारा के एकदम प्रतिकूल था। उनके विचार में अच्छा होता, यदि इन डमरूमध्यों की किलेबन्दी होती, भले ही ये तुर्की के हाथ रहते। इससे अतिक्रमी डर जाते या रोक दिये जाते। अन्यथा, कृष्णसागर के मार्ग का कुछ भी विरोध नहीं रह गया। सोवियत-नौसेना दुर्बल थी, अतः पुरातन भावना के समर्थक ही अधिक थे, कि कृष्णसागर में प्रवेश को रोकना आवश्यक है, न कि रूस के लिए निकास का मार्ग; अतः इस बात से लोगों को शान्ति न मिली कि

लासेन की सन्धि से सोवियत के सभी प्रकार के युद्धपोतों को शान्ति तथा युद्ध-काल में डमरूमध्य-मार्ग से यातायात का पूरा अधिकार मिल गया है, यदि तुर्की तटस्थ रहे। क्योंकि इस सन्धि से कृष्णसागर के गैर-राष्ट्रों को भी ठीक वही अधिकार मिले थे। केवल शर्त्त यही थी कि शान्तिकाल में कोई भी एक राष्ट्र सोवियत-नौसेना से अधिक सैनिक कृष्णसागर में नहीं भेजेगा। सोवियत की दृष्टि में यह प्रतिबन्ध केवल भ्रमात्मक था; क्योंकि सम्भव था कि सर्वहारा क्रान्तिकारी गणतन्त्र के विरुद्ध वे अन्य संघ बनाते।

लासेन की सन्धि ने भूतपूर्व अन्तरराष्ट्रीय नियमों को एकदम उलट दिया। पहले इन्हीं नियमों पर डमरूमध्य का काम चलता था। इस समझौते से तुर्की और सोवियत-संघ दोनों अप्रसन्न थे। सन् 1936 ई० तक दोनों राष्ट्रों की राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति में मौलिक परिवर्त्तन हो गया। जर्मनी नात्सी हो गया। इटली फासिस्ट हो गया और साम्राज्य-विस्तार पर तुल गया। फ्रांस ने अब सो० सा० ग० संघ से मैत्री कर ली। फ्रांस और ग्रेटब्रिटेन तैयार थे कि किसी प्रकार लासेन की सन्धि में आमूल परिवर्त्तन करके सोवियत और तुर्की का समर्थन प्राप्य हो जाय। सन् 1936 ई० में मौण्ट्रेक्स-अधिवेशन हुआ और उसी के आधार पर अभी तक डमरूमध्य का शासन-प्रबन्ध चलता है।

मौण्ट्रेक्स-सम्मेलन से तुर्की को कुस्तुन्तुनिया जिले और डमरूमध्य की किलेबन्दी करने का पूर्ण अधिकार पुनः प्राप्त हो गया। इजवोलस्की जिसकी प्राप्ति में (सन् 1908 ई०) असफल रहा, उसी को लितविनोव ने एक तरह से पा लिया। कृष्णसागर के बाह्य राज्यों को शान्तिकाल में डमरूमध्य के मार्ग से बहुत हल्के बोझ के युद्धपोत ले जाने की अनुमति रही। वे इस मार्ग से कोई भी विशाल जहाज, पनडुब्बी या वायुयान नहीं ले जा सकते थे। यदि युद्ध की दशा हो, तब तो उन्हें सब प्रकार से बहिष्कृत किया जाता था। किन्तु, सभी प्रकार के रूसी युद्धपोत शान्तिकाल में डमरूमध्य-मार्ग से आ-जा सकते थे। केवल पनडुब्बी और वायुयान की मनाही थी; किन्तु युद्धकाल में रूस को भी मनाही थी। यदि तुर्की युद्ध की दशा में हो या वह समझता हो कि युद्ध टाला नहीं जा सकता, तो वह स्वेच्छानुसार जैसा चाहे कर सकता था। सदा से नियम रहा है कि व्यापारी जहाजों को युद्धकाल या शान्तिकाल में आने-जाने की स्वतन्त्रता रही है, यदि स्वयं तुर्की युद्ध की दशा में न हो।

इस समय (जून, 1943 ई०) संयुक्त राष्ट्र (युनाइटेड नेशन्स) के लिए डमरूमध्य का मार्ग बन्द है, किन्तु धुरी-राष्ट्रों के लिए नहीं। किन्तु, इसका मूलकारण

यह है कि इजियन सागर धुरी-शक्ति के आधार पर स्थित है, न कि इस कारण कि तुर्की से शत्रुता है, जैसा प्रथम विश्वयुद्ध में हुआ था। अपितु, तुर्की और ग्रेट-ब्रिटेन के बीच अक्तूबर, 1939 ई० में सन्धि हो गई। यह मानी हुई बात है कि केवल इसी युद्ध में (एक बार छोड़कर) तुर्की रूस के विरुद्ध न लड़ा या उसका विपक्षी न रहा, अन्यथा गत 250 वर्षों के प्रत्येक युद्ध में तुर्की सदा रूस के विरुद्ध ही लड़ता था। इस महान् परिवर्त्तन के अनेक कारण हैं और उनमें सबसे बड़ी बात है कमालपाशा की तुर्की से सोवियत की मैत्री-नीति।

कालान्तर में सोवियत-तुर्की के सम्बन्ध पारस्परिक सन्देह के कारण धुंधले पड़ते जा रहे थे। खासकर तुर्की को जो पुराना डर था, वह पुनरुज्जीवित हो गया कि कहीं रूसी डमरूमध्य की मांग न कर बैठें और जर्मनी ने इसका खूब प्रचार कर दिया। यह आशा नहीं की जा सकती है कि भूतकाल का चिरयुद्ध, वैमनस्य और विपक्षी षड्यन्त्र के स्मरण को बीस ही वर्ष में एकदम समतल कर दिया जायगा और लोग उन्हें भूल जायेंगे, भले ही क्रान्ति से दोनों में अनेक महान् परिवर्त्तन हो गये हैं। भूतकाल में रूस और तुर्की के मध्य ग्यारह युद्ध हुए (सन् 1676–1918 ई०)। इन ऐतिहासिक युद्धों से उत्तरी कृष्णसागर-तटप्रदेश, बालकन-प्रदेश और उत्तमन-साम्राज्य का मर्मस्थल ही विद्ध हो गया। इनके अलावा पूर्वी समुद्रतट तथा कृष्णसागर और कास्पियन सागर के मध्य काकेशश के सेतु-प्रदेश भी बरबाद हो गये।

3. कृष्णसागर तथा कास्पियन :

काकेशश-प्रदेश वह डमरूमध्य है, जो यूरेशिया को पश्चिमी एशिया से मिलाता है। यहाँपर अनेक संस्कृतियों का सम्मेलन हुआ है। युद्धकाल में अन्ततः सेना इस भूमि को रौंद चुकी है। भागे हुए लोगों की यही शरणस्थली है। सोलहवीं शती से ही तुर्की के उसमानी और फारस के सफावी लोगों का यह अखाड़ा रहा है। मस्कोवी और रूसी-साम्राज्य इन प्रदेशों को हड़पने के फेर में थे, इस कारण उत्तमन की शक्ति और प्रभाव पूर्वी कृष्णसागर से यूरेशिया में तातार या मुसलमानों तक पहुँच गई। कृष्णसागर के लिए जो द्वन्द्व चलता था, वही युद्ध काकेशश के लिए भी आरम्भ हो गया किन्तु युद्ध त्रिभुजाकार था। अब तुर्की और रूस दोनों की मुठभेड़ फारस से हुई।

मध्य कीव-काल में रूस और काकेशश लोगों का घनिष्ठ सम्बन्ध था। इसके बाद इनका सम्बन्ध एकदम विच्छिन्न हो गया। सन् 1556 ई० में अस्त्रखान-विजय के बाद पुनः सम्पर्क हो गया। इससे कास्पियन सागर के मार्ग का व्यापार

और फारस से सम्बन्ध मास्को के लिए सदा महत्त्वपूर्ण हो गया। फारस ही रेशम के व्यापार का मध्यस्थ था। एक पीढ़ी के बाद तेरेक के समीपवर्ती कजाकों ने मस्कोवी को पूर्वी काकेशश की पहाड़ी की तली में ढकेल दिया। मस्कोवी बहुत निर्बल था और अट्ठारहवीं शती तक बहुत सुदूर भी। अतः, वह अपने कजाक-उपान्त का विस्तार करने में असमर्थ था। वह यदा-कदा अदला-बदली करके कुछ भूमि अधिकृत कर लेता था। जार्जिया के ईसाई-राज्यों में दूत भेजता था। जार्जिया-राज्य मध्य काकेशश के विशाल पथरीले प्रदेश में है। यह फारस की निहाई और तुर्की के हथौड़े के मध्य स्थित है।

महान् पीटर के काल में रूस अन्तिम सफावी के उत्त्यक्त फारस के विरुद्ध आगे बढ़ा। महा उत्तरी युद्ध करते रहने पर भी पीटर की अन्ततः शक्ति अभी क्षीण नहीं हुई थी। उसने अपनी सेना पूर्वी बाजार और भारत के व्यापारिक मार्ग (सन् 1714–17 ई०) की खोज के लिए मध्य एशिया की ओर बढ़ाई। फ़ारस से युद्ध करने के लिए वह स्वयं रणक्षेत्र में नेता बना (सन् 1722–23 ई०)। इसके लिए उसने काकेशश और कास्पियन सागर के मध्य का संकीर्ण, किन्तु पुरातन मार्ग पकड़ा। उसका एक जहाज नष्ट हो गया और रोग से अनेक लोग चल बसे; किन्तु पीटर ने लड़खड़ाते शाह पर अपनी शर्त्त लाद ही दी। शाह ने बाकू और अपने समस्त समुद्रतट को, जो कास्पियन सागर के पश्चिम और दक्षिण में है, सौंप दिया। इसके बदले में रूस ने फारस के सनातनी शत्रु तुर्की के विरुद्ध सहायता देने की प्रतिज्ञा की।

रूस ने अपना पग बहुत दूर फैला दिया। यातायात तथा जलवायु सबसे महान् बाधक थे। दो प्राचीन ईसाई-राज्य—जार्जिया तथा आरमिनिया—काकेशश के पार बसते थे। ये रूस से सदा सम्पर्क रखते थे। किन्तु, उनमें आपसी फूट बहुत अधिक थी। वे चारों ओर तुर्की से घिरे थे, अतः उनसे प्रत्यक्ष सहायता मिलने की आशा कम थी। आरमिनिया के सौदागरों का फारस के व्यापार से गहरा सम्बन्ध था। जार्जिया के कुछ लोग मुसलमान बन गये थे। इन्होंने गत सौ वर्षो से फ़ारस के प्रशासन में मुख्य भाग लिया था। रूस के सुदूर छोर पर पीटर के यथाशीघ्र उत्तराधिकारी अन्य कामों में फँसे थे। वे फारस के नये बादशाह से विभिन्न थे। नादिरशाह फारस का नया बादशाह बना। सन् 1747 ई० में इसकी मृत्यु हो गई। फ़ारस के महान् विजेताओं में यह अन्तिम था। सन् 1732 और 1735 ई० के मध्य वह सब कुछ फारस के हाथ चला गया, जो भी कास्पियन में पीटर ने जीता था। अब रूस की सीमा पुनः तेरेक हो गई।

एक बात में रूस का लक्ष्य पूरा हो गया। तुर्की इसी समय पूर्वी काकेशश और कास्पियन हड़पना चाहता था, वह लालसा धूल में मिल गई। तिफलिस और पूर्वी जार्जिया-भूमि आरमिनिया और अजरवैंदजान के साथ फारस के प्रभुत्व में बनी रही। तुर्की और फारस में काकेशश के लिए वैमनस्य चलता रहे, यही रूस की नीति का मुख्य ध्येय था। अट्ठारहवीं शती के अन्त में रूस ने स्थायी रूप से इन प्रदेशों को जीतना आरम्भ किया। इसमें काकेशिया की जनता का वैमनस्य तथा असमानता ही मुख्य कारण थे। रूस को तुर्की और फारस से कुल पन्द्रह बार युद्ध करना पड़ा। इनमें केवल एक ही बार (सन् 1806–12 ई०) रूस को इन दोनों से एक साथ लोहा लेना पड़ा।

महती कैथरीन के राज्यकाल में रूस, तुर्की में कृष्णसागर के उत्तरी तट-प्रदेश को अपनाकर चाहता था कि दक्षिण-पूर्व में यह भाग कुबन और उत्तरी काकेशश-स्टेपीज तक फैल जाय। कैथरीन ने तुर्की से दो बार युद्ध किया (सन् 1768–74, 1787–92 ई०)। ये युद्ध कृष्णसागर के पूर्वी तट पर हुए। एक पीढ़ी से इन स्टेपों में सैनिक उपनिवेश बसाया जा रहा था, उसी का यह अन्तिम चरण था। यह तट के तुर्की किलों को चुनौती थी, साथ ही तुर्कों के गुलाम व्यापार तथा तुर्कों के लड़ाकू पहाड़ी मुसलमानों के ऊपर प्रभुत्व को भी चुनौती थी। सन् 1785 ई० में यहाँ के मुसलमानों ने उत्तरवासी काफिरों के प्रति जिहाद छेड़ दी। गुलामी के विरुद्ध उनका युद्ध अस्सी वर्षों तक चलता रहा।

जार्जिया मध्य काकेशिया की महान् पर्वत-श्रेणी के पार है। चिरकाल से यहाँ फूट थी और सामाजिक मतभेद से यह कराह रहा था। इसने सनातनी इसाईयों से बार-बार सहायता के लिए प्रार्थना की; क्योंकि तुर्की और फारस दोनों ही इसके ऊपर अपना प्रभुत्व जमाने के लिए होड़ मचा रहे थे। सन् 1783 ई० में पूर्वी जार्जिया-राज्य ने कैथरीन का संरक्षण स्वीकार कर लिया। रूसी सेना ने तीन बार तिफलिस नगर में प्रवेश किया, किन्तु बाद में उन्हें हटना पड़ा। यह सेना मध्य काकेशिया में डारियल दर्रे के मार्ग से जाती थी, जो काकेशश की कुंजी है। अन्ततः सन् 1799 ई० में रूसी सेना वहीं डटकर रहने लगी। फारस ने धमकी दी; क्योंकि वही उसका स्वामी था। अतः, पूर्वी जार्जिया-राज्य रूस की गोद में समाप्त हो गया (सन् 1801 ई०)।

अब फारस से अन्तिम युद्ध शेष था। यह युद्ध चिरकाल तक चलता रहा; क्योंकि अलेक्जेण्डर प्रथम पश्चिम में नेपोलियन और तुर्की दोनों के साथ बुरी तरह उलझा हुआ था। इसके सिवा कभी नेपोलियन और कभी अँगरेज फारस को यथासम्भव भड़काते रहते थे। सन् 1813 ई० में ताकत के आतंक से फारस को मजबूर

होकर मानना पड़ा कि बाकू तथा पूर्वी ट्रांस-काकेशिया का अधिकतर भाग रूस का ही ही है। द्वितीय युद्ध (सन् 1826–28 ई०) थोड़े ही दिनों तक चला, किन्तु वह निर्णायक था। इसने अजरबैदजान-उपत्यका तथा फारस के अधीन आरमिनिया का भाग्य निश्चित कर दिया। रूस की सीमा अराक्सेस तक बढ़ गई। तबसे रूस की सीमा वहीं रही। यह तबरीज से केवल सौ मील की दूरी पर है। मार्ग अच्छा है। यह तबरीज फारस का दूसरा नगर है।

सन् 1801 ई० में तिफलिस सदा के लिए अधिकृत कर लिया गया। इसका फल यह हुआ कि पश्चिमी काकेशश के लिए तीस वर्ष तक तुर्कों से युद्ध चलता रहा। तिफलिस के पश्चिम बढ़कर रूस ने जार्जिया के दूसरे राज्यों को हड़प लिया (सन् 1810 ई०)। उत्तर से वे तुर्की-दुर्गों को धीरे-धीरे जीतने लगे। ये दुर्ग कृष्ण-सागर-तट पर थे। वहाँ की जलवायु अच्छा नहीं थी। इन्होंने काकेशिया के पहाड़ी लोगों से इनका सम्बन्ध तथा यातायात रोक दिया। सन् 1829 ई० में अद्रियानोपुल की सन्धि हुई। इसमें रूसी सत्तारोह की पूर्णरूपेण विजय हुई। अब तुर्की के पास बातूम से उत्तर कुछ भी नहीं बचा।

काकेशश-समुद्रतट से तुर्की का नियन्त्रण हट गया, किन्तु इनके ऊपर प्रभुत्व स्थापित करने में रूस को तीस वर्ष लग गये। ट्रांस-काकेशिया सन् 1801 और 1829 ई० के मध्य रूस के हाथ आ गया। किन्तु, काकेशश के पहाड़ीजन जंगलों और खोहों में छिपकर घोर प्रतिरोध करते रहे और सन् 1864 ई० के पहले उनपर पूर्ण विजय नहीं कही जा सकती। सरकासिया (रूस का एक जिला) के लोग जो कृष्णसागर के ऊपर रहते थे, कमजोर हो गये थे और झुण्ड-के-झुण्ड अपने संरक्षक तुर्की के पास चले गये थे। वहाँ जाकर ये बशीबाजूक के जैसा बहुत बदनाम हो गये।

पहाड़ी मुसलमानों का अदम्य प्रतिरोध चिरकाल तक चलता रहा। उनमें आपसी फूट भले ही हो, किन्तु नये कट्टर धर्म के जोश के कारण उन्होंने काफिर आक्रामकों के प्रति आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक युद्ध छेड़ दिया। कभी-कभी तो ये स्थानीय मुअक्किल खान या बेग से भी लड़ जाते थे। इन सबको एक छत्रच्छाया के अन्दर लाने का श्रेय है शमील को (जन्म : सन् 1798 या 1800 ई०; निधन : सन् 1871 ई०)। इसके महान् व्यक्तित्व और सर्वतोमुखी प्रतिभा ने सबको एक सूत्र में बाँध दिया। यह इमाम, धर्मात्माओं का शासक, काफिरों का विनाशक, महान् और विजयी शासक था। यह धार्मिक, सैनिक तथा राजनीतिक नेता सब कुछ था। तीस वर्ष तक शमील रूस की अवज्ञा करता रहा। इसने पूर्वी

काकेशिया के विभिन्न लोगों को बलात् एकत्र किया। यह उसकी और उसे कैद करनेवालों की महानता है कि अन्ततः जब उसने आत्मसमर्पण कर दिया (सन् 1859 ई०), तब उसके साथ तथा उसके परिवार के साथ रूस ने बहुत भलमनसाहत का व्यवहार किया। उसके ऊपर निगरानी भले ही थी, किन्तु सरकारी तौर पर वह स्वयं ही बहुत रईस बन गया।

ये पहाड़ी तुर्कों से सदा सम्पर्क रखते थे। कृष्णसागर के जंगली तट-प्रदेशों में रूसी लगातार बन्दूक लेकर भाग जाते तथा अवैध व्यापार करते थे, यही उनका धन्धा हो गया था। गैर-सरकारी अँगरेज एजेण्ट इन जातियों में बहुत सक्रिय थे। अतः, सन् 1830 ई० में ग्रेटब्रिटेन तथा रूस के सम्बन्ध में बहुत तनाव पैदा हो गया। सरकासिया (रूस का एक जिला) के वासी कजाक और कोड़ों से मुक्त होने के लिए छटपटा रहे थे। अतः, जो कुछ सनसनीखेज वृत्तान्त ये उपस्थित करते थे, उन्हीं पर अँगरेज विश्वास कर लेते थे। अतः, रूस को डर हो जाना स्वाभाविक था कि क्रिमिया-युद्ध (सन् 1853–56 ई०) में पश्चिमी काकेशश-प्रदेश में घमासान युद्ध होगा। किन्तु, तुर्क और उनके मित्रों ने समुद्र के अधिकार से लाभ नहीं उठाया और उक्त प्रदेश में केवल मामूली युद्ध ही होकर रह गया। बीस वर्ष के बाद सन् 1877–78 के युद्ध में पहाड़ी प्रदेशों में दो भयंकर विप्लव हुए। इनसे रूस का पृष्ठभाग संकट में पड़ गया। किन्तु, ये केवल मामूली घटनाएँ थीं। तुर्कों से कार्सदुर्ग पुनः छीन लिया गया और अब वापस नहीं किया गया। अन्त में, बातूम, जो ट्रांस-काकेशिया के लिए कृष्णसागर में निकास है, रूस को सौंप दिया गया (सन् 1878 ई०)। रूस की विजय हुई थी और अब नये काकेशश का निर्माण होने ही वाला था।

काकेशश में एक शती तक संघर्ष चलता रहा। बार-बार युद्ध-पर-युद्ध होते रहे। लोगों ने अपूर्व वीरता दिखाई; किन्तु सबसे आश्चर्यजनक है उनकी धीरता और सहनशीलता। आमहत्या हुई, गाँव जलाये गये, पशु चुराये गये और लोग बरबाद हो गये। बन्दूक और तलवार का कहना ही क्या था। खासकर पहाड़ियों से भयंकर पाला पड़ा था। किन्तु, विजय के अनेक अर्थ होते हैं। उत्तरी काकेशश-स्टेप में विजय का अर्थ, रूसी उपनिवेशीकरण की सुरक्षा, किसान बासिन्दों की विजय तथा इसके सभी भावी फल से था। ट्रांस-काकेशिया में कुछ उच्च श्रेणी के लोगों को सुयोग्य और सुन्दर अवसर मिल गया। उन्हें रूसी सेना में अच्छी नौकरी मिल गई। आरमिनिया में मध्यम श्रेणी के अल्पजनों को व्यापार और उद्योग की सुविधा मिली। अनेक लोग चैन से रहने लगे और पहले की अपेक्षा उनपर कर-भार भी कम हो गया। सबसे बड़ी बात यह हुई कि

रूस के प्रभुत्व का आरम्भ हो गया। भले ही, प्रारम्भ में इसकी गति दुःखदायी तथा मन्द थी, किन्तु अन्त में इससे उनके आधुनिक जीवन का आरम्भ हो गया।

रूसी सभ्यता तथा पाश्चात्य से नूतन सम्पर्क के विभिन्न स्थायी फल हुए। स्वयं काकेशिया ने रूसी साहित्य की तीन पीढ़ियों पर अपनी गहरी और नानाविध छाप छोड़ी है। रूसी संगीत में तो इसकी देन स्पष्ट है। अनेक रूसी विद्वानों को अनेक विषयों पर काम करने के लिए आकृष्ट किया है। काकेशिया का आर्थिक रूपान्तर रूस के कारण ही हुआ। इसका प्रारम्भ जारशाही की देखरेख में पाश्चात्य-शिल्पी और धन की सहायता से हुआ। सोवियत-राज्य में, उनमें महान् क्रान्ति हो गई। इसका अधिक श्रेय काकेशिया के लोगों को ही है। रूस के अधीन ही जार्जिया और आरमिनिया का पुनर्जन्म हुआ। इसमें जारशाही का कुछ भी हाथ न था, किन्तु यदि वे तुर्की या फारस के अस्थिर और विनम्र शासन के अधीन रहते, तो सम्भव है कि इनमें से कोई भी उतना विकसित नहीं हो सकता था, जितना विकास इनका रूस के अधीन हुआ है।

सन् 1800 और 1900 ई० के ट्रान्सकाकेशिया से कोई तुलना नहीं की जा सकती। ट्रान्सकाकेशिया में उत्तरी काकेशश-स्टेपीज हैं। हाँ, यहाँ पर जार्जिया, तातार और आरमिनिया के लोगों का आधिक्य था, तो भी वे विलग रहते थे। उनकी जनसंख्या बहुत बढ़ गई थी। पाश्चात्य-विज्ञान और पूँजीवाद के प्रभाव से देश का जीवन बहुत बदल रहा था। रेलमार्ग बन गया था। सन् 1883 ई० में बातूम से बाकू तक रेलमार्ग हो गया था। सन् 1900 ई० में तेल की पाइप-लाइन बिछ गई। अब दो लाइनें हो गईं। बाकू-तेल और जार्जिया के मैंगनीज का विकास आधुनिक रीति पर हो रहा था। सिंचाई तथा ट्रान्सकाकेशिया के विभिन्न खास फैसलों की पैदावार का भी सोवियत पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत बहुत विस्तार हुआ था।

आधुनिक मध्यम वर्ग के राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण नूतन जार्जिया के साहित्य और संस्कृति का भी खब विकास हो रहा था। इसने अनेक राजनीतिक रूप धारण किये। मानशेविकों के सामाजिक जनतन्त्रदल ने एक नया ही रूप धारण किया। सन् 1917 ई० में पेट्रोगार्ड के सोवियत नेता इसीदल के थे, भले ही वे एक मुट्ठी हों। उन्होंने ही सन् 1918–21 ई० में नाममात्र के लिए स्वतन्त्र जार्जिया के लिए युद्ध किया। सन् 1905 ई० की क्रान्ति में इन नेताओं के पीछे जार्जिया की महती किसान-जनता और छोटा दल स्टालिन के नेतृत्व में बोलशेविक हित के लिए षडयन्त्र और अदम्य उत्साह से युद्ध कर रहा था।

आरमिनियन कुछ तो रूस में रहते थे, कुछ तुर्की में और कुछ अपने प्रमुख विदेशी उपनिवेशों में। इनमें आपसी फूट भी बहुत थी। जार्जियाना की अपेक्षा इनका सम्पर्क बहुत अधिक था। जार्जियानावाले सभी रूस के ही अन्दर थे। तुर्की को नजरों में ये आरमिनियन एशिया माइनर में रूसी विस्तार के हथकण्डे थे। बार-बार इनकी खूब हत्या होती थी। यहाँतक कि रूस के भीतर भी आरमिनियन नहीं चाहते थे कि जार को अपना प्रभु स्वीकार कर लें, जिसमें सभी आरमिनियन एकत्र हो सकें। यह ठीक है कि अनेक आरमिनियन व्यापार, उद्योग और रूस की सेवा में उच्च पदों पर खूब तरक्की कर गये थे, तब भी उनके अन्दर क्रान्तिकारी आन्दोलन बहुत जबरदस्त था। उनका मुख्य दल सामाजिक क्रान्तिकारी दल था और सदा पश्चिम की ओर आँख लगाये था।

अजरबैदजान के तातार बाकू के तेल-उद्योग के प्रभाव से अब तितर-बितर होने लगे थे। ये अशिक्षित थे। अकुशल मजदूरों के ये भाण्डार थे। तो भी सन् 1914 ई० तक ये अपना स्थानीय मुद्रणालय और स्थानीय करोड़पति या लक्षपति उत्पन्न कर चुके थे। ये अधिकतर शिया थे। अतः, कुस्तुन्तुनिया के सर्वइस्लामवाद का प्रचार कभी खतरनाक नहीं रहा। किन्तु, सर्वतुरानीवाद की जड़ यहाँ जम गई थी और सन् 1917 ई० के बीस वर्ष पहले से इनका सम्बन्ध तुर्की के साथ दृढ़ होता जा रहा था।

ट्रांसकाकेशिया का महान् अभिशाप यह था कि वहाँ शतियों से तीन जातियाँ आपस में लड़-भिड़ रही थीं। रूस-विजय से वे कुछ भी दबे नहीं। उलटे वहाँ कभी-कभी जारशाही का काला चित्र देखने में आता था। सन् 1917 ई० के 40 वर्ष पूर्व से सरकारी अधिकारी अधिकतर शत्रुता को उकसाया करते थे। सन् 1905 ई० की क्रान्ति में ट्रांसकाकेशिया में बहुत अधिक खून-खराबी हुई। रूसी-साम्राज्य में राष्ट्रीयता का प्रश्न कहीं भी इतना विषैला और पेचीदा न था, जितना ट्रांस-काकेशिया में। सन् 1917 ई० के बाद स्वतन्त्रता की प्राप्ति में यहीं सबसे अधिक कठिनाइयाँ हुई। साम्यवादियों को भूमि के पुनः बँटवारे और नये साँचे में ढालने में सबसे अधिक कठिनाई का सामना यहीं करना पड़ा।

सन् 1917 ई० की क्रान्ति में काकेशिया में विप्लवी सेना बार-बार उठती और तितर-बितर हो जाती थी। वर्ग-संघर्ष और परस्पर-विरोधी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता या स्वाधीनता का अधिकार एक दूसरे को मात कर देते थे। कृष्णसागर पर से बोल-शेविकों का अधिकार समाप्त हो गया था। इन्होंने जार्जिया जर्मनों के लिए छोड़ दिया तथा मार्च, 1918 ई० में ब्रेस्ट-लितोवस्क की सन्धि से बातूम और कार्स

तुर्की को दे दिये। जार्जिया तीन वर्ष तक रूस से स्वतन्त्र रहा। पहले तो जर्मनी पर यह आश्रित रहा और पुनः नवम्बर, 1918 ई० के बाद से मित्रराष्ट्रों पर। जर्मन और तुर्क दोनों ही बाकू-तेलक्षेत्र को अधिकृत करना चाहते थे और इधर अँगरेज इन दोनों को इससे वंचित करने का प्रयास करते थे।

मित्रराष्ट्रों की विजय से ऐसा प्रतीत होता था कि अँगरेजों की ही बात रहेगी। अँगरेज कृष्णसागर और कास्पियन सागर दोनों पर प्रभुत्व जमाये हुए थे तथा जार्जिया और बाकू भी अधिकृत किये हुए थे। किन्तु, अँगरेज अन्य समस्याओं में अन्यत्र इतने उलझे हुए थे कि यहाँ उन्हें बात करने की भी फुरसत नहीं थी। वे केवल यही चाहते थे कि बाकू तुर्की के हाथ में नहीं रहे। तुर्की की सेना अन्तिम पराजय के एक मास पूर्व ही बाकू तक पहुँच गई थी। अब प्रतीत होता था कि स्थानीय गुटबन्दी तथा स्थानीय गृहयुद्ध ही आरमिनिया की दशा सुधारने में सहायक हो सकेंगे, न कि मित्रराष्ट्रों के प्रयत्न से आरमिनिया की दशा का सुधार होगा। रूस के महान् गृहयुद्ध ने सब कुछ फैसला कर दिया। लाल सेना की विजय होती है या श्वेत सेना की, बाकू-तेलक्षेत्र तथा कृष्णसागर और कास्पियन सागर के मार्ग से यातायात, प्रत्येक रूसी के लिए महत्त्वपूर्ण था। अप्रैल, 1920 ई० में बोलशेविकों ने बाकू पर अधिकार जमा लिया। इसके पूर्व डेनिकिन के नेतृत्व में श्वेत रूसी सेना की करारी हार, काकेशश के उत्तर में, हुई थी।

तुर्की को क्रान्ति और हस्तक्षेप का मुकाबला एक साथ ही करना पड़ा। उसने साम्राज्यवाद-विरोधी सोवियत रूस से शान्ति-नीति को अपनाना शुरू किया। तुर्की चाहता था कि सोवियत से सहायता मिले, किन्तु वह साम्यवाद नहीं चाहता था। मार्च, 1921 ई० में दोनों में सन्धि हो गई। निर्णय यह हुआ कि तुर्क बातूम त्याग दें। समस्त ट्रांसकाकेशिया का भविष्य मास्को को सौंप दिया जाय। कार्स तुर्की के पास रहा। इसके एक मास पहले ही जार्जिया अपनी अनिश्चित स्वतन्त्रता का नाट्य समाप्त कर चुका था। उत्तर की अपूर्व लाल सेना ने जार्जिया को रूस में मिला लिया।

4. प्रशान्त महासागर:

ट्रांसकाकेशिया-विजय के बाद, क्रान्ति की सफलता अन्त में कास्पियन सागर के पूर्व मध्य एशिया में भी हुई। वहाँ भी अँगरेजों का हस्तक्षेप नाकामयाब रहा, जैसा बाकू में हुआ था। रूसी लाल सेना और रेलवे के लोगों ने स्थानीय कट्टर-पन्थियों की चुनौती को छिन्न-भिन्न कर दिया। ये शक्तियाँ इस्लाम के झण्डे के नीचे

एकत्र हुई थीं। यह रूस और क्रान्ति दोनों के लिए चुनौती थी। तुर्की के भूतपूर्व नेता अनवर पाशा की सर्वतुरानी आकांक्षा के कारण यह चुनौती और भी खतरनाक थी। वह भाग कर वक्षस-नदीतट पर चला गया था। सन् 1922 ई० में वहीं उसकी हत्या हो गई। अन्त में, लाल झण्डा सर्वत्र एशिया में फहराने लगा, जहाँ पहले भी सम्राट् का झण्डा फहराता था।

पुनः पूर्व की ओर, सुदूरपूर्व, तीन सहस्र मील दूरप्रशान्त सागर-तट पर लाल सितारा पहुँचा, जहाँ सम्राट् का गरुडध्वज पहुँच चुका था। सोवियत-संघ एक सुदूरपूर्वी और प्रशान्त महासागर का राष्ट्र हो गया। यह एशिया में तीन शतियों से रूसी विस्तार का उत्तराधिकारी था।

ट्रांसकाकेशिया और मध्य एशिया की आबादी कुछ घनी थी और यहाँ के लोग कुछ सभ्य थे। यहाँ की भूमि पर रूसी उपनिवेशीकरण के बाद रूस ने विजय नहीं प्राप्त की थी। किन्तु, इसके विपरीत वहाँ उत्तरी एशिया के विशाल बंजर प्रदेश पर रूसी फैल गये थे। इसका प्रारम्भ और विस्तार का वर्णन पहले किया जा चुका है। सोलहवीं शती के अन्त में, यारमाक-काल से यहाँ उपनिवेश का प्रारम्भ होता है। यह बताया जा चुका है कि लगभग सन् 1640 ई० से ही उत्तरी प्रशान्त महासागर-तट पर रूस की बाहरी चौकी स्थापित हो गई थी, किन्तु चीन-साम्राज्य ने कजाकों को मध्य और निम्न आमूर नदी के दक्षिण में बसने से मना कर दिया था। आगामी दो शतियों तक रूस अधिकतर हिमाच्छादित लोम और सील मछली-प्रदेश में सीमित रही, जो प्रशान्त महासागर के एकदम उत्तर में था, महान् पीटर के समय भले ही वे कामचत्का और वहाँ से अलास्का तक फैल गये थे। पुनः उन्नीसवीं शती के मध्य में तीन महान् परिवर्तन हुए, जिनके कारण आजकल के सुदूरपूर्व का रूप ही बदल गया।

प्रथम अँगरेज-चीनी युद्ध (सन् 1839-42 ई०) का फल यह हुआ कि अँगरेजों ने चीन को बाध्य किया कि दक्षिण से विदेशियों को खास शर्तों पर प्रवेश का अधिकार मिले। हाँगकाँग अधिकृत कर अँगरेजों ने इसका एक उदाहरण भी उपस्थित कर दिया। अब यूरोप और अमेरिका के प्रभाव के लिए चीन में एक नया दरवाजा खुल गया। पहले तो यह दरवाजा छोटा था, किन्तु शीघ्र ही चौड़ा होता गया, जिसका परिणाम चीन और विश्व के लिए महत्त्वपूर्ण रहा।

एक युग (12 वर्ष) के बाद संयुक्तराज्य अमेरिका ने जापान को उसके लिए कुछ बन्दरगाहों के द्वार खोलने के लिए विवश किया। इसका फल यह

हुआ कि शीघ्र अनेक विदेशी राष्ट्रों से सम्पर्क हो गया और जापान की जो अलगाववाद की राष्ट्रीय नीति थी, वह समाप्त हो गई। सत्रहवीं शती के प्रारम्भ से ही यह नीति चली आ रही थी। सन् 1868 ई० में जापान ने जान-बूझकर पाश्चात्य तरीके से अपने को स्वयं आधुनिक ढंग पर निर्मित करने की नीति अपनाई और इसके महत्त्वपूर्ण परिमाण हुए। चालीस वर्ष के अन्दर ही आधुनिक अर्थ में प्रशान्त महासागर में एक नया राष्ट्र पैदा हो गया।

तीसरा महान् परिवर्त्तन था सुदूरपूर्व में रूसी की अग्रसर नीति। इसका आरम्भ उन्नीसवीं शती के मध्य से हुआ, जिसके कारण अब वह आमूर और व्लाडिवोस्तक तक आ गया और चालीस वर्ष में पोर्ट आर्थर पहुँच गया।

मुरव्योव-आमूरस्की (सन् 1809–81 ई०) की दूरदर्शिता और महत्त्वाकांक्षा से प्रारम्भ में उत्तेजना मिली। रूसी वाणिज्य-दूतों में इसका भी एक उच्च स्थान है। इसने समझ लिया कि साइबेरिया रूसी उपनिवेशीकरण का महान् क्षेत्र आगामी शती में बननेवाला है। अतः, साइबेरिया के परिरक्षण के लिए आवश्यक है कि अभी से (सन् 1853 ई० हम कामचत्का का परिरक्षण करें और उसे सुदृढ बनायें। साथ ही, साखालीन तथा आमूर के मुहाने के नौचालन को सुदृढ बनायें तथा अपने पड़ोसी चीन पर ठोस प्रभाव जमाये रहें। अन्यथा अँगरेज, जो सदा उसके लिए खास हौआ थे, रूस का स्थान ले लेंगे। वह सन् 1847 से 1861 ई० तक पूर्वी साइबेरिया का गवर्नर जनरल (महाशासक) था। वैदेशिक मन्त्री नेसेलरोद तथा सन्त पीटर्सबर्ग के अन्य विरोधियों ने उसके कार्य में बाधा डालना चाहा, किन्तु उसने उन सबको टाल दिया तथा पूर्ण शक्ति और तैयारी के साथ सुदूरपूर्व में रूस की शक्ति का विस्तार कर उसे सुदृढ करने लगा।

मुरव्योव ने क्रिमिया-युद्ध के समय (सन् 1853–56 ई०) एक अँगरेज-आक्रमण को कामचत्का से मार भगाया था और अनेक का खून कर दिया था। उसने इग्नात्येव के साथ बिना खून के ही चीन से (सन् 1858–1860 ई०) आमूर-प्रदेश तथा कोरिया की सीमा तक समुद्रतट अधिकृत कर लिया। आमूर-प्रदेश के लोग केवल नाम के लिए चीन की प्रजा थे। इसी के पास एक सुरम्य स्थान पर उसने व्लाडिवोस्तक की नींव डाली, जो पूर्व पर प्रभुत्व रखे। जापान से साखालीन-द्वीप के लिए चिरयुद्ध चला, किन्तु अन्ततः (सन् 1875 ई०) उसने इसे रूसी मान लिया।

मुरव्योव ने अच्छी तरह समझ लिया कि नई विजित भूमि अथवा समस्त साइबेरिया के लिए दो बातें अत्यन्त आवश्यक हैं—यातायात तथा उपनिवेशी-

रूस-चीनी बैंक की स्थापना हुई। फ्रांस और रूस की सन्धि का यह प्रमुख फल था। सन् 1896 ई० में जापान के विरुद्ध चीन से सन्धि हो गई। अब रूस को उत्तरी मंचूरिया होकर बड़ा रेलमार्ग बनाने की सुविधा प्राप्त हो गई। यह रेलमार्ग व्लाडिवोस्तक तक था, जो करीब हजार मील लम्बा था।

इसका नया नाम चीनी-पूर्वी रेलवे पड़ा। अभीतक जो आमूर से लूपमार्ग घूमकर जाता था, समाप्त हो गया और ट्रांस-साइबेरियन मार्ग में 350 मील की बचत हो गई, जो पहले व्लाडिवोस्तक तक केवल रूसी-प्रदेश से ही गुजरनेवाली थी। रास्ता विकट था और सन् 1917 ई० से पहले यह रेलमार्ग नहीं बन सका। किन्तु, चीनी-पूर्वी रेलवे पर जल्दी से काम लगा दिया गया। जापान के साथ युद्ध होने के एक वर्ष पहले ही रूस और व्लाडिवोस्तक में काफी सम्पर्क हो गया। बैकल झील के आसपास महान् सुरंगों का मार्ग कुछ बीहड़ था, जिनसे सम्पर्क नहीं हो सका। रूसी-चीनी बैंक के समान ही चीनी-पूर्वी रेलवे भी सरकारी संस्था थी। पहले वित्तमन्त्री वित्ते का ही इसमें पूरा हाथ था। इस रेलवे को विशाल रेलवे-प्रदेश पर प्रशासन का विशेष अधिकार तथा सुविधाएँ थीं। एक प्रकार से यह रूसी-प्रदेश बन गया।

प्रारम्भ में वित्ते का इरादा था कि दक्षिणी और पश्चिमी मंचूरिया में आर्थिक प्रभुत्व स्थापित किया जाय। सन् 1898 ई० में चीन को मजबूर होकर चीनी-पूर्वी रेलवे के विस्तार की अनुमति देनी पड़ी। दक्षिण में पोर्ट आर्थर तक इस रेलवे का विस्तार हुआ और यह समस्त प्रदेश रूस को पट्टे में देना पड़ा। कुछ रूसी चिरकाल से पोर्ट आर्थर हथियाना चाहते थे। कुछ मास पहले जर्मनी ने कियाचोव अधिकृत कर लिया, अतः रूस के लिए पोर्ट आर्थर आवश्यक था। इसके बाद अँगरेजों ने शीघ्र ही वैहवाई ले लिया। अब पाश्चात्य राष्ट्रों में, खासकर रूस और ग्रेटब्रिटेन में विद्वेषाग्नि खुल्लमखुला भड़कने लगी। अब शीघ्र ही नया राष्ट्र तेजी से पनप रहा था और वह था जापान का द्वीप-साम्राज्य।

रूस ने सन् 1895 ई० में जापान के स्वार्थ को धक्का पहुँचाया था। जापान मुख्य भूमि की महत्त्वाकांक्षा को क्षमा नहीं कर सकता था। रूस कोरिया में सक्रिय था तथा पोर्ट आर्थर से जापान को भगाकर अपने हाथ में कर लिया। यह जले पर नमक छिड़कना था। पोर्ट आर्थर को शीघ्र ही सुदृढ दुर्ग बना दिया गया और यह नौसेना का अड्डा बन गया। व्लाडिवोस्तक की अपेक्षा यह बारहों मास खुला रहता था, किन्तु यह व्लाडिवोस्तक से एक हजार मील दूर था। व्लाडिवोस्तक रूसी प्रदेश के सन्निकट था। अतः, रूस के नौसेनाधिकारी कोरिया में

बरफ-रहित बन्दरगाह बनाने की सतत चेष्टा करते थे। इससे जापानी भयभीत हो गये कि कहीं रूस एक नया नौसेना का अड्डा न बना ले। हो सकता है, यह अड्डा त्सुशिमा की खाड़ी में बने, जिसका युद्धनीतिक दृष्टि से बहुत महत्त्व है।

सन् 1900 ई० में, मंचूरिया में रूस की शक्ति बहुत बढ़ गई; क्योंकि वहाँ विदेशियों के विरुद्ध बॉक्सर-आन्दोलन छिड़ गया था। अब सभी यूरोपीय राष्ट्रों ने मिलकर सशस्त्र हस्तक्षेप किया। लेकिन, रूस ने पृथक् होकर कार्य किया और अपनी सेना लेकर सारे मंचूरिया को अधिकृत कर लिया। वित्ते ने इस कार्य का तथा पोर्ट आर्थर को अधिकृत करने का समर्थन नहीं किया था। वह चाहता था कि पहले के समान मंचूरिया में धीरे-धीरे आर्थिक प्रभुत्व स्थापित होता रहे और चीन-सरकार भी इससे सहमत रहे। वह चाहता था कि पृष्ठ-भाग में सेना भी तैयार रहे तथा बैंक और रेलवे प्रभुत्व फैलाते रहें।

अब वित्ते का प्रभाव कुछ मन्द हो चला था। सन् 1903 ई० के ग्रीष्म-ऋतु में वह मन्त्री-पद से हट गया। उसके उग्र प्रतिद्वन्द्वियों की विजय हुई। उन्होंने जार को गुप्त रूप से खूब भरा और जार के निजी खजाने पर भी हाथ मारा। उन्होंने वैदेशिक कार्यालय के मन्द प्रभाव पर भी विजय पाई और युद्ध-मन्त्री के विचारों को परिवर्तित कर दिया, जो सन् 1903 ई० तक शान्ति-नीति का समर्थक था। इसी वर्ष सुदूरपूर्व का संचालन वैदेशिक कार्यालय के हाथ से निकल गया और पोर्ट आर्थर नये राजप्रतिनिधि (वायसराय) को सौंप दिया गया। कुछ उग्र विचारवाले साहसी लोगों की एक समिति भी इस वायसराय की सहायता के लिए बनी। ये लोग जार के विश्वासपात्र बन गये थे। सरकारी विभागों में कभी इतना घोर विद्वेष न चलता था और न मन्त्रिमण्डल की नीति में इतनी फूट थी, जितनी सन् 1898 और 1904 ई० के मध्य-सुदूरपूर्व के प्रश्न पर ईर्ष्या और फूट हुई। इसका घातक परिणाम अवश्यम्भावी था।

उग्रपन्थियों के विचार को संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है। एक प्रभुत्वशाली उग्रपन्थी कहता है: 'रूस का निर्माण संगीन से हुआ है, न कि कूट-नीति से और चीन और जापान के साथ भी इस प्रश्न का निवटारा हमें संगीन से करना होगा, न कि कूटनीतिक कलम से।' आवश्यकता इस बात की है कि उत्तरी चीन में वित्ते की नीति के अनुसार धीरे-धीरे आर्थिक प्रभुत्व न बढ़ाकर जरा सुन्दर तरीके से युद्ध में विजय की जाय। इससे देश के क्रान्तिकारी आन्दोलन भी ठप पड़ जायेंगे; क्योंकि इन आन्दोलनों से सरकार में विश्वास उठता जाता है और सरकार की नसें काँपने लगती हैं। अतः रूस ने मंचूरिया खाली

करने से एकदम इनकार कर दिया। इसने प्रशान्तसागर-तट पर अपनी स्थलसेना और नौसेना को सुदृढ़ किया। कोरिया में घुसने का नया तरीका अपनाया। लकड़ी के व्यापार का बहाना करके एक कम्पनी के रूप में रूस ने नई चाल चली।

जापान को ऐसा प्रतीत होने लगा कि रूस कहीं उसे एशिया की भूमि पर ही पूर्णरूपेण नहीं रोक दे। सन् 1903 ई० की ग्रीष्मऋतु में टोकियो में युद्ध करनेवाले दल की विजय हुई और ठीक इसी समय सन्त पीटर्सबर्ग में भी उग्रदल की विजय हुई। जापान, ग्रेटब्रिटेन से मैत्री करके सुदृढ़ हो गया था। यह सन्धि सन् 1902 ई० में हुई थी और सारे संसार में इसका प्रचार हो गया। इस सन्धि से अँगरेजों से मैत्री का उसे आश्वासन मिला। यदि कोई अन्य राष्ट्र जापान के विरुद्ध रूस का साथ दे, तो अँगरेज सैनिक सहायता देंगे। तो भी ऐसी प्रतिष्ठा और सैनिक विशिष्टतावाली किसी शक्ति को चुनौती देना, एक ऐसे देश के लिए, जो नवीनीकरण की पहली पीढ़ी में ही था, खतरा मोल लेना था। इतो आधुनिक जापान का एक महान् राजनीतिज्ञ था। उसने भरसक प्रयत्न किया कि ग्रेटब्रिटेन से सन्धि नहीं की जाय। वह चाहता था कि किसी तरह रूस से मेलजोल करके काम चलता रहे।

जापान ने बिना आगाह किये ही, एकाएक सन् 1904 ई० की फरवरी में पोर्ट आर्थर के रूसी युद्धपोत पर रात्रि में अचानक हमला कर दिया, जैसा उसने पर्ल हार्बर में किया था। प्रारम्भ में जापान ने समुद्र पर अधिकार कर लिया। जापान को दक्षिणी मंचूरिया में अनेक बार सफलता मिली, भले ही गुत्थमगुत्थी लड़ाई हुई। उसने पोर्ट आर्थर को अधिकृत कर लिया। रूस के उच्चाधिकारी बुरी तरह हार खाये। ट्रान्स-साइबेरियन रेलवे ने उम्मीद से अधिक काम किया। किन्तु, इससे पूरा काम नहीं बना; क्योंकि रूस का युद्ध अपने विशाल साम्राज्य के सुदूर अंचल पर चल रहा था। सबसे बड़ी बात यह थी कि रूस क्रान्ति के कगार पर था और इसकी पूर्त्ति असम्भव थी। पोर्ट आर्थर के पतन (जनवरी, 1905 ई०) के तीन सप्ताह बाद सन्त पीटर्सबर्ग में 'लाल रविवार' मनाया गया। यहीं सन् 1905 ई० की क्रान्ति का श्रीगणेश माना जा सकता है।

सन् 1905 ई० की मई के अन्त में रूस का बालटीक युद्धपोत दुनिया का चक्कर लगाने के बाद त्सुशिमा की खाड़ी में बरबाद हो गया। आधुनिक नौसैनिक युद्ध का निर्णय यहाँ बहुत ही नाटकीय ढंग से हुआ। इसके बाद ही रूस में सर्वत्र क्रान्तिकारी विद्रोह और प्रदर्शन दिन-पर-दिन बढ़ने लगे। इधर जापान ने अमेरिका के राष्ट्रपति थियोडोर रूजवेल्ट से अनुनय किया और सन्धि की वार्त्ता चलने लगी।

जापान में अब अर्थ-संकट आ गया। वे डरते थे कि कहीं युद्ध घसीटकर उनके अड्डे से दूर न ले जाय। वे रूस की क्रान्ति पर आशा कर रहे थे। यह क्रान्ति इस तरह फैल रही थी कि युद्ध अधिक दिनों तक चल ही नहीं सकता था। उनकी आशा ठीक ही थी। सितम्बर में न्यू-हैम्पशायर के पोर्ट्समाउथ में सन्धि पर हस्ताक्षर हुआ। दो मास के भीतर ही क्रान्तिकारियों ने जार से अक्तूबर के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करवाया।

एक एशियाई राष्ट्र द्वारा महान् रूस के पराजित हो जाने से एशिया, यूरोप और स्वयं रूस में बड़ा भारी असर पड़ा। रूस में प्रायः क्रिमिया-युद्ध की पराजय की तरह ही प्रभाव पड़ा। अब जारशाही शासन-पद्धति को लोग और भी बुरी दृष्टि से देखने लगे। पोर्ट्समाउथ की सन्धि-शर्तों के अनुसार रूस ने पोर्ट आर्थर और एक तरह से दक्षिणी मंचूरिया को ही जापान के लिए छोड़ दिया। रूस ने कोरिया में जापान का आधिपत्य मान लिया। सन् 1910 ई० में जापान ने कोरिया को अपने साम्राज्य में मिला लिया। साखालीन-द्वीप के दक्षिण भाग को रूस ने जापान को सौंप दिया, उस समय तक इसके उत्तरी भाग में तेलक्षेत्र का ज्ञान नहीं था। रूसी तट पर मत्स्याखेट का भी अधिकार दे दिया गया। इस अधिकार का विशेष महत्त्व था और अब भी है; क्योंकि जापानी सदा मत्स्य पर निर्भर रहते हैं और इस स्थान पर मत्स्यों की बहुलता है।

रूस की शक्ति तथा प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा। किन्तु, अब भी चीनी-पूर्वी रेलवे, जो उत्तरी मंचूरिया से होकर व्लाडिवोस्तक तक जाता है, रूस के अधिकार में ही था। युद्ध से दोनों सरकारों में मनमुटाव अधिक नहीं हुआ। अपितु दस वर्ष तक दोनों ने मिलकर अमेरिकन नीति का विरोध किया कि चीन का दरवाजा सबके लिए न खुलने पाये। ये दोनों देश चाहते थे कि चीन को दो प्रभुत्व-क्षेत्रों में बाँट दिया जाय। चीन की दीवार के उत्तर में, जहाँ उत्तरी मंचूरिया, बाह्य मंगोलिया और सिनकियांग हैं, रूस का प्रभुत्व रहे तथा जापान का प्रभुत्व दक्षिणी मंचूरिया और अन्ततः मंगोलिया में रहे। सन् 1911 ई० में चीन में जो क्रान्ति हुई, उससे इन दोनों ने बहुत लाभ उठाया।

सन् 1912 ई० में पेकिंग में मंचू-वंश को गद्दी से हटा दिया गया। यह बाह्य मंगोलिया में चीन-विरोधी विद्रोह की प्रथम सफलता थी। इस देश में प्रायः अधिकतर खानाबदोश मंगोल रहते थे। यह बौद्धों के लामा का देश है, और यह रूस-साम्राज्य के उपान्त पर था। भौगोलिक दृष्टि से यह चीन से एकदम विलग है। मंगोलिया और चीन के मध्य महान् मरुस्थल है। इस मंगोलिया का सम्बन्ध बुर्यात

मंगोलिया से है, जो रूस के शासन में थे। रूस-सरकार ने चीन से इस बात को मनवा लिया कि बाह्य मंगोलिया को पूर्ण स्वायत्त-शासन मिल जाय, वहाँ पर चीन के उपनिवेश न बसे और वास्तव में वहाँ रूसी प्रभुत्व बना रहे। इस नीति का फल यह हुआ कि अन्त में बाह्य मंगोलिया का सोवियत-रूपान्तर हो गया, जब प्रथम विश्वयुद्ध में रूस का जनाजा निकल गया। सोवियत-संघ गृहयुद्ध से लड़खड़ाता रहा, किन्तु विजयी निकला।

प्रथम विश्वयुद्ध से ही सिद्ध हो गया कि प्रशान्त महासागर से रूस को कितना लाभ है, खासकर जब बालटीक और कृष्णसागर के मार्ग रूस के लिए बन्द हो जायँ। व्लाडिवोस्तक रसद का एक प्रमुख केन्द्र हो गया, भले ही यह सुदूर हो। बोलशेविकों को प्रशान्त सागर से कितना भय है, यह गृहयुद्ध से ही सिद्ध हो गया। मित्रराष्ट्र तथा अमेरिका ने जब सन् 1918 ई० में हस्तक्षेप किया, तब वे व्लाडिवोस्तक के पूर्वी बन्दरगाह से ही घुसे।

जापानी उपक्रम रोकने का प्रयत्न किया जा रहा था, किन्तु बाद में रूस और जापान दोनों ने मिलकर जर्मनों को साइबेरिया में घुसने से रोका, जिसमें वहाँपर रसद के विशाल संचय को सुरक्षित रखा जा सके और जेक युद्ध-कैदियों को मुक्त किया जाय। इन कैदियों की एक अलग ही टुकड़ी बनी थी। ये साइबेरिया के मार्ग से पश्चिमी मोर्चे पर भेजे जानेवाले थे, किन्तु ये बोलशेविकों से उलझ पड़े थे। किन्तु शीघ्र ही हस्तक्षेप का मुख्य उद्देश्य सिद्ध हो गया और रूसी श्वेतों ने गृह-युद्ध में मदद पहुँचा दी।

बोलशेविक-विरोधी तथा मित्रराष्ट्र दोनों ही आपस में फूट रखते थे। अतः वे स्थानीय तथा वर्गीय अराजकता को रोक नहीं सके और नूतन लालसेना की चोट को नहीं सह सके। मध्य वालगा से एक तरह से हाथ धोकर यह सेना अपने विरोधियों को एक रेलवे स्टेशन से दूसरे रेलवे स्टेशन तक मार भगाती रही। इन्हें खदेड़कर उराल के पार और साइबेरिया में बैकल झील तक भगा दिया। मित्र-राष्ट्रों ने मान लिया कि सारे रूस में श्वेत रूसियों का अधिनायक एडमिरल कोलचक की दक्षिणपन्थी सरकार है। यह एक पारंगत नौसेनाधिकारी था। इसमें वैयक्तिक वीरता कूट-कूटकर भरी हुई थी, किन्तु इसके सिवा उसमें कुछ भी गुण न था। इसकी प्रतिक्रियावादी नीति से सभी बोलशेविक-विरोधी दलों ने हाथ खींच लिया और सन् 1919 ई० के अन्त में इसका शासन बालू की भीत के समान गिर पड़ा। लोगों ने कोलचक को बोलशेविकों के हाथ सुपुर्द कर दिया। जनवरी, 1920 ई० में उसे गोली से उड़ा दिया गया। अब साइबेरिया बोलशेविकों के हाथ आ गया।

बैकल भील से प्रशान्त महासागर तक समस्त सुदूरपूर्व प्रदेश अन्य दो वर्षों तक दुविधा में रहे। नाना प्रकार के गुलानी, लाल सेना तथा कजाक वीरों ने इसपर अधिकार जताना चाहा। जापानी कभी इस दल का या कभी उस दल का समर्थन या विरोध करते थे। सन् 1920 ई० के प्रारम्भ तक अमेरिकी, अँगरेज और फ्रांसीसी जो कुछ भी थोड़ी सेना थी, सभी हटा ली गईं, किन्तु जापान की विशाल सेना तट पर जमी रही। उन्हें सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था; क्योंकि वे चाहते थे कि रूस को सदा के लिए प्रशान्त सागर से बहिष्कृत कर दें। अन्ततः, सन् 1922 ई० में अमेरिका के खास दवाव से उन्होंने मुख्य भूमि को खाली कर दिया। अब बोलशेविकों के लिए मैदान साफ हो गया।

तीन वर्ष के बाद जापान ने सोवियत-शासन को मान लिया और साखालीन के आधे रूसी भाग को खाली कर दिया (सन् 1925 ई०)। इसके बदले में जापान को प्रमुख स्थानों पर मत्स्याखेट का अधिकार मिला तथा नूतन आविष्कृत साखालीन-तेलक्षेत्र से तेल निकालने की सुविधा मिली। कालान्तर में ये दोनों ही महान् झगड़े के कारण हुए। ठीक इसी समय सोवियत-सरकार ने चीन से चीनी-पूर्वी रेलवे के सम्बन्ध में विशेष सन्धि की (सन् 1924 ई०) सुविधाएँ प्राप्त कीं। संशोधित रूप में अब यह पूरा रेलवे एक तरह से सोवियत के नियन्त्रण में आ गया। जहाँ भी पहले रूस-साम्राज्य था, वहाँ अब सोवियत-संघ पुनः पहुँच गया। चार वर्ष पहले वाशिंगटन में सुदूरपूर्वी सम्मेलन हुआ था। उस समय नूतन सोवियत-राज्य इतना थक गया था और इसमें इतनी फूट थी कि इसकी उपेक्षा की गई। किन्तु, अब सुदूरपूर्व का यह एक शक्तिशाली राष्ट्र हो गया और सर्वत्र इसकी पूछ होने लगी।

यदि एक अर्थ में सोवियत-संघ रूस-साम्राज्य का उत्तराधिकारी था, तो दूसरे अर्थ में एकदम उसके विपरीत भी था। लेनिन की क्रान्ति और सनयात सेन की क्रान्ति में समता होने के कारण सुदूरपूर्व के प्रश्नों का एकदम नूतन सम्बन्ध हो गया।

लेनिन ने मार्क्स के उपदेश में एक और भी योग दिया। यह था, कि एशिया में भी इसका व्यवहार और प्रचार हो। प्रारम्भ से ही लेनिन ने सन् 1911 ई० की चीन-क्रान्ति, फारस की क्रान्ति एवं भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वागत किया। यह उन्नत एशिया की जनता के अभ्युत्थान का प्रारम्भ था। एशिया अनन्त जनसंख्या के कारण अजेय था। यूरोप पिछड़ा देश था, यूरोप ने चीन को लूटा था और उसकी स्वतन्त्रता के शत्रुओं को भड़काया था। अक्तूबर की क्रान्ति विश्वक्रान्ति की जननी थी। यह क्रान्ति साम्राज्यवाद के विरुद्ध थी। चीन और

शेष एशिया स्वतन्त्र होकर रूस की जनता के नेताओं की सहायता करेंगे। रूस की जनता प्रतिक्रान्तिकारियों के खिलाफ संघर्ष कर रही थी।

लेनिन ने सन् 1919 ई० के आरम्भ में साम्यवादी अन्तरराष्ट्रीयता की नींव डाली। एशिया में इसके कार्य शीघ्र ही सफल हुए। लाल रूस ने एशिया का विमुक्तक रूप धारण किया। सबसे बड़ी बात यह हुई कि चीन साम्यवादियों की गहरी विजय हुई। वे अब अतीत के विदेशी रूसी न रहे, बल्कि चीनी राष्ट्रीयता के मित्र बने। वे अनमेल सन्धियों को नामंजूर करने को तैयार थे, विशिष्ट स्वार्थों का त्याग भले ही न करें। वे एकता और समता के अभिनेता थे। वे विज्ञान और जन-साधारण के कल्याण के पुजारी थे। इसने चीन का आह्वान किया कि वारसाई की साँकड़ से बचे, जिसमें यह पुनः दूसरी कोरिया या भारत न बन जाय। अपने मित्र और भाइयों का साथ दे, जो स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। ये हैं, रूस के कार्यकर्ता, कृषक और रूस की लाल सेना।

सनयात सेन (सन् 1866–1925 ई०) राष्ट्रीय क्रान्ति और जनदल कुमिन-तांग का अर्द्ध-देवतुल्य दूत था। इसने रूस की क्रान्ति का स्वागत किया; क्योंकि इस क्रान्ति ने स्लावों को श्वेत जाति से विमुक्त किया। वह सदा से सोवियत देश का मुँह देखता था, जो स्वतन्त्रता-संग्राम में चीन का प्रधान सहायक हो सकता है। उसका ख्यात इच्छापत्र (वसीयतनामा) और जनतन्त्र के तीन सिद्धान्त चीन राष्ट्रवाद के दिव्य सन्देश मान लिये गये। इनमें लिंकन और लेनिन का भी पुट था। किन्तु, उनकी व्याख्या और प्रयोग के लिए प्रचलित शासन से युद्ध करना शेष था।

बोलशेविक अपने देश में ही बहुत परेशान थे, अतः वे चीन की कोई ठोस मदद या उसे प्रभावित करने में असमर्थ थे। सन् 1923 ई० तक वे यथेष्ट शक्तिशाली हो गये और अब कुमिनतांग के समर्थन में सहयोग दे सकते थे। सन् 1917 ई० से ही कुमिनतांग पेकिंग के केन्द्रीय सरकार का प्रत्याख्यान करता रहा। इसने सनयात सेन की अध्यक्षता में अपना राष्ट्रीय गणतन्त्र दक्षिण में कैण्टन के महान् बन्दरगाह पर स्थापित कर लिया था। सोवियत के सैनिक-शिक्षक, जो जनता के मध्य प्रचार करने में सुनिपुण थे, उन्हें और धन को, कुमिनतांग ने स्वीकार किया। कुमिनतांग का संगठन रूस के अनुभव पर, ठीक उसी ढंग पर किया गया। चीनी नवयुवकों को प्रशिक्षण के लिए रूस भेजा गया। इसी समय चीनी साम्यवादी दल की स्थापना हुई। इसके अनुयायी और सहानुभूतिकारक कुछ समय तक कुमिनतांग को प्रभावित करते रहे। सोवियत-प्रभावित वामपक्ष और बेमेल

राष्ट्रीय आन्दोलन के दक्षिणपन्थियों से किसी प्रकार मेल रखा गया, भले ही इनमें कठिनाई होती थी।

जब सन् 1926 ई० में कुमिनतांग-सेना उत्तर की ओर बढ़ी, तब संकट की स्थिति आ गई। इसने अर्द्ध-स्वतन्त्र प्रान्तों के सैनिक शासकों पर और नाममात्र की पेकिंग-सरकार पर हमला बोल दिया। इन्होंने विदेशियों पर खासकर अँगरेजों पर यांगत्से की सन्धि-बन्दरगाह पर आक्रमण किया। उत्तर की ओर आशातीत सफलता होने से क्रान्तिकारी वामपन्थी और उदार दल तथा कट्टरपन्थियों में जो भेदभाव था, सब जाता रहा।

साम्राज्यवादी बन्धन के विरुद्ध जो साम्यवादी मध्यमवर्ग की जनतान्त्रिक क्रान्ति से मिलकर कार्य करते थे, वह अवधि समाप्त हो चली। अब आवश्यकता थी कृषि में क्रान्ति लाने की, कार्यकर्त्ताओं को सशस्त्र करने की, दरिद्र किसानों को वीर सैनिक बनाने की, क्रान्ति में सर्वहारा-प्रभुत्व का पथ प्रशस्त करने की तथा कुमिनतांग में जनतान्त्रिक प्रवृत्ति लाने की। जुलाई, 1927 ई० में साम्यवादी अन्तरराष्ट्रिय कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव पारित किया। इसके एक मास के अन्दर ही सोवियत के मुख्य परामर्शदाता यांगत्से के कुमिनतांग के साथ घर लौट रहे थे और इसके पहले ही पेकिंग में सोवियत-दूतालय से सम्बन्ध एकदम विच्छिन्न हो गया था।

सन् 1927 ई० के पूर्व छह महीनों से स्थिति दिन-दिन खराब होती जा रही थी। चीनी साम्यवादी पूर्णरूप से सामाजिक क्रान्ति चाहते थे। कुमिनतांग का वामपक्ष हिचकिचा रहा था। दक्षिणपन्थी मिलकर कम-से-कम वामपक्ष को कुचल ही सकते थे। च्यांग-काई-शेक, अन्य जनरल तथा दक्षिणपन्थ के अन्य नेताओं ने अनिच्छा से साम्यवादियों की सहायता केवल कुछ अंश तक ली थी। वे इस बात को सहने के लिए तैयार न थे कि कृषक-वर्ग में युद्ध या लाल भाले के प्रयोग को उकसाया जाय अथवा विदेशियों के विरुद्ध घोरतर खून-खराबी हो। ऐसा करने से उनकी मैत्री की गिरह कट जाती और चीन में एकता न होने पाती।

अब जिस किसी वस्तु के नाम के साथ साम्यवाद या सोवियत-प्रभाव बतलाया जाता, उसके विरुद्ध जोर-शोर से खूनी बदला लेने की प्रवृत्ति चल पड़ती। सन् 1928 ई० के आरम्भ होते ही वामपन्थी एकदम भाग खड़े हुए, भले ही कुछ प्रदेशों में कृषकों के मध्य कुछ वामपन्थी बच गये हों। मंचूरिया में श्वेत प्रवासी के अधिक होने के कारण स्थानीय राजनीति जटिल हो गई। साम्यवाद-विरोधियों ने चीनी-पूर्वी रेलवे पर सोवियत का स्थान डावाँडोल कर दिया। इसका फल यह हुआ कि

सन् 1929 ई० में दोनों में सशस्त्र भिड़न्त हो गई। चीनी, रूसियों को निकाल बाहर करना चाहते थे, किन्तु रूस की सेना के सामने उनकी एक न चली।

सन् 1927 ई० में, चीन में साम्यवादी अन्तरराष्ट्रीय में जो गोलमाल हुआ, उसके प्रधान कारण चीनी साम्यवादी ही थे या स्तालिन की नीति थी अथवा ट्रॉटस्की तथा मास्का के अन्य उग्रपन्थियों की चाल थी। चाहे जो हो, सोवियत को बड़ा भारी धक्का लगा। ऐसी बेइज्जती जर्मन को छोड़कर अन्य किसी देश में नहीं हुई थी। चीन की क्रान्ति में कौन-सी चाल अपनाई जाय, इस विषय पर मास्को में बहुत विवाद चलता रहा। सन् 1927 ई० में चीन की घटनाओं से संघर्ष और भी विषाक्त हो गया। स्तालिन, ट्रॉटस्की तथा विभिन्न दलों में महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर जो इस समय बातचीत चल रही थी, वह सब दूषित हो गई।

सन् 1927 ई० की हार के बावजूद साम्यवाद ने एक स्वदेशी रूप धारण किया। यह किसानों का साम्यवाद था। दक्षिण और मध्य प्रदेशों में इसका काफी प्रभाव था। यहाँ कृषक-सोवियत ने च्यांग-काई-शेक के विरुद्ध बहुत दिनों तक छापामार युद्ध किया और अपना प्रभुत्व जमा लिया। सन् 1934–35 ई० में पूर्णरूपेण पराजित होने पर भी यह चीनी सोवियत-गणतन्त्र सोवियत-राज्य के बहुत समीप आ गया। चीन की लालसेना ने दूर की यात्रा करके पश्चिमोत्तर प्रदेश में इसका विस्तार किया और सोवियत-प्रभाव पुनः पनपने लगा। रूसी और चीनी साम्यवाद में भले ही विभेद हो, पर यह ध्यान देने की बात है कि संसार में चीन ही एक ऐसा देश है, जहाँ (सोवियत-संघ के अलावा) एक विशाल प्रभावशाली साम्यवादी दल की सत्ता बनी है।

जापान ने मंचूरिया पर अधिकार कर लिया (सन् 1931–32 ई०)। इसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि विभिन्न राष्ट्रों ने पुनः सेना एकत्र करना आरम्भ किया। जापान ने सन् 1937 ई० में चीन पर बड़ी दीवार के पीछे आक्रमण कर दिया। इसका फल यह हुआ कि सो० सा० ग० सं० ने एक सन्धि द्वारा च्यांग-काई-शेक और उसकी कुमिनतांग-सरकार का साथ दिया। चीनी साम्यवादियों ने सन् 1943 ई० में आक्रामकों को सब तरह से परास्त किया और अगुआ बनकर उन्होंने च्यांग-काई-शेक के साथ राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे पर भिड़ गये। भले ही, कभी कुछ मतभेद या धोखा हो जाता था, किन्तु इस मतभेद को मिटाने में रूस का जबरदस्त प्रभाव रहा है। च्यांग-काई-शेक को सोवियत से भौतिक और नैतिक बल मिला। इसका फल यह हुआ कि दोनों देशों का सम्बन्ध नये रूप में प्रतिष्ठित हो गया।

अभी बताया जा चुका है कि सन् 1927 ई० में सोवियत-चीन के मध्य जो कलह हो गया था और सन् 1937 ई० में जो सोवियत-चीन मैत्री हुई, इसका कारण था जापानी महाद्वीपीय साम्राज्यवाद का फैलाव।

सन् 1931–32 ई० में जापान ने सारा मंचूरिया रौंद डाला। उसने मंचुको को नाममात्र का स्वतन्त्र राष्ट्र बना दिया। और, इसका प्रभाव यह हुआ कि उसने सोवियत-संघ को चीनी-पूर्वी रैलवे से भगा दिया। पहले तो कोरिया की सीमा पर कुछ ही मील तक दोनों की सीमा थी, अब जापान की सोवियत-संघ के साथ 1500 मील की सीमा हो गई। सामूहिकीकरण के संकट से सोवियत की शक्ति को बहुत धक्का पहुँचा था। प्रथम पंचवर्षीय योजना ने भी धक्का पहुँचाया। अब प्रतीत होता था कि जो कुछ भी सन् 1922 ई० में जापान ने परित्याग किया था, उन्हें पुनः अधिकृत कर लेगा। सोवियत सामुद्रिक सेना का प्रदेश तथा व्लाडिवोस्तक सब जापान हड़प लेगा, तब सोवियत-वायुसेना के अड्डों से भी उसका भय जाता रहेगा। ऐसा कोई प्रयत्न नहीं हुआ; क्योंकि मंचूरिया-हरण से जापान के विरुद्ध जबरदस्त उत्तेजना फैली और शंघाई में बम फूटने से जापान कुछ विचलित हो गया।

सोवियत-सरकार सदा बचाव की ही बात सोचती रही। सन् 1935 ई० में इसने अपना चीनी-पूर्वी रेलवे का अधिकार मंचुको-जापान को बेच दिया। इस प्रकार सोवियत ने अपना नुकसान घटा दिया। यह एक महत्त्वपूर्ण परावर्त्तन था। किन्तु, सोवियत-सरकार अदम्य उत्साह से सदा आगे बढ़ने को सोच रही थी। इसने सभी प्रकार से सुदूरपूर्वी प्रदेशों को सैनिक, नौसेना और आर्थिक सुरक्षा द्वारा सर्वतोमुखी अभ्युदय-नीति को अपनाया। सन् 1938 ई० में सीमा-विवाद के कारण स्थायी युद्ध हो गया। इससे स्पष्ट हो गया कि मास्को का इरादा अब परावर्त्तन का नहीं है। प्रशान्त महासागरतट पर सो० सा० ग० सं० की जड़ मजबूत होने के अनेक कारण हैं। यथा : ट्रान्स-साइबेरियन रेलवे को दुहरा कर देना, आमूर-सीमा को पीछे से पश्चिम यूरोप से मिलाने के लिए द्वितीय रेलमार्ग का निर्माण आरम्भ कर देना, सघन उपनिवेशन तथा औद्योगिक और खनन-विकास। इनके सिवा अन्य कारणों से भी संघ की जड़ मजबूत हो गई।

किन्तु, मंचूरिया के पश्चिमी भाग में, वाह्य मंगोलिया में सोवियत-नीति दृढ और निश्चित थी। सन् 1936 ई० में जापान और जर्मनी ने कोमिण्टर्न-विरोधी समझौते पर हस्ताक्षर किया। प्रतीत होता था कि इसका तात्पर्य सोवियत-संघ को चारों ओर से घेर लेना है। चीन पर जापान ने खुलेआम आक्रमण कर

दिया। यह आक्रमण महान् दीवार के भीतर सन् 1937 ई० में हुआ। इससे अन्तर्मंगोलिया पर जापान का दबदबा बहुत बढ़ गया। जापान को बाह्य मंगोलिया की तरफ नहीं बढ़ने देना चाहिए था और सोवियत की गरदन को काटकर, जो केवल झील के कुछ पूर्व ट्रान्स-साइबेरिया के किनारे पड़ता है, समस्त सुदूरपूर्व में सोवियत को धमकाने की अवस्था में नहीं आने देना चाहिए था।

बाह्य मंगोलिया का विकास सन् 1921 ई० के बाद हुआ। तीन वर्ष तक यहाँ का छायाचित्र ऐसा था, जो खून को जमा देता था। प्रथम विश्वयुद्ध के पहले यह रूसी क्षेत्र में था, चीनी क्षेत्र में नहीं। किन्तु, मास्को ने इसके ऊपर चीन का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया था और मान लिया था, यह चीन गणतन्त्र का अभिन्न अंग है। किन्तु, सच्ची बात यह है कि सन् 1924 ई० में सोवियत-नियन्त्रण में एक मंगोल जन-गणतन्त्र की स्थापना हुई। सोवियत ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि युद्धनीतिक कुंजी को हाथ से नहीं निकलने देंगे। सन् 1936 ई० में इस गारण्टीवाली सन्धि की खुलेआम घोषणा हुई। यह गारण्टी प्रभावी था। सन् 1939 ई० के ग्रीष्म में बाह्य मंगोलिया और मंचूरिया की झगड़ालू सीमा के कारण कई मास तक लालसेना और जापानियों के बीच विशाल युद्ध चलता रहा। अन्त में, जापानी हार गये और उन्हें बहुत नुक़सान उठाना पड़ा। इसी समय लोगों को अनुभव हुआ कि मार्शल जुकोव प्रथम श्रेणी के टंक जनरल (महारथी) हैं। किन्तु, वैमनस्य स्थानीय ही रहा। सोवियत-जर्मन-मैत्री और यूरोप में द्वितीय महायुद्ध छिड़ जाने के कारण शीघ्र ही विराम-सन्धि हो गई।

दो वर्ष तक बेचैनी के साथ प्रतीक्षा होती रही। जापानी चीन में फँसे हुए थे। सोवियत, चीन को युद्ध की सामग्री से सहायता कर रहा था। फ्रांस के पतन होने पर वे दक्षिण में इण्डोनेशिया (हिन्द-एशिया) की ओर बढ़े। इधर लालसेना प्रशान्तसागर पर आने का दृढ निश्चय कर रही थी। बालटीक-तट पर जर्मनी के विरुद्ध सोवियत तैयारी कर रहा था। जापान ट्रान्स-साइबेरिया के मार्ग से महाद्वीप पारकर अपने मित्र रूस को सहायता पहुँचाता था। अप्रैल, 1941 ई० में जापान ने अपने पृष्ठभाग में सो० सा० ग० से तटस्थता की सन्धि की। स्यात् वह चाहता था कि दक्षिण सागर में पूर्ण युद्ध करे। इस सन्धि ने मंचुकों में जापान का स्थान मान लिया और जापान के बाह्य मंगोलिया में सावियत-संघ का स्थान। किन्तु, इसमें चीन को सहायता बन्द कर देने की प्रतिज्ञा नहीं थी।

दो मास के बाद हिटलर ने अपनी सेना पूर्व दिशा की ओर बढ़ाया। अक्तूबर, 1941 ई० में मास्को का भाग्य सन्तुलित था। ऐसा प्रतीत होता था कि उसके सुदूरपूर्वी मित्र कहीं अपने शत्रु की पीठ में छुरा न भोंक दें। दो मास के बाद जापानी वायुसेना ने पर्ल-हार्बर पर बम बरसाये, व्लाडिवोस्तक पर नहीं।

सप्तम अध्याय

पश्चिम

1. रूस तथा यूरोप :

गत सौ वर्षों तक रूस प्रतिग्राहक ही रहा, यह मोटे तौर पर कहा जा सकता है। पहले तो विजयन्त-साम्राज्य और स्टेपीज-जनों से यह प्रतिग्रहण करता रहा। फिर, पन्द्रहवीं शती में पश्चिम से बहुत छोटे पैमाने पर, किन्तु महान् पीटर के समय से बहुत बड़े पैमाने पर इसने प्रतिग्रहण किया। गत सौ वर्षों में रूस ने अपनी महती प्रतिग्राहकता जारी रखी, किन्तु उसने दिया भी बहुत। उसने विश्व के महान् साहित्य को एक साहित्य दिया। संगीत और नाट्यकला में उसकी देन महान् है। विज्ञान के सर्जन-कार्य में इसका अंश उत्कृष्ट है। अच्छा हो या बुरा, उसने फ्रांस की क्रान्ति के उत्तराधिकारी के रूप में सोवियत-क्रान्ति दी, जिसकी नूतन त्रिमूर्ति है—साम्यवाद, एकदलीय राज्य तथा आर्थिक योजना।

साम्यवाद की उत्पत्ति पश्चिम से हुई। मार्क्स और इंजेल ने इसे जन्म दिया। अक्तूबर-क्रान्ति अपने दर्शन और अपील में अन्तरराष्ट्रीय है। किन्तु, जो सबसे बड़ी विजय हुई है, वह है, रूस में क्रान्ति और रूसी साम्यवाद। अतः साम्यवाद के अन्तरराष्ट्रीय प्रभाव दो प्रकार से पड़े। एक तो इसे पुनः यूरोप और संसार में निर्यात किया गया। इस मार्क्सवाद को लेनिन ने सूत्र-रूप दिया। सन् 1919 ई० के प्रारम्भ में लेनिन ने कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल (विश्व-साम्यवादी) की स्थापना की और साम्यवादी अन्तरराष्ट्रीय के माध्यम से इसका प्रचार किया। दूसरी बात यह है कि यह खासकर रूसी निष्पत्ति का निर्यात हो गया है।

प्राचीन रूस का सामाजिक और धार्मिक विचार मसीहा की सार्वभौम भावना और विचारों के ही समान थे। इसका तत्त्व नैतिक था और सामाजिक न्याय के प्रति इसकी अन्तर्भास अपील थी तथा नूतन विश्व में यह मनुष्य को नया बना

देता है। अतः, मार्क्स का साम्यवाद रूस में व्याप्त हो गया। अनेक लेखकों ने रूसी साम्यवादी दल में यह विशेषता पाई है कि यहाँ व्यक्ति समष्टि में घुल-मिल जाता है। इसका अनुशासन योगपूर्ण है। सिद्धान्तों के प्रति इसकी भावना प्राचीन सनातनी गिरजाघरों से मिलती-जुलती है। ये ही गिरजाघर शतियों से इसके जीवन के आधार रहे हैं। खैर, नूतन क्रान्तिकारी रूस ने विश्व को शुद्ध कर दिया, इसका पुनर्निर्माण किया तथा अतीत की यातनाओं से इसका उद्धार किया।

गलियों में क्रान्ति का पग बढ़ाते चलो
अहंकारियों का सिर कुचलते चलो
हम द्वितीय प्रलय की बाढ़ हैं
विश्व को संवर्त्तक मेघ उमंगों से साफ करेंगे।

सन् 1918 ई० के बाद एक दशक तक मार्क्स की विश्वक्रान्ति के संवाद ने संसार के अनेक भागों में एक वृहद् समस्या उत्पन्न कर दी और अन्तरराष्ट्रीय साम्यवादी रूस की वैदेशिक नीति में एक प्रधान अंग बन गई। इन दोनों ने सर्वत्र भयानक अनवरत विवाद उपस्थित कर दिया है। बोलवेशिक-खतरे का प्रयोग अनेक भागों में किया गया है। नात्सियों ने इसका विशेष प्रयोग किया, न कि केवल अब सन् 1943 ई० में ही। नात्सी तथा अन्य लोगों ने इन्हें उग्र-सेमेटिक-विरोधी बतलाया। इसका कारण यह था, बोलशेविक क्रान्ति तथा तज्जनित फल एक अन्तरराष्ट्रीय यहूदियों के दल का हथकण्डा था। यह सत्य है कि रूसी यहूदियों ने सन् 1917 ई० के पहले रूसी क्रान्तिकारी आन्दोलनों में प्रमुख भाग लिया तथा क्रान्ति के प्रारम्भ के दिनों में अधिकांश बोलशेविक नेता यहूदी ही थे। यह भी सत्य है कि गत पन्द्रह वर्षों में सोवियत-संघ में यहूदियों ने बहुत कम उच्च स्थान प्राप्त किया है। यह निर्विवाद है कि रूस की क्रान्ति को सफल बनाने का श्रेय मुट्ठी-भर विभिन्न प्रकार के यहूदी समाजवादियों को नहीं है।

दूसरी तरफ श्रम तथा समाजवादी दलों में और साम्यवादियों में सतत संघर्ष चलता रहा है। सन् 1935 ई० के बाद यह संघर्ष कुछ मन्द पड़ गया, जब अन्तरराष्ट्रीय साम्यवादी संयुक्त मोर्चे की शिक्षा दे रहा था और राष्ट्र की सुरक्षा के पक्ष में था। किन्तु, सितम्बर, 1939 ई० में नीति पलट गई और मित्र-देशों में साम्यवादी दलों ने जून, 1941 ई० तक अन्तर्ध्वंस की चाल अपनाई। अतः, इससे उग्र उत्तेजना का फैलना स्वाभाविक था। जून, 1943 ई० में अन्तरराष्ट्रीय

साम्यवादी भंग कर दिया गया। इस पग का परिणाम निकट भविष्य में या आगे चलकर जो हो, किन्तु यह सम्भव है कि मार्क्स के साम्यवाद का अन्य देशों में उतना प्रभाव पुनः निर्यात से नहीं पड़ा है, जितना एक देश में समाजवाद के उदाहरण का प्रभाव पड़ा है। यह खासकर सोवियत-संघ में रूसियों की विजय है।

अक्तूबर-क्रान्ति की विजय को विश्व में करोड़ों लोगों ने चाण्डालों, बढ़इयों और कहारों की विजय समझी। इन्होंने दिखा दिया कि किस प्रकार महान् शक्तिधारियों को गद्दी से हटाया जा सकता है तथा प्रचण्ड कठिनाइयों का सामना करते हुए कैसे युद्ध में विजय प्राप्त का जा सकती है। यह युद्ध विशेषाधिकारियों तथा गद्दी जमाये हुए लोगों के प्रतिकूल था। त्रास, चेका, बन्दी-शिविर एवं धर्मघात के विषय में सत्यासत्य का ठीक वर्णन नहीं किया जा सकता। निम्नवर्ग के एकतन्त्र देश में शासन का रूप और चरित्र भले ही शंकास्पद और प्रतिकारक हो, किन्तु अब यह उनका अपना देश था। यह देश कोटि चाण्डालों का था। उन्हें इसे बनाने या बिगाड़ने दें। कर्मकारों तथा कृषकों के इस गणतन्त्र के प्रति सामान्यतः सहानुभूति थी, किन्तु इसका सूक्ष्म परीक्षण अभी नहीं हुआ था। गत युग (12 वर्ष) से यह धारणा और भी दृढ हो गई है कि एक नूतन समाज और राष्ट्र ने जन्म लिया है। भले ही इसके निर्माण में भयानक मूल्य चुकाना पड़ा हो और इसके तरीके नृशंस हों। कृषि का दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान है। भले ही इस क्रान्ति को लादने में खून की नदी बही हो। पंचवर्षीय योजनाओं में न्यूनता भले ही हो, किन्तु इन योजनाओं ने रूस की उत्पादन-शक्ति को एकदम पलट दिया। अन्तिम दो वर्षों में नूतन सोवियत रूसी राष्ट्र ने एक विशाल सेना का संगठन सफलतापूर्वक किया। यह सेना सभी प्रकार अर्वाचीन है। इसकी रग-रग में नूतन सोवियत राष्ट्रभक्ति प्रवाहित है। इस सेना ने विश्व के महान् शक्तिशाली सैनिक राष्ट्र की चोटों का वीरता से मुकाबला किया, जिसे कोई भी यूरोपीय राष्ट्र सहन नहीं कर सकता था।

सोवियत-राष्ट्र की दो मुख्य विशेषताएँ हैं : दल का अभिनय तथा पूर्ण योजना। इनसे यूरोप और विश्व विभिन्न रूपों में प्रभावित हुआ है। रूस के साम्यवादी दल के कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन पहले (द्वितीय अध्याय) किया जा चुका है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि दल स्वयं एक प्रकार से मिथ्या संज्ञा है। लेनिन की योजना के अनुसार यह कठोर विजयी पुरुषों और महिलाओं की शिक्षित सेना है। इन्हें शासन-प्रशासन तथा विशाल अर्थ में दूसरों को समाजवाद और अन्ततः साम्यवाद की शिक्षा देने का प्रशिक्षण मिला है और वे इसी भावना से पूर्ण हैं। एक अँगरेज दर्शक लिखता है : 'दल धर्म का पुरोधा है। यह धर्म इसी विश्व का है, न कि परलोक का।'

सोवियत का एकदलीय राष्ट्र समग्रवादी है। शिक्षा, प्रचार (अब कला भी), मुद्रणालय या अखबार, बेतार, स्वास्थ्य और विज्ञान की योजना अवश्य बने और उन-पर कड़ा नियन्त्रण हो। युवकों को साँचे में ढाला जाय, उनका निर्माण हो और चरित्र बनाया जाय। उन्हें यथासम्भव सुअवसर और प्रेरणा मिले। नवम्वर, 1917 ई० के पहले भी बोलशेविकों ने नूतन पीढ़ी पर ध्यान दिया था। अस्थायी सरकार उखाड़ फेंकने के वाद एक वर्ष के भीतर ही उन्होंने युवा साम्यवादी परिषद् की स्थापना राष्ट्रीय पैमाने पर की थी। सन् 1936 ई० में इसका पुन: संगठन हुआ। किन्तु, यह केन्द्रीय साम्यवादी दल का सदा अनुसेवी बनने को तैयार नहीं था।

अपितु, एकदलीय राष्ट्र के लिए यह आवश्यक है कि अपने आर्थिक जीवन के निर्वाह के लिए योजना वनाये तथा उसे संगठित करे। सोवियत-क्रान्ति का व्यावहारिक फल इतना विश्वव्यापी हुआ और आर्थिक योजना इतनी व्यापक हो गई कि प्रथम विश्वयुद्ध में अनेक शत्रु देशों ने तथा वेमर-गणतन्त्र के जर्मनी ने भी इस योजना को अपनाया, भले ही इसके सिद्धान्त उतने व्यापक व हों। इसका इतिहास तथा सोवियत-संघ में इसकी प्रमुख विशेषताओं का चित्रण सोवियत में औद्योगिक क्रान्ति के वर्णन के अवसर पर किया जायगा।

क्रान्ति के सौ वर्ष पहले तक रूस यूरोप से बार-बार प्रतिग्रहण ही करता जाता था, जैसा कि इस अध्याय के आरम्भ में कहा जा चुका है; किन्तु अब सर्वप्रथम इसने प्रतिदान करना भी आरम्भ किया। उसने विश्व को एक महान् साहित्य दिया। संगीत, नाटय-कला तथा विज्ञान के सर्जनात्मक क्षेत्रों में इसका गहरा हाथ है। सारे संसार ने कम-से-कम महान् रासायनिक मेण्डेलेयेव (सन् 1834–1907 ई०) और महान् मनोवैज्ञानिक और रोगवेत्ता पावलोव (सन् 1849–1936 ई०) का नाम सुना है। समस्त विज्ञान-जगत् ने कम-से-कम तीन प्रतिनिधियों का नाम सुना है। यथा : युक्लिडीय ज्यामिति के परिवर्त्तक लोवचेवस्की (सन् 1793–1865 ई०), वनस्पति-शास्त्रविद् तिमरोजेव (सन् 1843–1920 ई०) तथा भौतिकी के ज्ञता जौफे (जन्म : सन् 1880 ई०)। सोवियत-रूस ने वैज्ञानिक शोध में प्राचीन रूस से महान् परम्परा विरासत में पाई। योग्य केन्द्रों में शिक्षा और प्रशिक्षण पूर्णरूप से पश्चिम यूरोप के ही समान था। किन्तु, ऐसे केन्द्रों की संख्या बहुत ही कम थी। वहाँ विज्ञान या अन्य विद्याओं का अनुशीलन इतने पैमाने पर सम्भव नहीं था। कुछ लोगों के सिवा अन्य लोग लाभ नहीं उठा सकते थे; क्योंकि उनके साधन अपर्याप्त थे। किन्तु, इसके ठीक विपरीत सोवियत-क्रान्ति ने वैज्ञानिक शोध को विशाल रूप में केन्द्रित किया और वैज्ञानिक विद्या और प्रशिक्षण का खूब प्रचार किया।

गत पचास वर्षों में रूस ने कला का रूप-परिवर्तन कर दिया। नाट्य-कला और रंगलीला तथा सिनेमा (छायाचित्र) में रूस ने अपूर्व ख्याति पाई। संगीत में रूस ने चेकोवस्की (सन् 1840–93 ई०) को जन्म दिया। यह इटली को भी मात करता था। यह रूस के संगीतकारों में महान् छलिया है। अँगरेजी-भाषा में भी प्रमुख तीन-चार संगीतकारों के मध्य इसका नाम है। गान और मर्सिया में यह अद्वितीय है, अतः इस क्षेत्र में रूस से बाहर इसका नाम नहीं है। यूगेने ओनेगिन का नाम नौटंकी में प्रसिद्ध है। रूस का लोकगान बहुत ही प्रिय रहा। इसके प्रवर्त्तक हैं—रिस्की-कोर्सकोव (सन् 1844–1908 ई०) तथा बोरोदिन (सन् 1834–87 ई०)। मुसोरगस्की (सन् 1839–81 ई०) तो एकदम मौलिक, चंचल और सच्चा मनीषी है। यदि किसी देश में संगीत की व्यापकता का मापदण्ड संगीत-निर्माताओं की संख्या ही मानी जाय, तब भी रूस ने प्रथम शती में ही विशाल संगीत का निर्माण कर लिया, भले ही उसका स्थान सर्वोच्च न हो। उदाहरणार्थ : ग्लिका (सन् 1804-57 ई०), बलकिरेव (सन् 1837–1910 ई०), ग्लाजुनोव (सन् 1865–1936 ई०) राचमानोव (सन् 1873–1943 ई०), स्क्रियाविन (सन् 1871–1915 ई०), स्त्राविनस्की (जन्म : सन् 1882 ई०), प्रोकोफिव (जन्म : सन् 1891 ई०), खचतुरियन (जन्म : सन् 1904 ई० तथा शोस्ताकोविच (जन्म : सन् 1906 ई०)।

रूस की उन्नीसवीं शती के संगीत को दो भागों में बाँटा जा सकता है : विश्वव्यापी तथा राष्ट्रीय। रूस का राष्ट्रीय संगीत यूरोपियन संगीत भी है; क्योंकि विना पश्चिमी यूरोप के संगीत-ज्ञान के इसे लिखना असम्भव था। किन्तु, इसमें अधिकांश बातें यूरोपीय नहीं है। इसमें वही गहराई, आंशिक गूढता, विभेद या सम्मिश्रण पाया जाता है, जो गत ढाई सौ वर्षों से रूसी-साहित्य में पुश्किन (सन् 1799–1837 ई०) से गोर्की (सन् 1869–1936 ई०) तक मिलता है। इस अनुपम शती में रूसी साहित्य ने विश्व के सभी देशों को मात कर दिया है, ऐसा बहुत लोग मानते हैं। यह शती है पुश्किन, लेरमोण्टोव, गोगल, तुर्गनेव, दोस्तोवस्की, टॉल्स्टाय और चेखोव की। इसके सिवा अन्य भी सितारे हैं, जो इन महान् ग्रहों से कुछ ही कम चमकीले हैं।

रूसी इतिहास की इस संक्षिप्त भूमिका में रूसी-साहित्य की प्रमुख विचारधारा या विकास के केवल सारांश से अधिक कुछ कहना सम्भव नहीं है। यहाँ केवल पश्चिमी यूरोप के सम्बन्ध में कुछ वर्णन करने का प्रयास किया जायगा कि पश्चिमी यूरोप का रूसी इतिहास की मूल समस्याओं पर क्या प्रभाव पड़ा है। गत सौ वर्षों में क्या आन्तरिक प्रतिद्वन्द्व चलता रहा, जिसके कारण क्रान्तिकारी आन्दोलन हुए।

उन्नीसवीं शती का रूसी-साहित्य आद्योपान्त रूसी है, किन्तु यह यूरोपीय भी है। प्रायः सभी रूसी लेखक फ्रेंच, जर्मनी और अँगरेजी-साहित्य में निपुण थे। कुछ

लोगों ने इन साहित्यों को मूल रूप में और कुछ लोगों ने अनुवाद के रूप में अध्ययन किया था। स्यात् ही किसी अन्य देश में अनुवाद की परिधि या स्तर इतना उच्च होगा जितना रूस में हुआ। ग्रीक और लातिन इस शती के प्रारम्भिक चालीस वर्षों में केवल उच्च वर्ग के विद्यालयों में सीमित था, और पुनः चतुर्थ पाद में भी। इसी प्रकार, रूसी सामाजिक विचारधारा तथा दर्शन का विकास भी यूरोपीय तत्त्वचिन्तकों के कारण ही हुआ। इनपर भी पाश्चात्य विचारधाराओं का ही प्रभाव मुख्यतः पड़ा। इसमें एक महान् अपवाद भी था सनातनी और ग्रीस के पदारियों का प्रति-प्रभाव।

यह ठीक है कि रूसी-साहित्य महान् यूरोपीय विरासत का अंग है, तो भी रूसी-साहित्यों में और खासकर रूस के सामाजिक और धार्मिक विचारधारा में सदा से यह गूढ भावना रही है कि रूस यूरोप नहीं है और यह यूरोपीय नहीं बनेगा। महान् पीटर ने क्या स्वयं ही नहीं कहा था : 'कुछ दशकों के लिए हम यूरोप को अपनायेंगे और तब हम बाद में उससे मुख मोड़ लेगें।' रूसी सभ्यता को अनेक लोग स्वतन्त्र सभ्यता समझते हैं। इस सभ्यता की मूल भित्ति है—सनातनीपना या जनता की विचित्र भावना या दोनों का सम्मिश्रण तथा इनका उज्ज्वल भविष्य। यूरोप के सहसा वद्र्धमान अथिक और बौद्धिक संघात का प्रभाव रूस पर अधिक प्रभावशाली होता जा रहा था। ये शक्तियाँ थी—व्यक्तिवादी और वैयक्तिक सम्पत्ति की पाश्चात्य धारणा, तार्किक और वैज्ञानिक विचार-मौलिकता, शासन और समाज के प्रजातन्त्रीय और सूक्ष्म सिद्धान्त, जिनका प्रचार अमेरिका और फ्रांस की क्रान्तियों ने किया; औद्योगिक क्रान्ति, पूँजीवाद तथा अबन्ध-नीति के सिद्धान्त और प्रभाव, जिन्होंने अप्रतिहत प्रतिस्पर्धा और वर्ग-संघर्ष उत्पन्न कर दिया; इन सबका प्रभाव एक बार ही पड़ने लगा। साथ ही, लोग इनकी खूब आलोचना, विरोध और भर्त्सना भी करते थे और यह समझते थे कि यूरोपीय भविष्य की ऐतिहासिक उन्नति में ये अनिवार्य हैं। अनेक रूसी लेखकों और चिन्तकों ने इसका घोर विरोध किया और विभिन्न प्रकार से किया। यह केवल स्लाव-प्रेमियों, ग्रीक, स्लाव और रोमानव-जर्मन लोगों की ही कोई खास विशेषता न थी। स्लाव-प्रेमी का दृष्टिकोण पूर्व और पश्चिम की प्रतिपक्षता पर आधृत था। अन्य लोग सनातनी परम्पराओं में शराबोर थे और उदारता के विरोधी थे।

यह सत्य है कि सन् 1830,1840 और 1850 ई० के लगभग पाश्चात्यकारी सदा यूरोप की ओर ही देखते थे, जो रूस के लिए मानदण्ड हो, किन्तु यह ध्यान देने की बात है कि हरजेन (जन्म: सन् 1812ई० निर्वासित : सन् 1847ई०, मृत्यु : सन् 1870 ई०) को सन् 1848 ई० की क्रान्ति के बाद ही घोर निराशा हो गई, यद्यपि वह सबसे

अधिक। पाश्चात्यीकरण का समर्थक था। उसने संसदीय प्रणाली के अधूरे कार्यों और पाश्चात्य जीवन के बुर्जुआ शिष्टाचार की भर्त्सना की। अन्त में, उसने पश्चिम से मुख मोड़ लिया, यद्यपि वहीं उसने अपना अन्तिम समय बिताया। वह अपनी जन्मभूमि पूर्व की ओर श्रद्धा और विश्वास से अवनत था तथा उसे आन्तरिक खुशी थी कि वह रूसी है। वह रूसी कृषक जनता तथा उसके सामूहिक ढोरों का ध्यान रखता था।

जनप्रिय तथा सामाजिक क्रान्तिकारियों की कालान्तरवर्त्ती पीढ़ियों ने रूस को यूरोप का अनुगामी बनना स्वीकार नहीं किया। अनेक ने तो पाश्चात्य ढंग के औद्योगिक विकास का विरोध किया। वे सभी कृषकों पर ही अटूट श्रद्धा रखते थे, जो रूस के लिए रक्षाकवच थे और वे ही केवल रूस को विश्व का आदर्श बना सकते थे। उन्हें भय था कि रूस पाश्चात्य ढंग पर पूँजीवादियों के विकास से बच सकेगा कि नहीं। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में प्रायः सभी शिक्षित वर्ग ऐसा ही सोचते थे। केवल सामाजिक प्रजातन्त्रवादी लोगों ने ही खुल्लमखुल्ला मार्क्स के बताये विकास-मार्ग का स्वागत किया। इनके मत में क्रान्तिकारी रूस और क्रान्तिकारी यूरोप का ध्येय एक ही था। इनकी संख्या सन् 1880 ई० से बढ़ने लगी। किन्तु, ये लोग भी समझते थे कि करोड़ों अशिक्षित किसानों के कारण रूस की अपनी विशेषता है, तथा पाश्चात्य बुर्जुआ-सभ्यता के विरुद्ध आवाज बुलन्द करने का कोई साहस नहीं करता था।

संस्कृति की धारणा को लोग शंका की दृष्टि से देखते थे और कुछ लोग इसका प्रत्याख्यान भी करते थे। जहाँतक संस्कृति का सम्बन्ध विज्ञान से है और जो मनुष्यमात्र की आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए यत्न करता है, उसे लोग स्तुत्य समझते थे। सन् 1860 और 1870 ई० के शून्यवादी (निहिलिस्ट)[1], जो राजनीतिक दृष्टि से उग्र या समाजवादी क्रान्तिकारी थे, अपने भौतिकवाद तथा प्राकृतिक विज्ञान की उपासना में वे दुराचारी नास्तिक नहीं थे। किन्तु, वे उलटे कट्टर धर्म के तपस्वी थे, भले ही वे बाकुनिन से सहमत हों और गिरजाघरों की निन्दा करते हों। वे गिरजाघरों को स्वर्ग की एक छोटी दूकान समझते थे। दो शून्यवादियों का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। वे पुजारियों के पुत्र थे। सनातनी पाठशालाओं में धर्म के लिए उनका लालन-पालन हुआ था। तीसरा व्यक्ति उदार कैथोलिक मत को मानता था और उसे पुरोधा बनने का प्रशिक्षण मिला था। जिस प्रकार

1. तुर्गनेव (सन् 1818–83 ई०) ने सर्वप्रथम 'निहिलिस्ट' शब्द का आविष्कार अपने उपन्यास 'पिता और पुत्र' में किया। यह रूस का महाविवादास्पद उपन्यास है। इसमें स्वच्छन्द विचारक क्रान्तिकारी युवा और प्राचीन परम्परा के पोषकों में खाई या अलगाव का वर्णन है।

कट्टर सनातनी को संस्कृति तथा कला का प्रतिनिधि नहीं माना जा सकता, उसी प्रकार शून्यवादी तथा विभिन्न रूसी उग्रवादी तथा क्रान्तिकारी विचारों के विषय में भी कहा जा सकता है।

बाइलेन्स्की (सन् 1811–48 ई०) महान् आलोचक तथा पाश्चात्यवादी था। उसकी बातें दिल पर जम जाती थीं। रूस के बुद्धिजीवियों के सम्मुख एक समस्या उत्पन्न हो गई थी, जब वह विस्मय से कहता है: 'मैं आनन्द नहीं चाहता, भले ही यह दान में मिले। मुझे तो अपने सगे भाइयों में प्रत्येक को मानसिक शान्ति चाहिए। ये ही मेरी हड्डी-की-हड्डी हैं और मेरे मांस-के-मांस हैं। कुछ लोग कहते हैं कि 'अशान्ति की एक परिस्थिति है। यह हो सकता है कि संगीत-प्रेमियों के लिए भले ही यह लाभप्रद और आनन्ददायक हो, किन्तु जिनके भाग्य में जीवन की अशान्ति ही बदी हो, उनके लिए ऐसा कहना उचित न होगा।' क्रोपोटकीन अपने आत्मचरित्र[1] में लिखता है: 'इन उच्च आनन्दों को भोगने का मुझे भला क्या अधिकार है, जबकि हमारे चारों ओर केवल दुःख का ही साम्राज्य है और लोग रोटी के टुकड़े के लिए संघर्षरत हैं।' (क्रोपोटकीन ने हिमयुग की दक्षिणी सीमा पर एक शोध-ग्रन्थ लिखा था)। दोस्तोवस्की के 'धनाढ्य' (दि पजेजड[2]) में वेरखोवेंस्की भी वही तान भरता है: 'संस्कृति जाय चूल्हे में। संस्कृति की पिपासा अमीरों की पिपासा है।' टॉल्स्टाय (सन् 1828–1910 ई०) भी ऐसा ही मत प्रकट करता है: 'सारा शृंगाररस या शेक्सपीयर के विषय में सूक्तियों से कहीं अच्छा और आवश्यक एक जोड़ा जूता है।' अतः, उसने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में अधिकांश यूरोपीय सभ्यता को प्रत्याख्यात किया। वह कहता है कि कला का मुख्य उद्देश्य धर्म-दर्शन तथा मानव-मिलन है। रूसी किसानों की सेवा में ही उसने अपनी अनन्त सर्जन-शक्ति लगा दी। उसकी अक्षय सक्रिय देन का यही एक तर्क है।

यूरोप और उसकी सभ्यता का प्रत्याख्यान और शंका-प्रवृत्ति का मूल कारण है, रूस में सामाजिक न्याय की पिपासा। कथित सभ्यों तथा कथित असभ्यों के मध्य खाई का ज्ञान सबको था। कुछ अल्पसंख्यक शिक्षित तथा असंख्य अनपढ़

---

1. क्रोपोटकीन (सन् 1842–1921 ई०) राजकुमार का जन्म और पालन मास्को के धनी कुल में हुआ। सन् 1899 ई० में अँगरेजी में इसने 'क्रान्तिकारी का आत्मचरित' लिखा। इसने क्रान्तिकारी युवकों का साथ दिया। वह सन 1874 ई० में कैद हो गया। दो वर्ष बाद भाग निकला और विदेशों में, खासकर इंगलैण्ड में रहा। सन् 1917 ई० में रूस लौटा।

2. इसका प्रकाशन सन् 1871 ई० में हुआ। क्रान्तिकारियों के विचार और धारणाओं का यह खासा गूढ अध्ययन है।

जनता थी। इससे और भी उत्तेजना मिली। एक राष्ट्रवादी रूसी ने पराकाष्ठा पर पहुँचकर (सन् 1874 ई०) कहा था : 'रूसी जनता की दो सतहें हैं। विशेषाधिकारों के मामले में वे एक दूसरे से इतने विलग नहीं, जितने मौलिक विभेद के कारण विलग हैं। प्रत्येक इतिहास के विभिन्न काल के प्रतिनिधि हैं। उच्चवर्ग उन्नीसवीं शती का प्रतिनिधि था तथा निम्नवर्ग नवीं शती का।' एक विरोधी फ्रांसीसी आलोचक (सन् 1839 ई०) की भी इसी प्रकार अतिशयोक्ति है : 'एक ओर वारसाई का प्रासाद है और दूसरी ओर रूस की झोपड़ी।'

अलेक्जेण्डर द्वितीय के समय सन् 1860 ई० के लगभग पश्चिमी यूरोप के ढंग पर कुछ सुधार होने लगा तथा शिक्षा का प्रसार भी हुआ। इससे लोग समझते थे कि धीरे-धीरे यह खाई भर जायगी, किन्तु इसकी विशाल समस्या तथा रूस की राजनीतिक परिस्थिति से अनेक को हताश होना पड़ा। अनेक पढ़े-लिखे यही समझते थे कि विना क्रान्ति के काम नहीं चलेगा। दूसरे लोग लाचार थे। उनके पास साधन का अभाव था। समाज में उनका हीन स्थान था। अतः, वे अपने को बेकार समझकर उसी धारा में बहते जा रहे थे, चाहे जिधर चले जायँ। रूसी-साहित्य में इनका विशद वर्णन है। विभिन्न प्रकार से इनका चित्रण किया गया है। गोनचारोव (सन् 1812–91 ई०) के प्रकाशित 'ओवलोमोव' (सन् 1858 ई०) उपन्यास में इसका बहुत ही भव्य वर्णन है। चेखोव (सन् 1806–1904 ई०) के रूपक और गल्प-कथाओं में भी इसका सुन्दर वर्णन है। तीस वर्ष की अवस्था में पहुँचने के पहले ही इसका उसे पूरा विवेक था कि 'इससे मेरी आत्मा कलुषित होती है तथा मेरा वैयक्तिक जीवन भी कलुषित होता है।'

इस प्रकार की निष्क्रियता या निराशावादिता, राजकीय शासन तथा आर्थिक और सामाजिक परिवर्त्तन की एक प्रतिक्रिया थी। पढ़े-लिखे अमीरों का हृदय-पट खुल गया था। इसमें कुछ निम्नवर्ग के लोग भी थे। वे केवल आतंकपूर्ण षड्यन्त्र ही नहीं, बल्कि अपने और विशाल जनता के मध्य की खाई भी भर सकते थे और उन्हें सपाट करने के योग्य थे। वे अपने अपरिपक्व क्रान्तिकारी उत्साह से लोगों को भड़काकर आगे बढ़ा सकते थे। सन् 1873–75 ई० में ये क्रान्तिकारी युवक स्वयं गाँवों में जनता के पास पहुँचे। वहाँ जाकर वे उनसे तथा उनके मालिकों से हिल-मिल गये तथा उनके स्वामियों को इस बात से परिचय कराया तथा उन्हें बतलाया कि सच्चा क्रान्तिकारी सामाजिक स्वार्थ किस बात में है। इस आन्दोलन में संयोग का एकदम अभाव था तथा इनका कार्यक्रम एकदम अस्पष्ट तथा विभिन्न था। इसका सामान्य तत्त्व था कि भूमि उनकी

होगी, जो इसे जोते-बोयेंगे या इसपर काम करेंगे। भूस्वामी को निकाल बाहर किया जायगा तथा कम्यून (समाज) सामाजिक आदर्शलोक का आधार होगा। इसी में पश्चिम और रूस की विभिन्नता किसी प्रकार विलीन हो जायगी।

जो लोग जनता के समीप पहुँचते थे, वे स्वयं ही स्वीकार करते थे कि किसान उनसे घबड़ाहट, शत्रुता या उदासीन भाव से मिलते थे। किसानों के बीच आन्दोलन एकदम असफल रहा। किन्तु, रूस के सभी विचारकों पर इसका गहरा असर पड़ा। सरकार पर भी कुछ कम असर नहीं पड़ा। सरकार थरथरा गई और सबको कैद करने लगी और सबपर मुकदमा चलाने लगी। इससे जनमत और भी खराब हो गया। नौकरशाही और अधिकांश शिक्षित जनता में मतभेद बढ़ता ही गया। शिक्षित जनता अभी तक क्रान्तिकारी नहीं थी, किन्तु सरकार के विरोधियों से इसे पूर्ण सहानुभूति थी।

जनसम्पर्क में विफल होने के कारण जनवादी (नरोदनिकि) दल में फूट उत्पन्न हो गई। एक छोटी शाखा ने एक षड्यन्त्री संगठन स्थापित किया। इस संगठन का नाम था 'जनमत'। यह सरकार के विरुद्ध आतंकवादी आन्दोलन करता था। इसने सन् 1881 ई० में अलेक्जेण्डर द्वितीय की हत्या करवा दी। शेष नरोदनिकि अपने कृषि-समाजवाद को सुधारने में लगे थे। सन् 1901 ई० में उन्होंने अपना सामाजिक क्रान्तिदल किसी प्रकार संगठित किया। यह दल सन् 1905 और 1917 ई० में और दलों की अपेक्षा किसानों से पूर्ण सम्पर्क रखता था। अतः, बोलशेविकों का सबसे भयानक प्रतिद्वन्द्वी यही था।

रूस के सभी दल, सभी मतों के लोग यह समझते थे कि अन्ततः क्रान्ति, सुधार या एकतन्त्री सरकार का निर्णय दस करोड़ कृषक ही करेंगे। सन् 1917 ई० तक ये अधिकतर अशिक्षित थे। रूस का एक अध्ययनशील विद्यार्थी लिखता है: 'रूस की कृषक-जनता समुद्र के समान अनन्त है। इसकी विशेषताएँ समुद्र के समान स्थिर तथा प्रभावकारी हैं।' इस महान् और विशिष्ट तत्त्व का विशेष अर्थ नहीं लगाना एक असम्भव चीज है। काले लोगों तथा उन कुछ लोगों के बीच का अन्तर, जिनके लिए यूरोपीय संस्कृति थी, स्पष्ट था। सन् 1815 और 1917 ई० के मध्य एक शती में भी शिक्षित-संस्कृत व्यक्ति केवल भूमिधर रईसों के कुल से उत्पन्न हुए थे। इन शिक्षित-संस्कृतों की संख्या अगणित हो गई थी। दोनों की दुनिया में विषमता बढ़ती ही जाती थी। शिक्षित अल्पसंख्यकों के मध्य भी विषमता थी और क्रान्ति आँख के सामने नाच रही थी। रूस की विशालता तथा गहराई से ही पता लग जाता है कि रूसी विचारधारा कितनी तीव्रतम तथा भयंकर है तथा उसमें कितना अन्तर्भास है।

रूस की एक अपनी दुनिया थी और रूस यूरोप का अंग था। दोनों का मूल और मानदण्ड विभिन्न था। उन्नीसवीं शती के अन्त तक यह विभेद और भी विषम हो गया। शिक्षित अल्पजन स्वयं आपस में घोर मतभेद रखते थे। सभ्य शासन का आधार अभी तक पहले की ही तरह यूरोपीय निरंकुशवाद ही समझा जाता था और इसकी खूब गहरी आलोचना होती थी। जारशाही, नौकरशाही स्वतन्त्र शासन की पद्धति थी। इसमें बुराइयाँ भले ही हों, किन्तु यह यूरोपीय शासन की प्रतिनिधि थी। यूरोप, प्रतिक्रिया के कारण, रूस का शत्रु था। रूसी जनता के सुरम्य अतीत तथा सच्ची भावना के लिए यूरोप एकदम विदेशी था।

अट्ठारहवीं शती में परिस्थिति एकदम विभिन्न थी। उस समय जारशाही तथा यूरोपीय सभ्यता एक तरह से विशेषाधिकारी उच्चवर्ग के हाथ में थी। महान् पीटर के विरोधी होने पर और अज्ञात जनभीति के बावजूद अट्ठारहवीं शती को, मोटे तौर पर अधिकांश उच्चवर्ग को यूरोपीय बनाने का प्रयास कहा जा सकता है। प्रबुद्ध काल की संस्कृति का आधार था—विशेषाधिकार तथा निरंकुशता अथवा कम-से-कम कुलीन तन्त्र। इस बात में यूरोप रूस को कुछ अधिक न दे सका और रूस की शिक्षित अल्पजनता मूलतः अलग ही होती गई। कुछ काल के बाद उदार निरंकुश शासन को रूस में खूब उच्च स्थान मिला; क्योंकि उस समय यूरोपीय सभ्यता से टक्कर लेनेवाला कोई उग्र विचार नहीं था।

फ्रांस की क्रान्ति तथा औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव से पलड़ा ही पलट गया। नूतन यूरोपीय मानदण्ड तथा सिद्धान्त से रूस के कुछ ही शिक्षित वर्ग प्रभावित हो सके। किन्तु, एकदल सरकार और नौकरशाही अधिकतर प्राचीन यूरोप से ही चिपकी रही। शिक्षित मत से ये अधिक-से-अधिक दूर होते जा रहे थे। शिक्षित जनता इन्हें सरकारी रूस या जारशाही का हथकण्डा, या विजयन्त-जर्मन-सरकार बतलाती थी। अतः, सन् 1860 ई० के बाद 50 वर्षों तक शिक्षित जनमत बँटता गया। मोटे तौर पर इन्हें तीन भागों में बाँटा जा सकता है: सरकार के समर्थक, उदार या विनम्र प्रगतिवादी (डूमा के वामकेन्द्र, जेमस्तवा के वामपक्ष, जिन्होंने सन् 1917 ई० में अस्थायी सरकार का निर्माण किया) तथा तृतीय विभिन्न सम्प्रदायों के समाजवादी और क्रान्तिकारी।

सोलहवीं और सत्रहवीं शतियों में परिस्थिति फिर भी विभिन्न हो गई। मस्कोवी के शासक और शासितों में महान् खाई थी। किन्तु, यह खाई आर्थिक और सामाजिक थी, न कि सांस्कृतिक। किन्तु, यूरोप सभी प्रकार से शासक और शासितों के लिए एकदम विदेशी था। मस्कोवी-सभ्यता की अपनी निश्चित एकता थी, भले ही

सत्रहवीं शती में उनमें फूट पैदा हो गई। कालान्तर में रूसियों ने मस्कोवी-सभ्यता की महत्ता और मानदण्ड के विषय में विभिन्न विचार प्रकट किये। किन्तु, ये सभी स्वीकार करते हैं कि इनमें एकरूपता थी। पीटर महान् के बाद कुछ ऐसी बातें हुईं, जिनसे रूस दो दुनिया में बँट गया। रूस में तीव्र गति से एक परम्परा चली आ रही थी। यह कुछ बातें सीधे आसमान से टूट पड़ीं या स्पष्ट दिख रही थीं, कहना कठिन है। इस विषमता में ही कुछ लोगों का मत है कि पीटर के काल और इस शती की क्रान्ति ही रूस के बुरे दिनों के मौलिक कारण हैं। यही कारण है कि रूसी शासकों में पीटर ही सबसे अधिक विवादास्पद है। भयानक इवन से भी वह अधिक विवाद का विषय है।

2. यूरोप तथा रूस :

पीटर ने क्या किया, जिससे मस्कोवी की आत्मा विदीर्ण हो गई? उसने छेनी-हथौड़े की चोट से उन तन्तुओं को चौड़ा कर दिया, जो सन् 1700 ई० की अर्द्धशती के पहले से पनप रही थी। पन्द्रहवीं शती के अन्त से ही मस्कोवी और यूरोप में सम्पर्क बढ़ रहा था। सन् 1650 और 1700 ई० के मध्य इस सम्बन्ध से प्रभाव बढ़ने लगा। सन् 1700 ई० के बाद प्रभाव की लोग नकल करने लगे। सन् 1800 ई० के बाद अवशोषण आरम्भ हुआ।

सोलहवीं और सत्रहवीं शतियों की मस्कोवी-सभ्यता मुख्यतः निरक्षर थी। यह विज्ञानशून्य थी। बौद्धिक निपुणता में वे बहुत पीछे थी। किन्तु, कला के क्षेत्र में, सीमित रूप में ही सही, यह बहुत सक्रिय थी। यह निरक्षर इस अर्थ में थी कि साक्षरता को लोग व्यावसायिक कार्य के लिए विशिष्ट समझते थे। पादरियों और प्रशासकीय कार्यों के लिए यह कुछ हद तक आवश्यक था (यद्यपि सभी पादरी साक्षर न थे)। विद्यालय जहाँ कहीं थे, परिवार में या मठों में थे। ईश्वर सर्वव्यापी है तथा सनातन गिरजा ही राष्ट्रीय धर्म माना जाता था। धर्म ही मनुष्य के दृष्टिकोण और कार्यों को ढाँचे में ढालता था। सामाजिक विषमता तथा सीमा का प्रभाव होने पर भी मस्कोवी-जीवन में एक प्रकार की एकता थी। जीवन के प्रति सामान्य भावना इसका आधार था। सनातन धर्म ही एक सामान्य नैतिक आधार था। संस्कारों के स्थान और अर्थों की सामान्य स्वीकृति थी। समारोह और परम्पराएँ सामान्य थीं और एक सामान्य राष्ट्रीय गौरव था।

मस्कोवी-जीवन-पद्धति का विकास विजयन्त तथा स्टेप के कारण हुआ और स्लाव-संस्थाओं तथा शिक्षा पर इसका प्रभाव पड़ा। सत्रहवीं शती तक वास्तुकला के

सिवा अन्यत्र पाश्चात्य संस्कृति का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सका था। किन्तु, पाश्चात्य तकनीकी और आर्थिक प्रभावों से यह वंचित नहीं रह सका। बहुत पहले से ही इनका प्रभाव चल रहा था।

महान् इवन (महाराजकुमार : सन् 1462–1505 ई०) ने रूस के इतिहास में पश्चिम से नाता जोड़कर एक नये काल का उद्घाटन किया। उसने पश्चिम से विविध प्रकार के सम्बन्ध जोड़े। उसके द्वितीय विवाह का बहुत प्रभाव पड़ा। सन् 1472 ई० में उसने पैलिओलोगस से विवाह किया। तबसे पश्चिम से तकनीकी तथा भौतिक ज्ञान का अनुकरण करना एक सामान्य नीति हो गई। अनेक दूत तथा साहसी रूस में पहुँचे और उनके कारण पाश्चात्य देश मस्कोवी से खूब परिचित हो गये।

चिरकाल तक यह अनुकरण छोटे पैमाने पर, खासकर राज्य की सेना और न्यायालय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही चलता रहा। महान् इवन ने इटली से कुछ अभियन्ताओं और वास्तु-कलाकारों को मास्को की पुनः किलेबन्दी और इसे अलंकृत करने के लिए बुलवाया। अरस्तू द फियोरोवन्ती इस दल का नेता था। मास्को में जो भवन बने, उनपर उनके कार्यों का बहुत प्रभाव पड़ा। क्रेमलिन की विचित्र वास्तु-कला का प्रादुर्भाव हुआ, जो अंशतः ।कला, अंशतः गिरजाघरों के चैत्य और अंशतः प्रासाद-पंक्ति थी। अब कारीगरों, बन्दूक-निर्माताओं, अभियन्ताओं तथा विभिन्न प्रकार के विशेषज्ञों की माँग दिन-दिन बढ़ने लगी। इसकी पूर्ति किसी प्रकार लोगों को बाहर से बुलाकर की गई। विदेशियों ने नाना प्रकार की शर्तें लगाईं और उन्हें किसी तरह पूरा किया गया। किन्तु, रूसियों को किसी प्रकार नियमित रूप में प्रशिक्षित करने का यत्न नहीं किया गया। विदेशों में प्रशिक्षण की बातें दूर रहीं।

भयानक इवन (राज्यकाल : सन् 1533–84 ई०) ने आग्नेय शस्त्र, भाड़े के सिपाही तथा विदेशी तकनीकियों की संख्या बहुत बढ़ा दी। उदाहरण के लिए, सन् 1552 ई० में कजान की विजय को लें। इसका श्रेय डेनमार्क के एक अभियन्ता सेवक को ही है। परमात्मा ने इस दूत को निरंकुश जार के पास भेज दिया था, जिस प्रकार उसने नन-पुत्र जोसुआ के पास अपना दूत जेरिको की दीवार को गिराने के लिए भेजा था। अब पश्चिमी यूरोप से प्रत्यक्ष सम्पर्क का प्रश्न इवन के सम्मुख उपस्थित हो गया। उसके लिवोनिया-युद्ध (सन् 1558–83 ई०) का एक प्रधान उद्देश्य भी यही था। उसकी पराजय से यूरोपीय तकनीकियों की आवश्यकता और बढ़ गई। बोरिस गुदोनोव (अभिभावक : सन् 1587 ई०; जार : सन् 1598–1605 ई०) अपनी प्रकृति और स्वार्थवश पक्का पाश्चात्यकारक था। उसने विदेशी प्रभाव को प्रोत्साहित करने का भरसक प्रयत्न किया। उसने एक विश्वविद्यालय की योजना बनाई।

उसने एक दर्जन के करीब नवयुवक कुलीन रूसियों को पश्चिमी शिक्षा के लिए भेजने का नया तरीका निकाला। पीटर तो देश से बाहर भी गया, किन्तु यह अपने देश से बाहर कभी नहीं गया। इसका प्रयोग एकदम असफल रहा। बाहर से एक व्यक्ति भी लौटकर नहीं आया।

आपत्काल का दोहरा प्रभाव पड़ा। मस्कोवी गृहयुद्ध से कराह रहा था। देश को पोल और स्वीडेन (सन् 1904–18 ई०) रौंद रहे थे। एक ओर सेना को सुसज्जित और सुगठित करना आवश्यक था, जिसमें मस्कोवी के पाश्चात्य पड़ोसी समझ जायँ कि उन्हें एक दिन इस लाभ का बदला चुकाना पड़ेगा। दूसरी बात यह हुई कि देश में राष्ट्रीयता और अज्ञात जनभीति की भावना उनके प्रति जागरित हुई, जो विदेशियों के विरुद्ध देश में बाढ़ के समान उमड़ रहे थे तथा उन रूसियों के प्रति भी, जो न तो उपवास करते थे और न ईसाई संस्कार-क्रिया ही करते थे, और पोलैण्ड के मांस के टुकड़ों के लिए चक्कर काटा करते थे।

आगामी पचास वर्षों तक सरकार का मुख्य कर्त्तव्य यही था कि पश्चात्य ढंग पर सेना को प्रशिक्षण दे तथा उनका पुनः संगठन करे। अब स्थायी रूप में रेजिमेण्ट में लोग भरती होने लगे, खासकर जिन्हें आग्नेयास्त्र का ही प्रशिक्षण मिला था। तोपखाना का खूब विस्तार हुआ। एक डच के हाथ इसका भार सौंपा गया तथा तुला में राज्य-अस्त्रागार खोला गया (सन् 1632 ई०)। भाड़े के सिपाहियों को तीसवर्षीय युद्ध में भरती होने का अच्छा अवसर हाथ लगा। अनेक सिपाही इस प्रकार भरती हुए, किन्तु पोलैण्ड के साथ सन् 1632–34 ई० में युद्ध में अपमानजनक अनुभवों के बाद ये सिपाही सुदृढ सेना में नहीं रखे जाने लगे, केवल अफसर और विशेषज्ञ के रूप में ही ये लोग नियुक्त होने लगे।

इन सबके ऊपर स्कॉटलैण्ड का भाग्यशाली सिपाही अलेक्जेण्डर लेसली था। स्कॉटलैण्ड के सिपाही, नाविक, डॉक्टर तथा अन्य लोगों ने विभिन्न प्रकार से रूस की सेवा की। उन सबमें यह लेसली अग्रगण्य है। अन्य स्काटवासी हैं—मेंजी, गौर्डन, ब्रूस, कीथ, आगिलिव, ग्रेग, एलिफिन्सटन, कामेरन (महती कैथरीन का वास्तु-कलाकार) तथा डॉक्टर असंकिन, रोजरसन तथा वायली।†

---

† अनेक स्काट तथा अन्य विदेशी रूस में केवल अल्पकाल ही सेवा में रहे। अनेक वहीं बस गये और रूसी हो गये। सत्रहवीं शती में पोलैण्ड से लिअरमन्थ तथा मस्कोवी पहुँचा। महान कवि लरमोण्टव उसी के वंश में अपनी उत्पत्ति बतलाता है। टोवी का वर्कले रीगा में बस गया। कालान्तर में वह रूसी सेवा में महान् पद पर पहुँचा। इसी के वंश में वर्कले डे टोली हुआ, जो अलेक्जेण्डर प्रथम के सर्वोत्तम महान जनरलों में एक था।

उन्नीसवीं शती के मस्कोवी में सेना में विदेशियों की संख्या सबसे अधिक थी। विदेशी व्यापारी खासकर अँगरेजों और डचों ने अँगरेजी वस्त्र तथा पाश्चात्य माल के लिए अभिरुचि बढ़ा दी थी। इसका मुख्य प्रभाव यह हुआ कि कुछ अल्परुचि व्यवसायियों में अपने स्वार्थ तथा परम्परा की रक्षा के लिए राष्ट्रीय रूढ़िवादिता आ गई। सन् 1667 ई० में जो व्यापार के नये नियम बने, उनमें रूस के व्यापारियों की जीत हुई और ये ही नियम अंशत: फूट के प्रभाव के कारण उन्नीसवीं शती के अन्त तक चलते रहे। इनके सिवा कुछ अन्य भी विदेशी थे, जिन्होंने रूस के आर्थिक विकास में जबरदस्त भाग लिया, जिनमें हेमबर्ग का मारसेलिस-परिवार तथा विनियस का डच-परिवार महत्त्वपूर्ण है। ये एक प्रकार से रूसी बन गये तथा सरकारी क्षेत्रों में इनका प्रभूत प्रभाव रहता था। डेनमार्क तथा अन्यत्र ये राजदूत का भी काम करते थे। लौह-उद्योग का विकास तुला तथा ओनेगा जिलों में विशाल पैमाने पर और कारीगरों की सहायता से इन्हीं के कारण हुआ। इन साहसिकों के अध्यवसाय तथा कुछ अन्य विदेशी विशेषज्ञों के कारण मस्कोवी के प्राकृतिक साधनों का सदुपयोग हुआ और पीटर के राज्यकाल में सहसा आर्थिक विकास का मार्ग खुल गया।

मस्कोवी स्वभावत: विदेशियों का मुख्य केन्द्र था। सन् 1652 ई० के बाद ये जर्मन-कालोनी में मास्को के ठीक बाहर थे और इनकी संख्या कम-से-कम 1500 थी। जर्मन-शब्द से सभी पाश्चात्य का बोध होता था। सोलहवीं शती के प्रारम्भ से ही तीन जर्मन उपनिवेश थे, किन्तु विभिन्न कालों में लूटे गये थे। लूथर और कालविन के मतानुयायी नास्तिक भले ही हो, किन्तु वे धर्म में फूट डालनेवाले नहीं थे। अत:, उन्हें गिरजाघर तथा विद्यालय चलाने की अनुमति थी, किन्तु कैथोलिकों को (कुछ स्कॉटलैण्ड-वासी के सिवा) यथासम्भव उस शती के अन्त तक बहिष्कृत ही किया जाता था; क्योंकि कैथोलिकों को पोलों का पर्याय ही माना जाता था। यह जर्मन-उपनिवेश मूर्ख पियक्कड़ों और शठों का अड्डा होने पर भी एक तरह से प्रोटेस्टेण्ट यूरोप के मिहनती निपुण लोगों की टुकड़ी थी। महान् पीटर बाल्यकाल से ही बौद्धिक और शारीरिक मौज करता था। वह क्रेमलिन की रोक-थाम-समिति से अथवा मास्को की घनी आबादी स्त्रेल्सी की चहल-पहल से दूर था। पच्छिम-यात्रा (सन् 1697 ई०) के पूर्व इसी जर्मन-कॉलोनी में उसने अनेक वर्षों तक यूरोप का मजा खूब चखा था।

ऊँचे स्तर पर विदेशियों को क्षमा किया जाता था। दरबार तथा कुछ उच्च-पदस्थ व्यक्ति इन्हें सहन करते थे। किन्तु, अधिकांश पादरी तथा जनता इन्हें बुरी नजरों से देखती थी। इन विदेशियों पर इन्हें क्रोध हो आता था। यदि इन विदेशियों के

विरुद्ध कोई भी अफवाह फैलती, तो उसे वे सरलता से विश्वास कर लेते थे कि ये विदेशी पशु हैं तथा जो रूसी इन विदेशियों से सम्पर्क रखते थे, वे भी घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे। जब मास्को की जनता उमड़ पड़ी, तब विदेशी डॉक्टर प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। अपने घर में एक कट्लफिश भी रखना खतरे से खाली न था।

तब भी विदेशियों के द्वारा प्रसारित तकनीकी, आर्थिक और सैनिक नवीनता के साथ-साथ पश्चिमी सभ्यता और रिवाज कुछ उच्च वर्गों के घरों में स्थान जमाने लगा। पाश्चात्य विचारों का गहन सांस्कृतिक प्रभाव भी धीरे-धीरे असर करता गया। सन् 1650 ई० के बाद जो दो विशेष प्रभाव पड़े, वे पोलैण्ड तथा उक्रेण के मार्ग से आये।

परम्परागत विरोध होने पर भी सत्रहवीं शती के उतरार्द्ध में कम-से-कम मास्को के उच्च वर्गों के लोग पोलैण्ड को दूसरी ही दृष्टि से देखने लगे। जार अलेक्सिस ने (जन्म : सन् 1629 ई०; राज्यकाल : सन् 1645–76 ई०) अपने तीन बच्चे को पोल और लैटिन भाषाएँ सिखलाईं। इसके जीवन में प्राचीन सनातनी जीवन-पद्धति तथा पाश्चात्य नवीनता का अजीब सम्मिश्रण था। इसके पुत्र पीटर के लड़के साठ वर्ष बाद जर्मन और फ्रेंच सीखी थी। उस पीढ़ी में मस्कोवी के दूरदर्शी लघुवर्ग की यही विशेषता थी। पोल-पोशाक तथा सज्जा-आसबाब प्रकट हो रहे थे। पोल-कविता तथा इतिहास-लेखन की प्रथा चल पड़ी थी। पोलैण्ड के माध्यम से लौकिक पाश्चात्य साहित्य की धारा प्रवाहित होने लगी। अधिकतर यह साहित्य पुरानी शैली का था, तो भी इसमें भूगोल तथा अन्य उपयोगी ग्रन्थ भी थे; यथा मरकेटर†।

पोल-संस्कृति का प्रभाव भी गौणरूप से पड़ रहा था; क्योंकि मास्को और कीव में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। उक्रेण का पोलैण्ड के विरुद्ध राजनीतिक तथा सामाजिक संघर्ष का ही फल था कि पोलैण्ड ने सन्   ई० में कीव और लघुरूस को मस्कोवी के जिम्मे सौंप दिया। अनेक उक्रेणी पादरी तथा जनसाधारण जेसुयिट शिक्षा और पोल-रईसों की संस्कृति से पूर्ण परिचित थे। उनियात पादरी तथा कैथोलिकों के विरुद्ध अपने सनातन धर्म की रक्षा के लिए उन्हें अपने शत्रु के शस्त्रागार का प्रयोग आवश्यक था।

अत:, कीव का पादरी पीटर मोगिला (जन्म : सन् 1596 ई०; नि० 1647 ई०) ने सन् 1631 ई० में कीव-अकादमी की स्थापना ग्रीक, स्लाव और लैटिन-भाषाओं में

---

† मरकेटर ने सन् 1550 ई० में आधुनिक भूमण्डल के चित्र का आविष्कार किया। यह फ्लाण्डर का रहनेवाला था।

मुक्त विज्ञानशास्त्रों की शिक्षा देने के लिए की। मोल्डाविया के कुलीन वंश में यह उत्पन्न हुआ था। वह बहुत महत्त्वाकांक्षी था और पाश्चात्य ढंग पर शिक्षा पाई थी। इसने पोल-उक्रेण के इतिहास में प्रमुख भाग लिया। यह अकादमी उक्रेण का बौद्धिक केन्द्र बन गई। शीघ्र ही यहाँ से अनेक विद्वान् उक्रेणी पादरी मस्कोवी गये, जहाँ उन्होंने सांस्कृतिक सुधार का सूत्रपात किया।

उक्रेण में मस्कोवी की अपेक्षा शिक्षा अधिक उन्नत तथा सुगठित थी। कीव-अकादमी अट्ठारहवीं शती तक फलती-फूलती रही। यह पादरी तथा लोकशिक्षा दोनों का केन्द्र रही। इसके प्रभाव से अनेक कॉलेजों की स्थापना हुई। खरकोव का कॉलेज सन् 1731 ई० में खुला। उक्रेण के वाम तट पर अनेक दिहाती विद्यालय खुल गये। अट्ठारहवीं शती में रूस में इसी शिक्षा के उच्च स्तर के कारण उक्रेणियों ने शासन, गिरजाघर तथा सांस्कृतिक कार्यों में प्रमुख भाग लिया।

इधर सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में उक्रेणी तथा कुछ हद तक पोलों के सांस्कृतिक और धार्मिक प्रभावों का मस्कोवी पर चार प्रकार से असर पड़ा। वे समझने लगे कि पदारियों में भी शिक्षा का कितना अभाव है। लैटिन पर बल देकर वे शिक्षा का अधिक प्रसार करने लगे। उपदेश द्वारा वे धार्मिक जीवन बिताने को प्रोत्साहन देने लगे तथा कुछ अंश तक उन्होंने पाश्चात्य लौकिक साहित्य को फैलाया।

पश्चिमी देशों में मास्को से चालीस वर्ष पहले ही छापाखाना हो गया था। (विलना में सन् 1525 ई०, मास्को में सन् 1564 ई० में)। उन देशों में छापने का खब प्रचार हुआ और यह धार्मिक कृत्यों के लिए ही न था, जैसा मास्को में। सत्रहवीं शती के मस्कोवी में बहुत ही कम पश्चिमी पुस्तकों का अनुवाद हुआ। वे पुस्तकें हस्तलिपि के रूप में थी। किन्तु इनकी संख्या बढ़ रही थी तथा उनमें लौकिक ग्रन्थ भी शामिल थे। पश्चिमी देशों से रोचक कहानियों के मध्यकालीन संग्रहों के संस्करण देश में फैल रहे थे। रूसी रूप में ये कहानियाँ बहुत ही लोकप्रिय हो गईं। बच्चों की पुस्तकें तथा अट्ठारहवीं शती में काष्ठ-कारीगरी से यह सिद्ध होता है। इसी प्रकार, सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में कथित वर्णमाला, जिसमें सामान्य व्याकरण और विश्वज्ञान का संचय रहता था, की भी काया पलटी। उसमें पश्चिमी देशों के विषय में अधिक ज्ञान का भाण्डार विस्तृत रूप में पाया जाता था।

इन नवीनताओं और मस्कोवी की संस्कृति पर उक्रेणी लैटिन का प्रभाव स्वीकार भी कर लिया जाय, तब भी यह मानना पड़ेगा कि सन् 1690 ई० तक प्रथम पीढ़ी में यह प्रभाव सत्रहवीं शती के यूरोप के ज्ञान और पद्धति के कारण न

हुआ, बल्कि मध्यकालीन विद्यानुरागियों के कारण हुआ। बेकन, गेलिलिओ, केपलर तथा डेकार्ट को मस्कोवी में अलबर्ट मैगनस, रेमण्ड लल्ल तथा माइकेल स्कॉट के अनुवादों से लोगों ने जाना। उसी शती के मध्य में (अरबी या भारतीय) संख्याओं का प्रथम दर्शन रूस में हुआ। युकलिड की ज्यामिति को पहले लोग नहीं जानते थे। पीटर ने एक स्कॉटलैण्ड-निवासी को अपने नौसेनिक-विद्यालय में ज्यामिति सिखलाने के लिए भाड़े पर बुलाया। कोपरनिकस के सिद्धान्त को लोग पीटर के अन्तिम राज्यकाल तक पुस्तक-रूप में नहीं जानते थे। सन् 1757 ई० तक मास्को के छापाखानों में सेन्सर (प्रतिबन्धकारक) कोपरनिकस के ग्रन्थ को भ्रमात्मक समझते थे।

सन् 1650 और 1660 ई० में मस्कोवी अपने संस्कारों और पादरियों को सुधारने में लग गया था। इसी का फल है कि महान् फूट गिरजाघरों में हो गई। विदेशी प्रभावों के कारण ये सुधार हुए। किन्तु, ये प्रभाव ग्रीक थे, न कि पश्चिमी। इस फूट को लोगों ने महान् रोग का कारण समझा। जो महान् पादरी पादरियों के मध्य फूट को दूर करने ग्रीक से मास्को पहुँचे, वे इस बात से सहमत हुए कि फूट का मूलकारण पादरियों और फलतः जनसाधारण में उचित शिक्षा का अभाव है। चिरकाल तक संघर्ष चलता रहा कि किस प्रकार पदारियों को शिक्षित किया जाय। अब लैटिन तथा ग्रीक के बीच संघर्ष आरम्भ हुआ कि कीव के समान मास्को में भी अकादमी की स्थापना की जाय और उसका नियन्त्रण किया जाय। प्रारम्भ में लैटिनवादियों को सफलता मिली, किन्तु अन्ततः महापादरी जोचिम, जो ग्रीकों का नेता था, विजयी हुआ तथा लैटिन-नेता को सन् 1691 ई० में फांसी पर लटका दिया गया। स्पष्ट रूप से इसका कारण राजनीतिक था, यूकैराइस्ट पर सामान्य पश्चिमी विचार नहीं।

प्राचीन धर्मावलम्बियों ने पादरियों के विरुद्ध विद्रोह किया। राज्य ने इन विरोधियों का साथ दिया। वह विद्रोह प्राचीन रिवाज तथा राष्ट्रीय परम्परा के नाम पर था। उसी नाम पर अधिकांश सरकारी गिरजाघरों ने भी पश्चिमी, न कि ग्रीक या दक्षिणी, नवीनताओं का घोर विरोध किया। ये सरकारी पादरी भले ही प्राचीन धर्मावलम्बियों से मिलकर मैत्रीरूपेण काम न करते थे, किन्तु शिक्षा-धर्म को पाश्चात्यों से किसी प्रकार भी ग्रहण करने या सम्पर्क के घोर विरोधी थे। इस काम में महापादरी जोचिम तथा उसके अनुयायियों ने सरकार की महान् प्रवृत्तियों से लोहा लिया।

सन् 1676 और 1694 ई० के मध्य मुख्य राजनीतिक सूत्र-शक्ति के लिए संघर्ष था। जार अलेक्सिस की प्रथम भार्या का निधन सन् 1676 में हो गया।

उसकी दूसरी भार्या महान् पीटर को सन् 1672 ई० में जन्म दिया। इन दोनों भार्याओं के विपक्षी वंशजों में घोर संघर्ष चलने लगा। दोनों दलों की दृष्टि पश्चिम की तरफ थी, किन्तु दोनों फूँक-फूँककर चलते थे; क्योंकि मास्को का विशेषाधिकार-प्राप्त सैन्यदल, विप्लवी स्त्रेल्त्सी की प्रतिक्रियावादी राष्ट्रीयता से डरता था।

सन् 1682 ई० में पीटर की सौतेली बहन सोफिया ने स्त्रेल्त्सी को अपने पक्ष में करके राज्य-विप्लव द्वारा शक्ति ग्रहण कर ली और अपने को राजा घोषित कर दिया। पीटर को वह दिन कभी विस्मरण न हो सका, जब वह दस वर्ष का बालक, अपनी काँपती हुई माता की बगल में क्रेमलिन के खुले हुए लाल सोपानों पर खड़ा था। उसे स्त्रेल्त्सी का सामना करना पड़ा। क्योंकि, सेना अपने भाले पर, पीटर के समर्थकों का सिर भोंककर, आसमान में चमका रही थी। सन् 1689 ई० में पीटर ने पुनः स्त्रेल्त्सी का सामना किया और सन् 1698 ई० में जब स्त्रेल्त्सी ने पीटर के विरुद्ध विद्रोह किया, तब भी पीटर डरा नहीं। उसने निर्दयता के साथ इन्हें कुचल दिया। उसने उन्हें छट्ठी का दूध याद दिला दिया; क्योंकि पीटर ही मनुष्यों को तोड़ने में समर्थ था।

राजप सोफिया (सन् 1682 ई०) तथा उसके प्रिय राजकुमार गोलिसीन का शासन सन् 1682 ई० की घटनाओं के बावजूद अनेक प्रकार से सहिष्णु था। ये पुरातन धर्मावलम्बियों के प्रति सहिष्णु न थे, किन्तु पाश्चात्य प्रभावों को देश में फैलाने के पूरे पक्ष में थे। गोलिसीन (जन्म : सन् 1643 ई०; उत्तरी ध्रुव में सन् 1689 ई० में निर्वासित; निधन : सन् 1714 ई०) एक सुसंस्कृत रईस था और आन्तरिक तथा बाह्य बातों में इसके उदार विचार थे। किन्तु, इसमें कार्य-सम्पादन तथा सैनिक योग्यता कुछ भी न थी। वह उन इने-गिने लोगों का प्रतिनिधि था, जो ओरडिन-नशचोकिन के समान सदा प्राचीन मस्कोवी से दूर पश्चिम की ओर देखते थे तथा जो पीटर के पुरोवर्त्ती थे। गोलिसीन स्वयं सुधार के कार्यक्रम में विश्वास करता था, जो पीटर के लिए प्रत्याशित था। इसके सुधारों में विवेक, धर्म और विदेशी शिक्षा की पूर्ण स्वतन्त्रता थी।

सन् 1689 ई० में दूसरी बार राज्य-विप्लव किया गया। इसका प्रधान कारण राजनीतिक था और अंशतः कैथोलिकों को रियायत देने के कारण था। पीटर की माँ और महापादरी जोचिम ने सोफिया और गोलिसीन का स्थान ले लिया। पीटर जर्मन-उपनिवेश में अपने दोस्तों की संख्या बढ़ाता रहा। वह यान्त्रिक सैनिक तथा नाविक धन्धों में अपना समय बिताता रहा और सन् 1694 ई० में

अपनी माँ की मृत्यु तक उसने स्वयं नीति का संचालन नहीं किया। जोचिम ने खुल्लमखुल्ला, उच्च सैनिक स्थानों पर विदेशियों के नियोजन का विरोध किया तथा अन्धाधुन्ध पोलों के फैशन के अनुसार दाढ़ी बनवाने के अनुकरण का विरोध किया। सन् 1690 ई० मे वह मर गया, किन्तु उसकी इच्छा से, जो विदेशियों के विरुद्ध तीव्र घोषणापत्र है, उसके इरादे का स्पष्ट पता चलता है। उसक उत्तराधिकारी *आद्रियन मूर्ख और प्रतिक्रियावादी था* तथा उससे पूर्ण *सहमत था।* पीटर के उम्मीदवार के विरुद्ध वह निर्वाचित हुआ। पुस्तकों के महान् पण्डित तथा विदेशियों के प्रति आसक्त के रूप में इसकी ख्याति थी। सन् 1694 ई० में पीटर ने स्वयं अपने हाथ में शक्ति ली और पलड़ा पलट गया। 6 वर्ष बाद आद्रियन चल बसा और महापादरी का पद, जो पच्छिम के विरुद्ध था, समाप्त कर दिया गया।

सत्रहवीं शती के मस्कोवी में इसी प्रकार की धारा तथा प्रतिधारा बह रही थी। इससे दरार बनती जाती थी। पीटर ने छेनी-हथौड़े की चोट से इस दरार को और भी चौड़ा कर दिया। चतुर्थ अध्याय में बताया जा चुका है कि पीटर ने गिरजाघरों में विरोधियों को कुचल दिया, जो पाश्चात्यीकरण के विपक्ष में थे। इसी प्रकार जो प्राचीन मतावलम्बी तथा सम्प्रदायवादियों के विरोधी थे, उन्हें भी उसने बरबाद कर दिया तथा महापादरी के पद का अन्त किया। धर्म में फूट होने के कारण पश्चिम के विरुद्ध कोई सामान्य धार्मिक मोर्चा नहीं बन सका। अपितु, एक योग्य आधुनिक नई पीढ़ी उक्रेणी पादरी के साथ अंशतः सहयोग करने को तैयार थे और उन्हें उच्च पद दिया गया।

अपने समय में इन पादरियों में सबसे महान् था फियोफन प्रोकोपोविच (जन्म: सन् 1677 या 1681 ई०; निधन: सन् 1736 ई०)। कालान्तर में यह बहुत ही विवादग्रस्त विषय बन गया। इसका जन्म और प्रशिक्षण कीव में हुआ था। कुछ काल के लिए यह उनियात था और तीन वर्ष तक रोम में अध्ययन किया। किन्तु, यह कीव लौटा और सनातनी बन गया। कालान्तर में इसके वैदेशिक सम्पर्क प्रोटेस्टेण्ट-जगत् से ही विशेषतः हुआ। यह महान् पण्डित था तथा इसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। यह चर्च-प्रधानतावाद तथा विजयन्तवाद के रूसी संस्करण, दोनों का विरोधी था। उसके लेखन, भाषण तथा शिक्षण-शक्ति से पीटर का ध्यान आकृष्ट हो गया। सन् 1716 ई० के बाद वह पीटर का विश्वस्त धार्मिक परामर्शदाता बन गया तथा धार्मिक नियमों को बनाने का श्रेय उसी को था, जिसके अनुसार महापादरी के स्थान पर सन् 1721 ई० में धर्मसभा (सिनौड) की स्थापना हुई और प्रत्येक पादरी के क्षेत्र में एक उच्च विद्यालय खुला।

पीटर ने गिरजाघरों में मस्कोवी-राष्ट्रीयता के विरुद्ध संघर्ष किया। उसकी सामान्य नीति थी कि गिरजाघर राज्य के अधीन रहें। इनका महत्त्व चिरस्थायी रहा। अपितु, उसने रूस को पश्चिमी बनाने की प्रत्यक्ष पद्धति अपनाई; क्योंकि उससे जीवन और शिक्षा दोनों का लोकीकरण हो जाता था। इस हेतु उसने तीन उपाय अपनाये : विदेशियों का रूस में प्रयोग, बाहर में विदेशियों से शिक्षा तथा लोक-शिक्षा। प्रथम उपाय, जो गत सौ वर्षों से क्रमशः बढ रहा था, उसी का बहुत विस्तीर्ण रूप था। इसमें नवीनता केवल विदेशियों से पीटर की सहकारिता थी तथा इन विदेशियों को बेहद उत्तरदायित्व दे दिया गया। अन्य दो उपाय नूतन थे, भले ही बोरिस गोदुनोव का प्रयास फलित न रहा हो।

पीटर की एक खास विशेषता यह थी कि वह विश्वास करता था कि राजा को उदाहरण उपस्थित करना चाहिए कि वह स्वयं उस काम को कर सकता है, जिसे वह चाहता है कि उसकी प्रजा करे। उसकी अशान्त उत्सुकता का यह स्वाभाविक फल था। उसमें शारीरिक और मानसिक शक्ति तथा दक्षता थी। अभी तक कोई भी रूसी राजा ने अपने राष्ट्र की पश्चिमी सीमा को नहीं लाँघा था। सन् 1967 ई० में पीटर स्वयं, राजदूतावास का सदस्य बनकर पश्चिमी यूरोप गया। इसके साथ तीन सौ मजबूत आदमी थे। रूस के नूतन रईसों को जर्मन-प्रदेश, नीदरलैण्ड, इंगलैण्ड तथा वेनिस में विज्ञान और तकनीकी का ज्ञान हुआ। इसके बाद एक प्रकार से जबरदस्ती लोगों को शैक्षणिक कार्य के लिए बाहर भेजा गया। सन् 1717 ई० में पीटर स्वयं पेरिस गया और इसके बाद अनेक रूसियों को सामान्य शिक्षा, खासकर नौ-शिक्षा के शिक्षण के लिए फ्रांस भेजा गया। वहाँ पर अधिकतर अध्ययन के विषय सेना तथा नौ-सेना के उपयोगी शस्त्र थे। किन्तु, भाषा तो सीखना ही पड़ता था तथा कुछ वर्षों बाद ललित कला तथा सामान्य संस्कृति को भी सीखने पर ध्यान दिया जाने लगा। सन् 1717 ई० में ही रूसी भाषा में यौवन का मानवीय आदर्श प्रकाशित हुआ तथा पचास वर्षों में इसके पाँच संस्करण हुए। युवा रईसों को इसमें शिक्षा दी गई कि किस प्रकार बेहाली गँवार के बदले दरबारी के समान व्यवहार करना चाहिए। यह ग्रन्थ बहुत ही लोकप्रिय था।

शिक्षा के लिए जबरदस्ती विदेशों में भेजने से अधिकतर स्थायी लाभ नहीं हुआ, किन्तु इसका सम्भवतः बड़ा प्रभाव यह पड़ा कि पच्छिमी देशों से रूस का कूटनीतिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध बहुत बढ़ गया। अपितु, रूसी सेना तथा मिशन ने उत्तरी जर्मन के बालटीक-प्रदेश में स्वीडेन से युद्ध करते हुए अन्तिम भाग में अधिक काल बिता दिया। विदेशों में विदेशियों से नियमित सम्पर्क तथा स्वयं रूस में भी अब बड़े पैमाने पर विदेशियों से सम्पर्क स्थापित हो गया। अतः, अफसरों तथा

अधिकारियों की एक नई पीढ़ी तैयार हो गई। इनमें सर्वोत्तम लोग ऐसे सम्पर्क से खूब प्रभावित थे। इन्हें पीटर की उड़ान भरनेवाला उपनाम मिला था और इसके प्रति वे पूर्णरूप से वफादार थे और पीटर मनुष्यों के प्रतिपादन में स्वामिभक्ति को ही प्रथम तथा अन्तिम स्थान देता था।

पाश्चात्यीकरण के लिए पीटर का तीसरा उपाय था रूस में प्रथम धर्म-निरपेक्ष लौकिक शिक्षा का संगठन। यह छोटे पैमाने पर था, किन्तु इसका आरम्भ शून्य से हुआ था। इसका उद्देश्य था राज्य की विभिन्न सेवाओं के लिए प्रारम्भिक तकनीकी या व्यावसायिक शिक्षा देना। ये नाम महत्त्वपूर्ण हैं। गणित तथा नौसंचालन-विद्यालय थे। असंख्य गुप्त विद्यालय थे, जहाँ लिखना, पढ़ना, गणित तथा ज्यामिति की शिक्षा दी जाती थी। कुछ नौ-अधिकरण-विद्यालय तथा युद्ध-विभागीय विद्यालय तथा उरल-प्रदेश में नूतन धातु-कारखानों में कुछ विद्यालय खुले।

इन सबके ऊपर धर्मनिरपेक्ष शिक्षा का मुख्य साधन था विज्ञान-अकादमी (एकेडमी ऑव साइन्सेज), जो सन् 1725 ई० में खुला। लेबनिज तथा अन्य विद्वानों के साथ खूब पत्राचार के बाद इसकी स्थापना हुई। रॉयल सोसायटी तथा विज्ञान-अकादमी के विषय में खूब जाँच की गई। इसमें प्रवेश के लिए कोई शिक्षा का मानदण्ड नहीं था। विश्वविद्यालय के रूप में इसका विकास न हो सका, जैसा कि प्रारम्भ में सोचा गया था। कालान्तर में इसके साथ एक उच्च विद्यालय जोड़ दिया गया और इसका महत्त्वपूर्ण परिणाम हुआ। इसका प्रमुख महत्त्व यह था कि यह जल्द ही मौलिक और शारीरिक विज्ञान तथा रूस के साधनों के संचय का अनुसन्धान-केन्द्र बन गया। सन् 1748 ई० के बाद इसने विदेशी पुस्तकों के अनुवाद को बहुत ही प्रोत्साहित किया। प्रारम्भिक कमी तथा आन्तरिक कलह होने पर भी अलेक्जेण्डर प्रथम (सन् 1801–25 ई०) के समय में विश्वविद्यालयों के विकास तक 4 साम्राज्यों में उच्च ज्ञान का केवल यही एक संगठित केन्द्र था।

अमीर और रईसों के बच्चों को अनिवार्य रूप में विद्यालय में पढ़ाने का पीटर का प्रयत्न अव्यावहारिक सिद्ध हुआ और दो वर्षों के बाद इसका अन्त हो गया। तब भी इसे अन्य सुधारों के साथ नहीं रख सकते। इसका फल कुछ भी नहीं हुआ तथा पीटर की मृत्यु के बाद उन्हें कूड़ाखाने में फेंक दिया गया। यथा : स्थानीय शासन-पद्धति, जो बहुत खर्चीली और व्यापक थी; सेना की आवास-योजना अथवा उत्तराधिकार-नियम। नूतन पद-सोपान में तरक्की पाने के लिए कम-से-कम शैक्षणिक योग्यता का कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा : पीटर की मृत्यु के बाद सन् 1731 ई० में एक कैडेट-विद्यालय की स्थापना सन्त पीटर्सबर्ग में हुई, जहाँ से रईस और अमीर उत्तीर्ण होकर राजसेवा में प्रवेश करते थे।

पीटर के पाश्चात्यीकरण का सामान्य प्रभाव उसके जीवनकाल में भले ही तुच्छ प्रतीत हो, किन्तु इसके परिणाम महत्त्वपूर्ण थे। यह ध्यान देनेवाली बात है कि पीटर की एक पीढ़ी के बाद उच्च वर्ग के लोगों ने स्वेच्छा से विदेशों में जाना आरम्भ कर दिया। पहले इन्हें एक प्रकार से जबरदस्ती शिक्षा के लिए बाहर भेजा जाता था। अब कम-से-कम यूरोपीय संस्कृति का बाह्य रूप उच्च वर्ग के लिए आवश्यक चिह्न हो गया।

स्वयं पीटर का ऐसा अभिप्राय नहीं था। उसका ध्येय यह था कि सभी वर्गों के लोगों में, खासकर भौतिक तकनीकी तथा विज्ञान के सम्बन्ध में पाश्चात्य दृष्टिकोण हो। दास इससे अलग थे, यद्यपि इन्हें स्पष्ट रूप से इससे बहिष्कृत न किया गया था। अन्ततः केवल उच्च वर्ग में ही पाश्चात्य रीति-रिवाज तथा रहन-सहन को प्रवेश कराने में सफलता मिली।

यूरोपीय रूस के अल्पसंख्यक, यूरोपीय रूसी, गैर यूरोपीय रूसी तथा महा-संख्यकों में सांस्कृतिक विभेद का यही श्रीगणेश था। शिक्षा-प्रणाली ही इसका अन्तिम चरण था।

नगरों में भी पीटर के साधारण श्रीगणेश से बाल-शिक्षा का विकास नहीं हो सका। महती कैथरीन तथा अलेक्जेण्डर प्रथम के शिक्षा-सुधारों से यह कुछ आगे बढ़ा। अलेक्जेण्डर द्वितीय (सन् 1864 ई०) के समय से शिक्षा पर सतत व्यापक ध्यान दिया जाने लगा। अपितु, उच्च वर्गों में पहले की अपेक्षा अब यूरोपीय ढंग पर उच्च शिक्षा खूब विकसित हो गई। पादरियों के बच्चे भी कुछ-कुछ शिक्षा पाने लगे। उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ से ही विश्वविद्यालयों के प्रति विभिन्न प्रकार से छात्र आकृष्ट होने लगे। विश्वविद्यालय की संख्या भले ही कम थी, किन्तु उनका स्तर बहुत ही ऊँचा था।

निकोलस प्रथम (सन् 1825–55 ई०) का यह सिद्धान्त था कि विभिन्न समाजिक वर्गों के बच्चों की शिक्षा एक साथ न हो और यथासम्भव रईस तथा नागरिक सेवाओं के बच्चों को ही शिक्षा दी जाय। सिद्धान्त-रूप में भी अब शिक्षा केवल उच्च वर्ग तक ही सीमित नहीं रह सकती थी; क्योंकि प्रशासन में अनन्त लोगों की जरूरत पड़ती और उसे केवल उच्च वर्ग के लोग ही पूरा नहीं कर सकते थे। अतः, निकोलस ने सन् 1827 ई० में अपनी घोषणा में इस सिद्धान्त को अपनाया कि शिक्षा ऐसी दी जाय कि कोई भी उस पद से आगे बढ़ने का लक्ष्य न रखे, जो उसके भाग्य में बदा है। इसका यह अर्थ हुआ कि सरकार ने राज-कृषकों को छोड़कर प्रारम्भिक शिक्षा के लिए कुछ भी नहीं किया। अधिकतर पादरी और स्थानीय संस्थाओं में ही नाममात्र के लिए शिक्षा देने का प्रयत्न होता रहा।

अलेक्जेण्डर द्वितीय के काल में महान् सुधार हुए। अतः, शिक्षा के क्षेत्र में विशेष रूप से परिवर्त्तन आवश्यक था (सन् 1863 तथा 1864 ई०)। विश्वविद्यालयों को यथेष्ट स्वतन्त्रता पुनः मिल गई। छात्रों की संख्या पर से प्रतिबन्ध उठ गया तथा सन् 1848 ई० से विदेशों में अध्ययन पर जो प्रतिबन्ध थे, वे हटा दिये गये। अब विश्वविद्यालयों के छात्रों में प्रायः विवेकी रईस तथा सम्मिश्रित वर्ग के लोग थे। इनमें शून्यवाद तथा सामाजिक क्रान्तिकारी जनभावना भरी थी। अतः, सरकार ने शीघ्र ही निकोलस प्रथम के व्यवहारों को अपनाया। सन् 1881 ई० में अलेक्जेण्डर द्वितीय की हत्या के बाद युवा छात्रों के साथ चिरकाल तक पशुवत् युद्ध चलता रहा। उच्च शिक्षा भी युद्ध का क्षेत्र हो गया। सन् 1864 ई० से प्रारम्भिक शिक्षा का धीरे-धीरे विस्तार होने लगा। तीन वर्ष की शिक्षा रूसी-भाषा के माध्यम से देना आवश्यक हो गया। किन्तु, सरकार ने गिरजाघरों के विद्यालयों की ओर विशेष ध्यान दिया, जिनमें अधिकतर शिक्षा का स्तर बहुत ही निम्न था।

सन् 1905 ई० की क्रान्ति से विश्वविद्यालय स्वतन्त्र हो गये, यद्यपि सन् 1911 ई० के बाद पुनः प्रतिक्रिया हुई। अन्त में, लोगों ने मान लिया कि निरक्षरता ही सभी समस्याओं की जड़ है। इसके लिए घोर विरोध हुआ। गिरजाघर के विद्यालयों के समर्थकों ने सबसे अधिक विरोध किया। अतः, डूमा अपनी योजना को पूरा करने में असमर्थ रही। इसका लक्ष्य प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य करना था। किन्तु, तब भी यथेष्ट सफलता मिली। यह पहला अवसर था कि केन्द्रीय सरकार ने प्रारम्भिक शिक्षा के लिए प्रचुर धन दिया।

अलेक्जेण्डर द्वितीय के सुधारों के बाद शिक्षा के लिए बहुत कुछ हुआ था। प्रान्तीय तथा (जेमस्तवा) जिला-परिषदों ने विशेष उच्च शिक्षा के लिए बहुत किया, भले ही अलेक्जेण्डर तृतीय तथा निकोलस द्वितीय के समय प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ काम कर रही थीं। सन् 1881 ई० में प्रारम्भिक विद्यालयों में तेरह लाख (13,00,000) विद्यार्थी थे तथा विश्वविद्यालयों में 9,300 छात्र। सन् 1914 ई० में इनकी संख्या क्रमशः सत्तर† लाख और 35,500 हो गई। तब भी

† इनमें पोलैण्ड तथा फिनलैण्ड के आँकड़े नहीं हैं, किन्तु बाल्टीक-प्रदेश के हैं, जहाँ रूस की अपेक्षा शिक्षा का अधिक प्रचार था। इसमें पादरियों के बाल-विद्यालय भी शामिल हैं, यद्यपि उनका स्तर बहुत निम्न था। सन् 1880 ई० में इन विश्वविद्यालयों में 70 प्रतिशत रईसों के वंशज थे। सन् 1914 ई० में अधिकारी या पादरी 46 प्रतिशत हो गये। सन 1914 ई० में राज्य के विश्वविद्यालयों में 35,500 छात्रों के सिवा करीब 40 हजार विद्यार्थी अन्य उच्च विद्यालयों में थे।

खासकर महिलाओं और एशियाई रूस में निरक्षरता विद्यमान थी। यथाप्राप्त आँकड़ों से पता चलता है कि सन् 1914 ई० में दस वर्ष की अवस्था से अधिक लोगों में 40 प्रतिशत शिक्षित थे। दूसरे आँकड़े के अनुसार केवल 28 प्रतिशत ही शिक्षित थे। इसके अलावा शिक्षा का स्तर निम्न था और रूसी-भाषा में ही शिक्षा दी जाय, इसपर बहुत वाद-विवाद उठता था। सोवियत-शासन के सामने शिक्षा की समस्या को सुधारने से बढ़कर अन्य कोई महान् कार्य नहीं था। जितनी शक्ति शिक्षा के क्षेत्र में लगी है और जितनी सफलता शिक्षा में मिली है, उतनी किसी अन्य क्षेत्र में नहीं मिली। यह सफलता रूसियों में विशेष महत्त्वपूर्ण है। अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा के स्वप्न ने साकार रूप धारण कर लिया। नव वर्ष से ऊपर के लोगों में निरक्षरता 20 प्रतिशत से भी कम हो गई तथा उच्च शिक्षा पर अधिक धन व्यय होने लगा।

स्वयं साक्षरता अमोघ परीक्षा नहीं है तथा निरक्षता ही चरित्र या अनेक गुणों की न्यूनता की निशानी नहीं है। किन्तु, रूस के लिए मोटे तौर पर यह सत्य था; क्योंकि यूरोप निरक्षर जनता से अधिक शक्तियों तथा युद्ध के रूप में टकरा गया था। अपितु, महान् पीटर के काल से ही यूरोप के प्रभाव से ऊपर के स्तर में अल्पसंख्य यूरोपीय सभ्यता की सृष्टि हो चुकी थी, जो खासकर रूसी ढाँचे पर थी। यूरोपीय सभ्यता जोर-शोर से बढ़ रही थी। सन् 1917 ई० में अल्प दल की तीन शाखाएँ आपस में इतनी विभक्त थीं कि प्रथम विश्वयुद्ध में आपत्तियों और भूलों के कारण अल्पसंख्यकों की सरकारी शाखा समाप्त हो गई।

पीटर की मृत्यु के 10 वर्ष के भीतर यूरोपीय प्रभाव खूब बढ़ता रहा। उन सौ वर्षों में (सन् 1725–1825 ई०) सभी प्रकार के विदेशियों ने विभिन्न क्षेत्रों में भाग लिया था। यथा : सेना, नौ-सेना, प्रशासन, राजनय, शिक्षा और अध्ययन, चिकित्सा, खनन और उद्योग, विदेशी व्यापार, कला तथा रईसी जीवन की विलासिता के संग्राह-कार्य। आधी शती तक ये यूरोपीय संस्कृति के अपरिपक्व बाह्य रूप को अपनाते गये। अब रूस के उच्च वर्ग के लोगों ने यूरोपीय साहित्य और विचार को भी आत्मसात् करना प्रारम्भ कर दिया।

अट्ठारहवीं शती के अन्त तक साहित्य, कला और वेश-भूषा (फैशन) में फ्रांस का ही प्रभाव अग्रगामी था, किन्तु अन्य क्षेत्रों में जर्मन-प्रभाव की ही प्रमुखता थी और रही। इसके चार कारण थे। जर्मन-प्रदेश समीप था। पीटर प्रारम्भ से ही जर्मन-चालढाल का पक्षपाती था, रोमानव-वंश के अनेक लोगों ने जर्मन-दरबार से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया था, जिसका प्रारम्भ पीटर के बच्चों से हुआ तथा

उसने लिवोनिया और इस्तोनिया को रूस में मिला लिया और एक प्रकार से कारलैण्ड पर रूस का आधिपत्य हो गया, जहाँ जर्मन-उच्च वर्ग की संख्या अधिक थी।

बाल्टीक-तट के जर्मनों ने वारन के साथ बहुत बुरा बरताव किया (जन्म : सन् 1690 ई०; मृत्यु : सन् 1772 ई०)। महारानी अन्ना (जन्म : सन् 1693 ई०; राज्यकाल : सन् 1730–40 ई०) पीटर के सौतेले भाई इवन पंचम की कन्या थी। इसने कोरलैण्ड ड्यूक† से विवाह किया था। बीरन कोरलैण्डवासिनी अन्ना का प्रेमी था। रूसी इतिहास में बीरन सबसे अधिक अप्रिय जर्मन रहा है। अन्ना के राज्य-पर्यन्त वह जर्मन अल्पतन्त्र का शिरमौर रहा। वह रूस का शासन बड़े बुरे तरीके से करता था। इसका दण्ड उसे भुगतना पड़ा और बीस वर्ष के लिए उसे साइबेरिया में निर्वासित कर दिया गया। सम्राट् पीटर तृतीय होलस्तीन का रहनेवाला था। उसे होलस्तीन और प्रशिया की सनक सवार थी, अतः उसे गद्दी तथा जीवन दोनों से हाथ धोना पड़ा (सन् 1762 ई०)।

बाल्टीक-तट के जर्मनों का अपना विशेष स्थान था। वे अपने देश के थे। इसका वर्णन द्वितीय अध्याय में हो चुका है। उनका शासन-साम्राज्य भले ही मलिन या कलुषित हो, किन्तु उन्होंने देश को घोर परिश्रमी प्रशासक, कूटनीतिज्ञ तथा अफसर दिये। निकोलस प्रथम के दरबार में उनका विशेष प्रभाव था। रोमानव-वंश का उनसे बढ़कर स्वामिभक्त तथा नौकरशाही में कट्टर अन्य कोई नहीं था। उन्होंने रोमानव-वंश की महती सेवा की। किन्तु, उनकी स्वामिभक्ति उसी परिवार से थी। वे स्यात् ही रूसी बने। वे मार्टिन लूथर का धर्म मानते रहे। उनकी अपनी विशेष संस्कृति थी। वे रूसा जीवन की प्रमुख धाराओं से विलग रहते थे, तथा विपक्षी थे। खास जर्मनी से जो अधिकांश जर्मन आये, उनके लिए भी ये बातें सत्य थीं।

इसका फल यह हुआ कि रूस में विभिन्न मतों के लोग सब तरह से जर्मनों पर ही आक्षेप करने लगे। स्लाव-प्रेमी तथा सर्वस्लाव विशेषतः इन आक्रमणकारियों में अगुआ थे। उनपर दोष लगाया जाता था कि सभी सरकारी उच्च पदों को उन्होंने ही अपने हाथ में लेकर एकाधिकार प्राप्त कर लिया है। यह अतिशयोक्ति भले ही हो, किन्तु यह सत्य है कि जनसंख्या के अनुपात से जर्मनों का प्रभाव बहुत अधिक था, चाहे वे बाल्टीक-प्रदेश के हों या खास जर्मन के। अट्ठारहवीं

† कोरलैण्ड का राज्य पोलैण्ड का सामन्त था, किन्तु अट्ठारहवीं शती के अधिकांश में यह रूस की सुरक्षा में था। जब सन् 1795 ई० में पोलैण्ड का विभाजन हुआ, तब यह निश्चित रूप से रूस-साम्राज्य का अंग बन गया।

शती में ओस्तरमन तथा उन्नीसवीं शती में नेसलरोद का प्रभाव ख्यात है। लन्दन-राजदूतावास का मामला पराकाष्ठा-प्राप्त है। सन् 1812 और 1917 ई० के मध्य, वहाँ नव राजदूत हुए। इनमें चार बाल्टीक-प्रदेश के जर्मन-नवाब थे। 105 वर्ष के भीतर ये 83 वर्ष तक अपनी जगह पर बने रहे।

रूस ने बाल्टीक-जर्मनों तथा खास जर्मनी से पश्चिमी तकनीक और विचारों को आत्मसात किया। लोग पढ़ने के लिए जर्मनी जाते थे और जर्मन-शिक्षकों, प्राध्यापकों भौतिकी-विशेषज्ञों तथा वैज्ञानिकों को नौकरी दी जाती थी। प्रारम्भ में तो ये बहुत ही हीन श्रेणी के या अयोग्य थे, किन्तु अट्ठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध से विज्ञान, भूगोल, गणित तथा इतिहास में एक नये युग का आरम्भ हुआ। महती कैथरीन तथा निकोलस प्रथम ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रशिया की शिक्षा-पद्धति को अपनाया। अलेक्जेण्डर प्रथम ने जर्मन-ढांचे पर चार विश्वविद्यालयों की स्थापना या पुनः स्थापना की। अट्ठारहवीं शती में विज्ञान-अकादमी मुख्यतः जर्मन-शैली पर ही थी। इसके अधिकांश सदस्य जर्मन थे। केवल एक-चौथाई सदस्य रूसी थे। उन्नीसवीं शती में परिस्थिति बदल गई। इस समय सत्तर प्रतिशत रूसी थे तथा बाकी दो-तिहाई जर्मन थे। रूसी प्रायः जर्मन या जर्मन-स्विस-विश्वविद्यालयों में भ्रमण करते रहे। अन्य विश्वविद्यालयों में वे कम जाते थे। सन् 1848 ई० की क्रान्ति के समय कुछ रोक हो गई थी।

साहित्य और विचार में गोथे, खासकर वेर्थर एवं शिलर जर्मन-लोकगीत तथा हाफमन ने अँगरेजी के प्राक्-शृंगारिक, स्काट तथा बायरन के साथ मिलकर फ्रेंच-नामधारी बनावटी उच्च साहित्य को रूस से निकलवा दिया। अब रूस में प्राचीन सम्प्रदाय तथा शृंगारिक उपासकों की संख्या बढ़ गई। धर्म और ख्याति के सम्बन्ध में अन्यत्र विचार होगा। दर्शन-शास्त्र में शेलिंग के विच्छिन्न आदर्शवाद के सन् 1820 और 30 ई० के मध्य अनेक पोषक और समर्थक मिले। अन्ततः, सन् 1840 ई० में इसे चुनौती मिली और हेगेल ने इसका स्थान ले लिया। यदि रूसी विचारधारा में कोई भी यूरोपीय दार्शनिक ने अपने प्रभाव की सर्वाधिक शाखा-प्रशाखाएं फैलाई हैं, तो वह है हेगेल। वामपक्षी हेगेलवादी (फ्युवरवाख तथा अन्य) उन्नीसवीं शती के रूसी भौतिकवाद में खूब फैले और मार्क्स ने इसका रूपान्तर कर दिया। सन् 1917 ई० की पिछली पीढ़ी में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसने बहुत गहरा प्रभाव उत्पन्न कर दिया था।

जर्मन-प्रभावों को तथा देन को रूस ने स्वीकार कर लिया या आत्मसात् कर लिया; किन्तु जर्मनी के प्रति इसके अनुरूप मैत्री की भावना नहीं उत्पन्न हो सकी। जर्मन से

निकटतम आर्थिक सम्पर्क होने से सन् 1850 ई० के बाद ये प्रभाव और देन और भी बढ़ते गये। शिक्षित अल्पसंख्यकों की विशाल शाखा जर्मन-नागरिक सेवकों और अधिकारियों के विरुद्ध विरोध करती थी या कमर कस लेती थी। प्रायः वे सन्त पीर्टसवर्ग द्वारा प्रसारित वैदेशिक नीति पर भी आघात करते थे। इसका कारण यह था कि इस वैदेशिक नीति का नियन्त्रण विदेशियों के हाथ में था, जो रूस की सही आवश्यकताओं या आकांक्षाओं के बदले यूरोपीय समता या जर्मन-स्वार्थों की ही बात सोचते थे। अधिकांश जनता अन्य विदेशियों की अपेक्षा जर्मनों को ही सबसे अधिक जानती थी। किन्तु, जनता उन्हें केवल अपने मालिकों के ओवरसीयर (अधिदर्शक) के रूप में या चकमक चर्मवाले भीरु अफसरों के रूप में जानती थी। ये कारखानों या खेतों में अधिदर्शन का कार्य करते थे। जर्मनों के गुणों को भी रूसी कुदृष्टि से देखते थे। वे समझते थे कि व्यर्थाडम्बर के नियमों के अवगुण के आधिक्य से या उनके अनुरूप न होने के कारण ये दोष आ गये हैं अथवा हो सकता है, निर्दयता या नृशंस बड़प्पन की भावना के कारण ऐसा हो गया हो। यूरोप ने जर्मनों के द्वारा रूस को बहुत दिया, किन्तु यह देन अधिकतर विद्यालयों के कठोर और निर्दय शिक्षक अथवा उग्र तथा विदेशी अनुशासक की देन थी।

जर्मनों के विरुद्ध इस प्रकार की विभिन्न और व्यापक भावना फैली हुई थी। इसने नूतन रूसी राष्ट्रीयता की वृद्धि को काफी बल दिया। सन् 1914 ई० के चालीस वर्ष पहले से ही यहाँ राष्ट्रीयता का अभ्युदय हो रहा था। इससे राजनीतिक-कूटनीतिक सम्मिलन को भी सहायता मिली। इसने रूस को फ्रांस से और अन्ततः ग्रेटब्रिटेन से सम्पर्क करा दिया। सन् 1914 ई० के युद्ध से जो राष्ट्रभक्ति की लहर प्रारम्भ में उठी, उससे स्लावों ने जर्मन-स्वामियों या मालिकों से खूब बदला चुकाया। रूस के, खासकर उक्रेण में जर्मन-अधियोग से इस भावना को काफी बल मिला। द्वितीय महायुद्ध में नात्सी अत्याचारों से जनता में सर्वत्र घृणा की लहर उमड़ पड़ी है। अब उनका नारा है : 'जर्मन तानाशाही आक्रामक का उत्सर्पण तथा मृत्यु हो। जर्मनी का विनाश हो, जर्मन-राज्य एवं जर्मन-सेवा का नाश हो। यूरोप में जर्मनी की नई व्यवस्था का संहार हो (स्तालिन)।'

रूस में यूरोप का द्वितीय महान् तथा एकदम नये रूप में अभिकर्त्ता फ्रांस था। महान् पीटर ने उत्तरी यूरोपीय प्रदेशों के गैर-कैथोलिकों से रूस का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ लिया था। इसका फल यह हुआ कि अट्ठारहवीं शती के मध्य तक फ्रांसीसी संस्कृति की महत्ता विनष्ट हो गई। जर्मन-प्रियपात्रों के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। प्रासाद में क्रान्ति मच गई। पीटर की कन्या एलिजावेथ गद्दी पर बैठी (जन्म : सन् 1709 ई०; राज्य-काल : सन् 1741–62 ई०)। इसकी प्रतिक्रिया फ्रांसीसी

वेष-भूषा के पक्ष में हो गई और खासकर रूपक तथा काव्य में फ्रांस का गहरा प्रभाव पड़ने लगा। सन् 1757 ई० में पेरिस के अनुकरण से ललित कला-अकादमी की स्थापना हुई।

रूस अब कई प्रकार से यूरोप के साथ नियमित सम्पर्क में आ गया था, अतः वह किसी भी हालत में फ्रांस की संस्कृति के प्रभुत्व से वंचित नहीं रह सकता था, जिसे उसने अपने फ्रांस के साथ सम्बन्ध के अतिरिक्त लगभग सभी पश्चिमी देशों में पाया था। अट्ठारहवीं शती के यूरोप में फ्रांसीसी भाषा अन्तरराष्ट्रीय भाषा थी। अतः, रूस के उच्च वर्ग ने इस भाषा को द्वितीय भाषा के रूप में अपनाया। कुछ पीढ़ी के बाद यहाँ फ्रेंच-भाषा प्रथम भाषा हो गई। निजी उपशिक्षक शिक्षा के प्रमुख साधन थे। फ्रेंच-शिक्षक (चाहे उसने कितना भी कम पढ़ लिया हो) करीब सन् 1750 ई० के बाद से रईसों के मध्य उनका एक अवयव हो गया।

केवल फ्रांसीसी साहित्य ही कुण्डी नहीं बनी, बल्कि फ्रेंच-अनुवाद या अँगरेजी, जर्मन तथा अन्य लेखों के संस्करण चिरकाल तक प्रमुख साधन रहे, जिससे रूसी इन सभी से परिचित हुए। फ्रेंच-संस्कृति के माध्यम से ही प्राचीन ग्रीस तक रोम को रूस का ज्ञान हुआ। आधुनिक रूसी-साहित्य में एलिजाबेथ तथा महती कैथरीन के प्रथम दो काल में फ्रेंच-विद्वानों की योग्यता के कारण ही प्रधानतः उच्च साहित्य का सर्जन हुआ। सबसे बड़ी बात यह हुई कि सर्वोत्तम फ्रेंच-संस्कृति ने रूस को विचार और अभिव्यक्ति की प्रांजलता, आलोचना की नूतन पद्धति, विश्लेषण और इन्द्रियग्राहकता, शिक्षा की नूतन भावना, जो नैपुण्य या उपयोगी सूचना की प्राप्ति से एकदम विभिन्न है, प्रदान की।

फ्रेंच-शैली तथा फ्रेंच-विचारधारा का रूस की साहित्यिक भाषा तथा रूसी गद्य-पद्य एवं उनके सार तथा शैली पर गहरा असर पड़ा। मोलियर, रसीने कारनाले, ला फान्तेन तथा फेनेलन का प्रभाव चिरकाल तक रहा। सन् 1760 और सन् 1790 ई० के मध्य मान्तेस्कू और विश्वकोष-कारक तथा वाल्टेयर का जमाना था। और, वाल्टेयर का प्रभाव बहुत दिनों तक रहा। रूसी प्रभाव और भी अधिक दिनों तक रहा, जैसा कि टॉलस्टाय पर उसके प्रभाव से स्पष्ट है। फ्रांस की क्रान्ति के बाद रूस में दूसरी धाराएँ बहने लगीं। फ्रांस अब भी अगुआ था, किन्तु अब कदापि वह अप्रतिहत योद्धा नहीं कहा जा सकता था। उसका प्रभुत्व जाता रहा।

फ्रेंच-साहित्य और विचारधारा का प्रभुत्व महती कैथरीन के राज्यकाल (सन् 1762–96 ई०) में रहा। यह कोई सौभाग्य से नहीं हुआ। रूस और यूरोप के सम्बन्ध में इसने जल-विभाजक का काम किया था।

कैथरीन (जन्म : सन् 1729 ई०) उन सभी महिलाओं की अपेक्षा अधिक उदात्त और सजीव थी, जो महारानी एलिजाबेथ के बाद गद्दी पर बैठीं। अपने पति को गद्दी पर से हटाये जाने तथा उनकी हत्या के पश्चात् वह जर्मन की एक तुच्छ जागीर से अपने साम्राज्य की गद्दी पर पहुँची। वह साहसी वीरांगना थी। वह सुन्दर नील वस्त्र धारण करती थी तथा अद्भुत नाट्य करती थी। वह स्वयं स्वीकार करती थी कि उसमें किसी भी सर्जन-शक्ति की अपूर्णता नहीं है, फिर भी वह शीघ्र ही दूसरों के विचारों को चातुर्य के साथ ग्रहण कर लेती थी। वह तृतीय श्रेणी की लेखिका थी, किन्तु तार्किक युग के सिद्धान्तों तथा उदार निरंकुशता की सर्वोत्तम प्रचारिका थी। कैथरीन स्वयं अपने को और अपने दरबार को रूस के यूरोपीयाकरण का मुख्य साधन समझती थी। उसका कार्य सभ्यता का प्रसार करना था, भले ही इसका क्षेत्र उपहास से लेकर कागजी द्रव्य या सूई देना इत्यादि तक हो। वह उल्लास के साथ साहित्य, कला, शिक्षा तथा प्रेस (मुद्रणालय) को प्रोत्साहन देती थी। उसने प्रेस में आन्तरिक सुधार किया और तुर्क तथा पोलों के विरुद्ध उसे अपूर्व सफलता मिली। उसका राज्यकाल ख्यातिपूर्ण रहा। अतः, रूस के इतिहास में उस काल को कैथरीन-युग के नाम से बोधित करते हैं।

कैथरीन-युग का यह परिणाम हुआ कि अब उच्च वर्ग के अधिकांश लोग पाश्चात्य संस्कृति से ओतप्रोत हो गये। पहले पश्चिमी यूरोप का प्रभाव नाममात्र के लिए था, और वह भी कुछ भौतिक नवीनता तथा बाह्य वस्तुओं का विषम अनुकरण-मात्र था, भले ही दरबार तथा नौकरियों में लोग अन्धाधुन्ध यूरोप की नकल करते हों। अब रूसी-साहित्य दूसरी पीढ़ी में पहुँच गई थी। इसमें फ्रांस का ही अनुकरण अधिक था। किन्तु, अब यह पेरिस के अन्धानुकरण को धत्ता बता सकता था तथा जंगली भद्देपन से दूर रहकर अपने पैरों पर खड़ा होने की क्षमता इसमें आ गई थी।

एलिजाबेथ के राज्यकाल से ही यूरोप से घनिष्ठ सम्पर्क होने के कारण एक बहुशास्त्रविद् मनीषी को प्रेरणा मिली। लोमोनोसोव (सन् 1711–65 ई०) श्वेतसागर के एक कृषक मछुए का पुत्र था। इसमें अपूर्व प्राकृतिक क्षमता, अथक शक्ति तथा दृढ़ता थी, जिससे वह मास्को पहुँचा। वह अध्ययन के लिए जर्मनी गया, फ्रांस नहीं। वह विज्ञान-अकादमी पहुँचा और उसने साहित्य और इतिहास में पूर्ण ख्याति पाई। पच्चीकारी के कार्य में भी वह निपुण था। वह विज्ञान में, खास कर भौतिकी रसायन में विशेषज्ञ था और उसे ही भौतिकी रसायन का जनक कहा जाता है।

सन् 1780 ई० तक अनेक छोटी-छोटी गोष्ठियाँ बन चुकी थीं। इन्होंने पश्चिम से सीख लिया था कि किस प्रकार आलोचना और तर्कबुद्धिवाद को सूक्ष्मता और विवेक के साथ काम में लाना चाहिए। जिस किसी भी वस्तु पर फ्रांस का प्रमाण-चिह्न लग गया हो, उसे वे दासों के समान स्वीकार करने की प्रवृत्ति का घोर विरोध करते थे। महान् पीटर की चापलूसी, धर्म तथा प्राचीन रूस के प्रति घृणा, रूस की वर्त्तमान संस्थाओं और परिस्थितियों की मूक स्वीकृति तथा सबसे बढ़कर दासता के विरुद्ध घोर प्रतिक्रिया थी। शती के समाप्त होते विवेकशील रईसों की उत्पत्ति हो चुकी थी। अब शिक्षित रूस का विभाजन एक सरकारी पक्ष तथा सूक्ष्मालोचक-विरोधी दल में होना प्रारम्भ हो गया।

स्वयं कैथरीन ने आलोचना और सार्वजनिक वाद-विवाद को प्रोत्साहित किया था और वह उन्हें मार्ग दिखाना चाहती थी। जब वह मार्ग नहीं दिखा पाती, तब उसका तेवर चढ़ जाता तथा उन्हें कुचल डालती थी। प्रारम्भ में विश्वकोशकारों, खासकर वाल्टेयर पर, वह आसक्त थी। अतः, उसे तर्कबुद्धिवाद तथा नास्तिक स्वच्छन्द विचारों के व्यवहार का पूर्ण अवसर मिला। उसके कामुक श्रृंगार तथा दरबार में अतिव्ययी विलास की सामग्री होने से रईसों का नैतिक पतन हो गया। वाल्टेयर, डिडेरट, डी' अलेम्बर्ट, ग्रिम तथा विदेशों के विख्यात बुद्धिजीवियों से मुख्यतः प्रचार के रूप में और अंशतः चाटुकारिता के रूप में वह खूब पत्राचार करती थी। उसने और उसके सहकारियों ने उस समय की महान् फ्रांसीसी ज्योतियों को अपने देश में आमन्त्रित किया कि वे आकर स्वयं अपनी आँखों से उत्तर की अर्द्धरम्भा का सौन्दर्य और उसका विशाल राज्य देखें। महान् ज्योतियों में केवल डिडेरट पहुँचा। वह विश्वकोश-गणतन्त्र का राजदूत तथा महामन्त्री था। वह कहता है कि कैथरीन में ब्रूटस की शक्ति तथा क्लियोपेट्रा का सौन्दर्य कूट-कूटकर भरा है।

विश्वकोशकारों के अति तर्कबुद्धिवाद का प्रभाव चिरकाल तक बिना चुनौती के नहीं रह सका। रूसो ने इस जादू को तोड़ने के लिए बहुत कुछ किया। कैथरीन को स्वयं लगा कि उसे मौण्टेस्कू की परिमितता को अपनाना चाहिए और फ्रांस की सभी चीजों का प्रशंसक नहीं रहना चाहिए। महाविरोधी लेखकों के सार्वजनिक, मानवतावादी चमत्कार के कारण फ्रांस से उसका दिल टूट गया। राजनीतिक दृष्टि से वह प्रतिकूल थी या कम-से-कम फ्रांस के लुई पंचदश तथा षोडश के प्रति वह शान्त थी और इंगलैण्ड तथा जर्मन-प्रदेशों के प्रति उसका पूर्वानुराग था।

पीटर महान् को जर्मन-प्रेमी रूसी कहा जाता है तथा महती कैथरीन रूस-प्रेमी जर्मन थी। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में वह सर्वप्रथम रूस आई

(सन् 1744 ई०)। वह किसी प्रकार अपने को अच्छा बनाना चाहती थी। वह रूस देश की भाषा, इतिहास और चाल-ढाल सीखने लगी। जिस काम को उसने कर्त्तव्य और युक्ति समझकर प्रारम्भ किया, वह शीघ्र ही उसके जीवन का अंग बन गया और उसके जीवन के अन्तिम दिनों में उसे रूसी राष्ट्रवादियों में परिगणित किया जा सकता है। उसने रूसी ऐतिहासिक अभिलेखों का मन्थन किया, रूसी इतिहास लिखने को प्रोत्साहन दिया और स्वयं शेक्सपियर का अनुकरण करते हुए दो रूपक लिख डाले, जिनका 'रूरिक' और 'ओलेग' से राष्ट्रीय लगाव था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में फ्रांस की क्रान्ति की प्रतिक्रिया होने के कारण उसका दृष्टिकोण भी महान् रूसी नाटककार के समान ही बदल गया। वह कहता है: 'फ्रांस के उत्कर्ष की कहानी पूर्णतः झूठी है। मनुष्य सर्वत्र एक समान है। सचमुच विद्वान् तथा योग्य व्यक्ति विरले ही कहीं होते हैं। हमारे देश रूस में भी लोग उसी प्रकार आनन्द से रह सकते हैं, जैसा किसी अन्य देश में।'

कैथरीन की राष्ट्रीयता का तात्पर्य वास्तव में पीटर और यूरोप का त्याग था। उसका तात्पर्य रूस के ऐतिहासिक अतीत और विशिष्ट गुणों का समन्वय करना था। एक प्रकार से रूस के भूस्वामी तथा रईसों के लिए यह गौरव का विषय था, जो रूसी शास्त्र के पराक्रम और कैथरीन के राज्य की महत्ता को गर्व के साथ स्मरण कर सकते थे। यह राष्ट्रीयता और भी स्पष्टवादी हो गई। सन् 1812 ई० से यह और भी पनपने लगी और इसी कारण लोगों ने नेपोलियन पर विजय पाई।

उसके अन्तिम वर्षों में एक दूसरी धारा काम करने लगी, जिससे सन् 1780 और 1825 ई० के मध्य रूस का रंग बदल गया। यह फ्रीमेशन†, धार्मिकतावाद और रहस्यवाद का प्रभाव था, जो इंगलैण्ड और जर्मन से पहुँचा। रूसी फ्रीमेशन कुछ हद तक फ्रेंच सन्त मार्टिन, जर्मन रोसिक्रूसियन तथा बहुत हद तक अँगरेजी प्रतिरूप के प्रति ऋणी है। सन् 1780 ई० में इसकी महत्ता बहुत अधिक बढ़ गई। नोविकोव (जन्म : सन् 1744 ई०; कैद : सन् 1792–96 ई०; निधन : सन् 1818 ई०) के कार्यों से इस संस्था को बहुत बल मिला। इसने सच्ची शिक्षा के प्रसार, गम्भीर सामयिक मुद्रणालय तथा सामाजिक सहायता के लिए अपना जीवन लगा दिया। किन्तु, अन्त में कैथरीन ने उसपर अन्तिम प्रतिबन्ध लगा दिया। अन्य वर्गों के साथ मिलकर, जिनकी संख्या न्यून थी, लेकिन वे उच्चे पद पर थे, फ्रीमेशन ने

---

† यह एक गुप्त संस्था थी, जिसमें चिन्तक और कारीगर मिलकर सामाजिक उपभोग और परस्पर सहायता करने का यत्न करते थे। ये मध्यकालीन स्वतन्त्र विचारकों से अपना नाता जोड़ते थे।

तर्कबुद्धि-सम्पन्न स्वतन्त्र विचारों तथा ढीली-ढाली नास्तिकता के प्रतिकूल, जो राजधानी में वालटेयर से प्रभावित समाजों में विशेष प्रचलित थी, युद्ध छेड़ दिया। वह वर्ग चाहता था कि नूतन गम्भीर आलोचना की प्रवृत्ति हो। नैतिकता का पुनर्जन्म हो। इसकी जड़ फ्रीमेशनों में हो। धर्म के लिए नूतन भावना हो। सहिष्णुता का नूतन विवेक हो तथा अपने पड़ोसी और मानव-मात्र के साथ लोग अपना कर्त्तव्य समझें।

उच्च गुणों के इन आदर्शों का अलेक्जेण्डर प्रथम ने (जन्म : सन् 1777 ई०; राज्यकाल : सन् 1801–25 ई०) शीघ्र स्वागत किया। उसने इन गुणों को अपने दो उप-शिक्षकों से सीखा, जिनमें एक था कार्यदक्ष, महान् मनीषी, स्वीट्जरलैण्ड का गणतन्त्री ला हार्प तथा दूसरा था उक्रेण का रूसी पादरी। रूसी पादरी इंगलैण्ड में बहुत दिनों तक रह चुका था। उसने एक अँगरेज-महिला से विवाह किया था। उसने उन्नत कृषि-प्रणाली, धार्मिक मातृभावना और साधारण भक्ति को अपने जीवन में मिश्रित कर लिया था। कालान्तर में अलेक्जेण्डर ने लूथर की भक्ति तथा जर्मन-रहस्यवाद को अपनाया। इससे वह और भी सहिष्णु बन गया। उसने धर्म और राजनीति से प्रभावित होकर ही सन् 1815 ई० में धार्मिक संश्रय किया। यह स्मरणीय है कि सन् 1812 ई० के बाद अलेक्जेण्डर बाइबिल के बिना नहीं रह सकता था। यह उसकी विशेषता थी कि उसने धर्म और शिक्षा का भार एक ही मन्त्री को सौंपा। उसने क्वेकरों को मित्र बना लिया तथा रूस में ब्रिटिश और और विदेशी बाइबिल-संस्था की शाखा खोलने को प्रोत्साहन दिया।

अलेक्जेण्डर के प्रारम्भिक वर्षों में लोग बहुत उदार आशा लगाये हुए थे, जिनमें नोविकोव और रेडिश्चेव भी सम्मिलित थे। स्वयं अलेक्जेण्डर तथा उसके आन्तरिक सलाहकारों ने इन्हें प्रोत्साहन दिया। इनमें दो, रूस में अँगरेज-रईसों और राजसंस्था की प्रणाली के समन्वय के लिए उत्सुक थे। कैथरीन ने स्वयं ब्लैक-स्टोन का ग्रन्थ पढ़कर इसका अनुमोदन किया था। बेन्थम (जो अपने भाई से भेंट करने सन् 1786 ई० में पहुँचा) और आदम स्मिथ के आने से देश के उच्च वर्गों में उत्सुकता बढ़ गई, किन्तु इसका व्यवहारिक फल कुछ नहीं हुआ। सन् 1815 ई० के बाद इंगलैण्ड की असंस्कृत लोकसभा के राजनीतिक सिद्धान्तों को कट्टर राष्ट्र-वादियों ने बहुत ही विरोधी या विदेशी बतलाया। जो पीढ़ी फ्रांस की क्रान्ति या पश्चिमी देशों के युद्ध से प्रभावित थी, उसने इसे एकदम रईसीपन या प्रतिक्रिया-वादी बतलाया।

फ्रांस की क्रान्ति के आरम्भ होते ही कैथरीन ने अपने सन्सरों तथा आरक्षियों को बढ़ा दिया। किन्तु, न तो इससे और न नेपोलियन के युद्धों से ही फ्रांस के प्रति

सामान्य घृणा उत्पन्न हो सकी। अब विभिन्न प्रकार के फ्रांस थे। जहाँ क्रान्ति वर्जित थी या नेपोलियन दैत्य था, वहाँ भगेड़ुओं का, जेसुयिटों का (जिन्हें रूस ने सन् 1772–1820 ई० के मध्य शरण दी थी), चेट्ब्रियेण्ड तथा मैडम डे स्ताल का फ्रांस था। और, सत्रहवीं शती के उच्च साहित्य का फ्रांस सदा ही बना रहता था। राजवंश के अनेक भगेड़ू रूसी सेना तथा नौ-सेना में उच्च पदों पर थे। नूतन रूस अपने महाशासक डक डे रिचेलियु, जो कालान्तर में लूई अष्टादश का प्रधानमन्त्री था, तथा उसके सहकर्मियों का बहुत ऋणी है।

सन् 1812 ई० और मास्को-दहन से राष्ट्रीय भावना दहक उठी। यह भावना जंगली, बर्बर, आधुनिक तेमरलेन के विरुद्ध थी। किन्तु, नेपोलियन की विशाल सेना (ग्रैण्ड आर्मी) का पतन और रूस द्वारा नेपोलियम की अन्तिम पराजय से घृणा की भावना दया, विनय और बड़प्पन में परिणत हो गई। सन् 1812–15 ई० की घटनाओं से रूसी राष्ट्रीयता को बहुत ही बल मिला, जिसके द्वारा महान् उत्तरी युद्ध, सप्तवर्षीय युद्ध तथा कैथरीन-युग की प्रतिष्ठा सभी तरह से बनी रही। सनातनी गिरजाघरों में युद्ध से अज्ञात जनभीति की वृद्धि तथा देश-प्रेम और साहित्यिक रूढिवादिता से राष्ट्रीयता और भी पुष्ट हो गई। इसका बहुत ही सफल चित्रण करमजीन के रूसी राज्य के इतिहास (सन् 1816 ई०) में हुआ है।

पश्चिमी देशों में अभियान तथा फ्रांस में (सन् 1815–18 ई०) रहने से रूसियों को यूरोप का बहुत अच्छा ज्ञान हो गया, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। अनेक अफसर, विशेषतः सेना-अधिकारी उदार या आमूल परिवर्तनवादी सिद्धान्तों से ओतप्रोत हो गये या सहानुभूति रखने लगे। रूस और पश्चिमी यूरोप में आकाश-पाताल का अन्तर था। इससे लोगों को पूर्ण सुधार की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। निरंकुश गद्दी से दासों की झोपड़ी तक सर्वत्र सुधार की आवश्यकता थी। प्रारम्भ में अधिकतर कुलीन अफसरों ने छोटी-छोटी गोष्ठियाँ बनाईं और फ्रीमेशन के प्रभावों से गुप्त गोष्ठियाँ बनने लगीं। अलेक्जेण्डर के अन्तिम पाँच वर्षों में प्रतिक्रिया होने पर भी उन्हें क्षमा कर दिया, किन्तु उसके मरते ही (दिसम्बर, सन् 1825 ई०) उन्होंने दिसम्बर के विप्लव में शस्त्र-धारण किया।

इस विप्लव को शीघ्र ही, किन्तु खून-खराबी के साथ, दबा दिया गया। इसका प्रभाव उसके उत्तराधिकारी निकोलस प्रथम (जन्म : सन् 1796 ई०) पर पड़ा, जिसके कारण वह कवायद-स्थल का उग्र शासक बन गया और वह सख्ती, जाँच-पड़ताल तथा स्पष्टतः पैतृक शासन की आवश्यकता में विश्वास करने लगा। जो लोग उदार सिद्धान्तों से जरा-सा भी मेल रखते या सहानुभूति प्रकट करते, उन्हें

कठिन दण्ड मिलता था; न कि केवल उन्हीं को, जो इसमें स्पष्ट भाग लेते थे। अतः, निरंकुशता और पढ़े-लिखों की महती संख्या में महान् खाई हो गई। उसके राज्यकाल में (सन् 1825–55 ई०) यह खाई और चौड़ी होती गई। निकोलस ने अद्र्धज्ञान की अपकारक विलासिता का विनाश करने का प्रयत्न किया था। यह रूस को पुलिस-राज्य में बदलने में सफल हुआ, जिससे सन् 1848 ई० की क्रान्ति के बाद लोगों को बरफ की टोकरी में कुचल दिया गया।

निकोलस की नीति मूलतः नकारात्मक थी। सन् 1848 ई० के बाद ही उसने सभी दिशाओं में पराकाष्ठा कर दी। इसका स्पष्ट रूप था सनातनीपना, निरंकुशता तथा राष्ट्रीयता। यही सरकारी धर्म था। इसका काफी प्रभाव पड़ा। किन्तु, इसका फल कुछ भी न हुआ, बल्कि युवा बुद्धिजीवी सभा वर्गों को घृणा की दृष्टि से देखने लगे; क्योंकि इसका आधार उन्नत सिद्धान्तों की भर्त्सना था। फलतः, नई पीढ़ी ने स्वतन्त्र विचारों और भयानक पाश्चात्य सिद्धान्तों के विषैले तत्त्व को बहिष्कृत नहीं किया, बल्कि दूर खदेड़ दिया। सामाजिक और राजनीतिक विचारों के लिए साहित्य को सूक्ष्म माध्यम बनाया तथा उग्र विचारों पर कुछ रोक लगा दी।

सन् 1830 और 1860 ई० के मध्य पूर्ववर्णित जर्मन-विचारकों के सामान्य प्रभाव के अतिरिक्त फ्रांस के आदर्शवादी समाजशास्त्रियों का पढ़े-लिखे लोगों पर खूब प्रभाव पड़ा; यथा सन्त साइमन, फोरियर, प्रदों तथा लुई लेन। उपन्यासकार जॉर्ज सैण्ड बहुत ही लोकप्रिय था। बुद्धिजीवियों में उसकी बहुत लोकप्रियता थी। उसके ग्रन्थों को लोग चोरी-चोरी पढ़ते थे। सन् 1860 और 1870 ई० में तो लोग उन्हें खुले आम पढ़ने लगे। अब वे जॉन स्टुअर्ट मिल, बकल तथा डारविन के सिद्धान्त, काम्टे के प्रत्यक्षवाद तथा हर्बर्ट स्पेन्सर के समाजविज्ञान से प्रतिस्पर्धा कर रहे थे। आगे चलकर नीत्से तथा मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ने सबका स्थान ले लिया।

किन्तु, अब रूस बहुत आगे बढ़ गया था और सम्मिश्र हो गया था। रूस को अपने व्यक्तित्व और सर्जनात्मक योग्यता का पूर्ण ज्ञान हो गया था। अब वह किसी अन्य देश की तरफ ज्ञान के लिए नहीं देखना चाहता था। साहित्य हो या समाजिक विचार, यूरोपीय सभ्यता के समस्त भाग में वह हिस्सेदार था। अट्ठारहवीं शती के समान अब वह केवल भिन्न-भिन्न देशों का अनुकरण नहीं करता था। सन् 1860 ई० के बाद क्रान्तिकारी तथा उदार प्रगतिशील आन्दोलनों का खूब प्रचार हुआ और सन् 1905 ई० की क्रान्ति के समय रूस में एक नूतन राजनीतिक

परिस्थिति (जलवायु) उत्पन्न हो चुकी थी। इनके विभिन्न यूरोपीय स्रोत थे, किन्तु महान् समाजिक परिवर्त्तन के दबाव से इनका रूप एक नूतन ढंग से ही बदल गया। यह परिवर्त्तन सन् 1861 ई० में दासों की मुक्ति तथा शीघ्र ही आर्थिक पाश्चात्यीकरण के प्रभाव से हुआ।

3. आर्थिक पाश्चात्यीकरण

मुक्ति और प्रथम विश्वयुद्ध के मध्य, आधी शती में औद्योगिक क्रान्ति ने रूसी जीवन का आर्थिक ढाँचा ही एकदम बदल दिया। पहले की अपेक्षा रूस का जीवन बहुत ही पाश्चात्य ढंग पर हो गया, यद्यपि रूस अब भी प्रधानतः कृषि-प्रधान देश रहा और इसके जीवन और प्रविधि में महान् विभेद थे।

आधुनिक शती के प्रारम्भ में पाश्चात्य पूँजीवाद तथा औद्योगिक जगत् के स्पष्ट लक्षणों का रूस में जबरदस्त प्रभाव था; यथा स्वतन्त्र श्रम-बाजार, बैंकों के विकास से देश और विदेश की संगृहीत पूँजी का उपयोग तथा आत्मसात् कम्पनी तथा संयुक्त विनिमय-प्रणाली, विश्व-मूल्य का अन्तर्ग्रथन तथा विश्वमुद्रा-बाजार, यातायात तथा उद्योग में आधुनिक विज्ञान का व्यवहार तथा विशाल कारखानों में शक्ति से संचालित मशीनों का संकेन्द्रन। सन् 1860 ई० के पहले से ही रूस में ये सभी लक्षण मिल रहे थे, किन्तु बहुत छोटे पैमाने पर और प्रारम्भिक दशा में। सन् 1860 ई० के बाद ये स्पष्ट रूप से प्रकट हुए तथा सन् 1890 ई० से प्रभावशाली हो गये।

दासों की मुक्ति (सन् 1861 ई०) तथा सन् 1860 ई० के बाद से अन्य सुधारों ने प्राचीन तथा उन्नीसवीं शती के रूस के मध्य जलविभाजक का काम किया, जिस प्रकार महान् पीटर का राज्य प्राचीन मस्कोवी तथा नूतन रूस के मध्य किया गया था। सन् 1860 ई० के पहले रूसी उदयोग तकनीकी दृष्टि से बहुत पिछड़ा था। अधिकतर यह हस्तकला और गृह-उद्योग पर आधृत था। दो महान् अपवाद लौह तथा वस्त्र-उद्योग थे, जिनमें खासकर पीटर ने नूतन जीवन का संचार किया।

पहले कहा जा चुका है कि औद्योगिक विकास अट्ठारहवीं शती के प्रारम्भ से हुआ। प्रारम्भ में एक प्रकार से चिरकाल तक राज्य की, खासकर सेना और नौ-सेना की आवश्यकताओं की ही पूर्त्ति करना इसका उद्देश्य था। अतः, सबसे प्रथम धातु-विज्ञान, युद्ध-सामग्री और सैनिक रसद की ओर ध्यान गया। इसमें नये कपड़ों के कारखाने भी सम्मिलित थे। विदेशी तकनीकी ज्ञान, खासकर जर्मनी से, प्राप्त ज्ञान का

प्रयोग खूब किया गया, किन्तु विदेशी धन का कुछ भी प्रयोग नहीं हुआ। पीटर आर्थिक विकास के लिए अधिकतर रूसी वणिक्-वर्ग पर भरोसा करता था, जमीन्दारों पर नहीं। किन्तु, विभिन्न रूपों में राज्य की सहायता के विना नये वणिक् के कारखानों के लिए प्रचुर संगृहीत पूंजी अपर्याप्त थी। अतः, राज्य ने स्वयं अनेक खानों और कुछ कारखानों का संचालन आरम्भ किया और जिनका संचालन राज्य स्वयं नहीं करता थो, उनकी पैदावार को राज्य ही सर्वप्रथम लेने का हक रखता था।

अट्ठारहवीं शती में युद्ध की सामग्री के विषय में रूस पूर्ण तरह से आत्म-निर्भर था। किन्तु, पीटर के प्रयासों के बावजूद वह कपड़ों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं हो सका। रूस की सेना के लिए सत्रहवीं शती के समान अब भी यार्कशायर को ऊनी वस्त्रों का ठेका दिया जाता रहा। रूस में ब्रिटिश-मालों में सबसे अधिक आयात इसी माल का था। केवल कुछ काल के लिए यह मन्द हो गया था, जब प्रशिया ने सफलता के साथ प्रतिस्पर्धा की। खनिज लौह-उत्पादन तथा धातु-विज्ञान में सबसे अधिक उन्नति हुई। अट्ठारहवीं शती के तृतीय पाद में इंगलैण्ड को लौह-निर्यात में रूस ने स्वीडेन को पछाड़ दिया। सन् 1750 ई० में रूस इंगलैण्ड से चौगुना खनिज लोहा गला रहा था। इस नूतन महान् उद्योग का मुख्य केन्द्र अब उराल-प्रदेश था, जहाँ उच्च श्रेणी का खनिज लोहा, लकड़ी का कोयला और जल-विद्युत्-शक्ति का प्रचुर भाण्डार था।

सन् 1800 ई० के बाद उराल-प्रदेश का महत्त्व कुछ घटने लगा। ब्रिटेन में खनिज लौह का उत्पादन प्रायः सम स्तर पर था और यह शीघ्र ही रूस के उत्पादन से भी आगे बढ़ गया; क्योंकि वे लकड़ी के कोयले के बदले कोक का प्रयोग करने लगे तथा लोहा और इस्पात के बनाने में अनेक आविष्कार किये। रूस में इनका प्रवेश बहुत मन्दगति से या बहुत कम ही हो पाया था। सन् 1836 ई० के पहले रूस में संलोडन-भट्टी का प्रयोग नहीं हो पाया था। कोर्ट ने 50 वर्ष पहले ही इस पद्धति का आविष्कार कर लिया था। उराल-प्रदेश में उन्नीसवीं शती के अन्त तक लकड़ी के कोयले से ही काम चलता रहा।

उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में सूती वस्त्र-उद्योग का विस्तार हुआ। ये उद्योग मास्को में या उसके समीप थे। सन् 1822 ई० के बाद सूती उद्योग की रक्षा के लिए उच्च संरक्षण-टैरिफ लगा दिया गया तथा रूस ने जब नेपोलियन की महादेशीय पद्धति (कण्टिनेण्टल सिस्टम) अपनाई (सन् 1807–10 ई०), तब इंगलैण्ड से नाता टूट गया। इससे सूती उद्योग को और भी प्रेरणा मिली। सन् 1820 और 1860 ई० के मध्य में इंगलैण्ड होकर संयुक्तराष्ट्र अमेरिका से

विना चुंगी के रूई का आयात तीसगुना बढ़ गया। सूती कारखानों में अन्य कारखानों की अपेक्षा सबसे अधिक लोग काम करते थे। कुछ कारखानों में अँगरेजी मशीन से काम किया जाता था, किन्तु सस्ता अँगरेजी सूत का आयात सन् 1842 ई० तक दिन-प्रतिदिन अधिक होता रहा। उसी वर्ष इंगलैण्ड ने मशीन के निर्यात पर से प्रतिबन्ध उठा दिया। इसका फल यह हुआ कि रूस में रूई के सूत कातने के उद्योग में सहसा मशीनों का प्रयोग होने लगा। बुनाई-उद्योग भी कुछ धीरे-धीरे इसी मार्ग पर आ गया। लुडविग नूप ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इसका जन्म ब्रीमेन में हुआ था। इसने लंकाशायर में प्रशिक्षण पाया। मध्य उन्नीसवीं शती में रूस में सभी की जिह्वा पर इसका नाम था। कुछ ब्रिटिश-रूसी व्यवसायियों ने भी बड़े पैमाने पर काम किया, किन्तु सूती और सन-उद्योग मुख्यत: रूसी व्यवसायियों के वंशजों के ही हाथ में रहा। ये अधिकतर प्राचीन सनातनी थे। कुछ तो उन्मुक्त दास थे और कुछ महाजन व्यापारी, जो रईस बन गये थे।

रूई तथा उससे कुछ कम सन-उद्योग का काम केवल रूस के सामान्य बाजार के लिए ही होता था। राज्य से इनका कोई घनिष्ठ सम्बन्ध न था। कारखानों में भले ही कुछ प्रक्रिया केन्द्रित थी, किन्तु अधिकांश बुनाई मास्को और वोलगा के मध्य गाँवों में गृह-उद्योग के रूप में होता था। इसका संगठन पूँजीवादी व्यवसायी तथा पंच करते थे। रूई तथा सन की एक और विशेषता थी कि इसके कार्यकर्ता अधिकतर विभिन्न दलों के भाड़े के मजदूर थे या दास, जो कर्ज लिये हुए थे, किन्तु स्वामी को श्रम-सेवा देने को बाध्य न थे। इसके विपरीत वस्त्र तथा भारी उद्योग केवल दासों पर ही निर्भर करता था और इनकी उत्पादन-क्षमता बहुत ही कम थी।

दास-श्रम के आधार पर ही अट्ठारहवीं शती के मध्य से जमीन्दारों ने कृषि को व्यापारिक निर्माण के साथ मिला दिया था। यह उनके कच्चे माल पर आधृत था। निर्माण-कार्य या तो कारखानों में होता था या दासों के घर पर, जो माल तैयार करके पहुँचा जाते थे। राज्य के खानों और ढलाई-घरों में तथा व्यापारी कारीगरों के धन्धों में श्रम के लिए घोर प्रतिस्पर्द्धा चलती थी। इसी कारण कैथरीन के राज्यकाल में जमीन्दारों ने विभिन्न प्रकार के विशेषाधिकारों की माँग की, जिससे जमीन्दारों के कारखानों या काम के सिवा किसानों के अन्यत्र जाने पर रोक या कुछ प्रतिबन्ध लग जाय। कुछ काल के लिए उन्हें सफलता मिली और उन्हें मद्य-आसवन का बहुमूल्य एकाधिकार भी (सन् 1765 ई०) मिल गया।

तब भी सन् 1815 और 1860 ई० के मध्य व्यापारिक निर्माण-कार्य का भाग धीरे-धीरे कम होता जा रहा था। उनका दास-श्रम दिनों-दिन असन्तोषजनक होता जा

रहा था। निकोलस प्रथम (सन् 1825–55 ई०) के कानून राजनीतिक दृष्टि से भले ही प्रतिक्रियावादी हो, किन्तु उसने कुछ हद तक व्यापारी औद्योगिक-वर्ग के विस्तार का पक्ष लिया। अब औद्योगिक-वर्ग तथा कुछ जमीन्दार दासों की मुक्ति चाहने लगे।

उन्नीसवीं शती के मध्य तक पश्चिम से रूस का आर्थिक सम्बन्ध इतना बढ़ गया था कि अब चिरकाल तक घोर वैधानिक और सामाजिक परिवर्त्तन को, भले ही राजनीतिक नहीं, रोका नहीं जा सकता था। एक शती से वह विदेशों में खासकर अम्सटर्डम के माध्यम से कर्ज ले रहा था, भले यह बड़े पैमाने पर न हो। एक शती से कागज का रुपया किसी तरह चल रहा था तथा मौलिक बैंक-पद्धति का क्रमश: विकास हो रहा था। सन् 1800 और 1850 ई० के मध्य विदेशी व्यापार दुगुने से भी अधिक हो गया। अब गेहूँ का निर्यात तथा विश्व में गेहूँ का मूल्य जीवन का महत्त्वपूर्ण प्रश्न हो गया। पश्चिम की औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव अब रूस पर भी पड़ने लगा।

किन्तु, क्रिमिया-युद्ध (सन् 1853–56 ई०) के पहले तक सरकारी क्षेत्रों के प्रभुत्वशाली लोग पश्चिमी यूरोप के ढाँचे पर औद्योगिक विकास को सन्देह से देखते थे। लोग पैतृक-व्यापारिक निर्माण पर ही आशा लगाये रहते थे; क्योंकि इसका मूल जन्मजात रूसी हस्तकला था और पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति मुख्यत: इन्हीं से होती थी। हस्तकला का स्वल्पांश दास-स्वामियों के हाथ था, किन्तु बहुलांश चिरकाल से विशिष्ट कृषक दस्तकारों के हाथ। सहयोगिता के ढंग पर इन्होंने अपना संगठन कर लिया था, जिन्हें आरटेल के नाम से पुकारते थे। अत:, विभिन्न ग्राम-वर्ग विशेष-कला में ख्याति पा चुका था; यथा छुरी, ताले, कील, चाय-कलश, काष्ठ-चप्पल, ऊनी जूते तथा मूर्त्तियाँ। अत:, उन्नीसवीं शती में कृषक-उद्योगों का अन्त न हुआ, उल्टे पूर्वार्द्ध में खूब विकास हुआ; क्योंकि ये बहुत सस्ते पड़ते थे, इनमें लचीलापन था और इनका बाजार समीप ही होता था। कारखानों में मशीन द्वारा प्रस्तुत माल से इनका अन्त न हुआ और न उन्नीसवीं शती के अन्त तक इन्होंने मशीन की सहायता से अपने उद्योग को पुन: संगठित करने का यत्न किया।

आन्तरिक व्यापार का विकास धीरे-धीरे हो रहा था। सन् 1754 ई० में आन्तरिक चुंगी का अन्त हो गया। इससे समस्त रूसी बाजार के निर्माण में बहुत सहायता मिली। सन् 1762 ई० की घोषणा से कम-से-कम सिद्धान्त-रूप में अन्न के व्यापार की आन्तरिक स्वतन्त्रता मिल गई। देश में तैंतीस बड़े मेले लगते थे। इनमें सबसे बड़ा मेला निझनी नवगोरोद का होता था। दो सौ के लगभग छोटे-छोटे साधारण मेले लगते थे तथा 6 हजार से अधिक बाजार लगते थे। इन्हीं के द्वारा मालों का वितरण सारे देश में होता था।

मध्य उन्नीसवीं शती में अधिकतर यातायात जलमार्ग से ही होता था। यातायात बहुत पिछड़ा हुआ था, जिससे व्यापार को बहुत धक्का पहुँचता था। अथच, लोगों की क्रय-शक्ति भी बहुत निम्न थी। पीटर महान् की आज्ञा से जलमार्ग और नगरों का काफी विस्तार हुआ। वोलगा के उपरी भाग को सन्त पीटर्सबर्ग से मिला दिया गया। कैथरीन, पाल और अलेक्जेण्डर प्रथम के राज्यकाल में नहर-पद्धति का खूब विकास हुआ। नेवा नदी में सर्वप्रथम सन् 1815 ई० में रूसी बाष्पनौका चली, किन्तु सन् 1850 ई० के पहले तक बाष्प द्वारा नौ-संचालन में आशाजनक प्रगति न हो सकी। क्रिमिया-युद्ध के समय तक रूस की नौसेना पाल के सहारे ही चलती रही। इसके कुछ जहाज भले ही बाष्प से चलते थे, किन्तु जहाज का पहिया उसमें ज्यों-का-त्यों था। अभी उसने अँगरेजी तथा फ्रांसीसी जहाजों की तरह अपना विशिष्ट स्थान नहीं लिया था।

सड़कें जहाँ कहीं भी थीं, पगडण्डी की तरह थीं। इनसे सरकारी सड़कें कुछ अच्छी थीं। सन् 1817 ई० के पूर्व तक लोगों को चौसी का ज्ञान ही न था और सन् 1840 ई० के पूर्व तक यह अविकसित था। रेलमार्ग का आरम्भ अभी-अभी हुआ था। रूस ने क्रिमिया-युद्ध केवल एक ही प्रमुख रेलमार्ग के बल पर लड़ा। वह था सन्त पीटर्सबर्ग से मास्को तक रेलमार्ग, जो सन् 1851 ई० में खुला। प्रथम रेलमार्ग सन् 1838 ई० में बना। यह सन्त पीटर्सबर्ग से तारसकोइ सेलो के राज-प्रासाद तक केवल मील की ही दूरी तक था।

क्रिमिया-युद्ध में अपमान के पश्चात् लोगों को मालूम हो गया कि पश्चिमी देशों की अपेक्षा निकोलस प्रथम का रूस कितना निर्बल है। अतः, रूस को आधुनिक बनाना होगा। जो शक्तियाँ छोटे पैमाने पर वहाँ काम कर रही हैं, उन्हें अपनी शक्ति के विस्तार के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता देनी पड़ेगी, जिसमें रूस आर्थिक दृष्टि से उन्नीसवीं सदी का राष्ट्र बन जाय तथा शक्ति और भौतिक साधन में पश्चिमी यूरोप के स्तर पर आ जाय। इस हेतु दासों की मुक्ति (सन् 1861 ई०) तथा अलेक्जेण्डर द्वितीय के सुधार आवश्यक थे।

सन् 1861 तथा 1917 ई० के मध्य एक नूतन रूस का जन्म हो रहा था। इसके आर्थिक पाश्चात्यीकरण में राज्य ने प्रमुख भाग लिया, विशेषतः चार क्षेत्रों में; यथा वित्त और मुद्रा, रूस में विदेशी निवेश, शुल्क-पद्धति और रेलमार्ग।

(1) वित्तीय प्रशासन का पुनः संगठन हुआ। राष्ट्रीय बजट के लिए कुछ प्रचार का प्रबन्ध हुआ। राज्य के बैंक में सुधार हुआ (सन् 1860 ई०)। अब केवल राज्य-बैंक ही रुपये का नोट निकाल सकता था और यही साख-उधार पर नियन्त्रण रखता था। पहले रूस में बैंकों की स्थापना हुई और नूतन कर्ज देनेवाली

संस्थाओं को प्रोत्साहन मिला। व्यापारिक विधि का खण्डशः सुधार किया जाने लगा। सन् 1860 ई० से कम्पनियों के बनने की बाढ़ आ गई। श्रेष्ठिचत्वर का शीघ्रता से विकास हुआ, जिससे नूतन वित्तीय और व्यावसायिक युग का उदय हुआ।

शती समाप्त होने के पूर्व तक सिक्के में प्रभावशाली सुधार न हो सका था। सन् 1769 और 1839 ई० के मध्य रूस में अपरिवर्त्त्य कागजी मुद्रा-पद्धति चलती रही। नेपोलियन के समय, खासकर सन् 1806 और 1812 ई० के मध्य कागजी रूबल का मूल्य बहुत घट गया, यद्यपि स्पेरंस्की ने वित्तीय सुधार के लिए प्रयत्न किया था। सन् 1839–41 ई० में सिक्के का सुधार हुआ। अब कागजी मुद्रा परिवर्त्त्य हो गई और इसका आधार चाँदी का रूबल था। किन्तु, यह चल न सका। क्रिमिया-युद्धकाल में वित्तीय पतन हो गया, अतः सरकारी तौर पर सन् 1858 ई० में धातुमान-दण्ड का परित्याग कर दिया गया। इसके बाद राष्ट्रीय आर्थिक नीति की मुख्य विशेषताएँ रहीं—रूबल पर नियन्त्रण रखना, सुवर्ण को आकृष्ट करने का संघर्ष तथा विदेशी विनिमय-दर को कायम रखना। अन्ततः, सन् 1897 ई० में वित्तमन्त्री वित्ते ने रूस में स्वर्णमान-दण्ड कायम किया। इस महत्त्वपूर्ण मर्यादा के कारण ही रूस के वित्तीय ऋण ने जापान के साथ युद्ध की आशंका का अवक्षीण किया और सन् 1914 ई० तक तो एक विशाल युद्ध-पेटी ही तैयार हो चुकी थी।

(2) अलेक्जेण्डर द्वितीय के समय जान-बूझकर पहली बार विदेशी पूँजी को बड़े पैमाने पर आयात करने की नीति अपनाई गई; क्योंकि इसके बिना रूस को आधुनिक बनाना सम्भव न था। अब यूरोप में सबसे अधिक ऋण लेनेवाला देश रूस हो गया। प्रारम्भ में तो रेलमार्ग में ही विदेशी धन लगता रहा, किन्तु कालान्तर में उद्योग की सभी शाखाओं में तथा अन्य धन्धों में भी विदेशी धन का उपयोग होने लगा।

सन् 1892 से 1903 ई० तक वित्ते वित्त तथा व्यापार एवं यातायात दोनों का मन्त्री था। उसने विदेशी पूँजी को प्रोत्साहित करने का भरसक प्रयत्न किया। उसने सारी शक्ति लगाकर औद्योगिक तथा परिवहन-विकास को आगे बढ़ाया। सन् 1892 ई० में प्रत्यक्ष राष्ट्रीय ऋण कुल 5,30,00,00,000 पाँच अरब तीस करोड़ रूबल था तथा सन् 1914 ई० में आठ अरब पचासी करोड़ रूबल। इसपर व्याज ही कुल व्यय का पंचांश से कुछ अधिक हो जाता था। इस ऋण के वाह्य अंश पर व्याज प्रायः 14 प्रतिशत हो जाता था। प्रत्यक्ष ऋण का 48 प्रतिशत विदेशियों से लिया गया था, यद्यपि सन् 1875 ई० में अस्सी प्रतिशत से अधिक वाह्य सरकारी ऋण फ्रांस से लिया गया था।

द्वितीय साम्राज्य के समय से ही फ्रांस ने रूस में धन लगाना आरम्भ किया था। तब इंगलैण्ड से ईर्ष्या करता था। सन् 1870 ई० के बाद लन्दन तथा बर्लिन ने पेरिस का स्थान लिया। अब वे ही रूस के सरकारी माल के क्रय-विक्रय के मुख्य केन्द्र बन गये। सन् 1877 ई० में संकट पड़ा। बलगेरिया के प्रश्न पर रूस और जर्मनी तथा उसके मित्र आस्ट्रिया-हंगरी में संघर्ष छिड़ गया। बिस्मार्क ने रूसी ऋण के विरुद्ध जर्मनी में प्रचलित आन्दोलन को सरकारी समर्थन दे दिया, अतः रूस पुनः पेरिस की ओर मुड़ा। आगामी कुछ ही वर्षों में रूस ने फ्रांस-मुद्राबाजार में शरण ली। बिस्मार्क को इस खतरे का ज्ञान नहीं था और वह सोचता था कि उसके कार्यों का क्षणिक प्रभाव पड़ेगा। किन्तु, सच्ची बात यह है कि जर्मनी के बाजार रूसी राज्य की सुरक्षा के लिए सन् 1894 ई० तक बन्द रहे। रूस के सहयोग से बाल्टीक-प्रदेशों में जर्मन-विरोधी कानून बने तथा चुंगी के गरमागरम झगड़ों के कारण रूस-जर्मनी-सम्बन्ध में महान् परिवर्त्तन हो गया।

सन् 1892 तथा 1914 ई० के मध्य पन्द्रह सरकारी ऋण और रेलवे ऋण-पत्र विदेशों में प्रसारित किये गये। इनमें परिवर्त्तनीय ऋण सम्मिलित नहीं थे। ये सरकारी ऋण और रेलवे ऋण-पत्रों में केवल चार बर्लिन में और एक लन्दन में प्रसारित हुए। फ्रांस से ऋण लेने की चिर परम्परा फ्रांस-रूसी-मैत्री (सन् 1891–93 ई०) के समय से प्रारम्भ हुई। फ्रांस की पूंजी का रूस में निर्यात अन्तरर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में मुख्य स्थान रखता था। जापान के साथ युद्ध (सन् 1904–5 ई०) में, फ्रांसीसी ऋण से नहीं, बल्कि जर्मनों के ऋण से ही रूस किसी प्रकार पार पा सका था। सन् 1906 ई० में पेरिस ने सबसे अधिक ऋण दिया। इसके पहले फ्रांस-सरकार निश्चिन्त हो गई थी कि मोरक्को के सम्बन्ध में जो अलजेसिरास-सम्मेलन होगा, उसमें रूस फ्रांस का समर्थन करेगा। इससे घोर विवाद खड़ा हो गया। डूमा के प्रथम बैठक होने के पहले ही नूतन मौलिक कानूनों की उपेक्षा की गई और यह विवाद खड़ा हुआ। यह ऋण, क्रान्ति का गला घोंटने के लिए था। रूस के सभी वर्गों ने इसकी तीक्ष्ण भर्त्सना की। उदार दल तथा वामपक्ष ने भी भर्त्सना की। उन्होंने भर्त्सना के साथ-साथ कालान्तर में प्रत्याख्यान करने की भी धमकी दी।

सरकारी ऋण के अतिरिक्त रूस ने औद्योगिक तथा अन्य विकासों के लिए विदेशों से बहुत अधिक उधार लिया। रूसी कम्पनी और बैंकों में विदेशी पूंजी अनवरत बढ़ रही थी। सन् 1914 ई० में रूसी संयुक्त पूंजी-कम्पनियों के निष्कासित माल का लगभग एक-तिहाई विदेशियों के हाथ था। इसमें बैंकों का लेखा नहीं है।

इन विदेशी निवेशों में सरकारी ऋण के अलावा फ्रांस का ही हिस्सा सबके अधिक था। यह लगभग एक-तिहाई था। ग्रेटब्रिटेन तथा जर्मनी का स्थान क्रमशः द्वितीय और तृतीय था। प्रत्येक पंचांश देता था। बेलजियम ने दक्षिणी रूस में कोयले तथा लोहे की कम्पनियों में बहुत धन लगाया था। इसका स्थान चतुर्थ था। फ्रांस की मुद्रा मुख्यतः खनन तथा धातु-विज्ञान में, अँगरेजी द्रव्य तैल, स्वर्ण तथा साइबेरिया और उराल की खनन-कम्पनियों में लगा था। जर्मन-निवेश का जाल बहुत फैला था और साम्राज्य के पश्चिमी उपान्तों में यह अधिक प्रभावशाली था।

विदेशी पूँजी से ही, खासकर फ्रांस और जर्मनी से, रूसी बैंकों को धन मिलता था, तो भी यह विवादास्पद है कि कहाँतक इसके कारण विदेशी प्रभाव ने अपनी जड़ जमाई। केवल एक ही प्रसिद्ध बैंक का प्रशासन विदेशी बहुमत से था। विदेशी बैंकों में बहुत प्रतिद्वन्द्विता और विरोध रहता था। कुछ विदेशी बैंक कुछ क्षेत्रों में अपने देशवासियों में आर्थिक स्वार्थ के लिए उनसे मिल-जुलकर काम करते थे। किन्तु, अन्य क्षेत्रों में वे वैसा नहीं करते थे। फ्रांसीसी, अँगरेजी और जर्मन शस्त्रों के लिए झगड़ा करते रहते थे। सन् 1900 ई० तक विदेशी बैंकों के स्वार्थ से उद्योग-धन्धों का संगठन हुआ। वे ही इनका नियन्त्रण करते थे तथा वे और उनके विदेशी विशेषज्ञ मिलकर इन्हें चलाते थे। किन्तु, सन् 1900 ई० के बाद वे सामान्यतः धार्य का अभिनय करने लग गये। मुख्यतः वे दलाली और लाभांश चाहते थे। इसके अतिरिक्त वे धन्धों का वास्तविक नियन्त्रण नहीं चाहते थे। इस प्रकार, विदेशी दुहिता-संस्थाओं ने कुछ महत्त्वपूर्ण अपवादों के साथ रूसी उद्योग में अल्प भाग लिया।

(3) चुंगी तृतीय साधन थी, जिसके द्वारा रूस के उद्योग को आधुनिक ढंग पर फैलने में सहायता मिली। क्रिमिया-युद्ध के पहले रूस में चुंगी का बचाव दीवार था, भले ही महती कैथरीन के अधिकांश राज्यकाल तक तथा अलेक्जेण्डर प्रथम के कुछ वर्षों तक चुंगी का बचाव दीवार न रहा हो। सन् 1822 ई० के बाद पुनः उच्च चुंगी तथा रुकावट-पद्धति का प्रारम्भ हुआ। क्रिमिया-युद्ध के पहले से ही घोर प्रतिरक्षा के विरुद्ध कुछ प्रतिक्रिया हो रही थी। किन्तु, आन्तरिक संकट के कारण वास्टियात तथा कॉबडेन के सिद्धान्त काम कर गये। इसके बाद पच्चीस वर्षों तक महत्त्वपूर्ण स्वतन्त्र सूची के साथ निम्न चुंगी-कर चलता रहा। सन् 1876 ई० में बालकन-संकट उपस्थित हुआ। राजस्व के आधार पर चुंगी-दर बहुत बढ़ा दी गई। इसके बाद रूस ने पुनः अपनी चुंगी की दीवार खड़ी कर दी; क्योंकि जर्मनी, फ्रांस तथा अधिकांश यूरोपीय देशों ने अपने उद्योगों की रक्षा के लिए इसका अवलम्बन लिया था।

इस प्रकार, उच्च संरक्षण का अवलम्बन लेने से घोर प्रतिक्रिया उत्पन्न हो गई। पहले तो इंगलैण्ड ही रूस के विदेशी व्यापार का मुख्य हिस्सेदार था। उन्नीसवीं शती के मध्य से जर्मनी ने इंगलैण्ड को विस्थापित कर किया। यह प्रतिक्रिया जर्मनी के विरुद्ध थी, इंगलैण्ड के विरुद्ध नहीं। सन् 1893-4 और 1903-4 ई० में चुंगी के लिए दो भीषण संघर्ष हुए। इससे रूस और जर्मनी के सम्बन्ध और भी बिगड़ गये। प्रशिया के कृषि-स्वार्थ से, रूसी अन्न के आयात के विरुद्ध बचाव की माँग होने लगी।

(4) रूस की औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ से ही यातायात की क्रान्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, जिसका कारण वाष्पशक्ति है। रूस की औद्योगिक क्रान्ति यूरोप क अन्य देशों के समान ही है, किन्तु ग्रेटब्रिटेन से भिन्न है। निकोलस की उच्च चुंगी से व्यापारिक निर्माण-कार्य के विकास में कोई सहायता नहीं पहुँची, केवल सूती कारखानों के कुछ भागों में भले ही कुछ विकास हुआ। सन् 1880 ई० के बाद खूब तेजी से औद्योगिक विकास में सहायता मिली। इसका मुख्य कारण यह था कि अलेक्जेण्डर द्वितीय ने मध्यवर्त्ती काल में चुंगी की दर बहुत कम कर दी थी। इससे पश्चिमी तकनीकी ज्ञान और पूँजी के आयात में, खासकर रेलमार्ग के रूप में प्रोत्साहन मिला।

निकोलस प्रथम रेलमार्ग को घृणा की दृष्टि से देखता था। उसके सलाहकार भी ऐसा ही समझते थे। इसका मुख्य कारण यह था कि इससे रूस विदेशी पूँजी तथा साधन पर सदा के लिए आश्रित हो जाता। सन् 1855 ई० में जब वह मरा, तब सारे रूस के विशाल साम्राज्य में केवल 650 मील ही रेलमार्ग था, जो लघु पीडमण्ट की अपेक्षा अधिक नहीं था। जब इसका उत्तराधिकारी अलेक्जेण्डर द्वितीय मरा (सन् 1881 ई०), तब 14,000 मीलों का रेलमार्ग था। सन् 1860 और 1870 ई० से रेलमार्ग का बनना तेजी से प्रारम्भ हुआ। ये रेलमार्ग निजी कम्पनियों द्वारा बनाये जाते थे। किन्तु, ये रेलमार्ग राज्य की वित्तीय गारण्टी और राज्य की सामान्य योजना के अनुसार बने। कालान्तर में राज्य ने अधिकांश रेलमार्ग को खरीद लिया।

सन् 1875 ई० के बाद रेलमार्ग के निर्माण में कुछ ढिलाई हो गई। सन् 1891 ई० में ट्रांस-साइबेरियन रेलमार्ग का बनना आरम्भ हुआ। वित्ते की आर्थिक नीति ध रेलमार्ग के विस्तार को खूब प्रोत्साहन मिला। पन्द्रह वर्ष (सन् 1891–1995 ई०) में प्राय: 20,000 मील की नई रेल-लाइन बनी। यह संख्या सन् 1921-39 ई० की संख्या से प्राय: मिलती है। सन् 1917 ई० की क्रान्ति के समय तक कुल रेलमार्ग 52,000

मील तक पहुँच गया था और 7,000 मील का दूसरा रेलमार्ग बन रहा था। इसमें फिनलैण्ड और पोलैण्ड भी सम्मिलित हैं। यदि उन्हें अलग कर दिया जाय, तो कुल रेलमार्ग की दूरी केवल 47,000 मील ही होगी।

सन् 1891 ई० के बाद रेलमार्ग के विस्तार के साथ हीं साथ धातु उद्योग का भी खूब विस्तार हुआ। सन् 1860 और 1870 ई० की अपेक्षा अब रेलमार्ग के निर्माण की सामग्री इन्हीं धातु-उद्योग के कारखानों से मिलने लगी। सन् 1891 ई० के बाद युद्धनीतिक और आर्थिक आवश्यकताओं के कारण एशिया के यातायात में क्रान्ति हुई। ट्रांस-साइबेरिया के रेलमार्ग पर यह केन्द्रित था। अब तासकन्द भी सन् 1905 ई० में यूरोपीय रूस के समीप हो गया; क्योंकि ओरेनबर्ग तक सीधे रेलमार्ग बन गया। बीस वर्ष पहले ही कास्पियन सागर से यह रेलमार्ग जुट चुका था। तुर्किस्तान के कपास-क्षेत्रों को साइबेरिया के गेहूँ-क्षेत्र से मिला देने का योजना केवल सर्वेक्षित ही रही। सन् 1930 ई० में सोवियत-शासक ने तुर्क-सिब रेलमार्ग को खोल दिया। साम्राज्य-काल से एशिया में जो न्यून पैमाने पर रेलमार्ग की पद्धति थी, उसका खूब विस्तार हो गया।

इन चारों कारणों के परस्पर प्रभाव से रेलमार्ग, चुंगी, विदेशी निवेश तथा राज्य द्वारा पश्चिमी पूँजी को प्रोत्साहन तथा दासों की मुक्ति हो जाने के कारण रूस की आर्थिक दशा में महान् क्रान्ति आ गई। यह क्रान्ति तकनीकी पैमाने पर थी। आन्तरिक और बाह्य व्यापार दिन-दूना, रात-चौगुना बढ़ने लगा। अब एक नूतन व्यावसायिक, वित्तीय और औद्योगिक वर्ग बनने लगा। यह अंशतः पुराने ढंग के महाजन तथा ठीकेदारों के रूपान्तर के कारण और अधिकतर पाश्चात्य ढंग के नये बुर्जुआ के विकास के कारण था। जो सन् 1914 ई० के आसपास महान् तथा मास्को के ब्रिटिश राजदूतावास के समान प्रासादों का निर्माण कर रहे थे, अब वे विशाल भवन बना रहे थे और तत्कालीन फ्रांसीसी चित्र खरीद रहे थे। जहाँ अब आधुनिक पश्चिमी कला का मास्को-संग्रहालय है, वह विश्व में इस प्रकार की चित्रकला का बहुत ही सुन्दर संग्रह है। नागरिकों की संख्या भी तेजी से बढ़ने लगी, जिसमें औद्योगिक सर्वहारा बसने लगे। इसमें चतुर कारीगरों की संख्या कम थी। गाँवों से इनका पुराना सम्बन्ध एकदम टूट गया। सन् 1917 ई० में शहर और देहातों की एक नई दुनिया ही बन चुकी थी और इन सबमें शहर ही अगुआ थे।

औद्योगिक क्रान्ति की ऊष्मा और परिमाण का अन्दाजा उत्पादन की आगे दी गई संख्या से पता चल सकता है, जो लाख टन में दिया गया है:

वस्तु		1860	1900	1913
कोयला	...	·28	16	36
कच्चा लोहा	...	·31	2·7	4·8
इस्पात	...	·0016	2·5	5·2
तेल	...	·027 (1870)	10·4	9·0
कच्ची कपास		·05	·24	·40

सन् 1890 ई० से पश्चिमी यूरोप या संयुक्तराष्ट्र अमेरिका की अपेक्षा, अनेक भारी उद्योग तथा कोयला-उत्पादन की प्रगति बहुत अच्छी थी। दूसरी तरफ औद्योगिक मालों का खास उत्पादन बहुत कम था। उदाहरण के लिए (सन् 1913 ई०) के आंकड़ों को लें :

देश	खनिज लोहा	इस्पात	कोयला
रूस	4·8	5·2	36
संयुक्तराष्ट्र अमेरिका	30·9	31·3	509
इंगलैण्ड	10·3	7·7	287
जर्मनी	19·3	18·3	190
फ्रांस	5·2	4·7	40·8

भूरा कोयला जोड़ने से जर्मनी का कोयला-उत्पादन 277 लाख टन हो जाता है। ये सब लाख टन में दिये गये हैं।

अथच, यदि हम प्रति व्यक्ति उपभोग की तुलना उत्पादन से करें, तो वह रूस के लिए हानिकारक होगा। सन् 1914 ई० में पश्चिम की अपेक्षा रूस बहुत ही पिछड़ा देश था, फिर भी सन् 1861 ई० के रूस की अपेक्षा वह बहुत आगे बढ़ गया था।

एक विशेष बात में रूस बहुत ही अग्रसर था। वह यह था कि रूस के उद्योग विशाल संस्थाओं में केन्द्रित थे और सन् 1914 ई० तक तो अधिकतर आधुनिक मशीन (संयन्त्र) भी लग चुके थे। उस समय आधे से अधिक व्यक्ति, जिन्हें औदयोगिक

कर्मकार कह सकते हैं, संयन्त्रों में काम करते थे, जहाँ 500 से अधिक लोग काम करते थे तथा लगभग एक-चौथाई संयन्त्रों में 1000 से अधिक लोग काम करते थे। यह अनुपात किसी भी अन्य देश की अपेक्षा कहीं अधिक थी। सन् 1890 ई० में सात विशाल कारखाने उक्रेण में थे, जहाँ दो-तिहाई व्यक्ति धातु-संयन्त्रों में काम करते थे। इसी प्रकार, मिल-मजदूरों का भौगोलिक संकेन्द्रन भी मार्के का था। वे खासकर मास्को, सन्त पीटर्सबर्ग, रीगा, वारसा और लोडज के औद्योगिक क्षेत्रों में थे। खनन तथा धातु का सबसे अधिक संकेन्द्रन दक्षिणी उक्रेण में था। सभी तेल-मजदूर बाकू में थे।

सन् 1905 ई० की क्रान्ति के अभ्युत्थान के बावजूद सन् 1895 ई० के बाद बीस वर्षों में उद्योग और खनन की विशेष वृद्धि हुई। केवल बाकू के तेल-उद्योग में आगामी दशक में कोई वृद्धि न दीख पड़ी; क्योंकि सन् 1905–6 ई० में वहाँ असंस्कृत संघर्ष का दृश्य उपस्थित था। अन्तरराष्ट्रीय पूँजी तथा विशेषज्ञों की सहायता और राज्य द्वारा न्यूनतम हस्तक्षेप के कारण, तेल-उद्योग का विकास शीघ्रता से हुआ। नोबेल एक स्वीडेन रूसी व्यवसायी था। उसने बाकू में सन् 1870 ई० के बाद अपना उद्योग आरम्भ कर दिया। सन् 1900 ई० तक विश्व में सबसे बड़ा तेल-उत्पादक रूस ही रहा। उसके बाद पश्चिमी अमेरिका के क्षेत्रों में विशाल तेल का उत्पादन आरम्भ हुआ और रूस पीछे पड़ गया।

सूती उद्योग, मास्को तथा वोलगा के मध्य संकेन्द्रित रहा। इसके अलावा, सन्त पीटर्सबर्ग में तथा उसके आसपास तथा पोलैण्ड में भी यह उद्योग चलता रहा। तकनीकी दृष्टि से यह उद्योग बहुत ही समृद्ध था। सन् 1914 ई० में एक-तिहाई से अधिक कच्ची कपास की पूर्ति देश से ही हो जाती थी। यह मध्य एशिया की मोटी कपास थी। सन् 1905 ई० की क्रान्ति के समय सूती उद्योग में सात लाख से अधिक लोग काम करते थे। कुल कारखानों में जितने लोग काम करते थे, उनके आधे से ये कम नहीं थे। आधुनिक वृहद् उद्योगों में केवल यही एक उद्योग था, जो पारिवारिक उपभोग की पूर्ति करता था। किन्तु, आधुनिक कारखानों (मिलों) की उत्पादन-शक्ति की वृद्धि के अनुपात से अधिकांश जनता की प्रभावी माँग न्यून रही। अतः, सीमावर्त्ती एशिया के देशों में अतीत की तरह सस्ते सूती माल का निर्यात होता रहा। यह वृहद् सूती कारखानों के लाभ का महत्त्वपूर्ण तत्त्व था। मध्य और सुदूर पूर्व में ये जारशाही साम्राज्यवाद के अच्छे मित्र थे। इसी प्रकार, लघु रूस में चीनी मालिकों ने चुकन्दर की चीनी के व्यापार को बढ़ाकर बहुत महत्त्वपूर्ण कर दिया। चुकन्दर की चीनी का उद्योग सर्वोत्तम उदाहरण है कि किस प्रकार रूस में राजकीय नियम की उत्पादक-संघ के साथ अन्तर्ग्रन्थि होती है।

बृहद् उद्योगों के उत्पादन और क्षमता में सबसे अधिक वृद्धि हुई। इसका विकास प्रायः शून्य से हुआ। क्रिवोइ रोग में खनिज लोहे का विपुल संचय था तथा डोनेट्स बेसिन में कोयले का। इसका प्रारम्भ सन् 1869 ई० में वेल्शमन, जॉन ह्यूगस (उसने उस नगर को अपना रूसी नाम दिया, जहाँ उसका कार्य आरम्भ हुआ—युजोवक। अब इस महान् नगर का नाम है स्तालिनो) ने किया। दक्षिणी रूस के नूतन खनन और बृहद् उद्योग उराल के प्राचीन धातुकेन्द्रों से बहुत आगे बढ़ गये। सन् 1913 ई० में, दक्षिण में खारकोस मुख्य औद्योगिक राजधानी बन गया, जहाँ से रूस के कोयला, खनिज लोहा (लौह-अयस्क), कच्चा लोहा तथा इस्पात का 60–70 प्रतिशत उत्पादन होने लगा।

आधुनिक धातुकर्मक उद्योग, खासकर रेलमार्ग के साधन तथा अस्त्र-शस्त्र के लिए काम करते थे। उपभोक्ता की आवश्यकताओं की पूर्ति; यथा कृषियन्त्र या इस्पात-चादर इत्यादि, विदेशी आयातों से ही होती थी। इसी प्रकार, कृत्रिम खाद का उत्पादन भी बहुत मामूली था। विद्युत् तथा रासायनिक उद्योग बहुत निर्बल थे। मशीन (संयन्त्र), औजार, सूक्ष्म इस्पात तथा सूक्ष्म उपकरणों के लिए रूस को अधिकतर आयात पर ही निर्भर करना पड़ता था।

सन् 1917 ई० में तथा कुछ हद तक सन् 1905 ई० में बृहद् संस्थाओं में तथा विशेष प्रदेशों में, औद्योगिक मजदूरों के बहुत अधिक मात्रा में संकेन्द्रन के कारण, औद्योगिक सर्वहारा-वर्ग के विकास में सहायता मिली तथा उनमें क्रान्तिकारी प्रचार भी खूब हुआ। सन्त पीटर्सबर्ग तथा मास्को दो राजधानियों की ओर यही दोनों बृहद् औद्योगिक केन्द्र भी बने। अतः, ये अशान्ति के केन्द्र बन गये। अब भी औद्योगिक खनक या नगरकर्मकों की संख्या अनुपात में कृषकों से बहुत कम थी, किन्तु बहुत शीघ्रता से इसका अनुपात बढ़ता जाता था। इसी कारण बोल्शेविकों ने अपना अड्डा नगर, मिल, खनन तथा रेलमार्ग में बनाया और वहाँ वे दृढ होकर जम गये।

सन् 1863 ई० में यूरोपीय रूस में (पोलैण्ड, फिनलैण्ड तथा काकेशश को छोड़कर) 61,000,000 जनता रहती थी। इनमें साठ लाख से अधिक लोग शहरों में रहते थे। सन् 1897 ई० में जनसंख्या 9,40,00,000 थी और इनमें 12,000,000 शहरों में रहते थे। सन् 1863 ई० में केवल तीन ही नगर थे, जिनकी जनसंख्या एक लाख से अधिक थी। सन 1897 ई० में ऐसे पन्द्रह नगर† थे। उस समय सन्त पीटर्सबर्ग

---

† सन् 1860 ई० में समस्त रूस-साम्राज्य की जनसंख्या 7,60,00,000 थी, जिनमें 80,00,000 नगरों में थे। सन् 1897 ई० में जनसंख्या थी 12,90,00,000, जिनमें नगरवासी 1,6,875, 000 थे। सन् 1897 ई० में उन्नीस नगर तथा सन् 1860 ई० में केवल चार नगर। केवल सन् 1897 ई० में ही साम्राज्य में सरकारी जनगणना हुई थी। सोवियत-संघ की जनसंख्या आगे देखें।

तथा मास्को की जनसंख्या दस लाख से अधिक थी और आगामी बीस वर्षों में यह संख्या दुगुनी हो गई। सन् 1914 ई० में 30 लाख के लगभग लोग कारखानों में काम करते थे, लगभग दस लाख खनन-कार्य में लगे थे और 8,00,000 आठ लाख मनुष्य रेलवे में लगे थे। यह ठीक है कि किसानों के अनुपात में औद्योगिक क्षेत्रों की जनसंख्या एकदम न्यून थी, किन्तु सन् 1905 और 1917 ई० की क्रान्तियों में इन्हीं औद्योगिक कर्मकों ने मजदूरों को दृढ़ सेनामुख दिया।

अधिकांश जनता कृषक थी। औद्योगिक कर्मकों का किसानों से सम्बन्ध विभिन्न तथा चंचल था। अथच, अनेक उद्योग-धन्धे शहरों में नहीं थे, वल्कि सुविधाजनक स्थान पर देहाती जिलों में ये रेलमार्ग या नदियों के किनारे थे। इन स्थानों में तथा बहुत हद तक खनन-स्थानों में लोगों का घनिष्ठ सम्बन्ध कृषकों से बना रहा; क्योंकि ये कृषकों से ही आये थे। नगरों में भी अनेक अकुशल कर्मचारियों के साथ भी यही बातें थीं। क्रान्ति से पूर्व रूस में सोवियत रूस की तरह मजदूरों की संख्या में बहुत अधिक बढ़ती होती रहती थी। गैर-कृषि (कृषियों में भी) सामयिक मजदूर, खेतिहरों में अब भी नियमित थे। नगर और देहातों को मिला देने से अलगाव का नियम भंग हो गया। इससे गाँवों में सामाजिक सिद्धान्तों के प्रचार में सहायता मिली, किन्तु इसका यह भी फल हुआ कि अधिकांश औद्योगिक या अर्द्ध-औद्योगिक कर्मकार नागरिक मजदूरों की श्रेणी में नहीं आ सके, वल्कि इनमें दृढ़ कृषक-मनोवृत्ति बनी रही। इन्हें संगठित करना बहुत कठिन था। मिल-जुलकर क्रान्तिकारी कदम उठाने की अपेक्षा ये कच्चे अराजकतावादी तथा विकीर्ण विप्लवी सिद्ध हुए।

सन् 1905 ई० तक अधिकांश नगरवासियों, विशेषतः निपुण कारीगरों का सम्बन्ध गाँव से टूट गया था। कारखानों में कर्मकों की द्वितीय-तृतीय पीढ़ी चल रही थी। ये अतीत से घृणा करते थे, जहाँ परम्परागत रीति-रिवाज तथा अन्ध-विश्वास की गुलामी चली आ रही थी। किसानों के लिए ये विदेशी थे। नियोजक तथा अपने स्वार्थों के संघर्ष की प्रकृति से ये खूब दिलचस्पी रखते थे। सन् 1914 ई० के युद्ध में अस्त्रागारों में जो कुछ अल्पसंख्य निपुण कारीगर थे, उन्हें अपने महत्त्व का नूतन ज्ञान अच्छी तरह हो गया।

निपुण तथा अनिपुण सबके लिए कार्य की परिस्थिति तथा मजदूरी बहुत दयनीय और निम्न थी। इनमें महान् विभेद भी था। सन् 1900 ई० तक कुछ कारखानों को छोड़कर आवासीय परिस्थिति एकदम खराब थी। भले ही कुछ सुधार हुआ हो, किन्तु बड़े नगरों में अति संकुलता दिन-दिन, खासकर सन् 1914–17 ई० के युद्धवर्षों में, बढ़ती गई और सोवियत-शासन को महत्त्वपूर्ण कार्य करना पड़ा। गृह-निर्माण में

नये युग का उद्घाटन करने के प्रयास के बावजूद गत बीस वर्षों में नगरों की वृद्धि से यथेष्ट आवास की व्यवस्था करना कठिन हो गया।

कार्य की नियत अवधि तथा कारखानों की स्थिति (विशेषतः जिन्स-अदायगी-पद्धति और जुरमाना) सन् 1880 ई० तक वस्तुतः नियमों से आबद्ध न थी। इसका प्रारम्भ कारखानों के निरीक्षण तथा अन्य सुधारों से हुआ। सन् 1897 ई०में प्रतिदिन सभी कारखानों और दूकानों में सामान्यदा साढ़े ग्यारह घण्टे काम करने का नियम बना दिया गया। तब भी समयोपरि व्यवस्था तथा अयोग्य निरीक्षण के कारण कानून एक प्रकार से बेकार हो गया। मजदूरी तथा घण्टों के सम्बन्ध में कोई सामूहिक समझौते की विस्तृत पद्धति के अभाव में किसी प्रकार का कानून भी बनाना कठिन हो जाता था।

सन् 1906 ई० तक श्रमिक-संघ, आपराधिक कानून के अन्दर थे; किन्तु अधिकारियों द्वारा पुलिस-समाजवाद के रूप में धूर्तता से भड़काने पर ये आपराधिक कानून के चंगुल में नहीं फँस सकते थे। सन् 1905 ई० की क्रान्ति के बाद भी हड़ताल कानूनी तौर पर अमान्य रही। सन् 1905 ई० के पहले श्रमिक-संघ बहुत ही निर्बल थे। उसके बाद उन्होंने अपना सिर कुछ उठाया। किन्तु, ये संघ बहुत ही छोटे और बहुत दरिद्र थे। एक संघ शिकायत करता है : 'सदस्यता एक प्रकार से घमक्कड़ खानाबदोशों का झुण्ड है, न कि समुचित सुगठित संस्था।' सन् 1914 ई० के युद्धकाल में इन संघों का प्रायः अन्त हो गया या खासकर इन्हें बरबाद कर दिया गया। जब मार्च की क्रान्ति हुई, तभी स्वतन्त्र रूप से तथा विशाल पैमाने पर इन संघों का विकास हो सका।

इन संघों के चतुरंगी अतीत तथा पूर्व-दुर्बलता भविष्य के लिए महत्त्वपूर्ण साबित हुए। पश्चिम की तरह रूसी कर्मकों की ठोस, स्वतन्त्र तथा आत्मनिर्भर श्रमिक-संघ की कोई परम्परा न थी। बहुत तीव्र गति से (औद्योगिक ढाँचे पर, शिल्प के ढाँचे पर नहीं) क्रान्ति की परिस्थितियों में इसका निर्माण करना पड़ा। इसके काम और कार्य-प्रणाली के विषय में विभिन्न मत चल रहे थे। लेनिन के इस बात पर लोग सामान्य रूप से सहमत थे कि श्रमिक-व्यापार-संघ साम्यवादी दल तथा जनता के मध्य संचारक हो। इस विषय पर घोर विवाद चलता रहा कि व्यवहार में इसका क्या अर्थ होना चाहिए। सन् 1928 ई० में सब झगड़ा समाप्त हो गया। तबसे श्रमिक-संघों ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, किन्तु यह कार्य पश्चिम देशों के श्रमिक-संघ से भिन्न है।

सन् 1917 ई० की क्रान्ति के पहले कर्मक-वर्ग-संगठन की दुर्बलता को सहयोग-आन्दोलन की ताकत से पूरा करने का यत्न नहीं किया गया था। यह सहयोग-

आन्दोलन विस्तृत रूप से और शीघ्रता से विकसित हुआ। सन् 1914 ई० के युद्ध-काल में यह अपरिहार्य वितरण-एजेन्सी सिद्ध हुआ। किन्तु, यह सहयोग-आन्दोलन अधिकतर मध्यम श्रेणी तथा खुशहाल कृषकों के हाथ में था। सन् 1917 ई० के बाद यह सहयोग-समितियों या श्रमिक-संघों की तरह ही बड़े पैमाने पर विकसित हुई और आगामी दस वर्षों तक वितरण में इसका बहुत बड़ा हाथ रहा, किन्तु धीरे-धीरे यह साम्यवादी दल द्वारा नियन्त्रित होने लगी और अन्तत: यह राष्ट्र-व्यापार-संस्था के एक वर्ग के रूप में काम करने लगी। सहयोग-समितियाँ नाम के लिए थीं, किन्तु पाश्चात्य देशों की सहयोग-समितियों से भिन्न वस्तु थीं।

सन् 1905 ई० की क्रान्ति के पहले राजनीतिक दल मुश्किल से वैधिक रूप से कार्य कर सकते थे। उसके बाद कर्मक-वर्ग का राजनीतिक कार्य और भी लुक-छिप-कर होने लगा। रूस में कभी सुदृढ, स्वेच्छापूर्ण या स्थानीय संस्थाएँ नहीं पनप सकीं। हालाँकि, अनेक पाश्चात्य देशों के निर्माण में सुदृढ स्वेच्छापूर्ण या स्थानीय संस्थाओं ने ही प्रमुख भाग लिया है। सन् 1917 ई० के पहले की पीढ़ी में उच्च तथा मध्यम वर्ग ऐसी संस्थाओं को अधिक प्रभावशाली बनाने का यत्न कर रहे थे। किन्तु, कम्यून के अतिरिक्त अधिकांश कर्मक-वर्ग तथा कृषकों का कोई नियमित संगठन न था, जिनके माध्यम से वे प्रशिक्षण पा सकें या अपना अभिमत प्रकट करें। सन् 1917 ई० की क्रान्ति में दो महान् विपरीत लक्षणों की व्याख्या इसी आधार पर हो सकती है। एक ओर तो इसका रूप एकदम अव्यवस्थित, अराजक तथा रंग-बिरंगी था तथा दूसरी ओर अन्तत: संख्या में अति लघुदल बोल्शेविकों की विजय थी। उनकी विजय सम्भव थी; क्योंकि केवल उन्हीं के संगठन में कड़े अनुशासन, निर्णयकारी कार्य तथा सामूहिक अपील का सम्मिश्रण था।

बोल्शेविकों की सफलता का एक और कारण यह था कि ये बोल्शेविक तथा अन्य औद्योगिक कर्मक सन् 1905 ई० की क्रान्ति से इस्पात बन गये थे। सन् 1905 ई० की क्रान्ति के मुख्य वैधानिक और राजनीतिक फलों का वर्णन पहले किया जा चुका है। यहाँ केवल कुछ ही अन्य बातों को कहना आवश्यक है।

22 जनवरी, सन् 1905 ई० को सन्त पीटर्सबर्ग में 'खूनी रविवार' से स्वतन्त्र वर्ष का श्रीगणेश हुआ, जब बृहद् हड़ताल के समय प्रार्थियों की कतार-की-कतार जार के सामने खड़ी थी सेना ने सैकड़ों को गोली से धराशायी कर दिया। अब सारे देश में विभिन्न वर्गों ने हड़ताल और विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। वर्ष-भर जापान के साथ युद्ध चलता रहा। यह युद्ध जनप्रिय न था। हार होने से और भी बेइज्जती हुई। वर्ष के अन्तिम तीन मासों में क्रान्ति हो गई।

हड़ताल के अस्त्र का प्रयोग ऐसे पैमाने पर हुआ, जो रूस के लिए एकदम नई बात थी। सन् 1905 ई० में कुल 3,000,000 कर्मकों ने हड़ताल की। किसी भी देश के किसी भी वर्ष इतनी बड़ी संख्या में लोगों ने अभी तक हड़ताल न की थी।

सन् 1905 ई० के पहले हड़तालों की संख्या में वृद्धि हो रही थी। सबसे पहले सन् 1903 ई० में दक्षिण रूस में सामान्य हड़ताल हुई। रेलवे कार्यकर्त्ता तथा कुशल धातुकर्मक इसके अभिनेता थे। अब आर्थिक मांगों की ही अधिकता थी, किन्तु सामान्य राजनीतिक मांगों की भी चर्चा होने लगी थी। सन् 1905 ई० की आर्थिक माँग, राजनीतिक संघर्ष के सामने फीके पड़ गये। आर्थिक माँगों को तो कुछ काल के लिए प्रतिदिन आठ घण्टा काम, अच्छी मजदूरी तथा परिस्थिति की सुविधा देकर शान्त कर दिया गया, किन्तु राजनीतिक संघर्ष संविधान, प्रतिनिधि सभा, मताधिकार तथा प्रेस की स्वतन्त्रता के लिए था, गणतन्त्र के लिए नहीं। पुलिस और सेना से कभी-कभी भिड़न्त हो जाती थी। अनेक नगरों में बड़े पैमाने पर विप्लव हुए। दिसम्बर, 1905 ई० में मास्को में सशस्त्र विप्लव खड़ा हो गया।

कर्मकों का आन्दोलन असंगठित था। सोवियतों में भी इनका स्थानीय संगठन बहुत दुर्बल था। वर्त्तमानकाल में अंशतः हड़ताल-समितियों के रूप में ये पनप उठीं और अंशतः ये राजनीतिक संस्थाएँ रहीं। किन्तु, ये काफी गम्भीर थीं, फिर भी इन्हें प्रोत्साहित नहीं किया गया और सांस्कृतिक संस्थाओं के विद्रोह, नौ-सेना तथा सेना के विप्लव तथा कृषक-विद्रोह से इन्हें सहायता नहीं दी गई। कृषक-विद्रोह तो कर्मकों के संघर्ष से भी अधिक मौलिक था और कृषक-विद्रोहों का कर्मक-संघर्ष से कोई मेल न था।

'खूनी रविवार' से व्यावसायिक तथा बुद्धिजीवी लोग उद्विग्न हो गये। जापान के साथ युद्ध में हार-पर-हार होने से सरकार के खिलाफ विरोधियों का संगठन होने लगा। विरोधियों की संख्या बढ़ती गई और वे अधिक उद्यत होते गये। प्रान्तीय तथा जिला-परिषदों (जेमस्तव) और नगरपालिका-परिषदों के प्रगतिशील लोगों ने इन विरोधियों का साथ दिया। राजनीतिक मांगों की पूर्ति के लिए वे राजनीतिक हड़ताल-रूपी अस्त्र का प्रयोग करने को तैयार थे। सबने मिलकर, भले मध्यवर्ग कर्मक तथा कृषक एक न हों, अक्तूबर में सामान्य हड़ताल कर दी। निकोलस द्वितीय को अक्तूबर-घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करना पड़ा। इस घोषणा-पत्र में प्रतिनिधि सभा और संविधान के सिद्धान्त सन्निहित थे।

सन् 1905 ई० की क्रान्ति में यह प्रथम परिवर्त्तन-बिन्दु था। अब उदार दल तथा मध्यम वर्ग ने अपनी सारी शक्ति लगा दी, जिसमें घोषणा

प्रतिज्ञा पूरी हो सके। डूमा इन सबका साधन था। संवैधानिक लोकतन्त्रियों का नेता मिक्यूकोव (सन् 1870–1943 ई०) था। उसका लक्ष्य था कि पाश्चात्य प्रतिनिधि-सभा के ढंग पर डूमा का यथासम्भव विकास हो।

औद्योगिक कर्मक, यद्यपि इन्होंने दिसम्बर के द्वितीय सामान्य हड़ताल में बड़ी संख्या में भाग लिया था, थक गये थे और नेताहीन तथा बिना हड़ताल-कोष के हो गये थे। सरकार ने सन्तपीटर्सबर्ग के सोवियत को भंग कर दिया। किसी ने प्रतिरोध नहीं किया, किन्तु मास्को में सशस्त्र राजविप्लव को दबाने में एक सप्ताह तक लड़ाई होती रही। सन् 1905 ई० की क्रान्ति का यह द्वितीय तथा अन्तिम परिवर्त्तन-विन्दु था। सन् 1906 ई० के ग्रीष्म में किसान पुनः इस सुविस्तीर्ण संघर्ष में उतर पड़े, किन्तु वे बिखरे तथा असहाय थे और दमन क्रूर था। क्रान्ति के समय सेना में कुछ के ऊपर विश्वास नहीं किया जा सकता था, किन्तु यथेष्ट सेना राजभक्त थी। वेतन में इन्हें अनेक सुविधाएँ दी गई थीं और राजनीतिक आन्दोलन का इनपर कोई विशेष प्रभाव न पड़ सका था।

सरकार की करारी जीत ही नहीं हुई, बल्कि सन् 1907 ई० में जो प्रतिक्रिया हुई, उसमें सरकार प्रत्याक्रमण करने की भी क्षमता रखती थी। तो भी सरकार हिल चुकी थी तथा अक्तूबर के घोषणापत्र के नतीजों से रुक गई थी। अब भी जार के प्रति लघुपिता की परम्परागत भावना खूब प्रचलित थी, किन्तु जारशाही शासन-पद्धति को लोग अब चुनौती देने लगे थे। गत आधी शती में जो आर्थिक परिवर्त्तन रूस में हुए, उनके कारण यह आवश्यक हो गया था कि शासन-पद्धति तथा संस्थाओं में आमूल परिवर्त्तन हो। किन्तु, अधिकांश नौकरशाही, सभी नहीं, लकीर की फकीर बनी रही या सर नीचा कर लेती थी। अधिकारी-वर्ग नहीं चाहता था कि डूमा, जमेस्तव, प्रेस तथा सम्मेलन की स्वतन्त्रता का इस प्रकार प्रयोग हो कि शिक्षित अल्पसंख्यकों का अधिकांश उदार व्यवसायिक वर्ग पुनः उनके पक्ष में मिल जाय।

शिक्षित अल्पसंख्यकों की सबसे लघु तृतीय शाखा, जो क्रान्तिकारी थी तथा औद्योगिक कर्मकों के मध्य जिसमें वर्ग-विवेक था, अधिकारियों के विरुद्ध और भी अधिक कटु हो गया था। ये उदार दल को बहुत ही अश्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और उनके जबरदस्त प्रतिरोधी थे। उन्हें कुछ लाभ अवश्य पहुँचा था, किन्तु क्रान्ति में उन्हें नुकसान भी बहुत था। वे पाश्चात्य सामाजिक सिद्धान्तों से अधिक रँग गये थे। वे कृषकों से बहुत दूर थे, किन्तु इतने दूर नहीं थे, जितने शिक्षित अल्पसंख्यकों के अन्य दो दल थे। सन् 1910 और 1914 ई० के मध्य पता चल गया कि उन्हें अपनी शक्ति का ज्ञान अधिक-से-अधिक होता जा रहा था। इस अवधि में हड़तालों की संख्या खूब बढ़ी तथा खासकर सहानुभूति में अनेक हड़तालें हुईं।

वे दमन का घोर तीव्रता के साथ विरोध करते थे। सुदूर लेना के सुवर्ण-खनन-क्षेत्र में जब भयंकर गोली चली, तब केवल कर्मकों में ही नहीं, बल्कि सर्वत्र विरोध का बवण्डर उठा। वहाँ की हड़ताल पूर्णतः आर्थिक थी, किन्तु 500 से अधिक लोग मारे गये (सन् 1912 ई०)।

सन् 1914 ई० के ग्रीष्म में सर्वत्र हड़तालें होने लगीं, खासकर सन्त पीटर्सबर्ग में अब रुकावट दिखाई देने लगी। अगस्त में युद्ध छिड़ने पर प्रायः सभी कर्मक कुछ समय के लिए मोर्चे पर एकत्र हो गये। आर्थिकीकरण के कारण क्रिमिया-युद्ध के समय से रूस का कायापलट हो गया था। बड़ी अकुशलता और महान् भूल होने पर भी पश्चिमी मित्र रूस के साथ थे। रूसी जनता में राष्ट्रीय भावना थी तथा दृढता और उत्साह के साथ-साथ यथेष्ट भौतिक और तकनीकी सहारा भी था। अतः, सभी प्रकार के साधनों से युक्त वह महायुद्ध के बोझ को ढाई वर्ष तक सहन कर सका। जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी तथा तुर्की मिलकर रूस के विरुद्ध आधुनिक पद्धति पर युद्ध कर रहे थे। अब रूस की सहनशक्ति सीमा पर पहुँच चुकी थी, सेना ने आस्ट्रिया-हंगरी तथा तुर्कों के विरुद्ध महान् विजय पाई; किन्तु जर्मनों से करारी हार खानी पड़ी। यथेष्ट राजनीतिक और प्रशासनिक सुधार के अभाव में तथा सरकार की ओर से किसी प्रकार का नेतृत्व न होने से पृथक्करण बढ़ता ही गया, कुसंगठन कईगुना बढ़ गया और अन्ततः सभी आशाओं पर पानी फिर गया।

सन् 1917 ई० के आरम्भ में सभी लोग यह स्वीकार करते थे कि अशुभ वेला पहुँच गई है। "मेरी सम्मति में इसका फल क्रान्ति तथा अराजक परिस्थिति होगा, जिसे कोई भी नियन्त्रित नहीं कर सकेगा।" यह मत किसी वाम-पक्ष या उदार विरोधी का नहीं, बल्कि डूमा के अध्यक्ष का था, जो वज्रहृदय तथा कट्टर देशभक्त था। उसने जार से अन्तिम भेंट की। जार ने उसके सदुपदेश की एक भी न सुनी, तब उसने उपर्युक्त वाक्य कहा था।

4. उद्योग में सोवियत-क्रान्ति :

युद्ध के मध्य में मार्च, 1917 ई० की क्रान्ति ने स्वतन्त्रता की नहर का द्वार खोल दिया। यह स्वतन्त्रता थी वचन और लेखन की। वे कुछ भी कह सकते थे और सब कुछ लिख सकते थे। किसी चीज की और सभी चीजों की समितियाँ बनाने की स्वतन्त्रता थी। काम करने या न करने की स्वतन्त्रता थी। शीघ्र ही उन्हें भूमि लेने की स्वतन्त्रता मिली। वे कारखानों को ले सकते थे। उन्हें घर जाने या युद्ध बन्द करने की स्वतन्त्रता थी। यह नूतन मादक स्वतन्त्रता अराजकता बन गई। प्राधिकार का अधिक-से-अधिक प्रत्याख्यान किया जाता था, जबतक इस

प्राधिकार को 'कर्मक', कृषक सैनिक तथा नाविक के नाम पर प्रयोग न किया जाय और ऐसा कभी-कभी होता था।

प्रारम्भ से ही द्वैत-शासन चल रहा था—एक था अन्तःकालीन सरकार और दूसरा पेट्रोगार्ड सोवियत, जो प्रतिस्पर्धा के कारण राजधानी से सुदूर बाल्टीक-कोण तक जगमगा रहा था। मोटे तौर पर अन्तःकालीन सरकार पाश्चात्य ढंग का उदार या साधारण समाजवाद चाहती थी। सोवियत पूर्ण रूप से समाजवाद चाहती था, जो अज्ञात था। किन्तु, असंख्य जनता के लिए ये दोनों प्रायः समान रूप से अज्ञात थे। उग्रवादियों की उत्तेजना, यद्यपि वे विभक्त थे, नरम दल की अपेक्षा अधिक बलवती थी; क्योंकि इससे, विशेषतः शान्ति और भूमि के क्षेत्र में प्रत्यक्ष और शीघ्र कार्य करने को प्रोत्साहन मिलता था।

जुलाई, 1917 ई० में पेट्रोगार्ड में एक अव्यवस्थित विप्लव ने अन्तःकालीन सरकार को चुनौती दे दी। यह वामपन्थी धारा का श्रीगणेश था। आगामी मासों में भय से वामपक्ष की धारा और भी तेज हो गई। युद्धस्थल में प्रधान सेनापति जेनरल कोर्निलोव के कारण भय उपस्थित हो गया था। वह सेना में भी अराजकता को निर्दयता से कुचलने में भिड़ा हुआ था और चाहता था कि देश में भी यथाशीघ्र समुचित उपाय किये जायँ, जिससे अराजकता न फैलने पाये। केरेंस्की मधुजिह्व था, वह मित्रराष्ट्रों के पक्ष में था, तथा समाजवादी वकील था। जुलाई से ही वह अन्तः-कालीन सरकार का प्रधान था। वह सैनिक तानाशाही को रोकने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ था। किन्तु, सोवियतों की ओर बहती हुई धारा को रोकने में वह पूर्णतया असमर्थ था। शरद् ऋतु में लेनिन ने समझ लिया कि हवा बोलशेविकों के पक्ष में है। वह समझ गया कि बोलशेविक बुर्जुआ प्रजातान्त्रिक क्रान्ति का अन्त कर सकते हैं और सोवियत-क्रान्ति का उद्घाटन कर सकते है। संक्षिप्त, किन्तु भीषण युद्ध के बाद नवम्बर में उन्होंने अन्तःकालीन सरकार को उलट दिया और सोवियतों के नाम पर शक्ति ग्रहण की। मास्को ने भी शीघ्र ही इसका अनुकरण किया और रूस के सभी मुख्य केन्द्रों में करीब-करीब ऐसा ही हुआ।

आगामी 6 मास तक दुर्व्यवस्था तथा उत्तेजना का बोलबाला रहा। लेनिन ने इस क्रान्ति-काल की व्याख्या इस प्रकार की : "हमलोगों के ऊपर ब्रेस्ट-लेतोवस्क की सन्धि लाद दी गई; क्योंकि हर क्षेत्र में हम शक्तिहीन थे।" अब बोलशेविक-सरकार ने विभिन्न प्रकार की घोषणाओं की भरमार कर दी—प्रचार के लिए मार्गपट्ट तथा सामान्य निर्देश खूब निकले, किन्तु कानून न बने। इनका उद्देश्य अशिक्षित जन-समुदाय को राजनीतिक सिद्धान्त से परिचय कराना था और कर्मक तथा कृषक को अपने लिए ठोस रूप में निर्णय करके इन्हें स्वतः कार्य-परिणत करना था। कर्मकों के

नियन्त्रण तथा समितियों द्वारा व्यवस्था होने से उत्पादन में धक्का पहुँचा तथा वितरण में दुर्व्यवस्था होने लगी। यह मानी हुई बात है कि लेनिन के अनुसार बोल्शेविक जितना जानते थे, उससे कहीं अधिक जानने का दावा करते थे कि कैसे काम पूरा हो। किन्तु, बृहद उद्योगों को और रेलमार्ग को (जिसका राष्ट्रीयीकरण हो चुका था) वास्तव में कैसे चलाया जाय, किस प्रकार उद्योग का प्रशासन हो या बैंक का काम कैसे चले, ये बातें स्पष्ट रूप में सूत्रित नहीं की गई थीं। जनता की परीक्षा और भूलों के अनुभव से कष्ट सहकर धीरे-धीरे लोगों ने सब सीख लिया।

अतः, देश का औद्योगिक तथा आर्थिक जीवन तेजी से गिरता जा रहा था। युद्ध के कारण मार्च, 1917 ई० तक देश के ऊपर बहुत आफतें आ चुकी थीं। परिवहन की हालत एकदम खराब थी। मित्रदेशों से माल आ जाने के कारण अस्त्रागार के मामले में पहले की अपेक्षा रूस अच्छी स्थिति में था। पूँजी पर निर्भर रहने का प्रभाव तथा ढाई वर्षों तक युद्ध के अन्य असर के कारण जनता कराह रही थी। अब मार्च के बाद अव्यवस्थित तथा अराजक प्रभाव भी शीघ्रता से अपने हाथ-पैर फैलाने लगे।

नवम्बर के बाद आर्थिक पतन की गति भ्रामक और निराशापूर्ण होने लगी। जर्मनी ने उक्रेण पर अधिकार कर लिया, अतः मध्य प्रदेशों को ईन्धन तथा अन्न मिलना बन्द हो गया। समृद्ध दोन-कजाक-प्रदेश बोल्शेविक-विरोधी श्वेत शक्तियों का प्रमुख केन्द्र हो गया। जेनरल डेनिकिन आगे चलकर इन श्वेत शक्तियों का नेता बना। मित्रराष्ट्रों के प्रोत्साहन से सुदूर उत्तर में श्वेत शक्तियों की सेना की जमघट हो गई। पूर्व में तथा साइबेरिया में भी यह सेना जुट गई। एडमिरल कोलचक इनका नेता था। जर्मनी के ऊपर मित्रराष्ट्रों ने विजय पाई। अतः, श्वेत सेना के समर्थन में मित्रराष्ट्रों का हस्तक्षेप बढ़ने लगा। साढ़े तीन वर्ष तक जर्मनी तथा मित्रराष्ट्रों के साथ युद्ध चला। अब रूस को दो-तीन साल तक असंस्कृत गृह-युद्ध में जूझना पड़ा।

सोवियत रूस संसार से एकदम विलग था। रूबल का चलन बन्द हो गया। आन्तरिक व्यापार स्थानीय हद तक पहुँच गया। मुख्यतः, अब यह विनिमय की तरह था। नगरों में आवश्यक रसद पहुँचाना भी दुर्लभ हो गया। कृषि की पैदावार सन् 1914 ई० की पैदावार की अपेक्षा आधी हो गई। नगर की हाटों में कुछ भी नहीं पहुँच पाता था। उद्योग चौपट हो गया। अनेक यन्त्र नष्ट कर दिये गये और अनेक यन्त्रों को बुरी तरह चौपट किया गया। सन् 1920 ई० के प्रारम्भ में रेल-परिवहन शून्यप्राय हो गया। नदी-परिवहन और भी खराब अवस्था में था। आर्थिक,

राजनीतिक तथा गृहयुद्ध के खुले रणक्षेत्र में सर्वत्र छापामारी युद्ध होता रहा। सन् 1921 ई० में महादुर्भिक्ष पड़ा। सन् 1891 ई० के बाद ऐसा भयंकर दुर्भिक्ष न पड़ा था। इसने युद्ध और क्रान्ति सबको मात कर दिया।

गृह-युद्ध साम्यवादी युद्ध का युग था (सन् 1918–20 ई०)। राज्य-विनिमय की मुद्राहीन पद्धति को चलाने के प्रयास पर यह आधृत था। आतंक से इसकी उत्पत्ति हुई थी। मित्रराष्ट्र प्रतिक्रान्तिकारियों का समर्थन करते थे। अतः, इनसे गम्भीर खतरा होने के डर से साम्यवादियों के मत में विनिमय-पद्धति आवश्यक हो गई थी। व्यवहार में इसका यह अर्थ था कि यथासम्भव सर्वत्र सैनिक तानाशाही फैले। कृषकों से जबरदस्ती माँग की जाती थी। जो उद्योग और परिवहन चल रहे थे, उन्हीं पर ध्यान केन्द्रित किया जाने लगा। गृह-युद्ध में विजय पाने का भार बोल्शेविकों को सौंप दिया गया। सब कुछ नूतन लाल सेना को भेजा जाने लगा। अधिकांश कृषक जनता लाल सेना की अपेक्षा श्वेत सेना के प्रतिकूल थी। अन्ततः, श्वेत कुचल दिये गये। गृह-युद्ध समाप्त होते-होते नगर और देहातों में तथा करोड़ों निष्क्रिय कृषक तथा मजदूरों के आक्षोभित ब्रिगेड में तनाव अन्तिम स्थिति को पहुँच गया। मार्च, 1921 ई० में क्रान्सटाट के नाविकों ने मजदूरों की साम्यवादी तानाशाही के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। एक समय ये ही नाविक बाल्टीक-बेड़ा और पेट्रोगार्ड की लाल सेना के अन्तर्हृदय थे, किन्तु कृषक युवकों की नई भरती से वे बहुत दूषित हो गये थे। साम्यवादी दल में चिरकाल तक वाद-विवाद चलता रहा कि किस प्रकार युद्ध को शान्ति में परिणत किया जाय। इसके तुरत बाद नई आर्थिक नीति को उन्होंने कसकर पकड़ा और इसे अपनाया।

लेनिन ने सारी परिस्थिति को स्पष्ट कर दिया। असली बात यह है कि कर्मक-वर्ग और कृषक-सम्बन्ध पर और उनके संघर्ष तथा समझौते पर ही हमारी सारी क्रान्ति के भाग्य का निर्णय होगा। दोनों वर्गों के विभिन्न स्वार्थ हैं। लघु कृषक उसे नहीं चाहता, जिसे कर्मक चाहता है। हम जानते हैं कि कृषकों के साथ समझौता होने से ही रूस में समाजवादी क्रान्ति की रक्षा हो सकेगी, यदि अन्य देशों में क्रान्ति न फैल जाय। हमें मध्यमवर्गीय श्रेणी के कृषकों को आर्थिक दृष्टि से सन्तुष्ट रखना होगा और खुले बाजार की ओर आना होगा। अन्यथा, अन्तरराष्ट्रीय क्रान्ति में रुकावट होने पर रूस में मजदूरों की शक्ति को कायम रखना असम्भव हो जायगा।

अतः, आवश्यकता इस बात की थी कि नूतन आर्थिक नीति के रूप में अनेक परिवर्तनकालीन विशेष उपाय काम में लाये जायँ। भले ही अल्पकाल के लिए पीछे हटकर साँस लेने का दूसरा अवसर मिले। मार्च, 1921 ई० में जर्मनी द्वारा जो

ब्रेस्ट-लितोवस्क की सन्धि लादी गई थी वह पहले अवसर के नाम से विख्यात हैं। राष्ट्र अपनी आदेशित महत्ता बनाये रहा, अर्थात् बैंक, बृहद् उद्योग, परिवहन तथा विदेशी व्यापार का राष्ट्रीयीकरण हो गया। किन्तु, कृषक और मामूली मध्यजन को व्यापार की आन्तरिक स्वतन्त्रता दे दी गई। कृषक, छोटे पैमाने के उद्योग तथा वितरण में वैयक्तिक सूत्रपात तथा स्वतन्त्रता की काफी गुंजायश हो गई।

सन् 1920–21 ई० में सोवियत रूस का उत्पादन एकदम न्यून हो चुका था। किन्तु, आगामी सात-आठ वर्षों में रूस ने खूब संघर्ष किया और निम्न उत्पादन से सन् 1904 ई० के उत्पादन की सीमा पर अनेक बातों में पहुँच गया। भले ही इस उत्पादन में उत्तमता का अत्यन्त अभाव था। औद्योगिक उत्पादन का अधिकांश सामाजीकृत महान् कारखानों से आता था, जिन्हें मरम्मत कर लिया गया था, तथा जिनका विस्तार कर दिया गया था। किन्तु अभी तक नूतन निर्माण में कुछ भी हाथ लगाना सम्भव न था। शीघ्रता से इसे सँभाल लेना आश्चर्यजनक है। कृषि को पुनर्जीवित करने के अलावा इसके और भी अनेक कारण हैं।

1. दृढ, सहनशील जनता की लचक और चेतना सर्वोपरि कारण थी। ये बहुत ही निम्न स्तर के जीवन-यापन के अभ्यस्त थे। महान् आपत्तियों की सामना करने की इनको आदत पड़ गई थी। इनमें भाग्यवाद तथा उत्कट उत्साह का मिश्रण था।

2. सोवियत-संघ के अति समृद्ध प्राकृतिक साधन के महान् विभेद से भी सहायता मिली। सन् 1922 ई० में पश्चिम दिशा को छोड़कर वे सभी विशाल-प्रदेश इस संघ में थे, जो रूसी साम्राज्य के अंग थे। इन साधनों को शीघ्र ही काम में लाया जा सकता था यदि यन्त्र, तकनीकी कुशलता और संगठन का पुनरुद्धार हो सके। इन साधनों का अभी तक अन्त न हुआ था या यदा-कदा ही इनका उपयोग किया गया था। भले ही कुछ उद्योग में साधन नष्ट कर दिये गये थे या उनके मूलयन्त्र का मूल्य बहुत गिर चुका था।

3. साम्यवादी दल के नेतृत्व ने नूतन व्यवस्था में पूर्ण विश्वास उत्पन्न कर दिया कि इस व्यवस्था का निर्माण पुनर्निर्मित और परिवर्तित अर्थव्यवस्था से होगा, जहाँ नूतन अनुशासन होगा और पुरुष-स्त्री सबके लिए समान नूतन शिक्षा होगी। इस शिक्षा ने बीसवीं शती के पाश्चात्य-विज्ञान की तकनीकी सफलता के विस्तार के कारण, भौतिक जगत् की विजय पर अत्यन्त बल दिया।

4. उद्योग और परिवहन के पुनः निर्माण के लिए यथेष्ट विशेषज्ञ मिल सकते थे। ये सभी विशेषज्ञ गैर-साम्यवादी थे। ये सोवियत-विशेषज्ञों को प्रशिक्षित कर

सकते थे, जो भविष्य में गैर साम्यवादियों का स्थान ग्रहण कर लें। लेनिन सदा इस बात का उपदेश देता था कि बुर्जुआ-सभ्यता से सीखना आवश्यक है। उनकी भौतिक उन्नति तथा वैज्ञानिक और कलात्मक विरासत को अपनाना चाहिए, जिसमें उन्हें समाजवादी समाज की आवश्यकताओं में परिवर्तित किया जा सके। किन्तु, युद्ध और गृह-युद्ध के कारण देश की हालत तबाह थी। क्रान्ति की सामान्य प्रकृति ही ऐसी थी कि पुनः निर्माण बहुत कठिन था। क्रान्ति में तोड़-फोड़ की प्रवृत्ति प्रचण्ड थी तथा बुर्जुआ के नाम से लोगों को घृणा होती थी। निर्माण में कठिनाई इस कारण और अधिक हो गई थी कि जिन बुर्जुआ लोगों की सहायता से काम लेना था, वे सदा शंका की दृष्टि से देखे जाते थे और वे जाति-बहिष्कृत तकनीकी वर्ग के समझे जाते थे।

5. विदेशों से सहायता अनेक रूपों में मिली। इसका अच्छा प्रभाव हुआ। विदेशी विशेषज्ञों में मुख्यतः जर्मन और अमरीकी कारीगरों ने बहुमूल्य काम किया। पश्चिमी यूरोप से राजनीतिक शत्रुता के कारण अधिक वित्तीय ऋण लेना असम्भव हो गया। साम्यवादी दल के अधिकांश लोग इस प्रकार से ऋण लेने के एकदम विरुद्ध थे; क्योंकि ऐसा ही करने से जारशाही रूस पश्चिमी वित्त-पूँजी का गुलाम बन चुका था। तब भी तीव्र आवश्यकता पड़ने पर विदेशों से कुछ ऋण लेना ही पड़ा और यह कर्ज अल्प अवधि के लिए लया गया। उद्योगों में पुनः यन्त्र बैठाने के लिए यह आवश्यक था और इससे विदेशों से व्यापार भी छोटे पैमाने पर पुनर्जीवित हो जाता। विदेशी संस्थाओं को कुछ रियायत भी दी गई, किन्तु इनका बोझ भारी न था और अन्ततः उनका अन्त हो गया; क्योंकि धीरे-धीरे उनके ऊपर प्रतिबन्ध लगते जाते थे।

6. कठिन परिश्रम के बाद प्रतिद्वन्द्वी दबों के संघर्ष के बीच क्रमशः एक ऐसा केन्द्रीय सरकारी साधन प्रस्तुत हुआ, जिसे वर्तमान नौकरशाही तथा दल द्वारा लागू विभिन्न नियन्त्रणों को कार्य-रूप में परिणत करने में सफलता मिली। सन् 1924 ई० से ही इन नियन्त्रणों का लक्ष्य, मूल्य में लगातार कमी करना तथा उत्पादन में योजना द्वारा वृद्धि करना था। उसी वर्ष नये सिक्के की स्थापना हुई। इसके पहले मुद्रास्फीति आसमान पर पहुँच चुकी थी और नोटों को कैंची से कतरने का अभियान चला; क्योंकि कारखानों में बने सामान और खाद्य-वस्तुओं के मूल्य में बहुत अन्तर हो गया था। आर्थिक नीति-निर्देशन तथा व्यापार और उद्योग की प्रशासन-क्रिया को केन्द्रित करने का प्रयास त्याग दिया गया। व्यापार और उद्योग के प्रशासन को खासकर विकेन्द्रित कर दिया गया। कारखानों का प्रबन्ध समिति के द्वारा करने के पक्ष में अब लोग न थे। मजदूरों का अनुशासन अब सुधरने लगा।

कर्मकों का उद्योग पर नियन्त्रण पहले अड़ंगा लगाता था, अब धीरे-धीरे उत्पादन की वृदिध में बदलने लगा। अन्ततः, सन् 1923 ई० में सोवियत-संघ का एक ऐसा संविधान बना, जिससे आर्थिक पुनर्वास की गति और दिशा मास्को में केन्द्रित हो गई।

नूतन आर्थिक नीति के प्रभाव से उत्पादन सन् 1914 ई० के स्तर पर प्रायः पहुँच गया और पुनः जीवित हो गया। कुछ बातों में तो उत्पादन सन् 1914 ई० के स्तर से अधिक हो गया। यह महत्त्वपूर्ण प्रगति थी। इससे अनेक बाह्य दर्शकों की भविष्यवाणी झूठी हो गई। नूतन आर्थिक नीति ने कम-से-कम शहर और देहात के मध्य अस्थायी रूप से झगड़ा को अन्त करने का आधार दिया। इससे सभी प्रकार की उन्नति सम्भव थी। किन्तु, इससे औद्योगिक समाजीकरण तथा अनियन्त्रित व्यक्तिगत कृषि के अन्तर्निहित विरोध को अनेक तरह से बल मिला। सन् 1927 ई० में पुनःनिर्माण एक हद तक पहुँच चुका था। अब विद्युतीकरण तथा औदयोगिक विस्तार के विशाल कार्यक्रम तक पहुँचना सम्भव था, जो सदा से लेनिन का सन्देश रहा है।

सन् 1924 ई० में लेनिन की मृत्यु हो गई। अब दल में शक्ति के लिए संघर्ष होने लगा। कृषकों के साथ किस प्रकार व्यवहार हो तथा औद्योगिक विस्तार कैसे हो, इन विषयों पर घोर मतभेद हो गया; अतः सन् 1927 ई० में नू० आ० नी० के ऊपर संकट उपस्थित हो गया। इसका अन्त स्तालिन के ट्राट्स्की तथा अन्य विपक्षियों पर विजय के साथ हुआ। सन् 1928 ई० में प्रथम पंचवर्षीय योजना की नीति शुरू हुई। इसके लक्ष्य तीन थे—कृषि के सामूहिकीकरण से कर्मक और कृषक के बीच के अन्तराल को दूर करना, उद्योग का चरम विस्तार तथा सोवियत-संघ को बाह्य आक्रमण से सुरक्षित रखना।

यही मुख्य परिवर्त्तन-बिन्दु था, जिसने द्वितीय स्तालिन-क्रान्ति का उद्घाटन किया। नवम्बर, 1917 ई० और गृह-युद्ध में विजय के बाद इसी का द्वितीय स्थान है।

उदयोग में इस सोवियत-क्रान्ति का कुछ फल उत्पादन के आँकड़ों की सारणी-मात्र से स्पष्ट हो जायगा। ये आँकड़े लाख टन[1] में दिये गये हैं :

---

1. सन् 1940 ई० के आँकड़े अनुमित हैं। सन् 1938 ई० के आँकड़े प्रारम्भिक हैं। सन् 1913 ई० के आँकड़े पृ० 329 के आँकड़ों से विभिन्न हैं; क्योंकि वहाँ पर समस्त रूस-साम्राज्य के आँकड़े दिये गये हैं। यहाँ पर केवल रूस-साम्राज्य के उन्हीं प्रदेशों के आँकड़े दिये गये हैं, जो सोवियत सामाजिक गणतन्त्र-संघ के अंग हैं।

वस्तु	1913	1929	1938	1940
कोयला	29·1	40·1	132·9	1646
खनिज लोहा	9·0	8·0	26·5	...
कच्चा लोहा	4·2	4·0	14·6	14·9
इस्पात	3·6	4·9	18·0	18·4
तेल एवं गैस	9·2	13·8	32·2	34·2
चीनी (शक्कर)	1·3	1·3	2·5	...
ऊनी वस्त्र (लाख मीटर में)	103·0	100·6	114·0	--
सूती वस्त्र (,, ,,)	2,227	3,068	3,491	...
ताँबा (हजार टन में)	33·2	35·5	103·2	...
मैंगनीज अयस्क	1·2	1·4	2·3	....
सीमेण्ट	1·5	2·2	5·7	...
विद्युत्-शक्ति (लाख किलोवाट में)	1·9	6·2	39·6	40·8
रासायनिक पदार्थ (1926—अरब लाख में	450	619	6,715	....
कृषि-यन्त्र (1926–7 रूबल, लाख मे)	55	196	1,617	...
यन्त्र तथा धातु-उद्योग (1926–7 रूबल, लाख में)	1,446	3,349	33,613	48,400

इन आंकड़ों से साफ पता चल जाता है कि तीन पंचवर्षीय योजनाओं के अन्दर केवल तीन प्रकार के उपभोक्ता-सामान को छोड़कर; यथा सूती, ऊनी तथा चीनी, कितना विशाल औद्योगिक विस्तार हुआ है। सन् 1937 ई० में सो० सा० ग० संघ विश्व का सर्वमहान् कृषि यन्त्र-उत्पादक था, खासकर संयुक्त कृषि-यन्त्र का। यन्त्र-निर्माण, ट्रैक्टर और लारी में संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के बाद इसी का स्थान था। यह भी ध्यान रखने की बात है कि विश्व में यही संघ गेहूँ, राई, जौ, जई, आलू और पटसन को सबसे अधिक उत्पन्न करता था। रूई के उत्पादन में इसका तृतीय स्थान है और भारत के बाद ही इसका स्थान आता है। विशाल उत्पादन-योजना को

1. क्रान्ति के पहले रूस में ऐसा कोई भी यन्त्र न बनता था और न अल्युमोनियम ही तैयार होता था। सन् 1937 ई० में सो० सा० ग० संघ विश्व में अल्युमीनियम-उत्पादकों में तृतीय स्थान रखता था।

पूरा करने में कई बातों में यह लक्ष्य तक नहीं पहुँच सका, तब भी विश्व में इसका बहुत प्रभाव पड़ा; क्योंकि सारा संसार सन् 1930 ई० में घोर आर्थिक संकट से त्राहि-त्राहि कर रहा था। आधुनिक समय में ऐसा आर्थिक संकट कभी नहीं उपस्थित हुआ था और इस प्रकार की आम बेरोजगारी नहीं फैली थी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (सन् 1928–32 ई०) के वर्ष बहुत भयानक थे। मानव-शक्ति तथा दुःख में, अवरोध तथा दमन में यह वर्ष दुःखदायी तथा उन्मत्त था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के समय (सन् 1933–37 ई०) परिस्थिति बहुत सुधर चुकी थी। भोजन के लिए पर्याप्त अन्न था तथा कुछ क्रय के लिए भी था। खाद्य तथा वस्तुओं की राशनिंग जो पहले आरम्भ की गई थी, उनका सन् 1935 ई० में अन्त कर दिया गया। कृषि-सामूहिकीकरण तथा नये धन्धों के महान् कार्यक्रम का फल स्पष्ट था। नूतन आर्थिक व्यवस्था अपना रूप धारण कर रही थी। भले ही राजनीतिक परिस्थति में तनाव था; क्योंकि अनेक लोगों को दल से निकाला जा रहा था, पुराने बोल्शेविक नेताओं और लाल सेना के जनरलों पर सनसनीखेज मुकदमा चलता था तथा उन्हें फाँसी दे दी जाती थी। तृतीय पंचवर्षीय योजना सन् 1938 ई० से आरम्भ हुई। अब और भी श्रम से काम होने लगा तथा सुरक्षा के के लिए सब कुछ त्याग किया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध में जो हो, परन्तु सितम्बर, 1939 ई० के बाद और जब फिनलैण्ड से युद्ध छिड़ गया तब, सभी साधनों की लामबन्दी में कुछ भी उठा नहीं रखा गया, जिससे कि इसका सामना किया जा सके।

त्याग तो अनेक थे, किन्तु उनके त्याग का एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। उनका त्याग कितना महान् था, उन्हें कितना श्रम करना पड़ा और कितनी योजनाएँ बनानी पड़ीं। उद्योग में सोवियत-क्रान्ति का अर्थ मनुष्यों के लिए योजना है। यह था सन् 1933 ई० में मैग्नितोगोरस्क। इसमें ढाई लाख लोगों ने मिलकर यूरोप में सबसे बड़ा इस्पात का कारखाना खड़ा कर दिया। साम्यवादी, कुलक, विदेशी, तातार, ध्वंसकारी कैदी तथा असंख्य रूसी सुन्दर कृषकों ने मिलकर उराल के वीरान स्टेप में कारखाना खड़ा कर दिया। मनुष्य बरफ में जमकर, भूख से तथा कष्ट झेल-कर मर गये, किन्तु पुनर्निर्माण-कार्य जारी रहा। व्यक्ति की चिन्ता न की गई। ऐसी जन-वीरता का उदाहरण इतिहास में विरले ही मिलेगा।

इस महान् निष्पत्ति पर खून और पसीना एक करके लोगों ने विजय पाई। सोवियत-जनता के उत्साह तथा सन्ताप के अनेक कारण हैं। इसके दो प्रमुख कारण हैं: सो० सा० ग० संघ के प्राकृतिक साधनों की विशालता तथा विभिन्नता और इन प्राकृतिक साधनों की समग्रवादिता एवं आर्थिक योजना के साथ मानव-साधन को जबरदस्ती मिलाने की कार्य-प्रवृत्ति।

समाजवादी सोवियत-राज्य में योजना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका यह अर्थ है कि राष्ट्र ही राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के लिए संकलित उत्पादन की योजना तैयार करे। यही समस्त उत्पादन का निर्देश या नियन्त्रण करे; यथा कृषि, समस्त परिवहन तथा विदेशी व्यापार, सभी बैंक तथा सिक्के। राष्ट्र ही सभी निवेश और ऋण के प्रश्न का निबटारा करे। अतः, इसे ही पुनर्निर्माण तथा नूतन निर्माण का भी निर्णय करना होगा। राष्ट्र ही थोक भाव पर नियन्त्रण रखे तथा दर तय करे और खुदरे मूल्य का भी अधिकतर निर्णय राष्ट्र ही करे।

सो० सा० ग० की प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ से ही योजना का आरम्भ न हुआ। उस समय तक इस योजना को समीचीन और सुचारु बनाने का भी प्रबन्ध न हुआ था। सन् 1929 ई० में इसे सरकारी तौर पर पूरे पैमाने पर अपनाया गया। इस योजना के पहले और बाद के प्रयोग और वृद्धि से लाभ उठाकर से वर्तमान रूप दिया गया। लेनिन के लिए साम्यवाद में वृहद् पैमाने पर औद्योगिकीकरण तथा योजना ही केन्द्रीय रूप हैं। सन् 1920 ई० में ही विद्युतीकरण के कार्यक्रम में प्रारम्भिक कदम उठाया गया था। इसी से दूसरे वर्ष राष्ट्र-योजना की उत्पत्ति हुई। नूतन आर्थिक नीति की जो परिस्थिति थी, उसमें इस आयोग का स्थान बहुत छोटा था तथा यह गौण परामर्शदात्री संस्था बनी रही। यह श्रम तथा सुरक्षा-परिषद् के पूर्ण मातहत थी। तब भी धीरे-धीरे इसने अपने कार्यक्रम का विस्तार किया तथा इससे वार्षिक अन्तःकालीन योजना का खाका बनाना आरम्भ कर दिया। सन् 1927 ई० में संयुक्त योजना का प्रश्न सबके सामने था। नू० आ० नी० के भविष्य के सम्बन्ध में दल में संघर्ष चलता रहा। गत अनेक वर्षों के आर्थिक और प्रादेशिक योजना के प्रयोग का अनुभव सबके सामने था, जिनके आधार पर योजना का निर्माण किया जा सकता था। राष्ट्रीय योजना-आयोग पंचवर्षीय योजना का तैयार करने में कठिन परिश्रम कर रही थी जिससे राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का विकास हो। पंचवर्षीय योजना का यही आधार था, जिसे सरकार ने सन् 1929 ई० में अपनाया।

उसके बाद योजना-यन्त्र का खूब विस्तार हुआ और लगातार इसमें संशोधन होते रहे। किन्तु, राष्ट्रीय योजना-आयोग ही केन्द्रीय धुरी है। यह पोलिट ब्यूरो तथा जनता-कमिसार-परिषद् के निकटतम नियन्त्रण में काम करता है। अब यह विशाल यन्त्र के रूप में विकसित हो गया है। केन्द्र में तथा निर्वाचक गणतन्त्रों में भी इसका पूर्ण विकास हुआ है; जैसे कमिसरियट, जिसके ऊपर योजना को कार्यान्वित करने का पूरा भार है। केन्द्रीय या स्थानीय दल-समितियाँ भी इसी कमिसरियट के साथ मिलकर काम करती हैं।

यथेष्ट दृढता के साथ विस्तार-सम्पादन और नियन्त्रण में आवश्यक लचीलेपन का सम्मेल कठिन ही नहीं, किन्तु सर्वमत से बहुत कठिन है। यह दृढता अधिक नहीं होनी चाहिए। उद्योग, परिवहन और कृषि के केन्द्रीय निर्देशों को नूतन प्रशासन अवयवों ने तथा निर्देश-पद्धति ने बार-बार सुधारा है। अतः, सन् 1930 ई० के बाद यह ध्यान देने की बात है कि अधिक बोझिल कमिसरियट के अनुमण्डल बने तथा विकेन्द्रीकरण का बहुत अंश में प्रारम्भ हुआ। तब भी नौकर-शाही भावना की विशिष्टता पर लोग अनवरत आघात करते रहते थे, विशेषतः प्रशासनिक अधिकारियों की संख्या प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन में लगे लोगों की तुलना में कहीं अधिक थी।

प्रबन्ध, समन्वय तथा प्रशासन-कार्य के साथ ही नियन्त्रण-यन्त्र का भी अनवरत विकास हुआ है, जिसमें केन्द्रीय अधिकारियों की आज्ञाओं का पालन हो, लेखा ठीक से हो तथा धन और सामग्री में मितव्ययिता हो। प्रारम्भिक काल में जिन वस्तुओं का समाजीकरण हो चुका है, उनके प्रभावशाली नियन्त्रण का भार कर्मक तथा कृषक निरीक्षण-कमिसरियट के ऊपर था। इस संस्था का यह भी कर्त्तव्य था कि सरकार को कार्यकर्त्ताओं की विभिन्न श्रेणियों से परिचित रखे, विरोधियों तथा ध्वंसकारियों का मुकाबला करे तथा सरकार के आर्थिक और श्रम-आदेशों का कार्यान्वयन कराये तथा इसपर नियन्त्रण रखे। लेनिन कमिसरियट को बहुत महत्त्व देता था। सन् 1922 ई० में कुछ काल के लिए लेनिन ने स्वयं इसे अपने हाथों में ले लिया। दल के केन्द्रीय आयोग के साथ ही यह भी अन्तिम प्रभुत्व पाने का एक प्रधान साधन था। प्रथम पंचवर्षीय योजना के बाद राजनीतिक परिस्थिति बदल गई। सामूहिकीकरण संकटावस्था में था। अतः, एक महान् पुनःसंगठन हुआ। सोवियत-नियन्त्रण-आयोग (जिसे सन् 1940 ई० से कमिसरियट कहते हैं) भी स्थापित हुआ। दल के यन्त्रों से इसका सम्बन्ध बहुत कम था। वित्तीय तथा आर्थिक लेखा से ही इसका भरपूर सम्बन्ध था। लेखा को सुधारने के लिए ही कालान्तर में इसे कार्यकारिता तथा निरीक्षण-अधिकार मिले।

योजना-यन्त्र की वृद्धि के खाका से स्पष्ट हो जाता है कि सोवियत-योजना कोई कठोर यन्त्रकला या परिसंख्या नहीं है, बल्कि स्वरूप या मूल्य-निरूपण और क्रिया-क्रम को अनवरत परिवर्त्तनशील अवयव और पद्धति के साथ समन्वित करने का सतत व्यवस्थित यत्न है। हाँ, यह बात माननी होगी कि उत्पादन का प्रयोग कर लेने के बाद परीक्षण और भूल होने की आशा कम हो जाती है। जिन देशों में समाजीकरण नहीं हुआ है, वहाँ भले ही हो, किन्तु सोवियत-भूमि में यह सम्भव नहीं। प्राकृतिक परिस्थिति, मानविक भूल या दुर्व्यवहार, राजनीतिक निर्णय तथा अन्तरराष्ट्रीय

प्रतिक्रियाओं के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि योजना में सतत रद्दोबदल या आमूल परिवर्तन होता रहे। उदाहरण के लिए, तृतीय पंचवर्षीय योजना को लें। इसमें केवल आमूल परिवर्तन ही न हुए, बल्कि जब सितम्बर, सन् 1939 ई० में महायुद्ध छिड़ गया, तब संसार में आर्थिक संकट के कारण कृषि-वस्तु के मूल्य में बड़ी गिरावट हो गई थी। यह आर्थिक संकट सन् 1929 ई० के अन्त से ही चला आ रहा था। सोवियत-सरकार ने बाध्य होकर कृषि-उत्पाद-वस्तु को बहुत बड़ी तायदाद में निर्यात के लिए भेजा। इसने प्रथम पंचवर्षीय योजना में इतना माल बाहर न भेजा था। इसका प्रधान कारण था कि बाहर से बहुत भारी औजार देश में आया था और उनका मूल्य चुकाना आवश्यक था।

पंचवर्षीय योजना-सम्बन्धी कुछ अन्य लक्षणों से पता चल जायगा कि गत पन्द्रह वर्षों में सोवियत-संघ किस प्रकार बदल गया है।

इसका मूल लक्ष्य रूस के पिछड़ेपन मजदूरों द्वारा न्यून उत्पादन तथा उपभोग के निम्न स्तर का अन्त करना था। सोवियत-जनता को बार-बार प्रोत्साहित किया जाता है कि संघ और पश्चिम के मध्य के अन्तराल को दूर कर दें। विश्व के सर्वोत्कृष्ट औद्योगिक राष्ट्र के उत्पादन तक 'दौड़ कर पहुँचो और आगे बढ़ो', यह नारा उनके कान में गूँज रहा है। उत्पादन में आशातीत उन्नति हुई है। ऊपर के आँकड़ों से यह स्पष्ट है। अन्य महान् देशों की अपेक्षा अनेक उद्योगों में वृद्धि का मान कहीं ऊँचा रहा है।

तब भी सोवियत-नेताओं ने बार-बार कहा है कि महान् उद्योगों में भी; यथा तेल और विद्युत् के क्षेत्रों में जिस देश में बहुत अधिक प्रगति हुई है, सो० सा० ग० संघ जर्मनी से पीछे है और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका इससे बहुत आगे बढ़ गया है। आगे की सारणी से पता चलता है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के अवसर पर सोवियत की परिस्थिति अनुपात में क्या थी। प्रथम विश्वयुद्ध के समय की सारणी पृ० 329 पर दे दी गई है। प्रथम विश्वयुद्ध के समय रूस सो० सा० ग० संघ से वृहत् था। उस समय जर्मनी में अलसास लोरेन सम्मिलित था, किन्तु आस्ट्रिया नहीं था, जो उसका मित्र था।[1]

---

1. विद्युत्-शक्ति के आँकड़े सन् 1938 ई० के हैं। अन्य आँकड़े सन् 1940 ई० के हैं और सो० सा० ग० सं० के हैं। सं० रा० अमेरिका के आँकड़े सन् 1939 ई० के हैं तथा अन्य देशों के सन् 1938 ई० की। जर्मनी में आस्ट्रिया भी शामिल है। वास्तविक उत्पादन किसी प्रकार उत्पादन-क्षमता के बराबर नहीं हो सकता। सं० रा० अमेरिका के लिए यह बात खासकर ध्यान देने योग्य है।

देश	कच्चा लौह	इस्पात	कोयला	विद्युत्-शक्ति
सो० सा० ग० संघ	14·9	18·4	164·6	39·600
सं० रा० अमेरिका	31·9	47·2	39·5	115,900
ग्र टब्रिटेन	6·7	10·3	227	30,700
जर्मनी	18·3	22·7	186	55·200
फ्रांस	6·0	6·1	45·5	19·300

ये सभी आँकड़े लाख टन में दिये गये हैं (लाख किलोवाट में)। ऐसे पूर्ण आँकड़ों के अलावा सोवियत-नेताओं ने सोवियत-उत्पादन की न्यूनता पर बार-बार कसकर जोर दिया है; क्योंकि पश्चिम की तुलना में यहाँ प्रतिव्यक्ति उत्पादन बहुत ही कम है। जब युद्ध आरम्भ हो गया, तब बहुत भारी अन्तराल को पूरा करना बाकी था और उपभोक्ता-सामग्री में यह अधिक था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यद्यपि उत्पादित वस्तु का स्तर पहले की अपेक्षा बहुत सुधर गया है, तथापि पश्चिम की अपेक्षा बहुत ही निम्न स्तर पर है, भले ही सैनिक सामान के विषय में ऐसी बात न हो।

वैयक्तिक उपभोक्ता की माँग को पूरा करने का काम पीछे रहा है; क्योंकि तीनों योजनाओं में पूँजी-पदार्थ पर विशेष जोर दिया गया था, यद्यपि द्वितीय योजना में कुछ कम। इसका फल यह हुआ कि उपभोक्ता-माल की माँग की आपूर्ति में सोवियत-योजना में कोई मौलिक कठिनाई प्रतीत नहीं हुई; क्योंकि उपभोक्ताओं की सभी माँगें जीवन की मौलिक आवश्यकताओं से सीमित हैं। सबसे प्रथम आवश्यक संघ ऐसी परिस्थितियों से गुजर रहा है, जिसे हम युद्ध की अर्थ-व्यवस्था का अनुरूप या लगभग युद्ध की दशा कह सकते हैं। अतः, रुचि और स्तर का प्रश्न गौण हो जाता है, यदि पेट भरे और शीत से रक्षा हो जाय।

पश्चिमी देशों की तुलना में निवेश-नियन्त्रण तथा उत्पादन में लाभाकांक्षा इस देश में एकदम नहीं है। अपितु क्रान्ति के प्रारम्भिक वर्षों में समता की भावना और व्यवहार के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। अधिक मजदूरी कमाने के लिए सबसे अधिक बल इस बात पर दिया जाता है कि उत्पादन को सुधारा जाय तथा उसे और बढ़ाया जाय। इसका यह फल हुआ कि उजरत (कार्य-दर), समयोपरि मजदूरी तथा एक सामान्य उत्पादन के ऊपर विविध प्रकार के बोनस (लाभांश) देने की प्रथा बहुत बढ़ गई। सन् 1935 ई० से स्ताख्नोवाइत-आन्दोलन का बृहत् विकास हुआ। मजदूरों की उत्पादन-शक्ति बढ़ाने के अनेक उपाय किये गये। ये मजदूर कृषि, परिवहन तथा उद्योगों में काम करते थे। इन सबको द्रव्य का लालच दिया

गया। निर्देशक, मैनेजर, विशेषज्ञ अल्पकुशल तथा अकुशल व्यक्तियों को इनाम देने में बहुत अन्तर हो गया। वैयक्तिक आय में भले ही महान् अन्तर हो, तथापि यह सत्य है कि सभी मजदूरी एक प्रकार से आमदनी है। भले ही कुछ तुच्छ इसके अपवाद हो सकते हैं। इस आमदनी में अन्तर होने से निवेश तथा उत्पादन की दिशा या परिमाण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

एक ही देश में समाजवाद का निर्माण करने में सबसे बड़ी बात यह हुई कि इस काम को विदेशों से चिरकाल तक सहायता लिये विना ही पूरा किया गया। सन् 1861 ई० और सन् 1914 ई० के मध्य रूस में जो आर्थिक पाश्चात्यीकरण हुआ था, उसके ठीक विपरीत यह हुआ। रूस ने ऋण लिया, सोवियत-संघ ने नहीं लिया। प्रथम पंचवर्षीय-योजना में निवेश-योजना राष्ट्रीय आय की लगभग चौथाई थी। यह अनुपात सन् 1914 ई० के पूर्व रूस के निवेश से ढाईगुना अधिक है तथा सन् 1914 ई० के पूर्व ब्रिटेन के लगभग दूना। आन्तरिक पूँजी को इस विशाल पैमाने पर लामबन्दी कर देना तभी सम्भव था, जब कठोरतम अधिशासन हो, अधिक-से-अधिक वेगार लिया जाय तथा जीवन-यापन के निम्न स्तर को और भी निम्न बना दिया जाय या एकदम कम कर दिया जाय। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में पूँजी-निवेश का कुछ कम संकेत था तथा जीवन की परिस्थिति काफी सुधर गई थी। किन्तु, तृतीय पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य प्रथम योजना से बहुत ऊँचा था। युद्ध छिड़ने पर तो बोझ और भी बढ़ गया। सन् 1940-41 ई० में राष्ट्रीय आय का लगभग 45 प्रतिशत, एक गणना के अनुसार, निवेश और सुरक्षा में चला जाता था।

उद्योग में सोवियत-क्रान्ति का रूप तभी कायम रह सकता था, जब पश्चिमी देशों से सामग्री तथा तकनीकी निपुणता का आयात होता रहे। प्रथम पंचवर्षीय योजना में विदेशी व्यापार का खूब विस्तार हुआ, खासकर कृषि-यन्त्र, अभियन्त्रण-सामग्री तथा मशीनरी औजारों का खूब आयात हुआ। अल्पकाल के लिए विदेशों से उधार लिया गया तथा जबरदस्ती निर्यात किया गया, विशेषतः तेल, अन्न, लोम तथा टिम्बर (काष्ठ)। द्वितीय तथा तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं में पूंजी-निर्माण के आयातों पर भरोसा था तथा दुर्लभ मालों पर कम। सन् 1931–32 ई० में सोवियत का विदेशी व्यापार पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था, किन्तु उसके बाद क्रमशः ह्रास होता गया और बाद में तो एकदम चौपट ही हो गया।

सोवियत-उद्योग के अतिशीघ्र विस्तार और परिवर्तन में विदेशी तकनीकी सहायता भी अपरिहार्य अंग थी। कुछ सोवियत-कारीगरों को विदेशों में प्रशिक्षण के लिए भेजा गया। कुछ विदेशी विशेषज्ञों को यथेष्ट संख्या में भरती किया गया।

खासकर, अमेरिकनों को नूतन विशाल निर्माण-कार्य में लगाया गया। नू० आ० ना० युग में जो सीमित रियायत की नीति थी, उसे पुनः नहीं अपनाया गया। विदेशी व्यवसायिओं ने अपने आधुनिक यन्त्रों से कारखानों को सुसज्जित कर दिया, किन्तु इसमें विदेशियों का किसी प्रकार वित्तीय या संचालकीय नियन्त्रण न हो सका।

सोवियत-संघ ने बीसवीं शती के विज्ञान पर काबू कर लिया है। इसके लिए उसे विदेशियों पर निर्भर न रहना पड़ा। संघ ने नई पीढ़ी के वैज्ञानिक, विशिष्ट कारीगर तथा कुशल कर्मकों को प्रशिक्षित किया। पहले रूस में विशेषज्ञ तथा कुशल मजदूरों का बड़ा भारी अभाव था। अतः, अधिक उत्पादन, उच्च स्तर तथा अनुरक्षण में खास रुकावट होती थी। इस कमजोरी को दूर करने के लिए सोवियत-शासन ने सतत यत्न किया। इसके लिए शिक्षा-पद्धति का प्रचण्ड विस्तार किया गया। काम बहुत हो चुका है, यद्यपि सभी कमजोरियाँ अभी दूर नहीं हो पाई हैं। सन् 1940 ई० में सफेदपोश विशेषज्ञों की संख्या सम्भवतः पर्याप्त रही है, भले ही उनका स्तर उच्च न था। किन्तु, कुशल और अदर्ध-कुशल मजदूरों की अब भी बहुत अधिक माँग थी। अतः, मजदूर-भरती की योजना चलाई गई। प्रतिवर्ष औद्योगिक और निर्माण-कार्य में आठ लाख से दस लाख तक युवकों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया गया।

उद्योग में क्रान्ति होने से मजदूरों का तकनीकी स्तर तो परिवर्तित हुआ ही, साथ ही कृषि से लोग दूर भागने लगे और आबादी भी बहुत बढ़ने लगी। सन् 1939 और 1926 ई० की जनगणना की तुलना से यह समझ में आ जायगा :

	सन् 1939 ई०	सन् 1926 ई०
कुल जनसंख्या	1,70,50,000	14,70,00,000
नगरवासी	5,59,00,000	2,63,00,000
	(32·8 प्रतिशत)	(17·9 प्रतिशत)
ग्रामवासी	11,45,00,000	12,07,00,000
	(67·2 प्रतिशत)	(82·1 प्रतिशत)

अतः देहातों की जनसंख्या साठ लाख कम हो गई तथा नगरों की आबादी दुगुनी से अधिक हो गई। सन् 1939 ई० में 82 नगर[1] थे, जिनकी आबादी एक

1. संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की तुलना में यह अनुपात अधिक है। सन् 1940 ई० में अमेरिका में एक लाख से अधिक जनसंख्या के बानब्बे नगर थे। सन् 1939 ई० में ग्रेटब्रिटेन तथा उत्तरी आयरलैण्ड में तिरसठ तथा जर्मनी (आस्ट्रिया को मिलाकर) में इकसठ ही नगर थे।

लाख से अधिक थी। रूस-साम्राज्य में चालीस वर्ष पहले उसी क्षेत्र में केवल ऐसे पन्द्रह नगर थे। सोवियत-संघ के इन 82 नगरों में शहरी आबादी की 3/5 जनता सम्मिलित थी। कुछ नूतन आवास अभी शिविर-शहरों की दशा में ही थे। जिन्हें शहरी कहा जाता था, उनमें अधिकांश लोग ऐसी भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों में रहते थे, जो पश्चिमी दुनिया के नागरिक जीवन से एकदम विभिन्न थी। तब भी पंचवर्षीय योजनाओं के कारण संकेन्द्रन तथा सामूहिकीकरण में जो परिवर्त्तन हुए हैं, उनसे सोवियत-जीवन का एक नया ढाँचा ही बन गया। वोलगा-उराल-प्रदेश तथा सोवियत-एशिया में यह खास परिवर्त्तन हुआ। वहाँ ग़ैर-रूसी जनता नूतन इतिहास-युग में बहुत तीव्रता से आगे बढ़ी। युद्ध द्वारा सर्वस्व हड़पने की प्रवृत्ति के साथ सभी आदेशों को ताख पर रख दिया गया। किन्तु, कुछ बातों में इसने पूर्णरूप उपस्थित कर दिया, खासकर सोवियत-एशिया में औद्योगीकरण तथा आबादी की पूर्व दिशा की ओर झुकाव अधिक हुआ।

जनसंख्या में अन्तिम दो परिवर्त्तनों का प्रधान कारण है—उद्योग-स्थानों का बदल जाना। यह वृद्धि खासकर गत दस वर्षों में हुई है। सरकार ने भूगर्भ-अनुसन्धान पर अथाह धन व्यय किया। इस कारण उराल, अलताई बालकन-प्रदेश तथा कजाकस्थान की महाखनिज सम्पत्ति का खूब विकास हुआ। रूसी इतिहास में खनिज और उद्योगों की जो पहले महत्ता थी, वही विशाल रूप में उराल और अलताई-प्रदेशों में फिर से हो गई। मध्य साइबेरिया के कुजनेत्स्क-क्षेत्र में नूतन कोयला और लोहे का माहान् भण्डार मिला। सन् 1929 ई० में कच्चे लोहे या इस्पात का नाम भी न था, किन्तु सन् 1940 ई० में संघ में उत्पादन का लगभग 10 प्रतिशत इस्पात या कच्चा लोहा पैदा होने लगा। कजाकस्थान में पहली बार और हाल में मध्य एशिया का कायाकल्प हो रहा है। इसके कारण हैं— कोयला, ताँबा, अन्य धातु, तेल, सूती वस्त्र, रासायनिक पदार्थ तथा अन्य उद्योग। सुदूर पूर्व और सुदूर उत्तर का विकास भी पहली बार नये ढंग से होना प्रारम्भ हो गया है—केवल सुवर्ण, टिम्बर (काष्ठ) तथा मत्स्य के लिए ही नहीं, बल्कि अन्य वस्तुओं के लिए भी।

उद्योगों के स्थान-परिवर्त्तन, खासकर सन् 1937 ई० से ही सुरक्षा-व्यवस्था द्वारा बहुत अधिक प्रभावित है। किन्तु, इसमें महान् प्राकृतिक साधनों की प्राप्ति पर विशेष ध्यान दिया जाता है। ये साधन देश के सुदूर अन्तःस्थल में मिलते हैं। सोवियत-योजना ने प्रारम्भ से ही अर्थ-व्यवस्था का लक्ष्य प्रादेशिक अनेकता रखा है, जिसमे खींचातानी का एकदम अन्त हो जाय, जो मालों के ढोने में लगता है। सोवियत-उद्योग की प्रगति इससे भी बहुत रुक जाती है। रेलमार्ग तथा जलमार्ग से

माल ढोने में पहले की अपेक्षा, खासकर सन् 1935 ई० से, भले ही विशेष सुविधा तथा उन्नति हो गई है।

वालगा के पूर्व में आश्चर्यजनक सफलता मिली। इससे उद्योगों को खासकर हटाने की आवश्यकता न पड़ी, जिनसे प्राचीम औद्योगिक जिलों को किसी प्रकार धक्का पहुँचे। पंचवर्षीय योजनाओं ने उलटे उनका उत्पादन बहुत ही बढ़ा दिया। जो कमी हुई, वह है समस्त सोवियत-संघ के उत्पादन के कुल केन्द्रों के अनुपात में। तब भी यह अनुपात बहुत अधिक है। काकेशश और उक्रेण में सन् 1914 ई० के पूर्व की भाँति अब भी तेल, मैंगनीज, कोयला, लोहा तथा इस्पात सबसे अधिक उत्पन्न होता है। सन् 1941 ई० की जून से पश्चिमी भाग में कुछ प्रदेश हाथ से निकलने लगे। इससे गहरा नुकसान हुआ। किन्तु, इससे उक्रेण तथा मास्को और लेनिनग्राड की महत्ता और भी बढ़ गई; क्योंकि यहीं से इन वस्तुओं की प्राप्ति होती है; यथा कोयला, खनिज लोहा तथा इस्पात, सूती वस्त्र, अभियन्त्रण तथा मशीन-उद्योग, अलमुनियम, सीमेण्ट तथा चुकन्दर-चीनी।

औद्योगिक मोर्चे पर लाल सेना और सोवियत-जनता ने अपूर्व वीरता और सहनशक्ति का परिचय दिया। जब युद्ध के भयानक बादल मँडराने लगे, तब अनेक विशाल कारखानों और कुशल कारीगरों को पूर्व दिशा की ओर स्थानान्तरित कर दिया गया। मित्रराष्ट्रों ने वहाँ पर सामग्री पहुँचा दी। इन तीनों कारणों से पूर्वी क्षेत्र के उद्योगों का खूब विस्तार हुआ। सन् 1941 ई० के दस वर्ष पहले से ही इस नीति का अनुसरण किया जा रहा था, जिसके कारण उन्हें सफलता मिली। तो भी वे उक्रेण, मास्को या लेनिनग्राड के एवज में न थे।

द्वितीय और तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं की अन्य विशेषता यह रही है कि युद्धकाल में आत्मनिर्भरता की प्रवृत्ति बहुत अधिक बढ़ गई है। सुरक्षा के आधार पर सोवियत-नेताओं ने सन् 1932 ई० से ही इसकी प्रशंसा की है और इसे आवश्यक बतलाया है; किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि सो० सा० ग० संघ विदेशों से विलग रहे। इसका फल यह हुआ कि सन् 1917 ई० के पहले जो रूस विदेशों पर निर्भर करता था और तैयार माल या कच्चे माल के लिए विदेशों पर आश्रित रहता था, वह सब सन् 1940 ई० तक समाप्त हो गया। कच्चे माल थे—रबर, अलौह धातु औपनिवेशिक माल। ये सभी माल विदेशी जहाजों से आते थे।

जो उद्योग सन् 1917 ई० के पहले चलते रहे, उनका तो पर्याप्त विस्तार हुआ ही, उनके उत्पादन में भी बहुत विस्तार हुआ। कुछ वस्तुओं का उत्पादन एकदम ही न होता था या उनका उत्पादन बहुत ही अल्पमात्रा में होता था। सन् 1940 ई० तक

प्रमुख उद्योगों की दिशा में नूतन शाखा खुल गई। इनके निर्माण मे जी-जान से शक्ति लगा दी गई। इन उद्योगों से सोवियत-उपभोग को अधिकांश या समस्त सामग्री मिलने लगी। यथा : रबर (विशेषत: कृत्रिम), रासायनिक पदार्थ, कृत्रिम खाद कृषि-मशीनरी, सूक्ष्म यन्त्र, लारी तथा मोटरगाड़ीं, विद्युत्-सामग्री, यन्त्र-औजार, अलमुनियम एवं अलौह धातु। इनके अतिरिक्त लाल सेना के पास एयर क्राफ्ट (वायुयान), टैंक (टंकी), बन्दूक और अस्त्र-शस्त्रागार पर्याप्त थे।

यह सत्य है संकटस्थल अनेक थे तथा सोवियत-उद्योग सन् 1940 ई०. तक कुछ आवश्यक वस्तुओं के लिए विदेशों के आयात पर निर्भर रहता था। किन्तु, यह निर्भरता अधिकतर बहुत ही कम थी और वह भी किसी दूसरे देश के उद्योग क अपेक्षा बहुत ही कम। यह विशेष ध्यान देने की बात है कि आविष्कारों के लिए व्यवस्थित रूप से प्रोत्साहन दिया जाता था। यन्त्र-औजार और मशीनरी पर एकाग्रचित्त से काम होता था। अत:, विदेशी आयात तथा तकनीकी सहायता पर निर्भरता कम होती गई। उच्च श्रेणी के कारखानों का विस्तार या स्थापन होता गया।

उपसंहार में कहा जा सकता है कि सोवियत-योजना और उद्योग-क्रान्ति का यह सर्वप्रधान लक्षण रहा है कि सुरक्षा की आवश्यकताओं की ओर पहले ध्यान दिया जाय, न कि भारी उद्योग और पूँजी-सामग्री को उपभोक्ता-सामग्री की अपेक्षा अधिक प्रधानता दी जाय। सम्पूर्ण योजना के प्रथम काल के विषय में यह ठीक से नहीं कहा जा सकता। सन् 1933 ई० में, सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार, प्रत्यक्ष बजट (आय-व्यय-लेखा) में सुरक्षा के लिए कुल व्यय के चार प्रतिशत से कुछ ही अधिक भाग था, अर्थात् 14 लाख रूबल। सन् 1939 ई० के परिवर्त्तन से माथा चकरा जाता है। कुल व्यय का चौथाई से अधिक धन, 410 लाख रूबल सुरक्षा में खर्च हुआ। सन् 1940 ई० में करीब एक-तिहाई या 570 लाख रूबल। ये आँकड़े और भी दृढ हो जाते हैं, यदि हम इस बात का ध्यान रखें कि इस सोवियत-संघ का राष्ट्रीय बजट (आय-व्यय-लेखा) पाश्चात्य देशों की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तीर्ण है। इसमें पूँजी-निवेश भी सन्निहित है। जो निवेश सुरक्षा के बजट की मद में शामिल नहीं हैं, उनका अधिकांश प्रयोग प्रत्यक्ष या गौण रूप से सेना तथा नौसेना की आवश्यकताओं की पूर्त्ति में होता था।

पूर्ण योजना के अनुसार एक देश में समाजवाद का निर्माण करना था। किन्तु, यह देश दुनिया में पूँजीवाद से घिरा है। सन् 1933 ई० में हिटलर ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली तथा जापान और इटली से मैत्री की। अब इस दुनिया ने सो०सा०ग० संघ की रक्षा को संकटमय बना दिया। सुरक्षित रहने के लिए इसे ईंट का उत्तर ईंट से देना होगा तथा अपनी योजना भी उसी प्रकार बनानी होगी। सोवियत-

संघ रूसी साम्राज्य के समान विश्वभूमि का षष्ठांश है। चीन और भारत के बाद इसकी जनसंख्या किसी भी देश से अधिक है। इस देश में विभिन्न प्रकार के समृद्ध साधन हैं। अतः, यह देश सभी देशों से बढ़कर है। प्रथम विश्वयुद्ध, क्रान्ति तथा गृहयुद्ध से रूस बहुत निम्न हो गया था, किन्तु इससे उसकी सजीवता पंगु न हुई। अक्तूबर-क्रान्ति ने द्वितीय स्तालिन-क्रान्ति की जड़ जमा दी, जिससे गत पन्द्रह वर्षों में सोवियत-संघ एक महान् राष्ट्र बन गया। अनेक लोग इसे मन्द रूप में महान् राष्ट्र समझते थे, किन्तु गत दो वर्षों में सिद्ध हो गया कि निःसन्देह यह विश्व के महान् निर्णायक राष्ट्रों में है। जिस प्रकार सन् 1917 ई० के पूर्व दो शतियों तक रूस एक महान् राष्ट्र माना जाता था, उसी प्रकार सोवियत-संघ ने भी अपना पूर्वस्थान प्राप्त कर लिया। इसकी जड़ बहुत ही मजबूत है, यद्यपि सोवियत-संघ की बहुत क्षति हुई है।

5. रूस तथा अन्य राष्ट्र :

सन् 1700 से 1917 ई० तक यूरोप के सभी प्रधान विषयों में रूस का हाथ रहता था, जिससे राष्ट्रों में विभेद हो गया। केवल स्पेन के उत्तराधिकार-युद्ध तथा अफ्रिका के विभाजन में रूस का हाथ न था। प्रायः सभी विषयों में रूस ही निर्णायक अंग था। यदि रूस विभिन्न मामलों में अपनी चाल नहीं चलता, तब इतिहास कुछ दूसरा ही होता और उसे पहचानने में कठिनाई होती। ये मामले थे--तुर्की, पोल तथा बाल्टीक-प्रश्न, सप्तवर्षीय युद्ध, नेपोलियन के विरुद्ध संघर्ष, सन् 1848–49 ई० की क्रान्ति, सुदूरपूर्व तथा प्रथम विश्वयुद्ध। अट्ठारहवीं शती का अन्त होते-होते रूस ने आकार और संख्या में विशाल रूप धारण कर लिया। "गत शती के यूरोप में इस राज्य को कोई जानता भी न था। धीरे-धीरे अपने सभी पड़ोसियों का अंश बांट-बांटकर बढ़ता गया। चालीस वर्षों तक यह राष्ट्रों के राजनीतिक सन्तुलन को भयभीत करता रहा। इस विशाल साम्राज्य में विविध जलवायु तथा सभी प्रकार के साधन हैं। उस साम्राज्य से अकेला टक्कर लेना व्यर्थ है, जो बालू के कण के समान सिपाही उत्पन्न कर सकता है।"[1] रूस की जनशक्ति को पश्चिम में कभी-कभी बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कहा जाता है, किन्तु दो शतियों से यह जनशक्ति विशाल रूप में बढ़ती ही गई। मुख्य-राष्ट्रों की जनसंख्या के आँकड़ों की ओर ध्यान देने से यह पता चल जायगा। प्राचीन काल के

---

1. ये वाक्य स्वीडेन के गुस्तवुस तृतीय के कहे जाते हैं। उसकी पुस्तक सन् 1790 ई० में, लन्दन से तथा उसी वर्ष स्टाकहोल्म से फ्रेंच-भाषा में प्रकाशित हुई।

सम्बन्ध में ये संख्या सन्देहात्मक हैं। इससे घनत्व, आर्थिक योग्यता या संगठित शक्ति का पता चलना कठिन है।[1]

देश	1700	1800	1871	1914	1939
रूस	13 (1725)	36	87	174	170
फ्रांस	19	27·5	36	41	42
आस्ट्रिया	10	20	33	50	....
प्रशिया	2	9	41	67	73
पोलैण्ड	11·5 (1760)	...	...	...	35
इटली	....	....	27	36	45
ग्रेटब्रिटेन एवं आयरलैण्ड	7·5	16	32	46	47
संयुक्तराज्य अमेरिका	260,000	5	38·5	98	131
जापान	...	...	33	54	73

इस सारणी में भले ही दोष तथा अनिश्चितता हो, किन्तु दो मोटी बातें स्पष्ट हैं।

1. अट्ठारहवीं शती की समाप्ति के पहले रूस की जनसंख्या किसी भी यूरोपीय देश से अधिक न थी। महान् उत्तरी युद्ध के पीछे सब कुछ अन्धकारमय है। उपलब्ध प्रमाणों से पता चलता है कि आपत्काल (सन् 1604–13 ई०) के बाद

1. अमेरिका में सन् 1700 ई० में तेरह ही उपनिवेश थे। बाद के आँकड़े सारे देश के हैं। राज्यों की सीमा (जापान को छोड़कर) विभिन्न कालों में घटती-बढ़ती रहती है। सन् 1725 और 1871 ई० के मध्य रूस की सीमा बहुत बढ़ गई। अमेरिका की सीमा सन् 1800 तथा 1871 ई० के मध्य और सन् 1871 ई० से प्रशिया जर्मनी देश हो गया। सन् 1939 ई०के रूस के आँकड़े सोवियत की जनसंख्या के हैं,जो क्षेत्रफल में रूस-साम्राज्य से कम है। फ्रांस सन् 1789 ई० का फ्रांस है, केवल सन् 1871 और 1914 ई० को छोड़कर, जब अलसेस-लोरेन इससे अलग हो गया। सन् 1871 और 1914 ई० में आस्ट्रिया का अर्थ है आस्ट्रिया-हंगरी। सन् 1700 और 1800 ई० में जर्मनी के प्रदेश, निम्नदेश तथा इटली-साम्राज्य के बाहर थे। सन् 1939 ई० के आँकड़ों में आस्ट्रिया शामिल है, किन्तु जेकोस्लोवाकिया नहीं। सन् 1939 ई० में पोलैण्ड का क्षेत्रफल-विभाजन पूर्व पोलैण्ड से बहुत छोटा था। ब्रिटेन के सन् 1939 ई० के आँकड़ों में आयर अलग है। जापान की संख्या में खास जापान की ही आबादी है, उसके साम्राज्य की संख्या नहीं।

मस्कोवी की जनसंख्या बहुत ही कम हो गई। किन्तु, सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध तक यह देश पोलैण्ड-लिथुनिया की अपेक्षा जनशक्ति में दुर्बल था। तभी से उक्रेण तथा खास मस्कोवी में स्वाभाविक वृद्धि हुई और इस देश का पलड़ा भारी हुआ।

2. फ्रांस की क्रान्ति के बाद विजय, अभिग्रहण तथा स्वाभाविक वृद्धि से रूसी साम्राज्य की जनसंख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। (भारत और चीन के सिवा) इस देश की जनसंख्या को संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में ही मात कर सका है। उपर्युक्त तीन कारणों के अलावा देशान्तरवास को भी इसमें जोड़ देना होगा। यदि केवल जनसंख्या ही ली जाय, तो सन् 1871 ई० तक रूस किसी भी यूरोपीय देश के दुगुने से अधिक बड़ा था। जर्मनी की एकता हो जाने के कारण सन् 1800 तथा 1914 ई० के मध्य होहेनजोलेरनों की प्रजा-संख्या में रोमानवों की प्रजा से कहीं अधिक वृद्धि हुई।

केवल संख्या से कुछ नहीं होता। रूस की जनशक्ति को प्रायः गहरी चोट पहुँचती थी; क्योंकि यह देश अपनी जनशक्ति का सदुपयोग करने में असमर्थ था, संगठन तथा आधुनिक प्रशिक्षण का अभाव था, यातायात तथा औजारों का अभाव तथा घोर सामाजिक और आर्थिक विषमता थी। औद्योगिक क्रान्ति तथा आधुनिक विज्ञान से नई दुनिया की उत्पत्ति हुई। उसमें रूस बहुत पीछे था, इसे क्रिमिया-युद्ध ने अच्छी तरह सिद्ध कर दिया। आगामी दो पीढ़ियों में शीघ्रता से महान् परिवर्त्तन हुए, न कि केवल आर्थिक और सैनिक क्षेत्र में ही। तब भी सन् 1914 ई० तक यूरोप के सर्वमुखी विकास की तुलना में रूस जनसंख्या में भले विशिष्ट हो, किन्तु जहांतक सामान्य उच्च गुण और स्तर का प्रश्न है, यह देश बहुत ही हीन तथा पिछड़ा था।

सप्तवर्षीय युद्ध से रूस की मान्यता महान् राष्ट्रों में पूरी तरह होने लगी। महान् पीटर की मृत्यु सन् 1725 ई० में हो गई। उसकी मृत्यु के बाद तीस वर्षों तक विवादपूर्ण उत्तराधिकार तथा दरबारी षड्यन्त्र से विदेशी कूटनीति को, विदेशों में रूसी प्रभाव को कम करने का यथेष्ट अवसर मिला। तब भी पोल-उत्तराधिकार-युद्ध (सन् 1733–35 ई०) में रूस ही निर्णायक शक्ति रहा। रूस ने गद्दी के लिए फ्रांसीसी उम्मीदवार को हराकर सक्सोनी के अगस्तस तृतीय को वारसा में गद्दी पर बैठाया। सन् 1735 ई० में सर्वप्रथम रूसी सेना राइन नदी के तट पर पहुँची तथा सन् 1747–48 ई० में दूसरी बार। उन्होंने युद्ध न किया, किन्तु यह अपशकुन था।

आस्ट्रिया के उत्तराधिकार-युद्ध (सन् 1740–48 ई०) में रूस ने पहले छेड़-छाड़ नहीं की, यद्यपि रूस ने व्यावहारिक स्वीकृति का वचन दिया था। इसके

लिए फ्रांस की कूटनीति जिम्मेवार थी। सन् 1726 ई० से ही रूस आस्ट्रिया का सदा मित्र रहा था। फ्रांस की चिरस्थायी नीति थी कि तुर्की, पोलैण्ड और स्वीडेन को हैब्सवर्ग-वंश के विरुद्ध प्रयोग किया जाय। अब उसने रूस के विरुद्ध भी उनका प्रयोग आरम्भ कर दिया। वेलग्रेड की सन्धि (सन् 1739 ई०) से फ्रांस ने अपने लिए तथा तुर्की के लिए महान् सफलता प्राप्त की। वह चाहता था कि रूस विमुख हो जाय और मेरिया थेरेसा की सहायता न करे, स्वीडेन के साथ उलझ जाय तथा दरबार में क्रान्ति हो जाय। इस प्रकार, फ्रांस दूसरी सफलता चाहता था। फ्रांस को कुछ सफलता अवश्य मिली। एलिजावेथ गद्दी पर बैठी। बालक इवन षष्ठ और उसकी राजप माता, जो आस्ट्रिया का पक्ष करते थे, हटा दिये गये (सन् 1741 ई०)। स्वीडेन बदला लेने के लिए युद्ध में टपक पड़ा। किन्तु, स्वीडेन की बहुत बरबादी हुई। कुछ हिचकिचाहट के बाद एलिजावेथ ने निश्चित रूप से अपने वैदेशिक मन्त्री वेस्तुजेव रूईमिन का पक्ष करने लगी। इसका जन्म सन् 1693 ई० और निधन सन् 1768 ई० में हुआ। सन् 1744–58 ई० तक यह चान्सलर रहा। वह डटकर आस्ट्रिया से मैत्री करना चाहता था और यदि हो सके, तो इंगलैण्ड के साथ भी। फ्रेडरिक महान् (राज्यकाल : सन् 1740–86 ई०) की शक्ति दिन-दिन भयानक रूप से बढ़ती जाती थी और उस समय फ्रेडरिक और फ्रांस में मैत्री थी। अतः, फ्रेडरिक के विरुद्ध वह आस्ट्रिया तथा इंगलैण्ड से मैत्री करना चाहता था।

सप्तवर्षीय युद्ध में संघर्ष फिर आरम्भ हुआ। किन्तु, सन् 1756 ई० की कूटनीतिक क्रान्ति ने राष्ट्रों की पंक्ति बदल दी थी। यह पहला अवसर था कि बारबन (फ्रांस) और हैब्सबर्ग (प्रशिया), होहेनजोलेर्न के विरुद्ध (आस्ट्रिया) मित्र बन गये; जब वे समझ गये कि आस्ट्रिया के पक्ष में ग्रेटब्रिटेन और हनोवर हो गये हैं। वेस्तुजेव इस अन्तिम दाव-पेंच से एकदम आश्चर्यचकित हो गया। वह भयभीत हो गया; क्योंकि अभी शीघ्र ही उसने इंगलैण्ड से प्रशिया के विरुद्ध मैत्री की थी। किन्तु, वह विचलित न हुआ। वह वियाना से मैत्री बनाये रहा तथा बर्लिन का उसे भय बना रहा। रूस में उसके विपक्षी भी उससे इस बात पर सहमत थे, किन्तु वे इसके कार्यों से घोर असन्तुष्ट थे तथा उन्होंने उसके विरुद्ध सफलतापूर्वक षड्यन्त्र किया।

फ्रेडरिक, रूस के वरीय जनरलों के प्रति हृदय से घृणा करता था, किन्तु उसे इसके लिए बहुत अफसोस भी होता था। कजाकों तथा अनियमित सवारों की लूट-खसोट से सारी रूसी सेना सदा के लिए भयंकर रूप से बदनाम हो चुकी थी। किन्तु, सच्ची बात यह है कि नियमित सेना हमेशा अच्छी तरह अनुशासन का पालन करती रही और लूट-खसोटकर देश में जीवन नहीं बिताती थी। रूसी सेना, अन्य देश

की सेना की अपेक्षा सदा अपने तोपखानों तथा शीत-आवासों से चिपकी रही। रूसी सेना चार वर्ष तक पूर्वी प्रशिया में घेरा डाले रही। पूर्वी प्रशिया की हालत फ्रेडरिक के अन्य प्रदेशों की अपेक्षा कहीं अच्छी थी, जिसका फ्रेडरिक ने अधिग्रहण से खून चूस लिया था।

सामरिक आक्रमण करने की शिक्षा रूसी सेना को न मिली थी। रूसी जनरल, फ्रेडरिक की प्रतिभा के सामने आक्रमण करने का साहस भी नहीं कर सकते थे। किन्तु, रूसी सेना की दृढता प्रचण्ड और अखण्ड थी। यदि पचास प्रतिशत वे नष्ट भी हो जाते, तो भी फ्रेडरिक को जॉर्नडोर्फ (सन् 1758 ई०) की लड़ाई से कोई लाभ नहीं हो सकता था। आगामी वर्ष कुनेर्सडोर्फ में उसने घुटना टेक दिया। सन् 1760 ई० में रूस ने कोलबर्ग अधिकृत कर लिया तथा वर्लिन पर छापा मारने के लिए ओडर नदी पार की। बर्लिन पर अर्थदण्ड लगा दिया गया, जो जान-बूझकर कम था और बहुत अधिक सनिक क्षति पहुँचाई। सन् 1761 ई० समाप्त होते-होते फ्रेडरिक का साथ अँगरेजों ने छोड़ दिया; क्योंकि पिट को बाध्य होकर इस्तीफा करना पड़ गया। अब उसे तुर्की के साथ सन्धि की बातचीत चलानी पड़ी, जो अर्थहीन थी; क्योंकि तुर्की पर ही प्रशिया की सारी आशा लगी थी। फ्रेडरिक की अब अन्तिम साँस चल रही थी।

सम्राज्ञी एलिजाबेथ की भी यही दशा थी। जनवरी, सन् 1762 ई० में वह चल बसी। फ्रेडरिक ने अपने भाई को लिखा: 'भगवान् को धन्यवाद है। अब हमारा कोई दुश्मन नहीं है।' अन्त में रूस की विशाल सेना का बोझ हट गया। स्पेन का फरडिनेण्ड षष्ठ मर गया और चार्ल्स तृतीय वहाँ गद्दी पर बैठा। अब स्पेन इंगलैण्ड के विरुद्ध (सन् 1761 ई०) युद्ध-क्षेत्र में उतरा। एलिजाबेथ के मरने पर पीटर तृतीय गद्दी पर बैठा। अब सभी समझने लगे कि रूस शीघ्र ही युद्ध से विलग हो जायगा। अतः, महासागर-तट पर चिरकाल तक संघर्ष चला। 6 मास के बाद रूस में राज्यविप्लव हो गया। महती कैथरीन अपने पति को गद्दी से उतारकर स्वयं गद्दी पर बैठी। वैदेशिक मामलों पर इसका कुछ असर न पड़ा। प्रशिया के साथ सन्धिनीति को लोगों ने आम तौर से अच्छा समझा। कैथरीन की निश्चित नीति भी यही रही, यद्यपि जिस सेना को पीटर ने फ्रेडरिक को सौंपा था, उसे इसने वापस बुला लिया।

सन् 1763 ई० में शीघ्र ही सभी राष्ट्रों में शान्ति हो गई। यूरोप में, आस्ट्रिया और फ्रांस को हराकर प्रशिया विजयी हुआ। समुद्र-पार फ्रांस और स्पेन को हराकर इंगलैण्ड विजयी हुआ।

रूस को अपनी हानि का कुछ भी मुआवजा मिला या नहीं, यह शंकास्पद है। युद्ध से रूस के महान् जन और धन की क्षति हुई तथा देश में आन्तरिक तनाव बढ़ गया। रूस को भूमि का लाभ न हुआ। एलिजावेथ का लक्ष्य पूर्वी प्रशिया को अधिकार में रखना था, किन्तु पीटर ने इसे एकदम ठुकरा दिया। वह पूर्वी प्रशिया या उसका समुद्रतट चाहती थी और शेष को पश्चिमी भूमि के बदले में पोलैण्ड से बदलना चाहती थी। रूस का मुख्य उद्देश्य प्रशिया की शक्ति-वृद्धि को रोकना तथा फ्रेडरिक की राज्याकांक्षा को छिन्न-भिन्न करना था। सीलेसिया उसी की थी और स्वयं फ्रेडरिक महान् कहलाना चाहता था। किन्तु, इस महान् आपत्काल में भी उसने जो अद्भुत कार्य किये, उसने पता चलता है कि अगर रूस उसके विरुद्ध न होता, तो वह विशाल पैमाने पर मनमानी करता तथा उसे इसका कम ही मूल्य चुकाना पड़ता और प्रशिया इतना शक्तिशाली तथा प्रभुत्वशाली राष्ट्र बन जाता कि पोलैण्ड और बाल्टीक में रूस का स्वार्थ मिट्टी में मिल जाता।

कम-से-कम इतना निश्चित है कि रूसी सेना ने प्रशिया और यूरोप को प्रभावित कर लिया। वे इसे कदापि भूल नहीं सकते थे। भले ही रूसी सेना दुःखदायी थी और योग्य नेताओं का इसमें अभाव था। अबसे रूसी सेना की सर्वत्र इज्जत होती थी; क्योंकि इसकी संख्या अनन्त थी। ये अजय लड़ाकू थे तथा प्राण रहते पीछे हटनेवाले न थे। फ्रेडरिक जानता था कि हमारे देश की हड्डी चूर-चूर हो गई है और पूर्ण स्वस्थ होने में काफी समय लगेगा। चाहे जो होता, वह शेष जीवन-पर्यन्त रूस के साथ शान्ति से रहेगा। प्रशिया फिर कभी दो मोर्चों पर युद्ध का सामना न करेगा। सन् 1914 ई० तक उसने कभी ऐसा न किया। सप्तवर्षीय युद्ध के बाद डेढ़ सौ वर्षों तक प्रशिया (या जर्मनी) ने रूस से कभी युद्ध न किया। केवल एक बार नाम के लिए और दबाव से (सन् 1812 ई०) युद्ध करना पड़ा था।

सन् 1764 ई० की सन्धि से प्रशिया के साथ मैत्री दृढ हो गई। सन् 1780 ई० तक कैथरीन की वैदेशिक नीति का यही आधार रहा। पनिन (सन् 1718–83 ई०) उसका वैदेशिक मन्त्री था, जो अंशतः वैदेशिक मामलों की देखरेख करता था। उसका 'उत्तरी समझौता' बहुत अधिक सुविस्तर था। वह कभी काम में नहीं लाया गया। कैथरीन सदा उसे शंका की दृष्टि से देखती थी तथा कैथरीन के आरम्भिक खुशामदी, ऑरलोव्स उसका सभी तरह से विरोध करते थे। तब भी रूसी नीति से ही पोलैण्ड, स्वीडेन तथा तुर्की के भाग्य का निबटारा होता रहा। सम्राट् जोसेफ द्वितीय (आस्ट्रिया) ने रूस की प्रसिद्ध यात्रा की और बदले में सन् 1780 ई० के बाद तुर्की के विरुद्ध आस्ट्रिया से पुनः मैत्री हो गई। जोसेफ ने रूस की दो यात्राएं कीं।

यूरोप में रूस का स्थान कितना ऊँचा था, इसका पता बावरिया के उत्तराधिकार-प्रश्न तथा अमरीकी स्वतन्त्रता-युद्ध से चल जाता है। बावरिया के लिए (सन् 1778–79 ई०) जोसेफ द्वितीय के विरुद्ध महान् फ्रेडरिक तथा अन्य जर्मन राजकुमारों ने लोहा लिया। इसमें कैथरीन ने तेसचेन-सन्धि की गारण्टी ली। वह जर्मन-राजनीति में समझौता कराने की चेष्टा करने लगी। यह एक नवीनता थी और रोमानव-वंश की कूटनीति थी, जो आलमुत्ज़ के काल तक (सन् 1850 ई०) चलती रही। जर्मनी में हस्तक्षेप की यह पूर्वपीठिका थी, जो चिरकाल तक बनी रही।

जब स्वतन्त्रता-युद्ध समाप्त होने को आया, तब कैथरीन ने सशस्त्र तटस्थता (सन् 1780 ई०) की नीति अपनाई, जो उसकी लाड़ली बच्ची के समान थी। सागर-नौसंचालन-अधिकार के सम्बन्ध में ब्रिटेन की अपनी भावना थी। वह इस भावना को सबपर लादना चाहता था। तटस्थ राष्ट्रों का अपना स्वतन्त्र हक है। इस पक्ष में कैथरीन ने डेनमार्क, स्वीडेन और प्रशिया (कालान्तर में अन्य राष्ट्रों ने भी साथ दिया) को अपने पक्ष में कर लिया। उस समय ब्रिटेन की सरकार बहुत उलझी थी। वह कैथरीन की माँगों के सामने ठहर न सकी, भले ही ब्रिटेन ने कैथरीन के सिद्धान्तों को स्वीकार न किया। आगे चलकर रूस अपने सुविधानुसार इन सिद्धान्तों में संशोधन करने को तैयार हो गया; किन्तु समुद्र में नौसंचालन-अधिकार विवादपूर्ण विषय बना रहा। आस्ट्रिया के सैनिकों की अपनी जिद्द थी। अँगरेजों ने मालटा हथिया लिया और जहाजों को रोकना शुरू किया। अतः, सम्राट् पाल अपने मित्र आस्ट्रिया तथा इंगलैण्ड से बिगड़ गया। उसने द्वितीय सम्मेलन से नाता तोड़ लिया, जो फ्रांस के विरुद्ध था और वह नेपोलियन से मिल गया। उसने शीघ्र ही कैथरीन की सशस्त्र तटस्थता को (सन् 1800–01 ई०) पुनर्जीवित किया, जिससे नेलसन ने कोपेनहेगेन पर हमला कर दिया और डेनमार्क के जहाजी बेड़े को नष्ट कर दिया। अलेक्जेण्डर ने इंगलैण्ड पर बार-बार दबाव डाला कि समुद्र में नौसंचालन के सिद्धान्त में परिवर्त्तन किया जाय। जबतक नेपोलियन के साथ उसकी मैत्री रही (सन् 1807–10 ई०), उसने पुनः सन् 1780 और 1800 ई० के सिद्धान्तों की घोषणा की। समुद्र में नौ-संचालन के विषय में ये ही सिद्धान्त रूसी गति-विधि के आधार रहे।

कैथरीन के राज्यकाल में रूस और इंगलैण्ड के बीच एक दूसरी दरार उत्पन्न हुई, जो आगे चलकर खाई बन गई। प्रथम तुर्की-युद्ध में कैथरीन इंगलैण्ड की बहुत ही अनुगृहीता थी। इंगलैण्ड ने ही सुविधा दी थी, जिससे रूसी बाल्टीक-नौसेना अचानक एजियन सागर में पहुँच गया (सन् 1770 ई०)। किन्तु, द्वितीय

तुर्की-युद्ध में तरुण पिट ने स्वीडेन के समर्थन से, प्रशिया से मैत्री कर ली। पूर्व-स्थिति बनाये रखने के प्रयास में वह कैथरीन से दूर हटता गया। ओचाकोव के मामले में (सन् 1790–91 ई०) कैथरीन की जोरदार विजय हुई। इंगलैण्ड के ह्विग फौक्स के पक्ष में थे। उन्होंने रूसी मन्त्री से मिलकर विकट झंझट खड़ा कर दिया। कैथरीन स्वीडेन या प्रशिया के सामने झुकी नहीं, वरन् डटी रही। पिट चाहता था कि डराने-धमकाने से कैथरीन कृष्णसागर-तट दे देगी। यह तट बग और डैनिस्टर नदी के मध्य मे था। ओचाकोव का दुर्ग इसी में शामिल था। पिट को उसमन-साम्राज्य की सुरक्षा की इतनी चिन्ता न थी, जितनी अन्य बातों की। रूस के विरुद्ध खड़ा होने में जनता भी उसका साथ नहीं दे रही थी। तब भी इंगलैण्ड के लिए सन् 1791 ई० से ही पूर्वी प्रश्न आधुनिक रूप में उपस्थित होने लगे थे।

अभी तक फ्रांस की क्रान्ति खूब सुलगी न थी। आगामी वष आस्ट्रिया तथा प्रशिया एवं ग्रेटब्रिटेन फ्रांस के साथ लड़ाई में भिड़ गये (सन् 1793 ई०)। कैथरीन बहुत चाहती थी कि क्रान्ति रुक जाय और इसके विरुद्ध सम्मिलन न हो, अन्यथा आस्ट्रिया और प्रशिया का पच्छिमी देशों में पूर्ण बोलबाला हो जायगा। उसने सारी शक्ति पोलैण्ड के विनाश में लगा दी। रूस बहुत सुदूर था और अत्यन्त व्यस्त था, अत: रूस फ्रांस के विरुद्ध प्रथम सम्मिलन (सन् 1792–95 ई०) में नाममात्र से अधिक भाग न ले सका।

इसके बाद की बात दूसरी थी। द्वितीय सम्मिलन (सन् 1798–99 ई०) में रूस ने फ्रांस के विरुद्ध, हालैण्ड, उत्तरी इटली तथा स्विट्जरलैण्ड में युद्ध किया, जहाँ सुवोरोव (सन् 1730–1800 ई०) ने अपूर्व वीरता का परिचय दिया। वह तृतीय सम्मिलन (सन् 1805–7 ई०) में, सन् 1812 ई० में तथा अन्तिम सम्मिलन में, जो वाटरले के मैदान में समाप्त हुआ, फ्रांस से लड़ी। दो बार वह फ्रांस के पक्ष में विचलित हो गई। पहली बार तो सन् 1800–01 ई० में क्षण-भर के लिए, जिसका कारण था मन्दबुद्धि सम्राट् पाल। दूसरी बार सन् 1807 ई० में करारी हार हुई, खून की नदी बह चली और अलेक्जेण्डर प्रथम को लाचार होकर नेपोलियन का साथ देना पड़ा, जिस प्रकार वाग्रम-युद्ध के बाद (सन् 1809 ई०) आस्ट्रिया नेपोलियन का साथ देने लगा था।

रूस ने नेपोलियन के साथ युद्धों में भाग लिया। इसका मूल कारण वही था, जो अन्य राष्ट्रों के लिए था। वह मूल कारण यह था कि कहीं फ्रांस बहुत अधिक बलशाली न हो जाय और यूरोप में शासन न चलाने लगे। अपनी सरकार की दृष्टि में रूस एक महान् यूरोपीय राष्ट्र था। पश्चिम के साथ इसका चोली-

दामन का नाता था। जबतक नेपोलियन के साथ युद्ध चलता रहा, रूस का स्वार्थ पूर्व दिशा में तेजी के साथ काकेशश तथा डैन्यूब नदी-तट की ओर बढ़ता रहा। वंश-परम्परा के सम्बन्ध खासकर बाडेन तथा ओल्डेनबर्ग से थे। अलेक्जेण्डर का पर्सिया के फ्रेडरिक विलियम तृतीय के प्रति पूर्वानुराग तथा उसकी सुन्दरी रानी लूईस ने पश्चिम के साथ राजनीतिक तथा आर्थिक बन्धन को और भी दृढ कर दिया।

अतः, तृतीय सम्मिलन में अलेक्जेण्डर ने इंगलैण्ड और आस्ट्रिया का साथ दिया। स्वीडेन ने भी अलेक्जेण्डर का साथ दिया, किन्तु प्रशिया को किसी भी क्रियात्मक क्षेत्र में उतारने में उसे सफलता न मिल सकी। आस्टरलित्ज़ की करारी हार से (दिसम्बर, 1805 ई०) मजबूर होकर सम्राट् फ्रांसिस ने सन्धि की और अलेक्जेण्डर अपने देश को लौट गया। सन्त पीटर्सबर्ग में विभिन्न मत के सलाह-कार थे। वे एक दूसरे की चुगली करते थे। जारतोरस्की तथा अलेक्जेण्डर के पुराने मित्रों का प्रभाव जाता रहा। जनता शिकायत करती थी कि अलेक्जेण्डर यही चाहता है कि हमलोग शान्त बनकर देखते रहें और जबतक हमारे ऊपर आक्रमण न हो, तबतक आगे न बढ़ें।

किन्तु, जब प्रशिया एकाएक युद्ध में कूद पड़ा, तब रूस में कुछ गरमी आई। किन्तु, रूसी सेना के पहुँचने के पहले ही जेना का युद्ध (अक्तूबर, 1806 ई०) समाप्त हो चुका था और प्रशिया मुँह की खा चुका था। बर्लिन पर कब्जा हो चुका था। स्वयं नेपोलियन वारसा में था। केवल पूर्वी प्रशिया बाकी था। वहाँ बहुत खून-खराबी के बाद उसने इयलाउ तथा फ्रीडलैण्ड पर विजय प्राप्त किया। नीमेन नदी के प्रसिद्ध बेड़े के पुल पर विजयन्त ग्रीकों से मुठभेड़ हुई तथा (जुलाई, 1807 ई०) तिलसित की सन्धि हुई।

कठोर और दुविधाजनक शर्त्तें तो अवश्य थी, किन्तु प्रशिया का कुछ भाग बच गया। वारसा को महान् जागीर बनाकर पोलैण्ड का प्रश्न, जो दबा हुआ था, पुनर्जीवित किया गया। यदि इंगलैण्ड नहीं मानता, तो अलेक्जेण्डर को महादेशीय पद्धति में शामिल होना पड़ता। स्वीडेन को जबरदस्ती इसमें सम्मिलित करने के एवज में वह फिनलैण्ड को अधिकृत कर सकता था। उत्तमन-साम्राज्य का बँटवारा नेपोलियन तथा अलेक्जेण्डर स्वयं आपस में करनेवाले थे।

अलेक्जेण्डर को नेपोलियन के साथ मजबूर होकर सन्धि करनी पड़ी; क्योंकि रूस की महान् क्षति हो चुकी थी, उसे कई बार हार खानी पड़ी थी तथा देश बरबाद हो चुका था। सन् 1806 ई० में फसल एकदम चौपट हो गई थी।

इंगलैण्ड के सभी बुद्धिमानों ने मिलकर सलाह की और किसी प्रकार का नया ऋण देने में वे हिचकिचा रहे थे। रूस की वित्तीय हालत लड़खड़ा रही थी। इसका प्रधान कारण था कि कागज के नोट बिना किसी रुकावट के छपते जाते थे। आगामी तीन वर्षों में कागजी रूबल का मूल्य रुपये में तीन आने के बराबर हो गया, यानी पाँचवें हिस्से से भी कम हो गया। रूस का अब दिवाला निकलने ही वाला था। किन्तु, किसी तरह वह समय निकल गया; क्योंकि रूस महादेशीय पद्धति से विलग हो गया। स्पेरेन्स्की ने उपाय किया। इससे कुछ राहत मिली। किन्तु, उसके समस्त वित्तीय सुधार-नियमों को नहीं अपनाया गया। जमीन्दारों से एक प्रकार की अधियाचना की प्रथा पुनः चल पड़ी। सन् 1812 ई० में सारे देश में देशभक्ति की लहर उमड़ रही थी। इससे सरकार को काफी धन स्वेच्छा से ही लोगों ने दे दिया। सन् 1812 ई० के बाद नेपोलियन की पराजय में रूस का गहरा हाथ रहा, किन्तु इसका सारा खर्च अँगरेजों की सहायता से होता रहा। इंगलैण्ड ने रूस को 70 लाख पौण्ड दिया।

तिलसित का आर्थिक प्रभाव बहुत ही प्रचण्ड था। नेपोलियन से मैत्री का अर्थ था महादेशीय पद्धति से लगाव रखना, अर्थात् इंगलैण्ड के साथ रूस का सम्बन्ध-विच्छेद। इंगलैण्ड ही रूस का सबसे बड़ा ग्राहक था और वह रूस को उपनिवेशों के माध्यम से अन्य सामानों को नियमित रूप से देता था। अँगरेजी जहाज और आढ़तियों पर रोक लग गई। रूस का वैदेशिक व्यापार अधिकतर इन्हीं के द्वारा होता था। तटस्थ जहाजों में अमेरिका मुख्य था। इन तटस्थ जहाजों को अपने सामान के लिए एक प्रमाण-पत्र लेना पड़ता था कि ये सामान गैर-शत्रु देश के हैं। इन प्रमाण-पत्रों का खूब अवैध व्यापार चला और चोर-बाजारी खूब बढ़ी। मूल्य बेहिसाब बढ़ गया। निर्यात चौपट हो गया। सक्रिय व्यापार पर ही रूस अधिक निर्भर करता था और इसीसे रूस को लाभ होता था, वह गायब हो गया। फ्रांस के पक्ष में व्यावसायिक सन्धि हुई तथा फ्रांस से व्यापार-विकास का प्रयास भी किया गया, किन्तु कुछ भी राहत न मिली। यह सत्य है कि अँगरेजी माल पर प्रतिबन्ध लगने से एक खास उद्योग को लाभ पहुँचा। सूती मिलों का तेजी से विस्तार हुआ, न कि स्थिरता से। कुछ अन्य रूसी स्वार्थों की खूब बन पड़ी। किन्तु, रूसी निर्यात का बाजार—यथा सन और पटुआ तथा अन्य नौ-सामग्री, खनिज लोहा और चरबी—एकदम समाप्त हो गया। इनके नियमित बाजार अब नहीं रहे। भारी होने के कारण इन्हें भूमि-परिवहन से दूर नहीं ले जा सकते थे। ब्रिटेन को सामुद्रिक शक्ति के आगे कोई दूसरा उपाय नहीं सूझता था।

यदि इंगलैण्ड की हालत बहुत खराब थी, तो रूस की दशा भी दयनीय थी। महादेशीय पद्धति से खासकर बड़े जमीन्दारों को बड़ा धक्का लगा और इसी वर्ग का

कुछ राजनीतिक प्रभाव भी था। शुरू से ही वे तिलसित के युद्ध से उत्तेजित हो गये थे। मान-मर्दन होने से वे विनीत हो चुके थे। उन्हीं की भूलों से ऑस्टरलित्ज, इयलाउ तथा फ्रीडलैण्ड में उन्हें मुँह की खानी पड़ी थी। फ्रांस के साथ मैत्री को जनता पसन्द नहीं करती थी। स्वयं अलेक्जेण्डर का पद खतरे से खाली न था। कुछ लोग तो उसे शत्रु से भी बदतर समझते थे। लोग उससे घृणा करते थे। उसे इस बात का ध्यान था कि उसके पिता पाल की हत्या कर दी गई थी और वह गद्दी पर बैठा है, जहाँ से एक सम्राट् को गद्दी से उतार दिया गया है। सन् 1810 ई० की अन्तिम तिथि को उसने घोषणा कर दी कि रूसी बन्दरगाह सभी तटस्थ देश के जहाजों के लिए खुल गये। उन्हें कोई प्रमाण-पत्र न देना होगा। उसने फ्रांस की विलास-सामग्री पर नई चुंगी लगा दी। रूस ने ठीक उसी समय महादेशीय पद्धति का परित्याग किया, जब नेपोलियन अलेक्जेण्डर पर खूब दबाव डाल रहा था कि महादेशीय पद्धति को पूर्णरूप में प्रभावशाली बनाया जाय। इंगलैण्ड के साथ मतभेद समाप्त हो गया।

नेपोलियन के साथ मैत्री विफल होने के और दो कारण थे—तुर्की और पोलैण्ड। इंगलैण्ड के साथ झगड़े का कारण रूस के लिए फिनलैण्ड न हुआ, बल्कि प्रदेश (प्रिंसिपेलिटीज)। फिनलैण्ड को जीतने की आवश्यकता थी (सन् 1808–9 ई०)। प्रदेशों में रूस स्वतन्त्र हाथ फैलाना चाहता था। सन् 1806 ई०के अन्त में तुर्की के साथ युद्ध छिड़ने के पहले ही प्रदेशों पर रूस ने कब्जा कर लिया था। नेपोलियन ने सुलतान को रूस के विरुद्ध उकसाने में सफलता पाई। नेपोलियन नहीं चाहता था कि अलेक्जेण्डर को महती कैथरीन की विस्तार-नीति को फिर से जारी करने का अवसर हाथ लगे। कुंस्तुन्तुनिया में दो राज्य-विप्लव हुए। इससे कूटनीति और भी उलझन में पड़ गई। अलेक्जेण्डर प्रदेशों से हाथ धोने को तैयार न था और न तुर्की से युद्ध ही बन्द करना चाहता था। नेपोलियन ने पूर्व में, भारत में इंगलैण्ड पर संयुक्त आक्रमण की योजना बनाई। इससे तुर्की का कुछ बँटवारा करना पड़ता, किन्तु नेपोलियन ऐसा करने को तैयार न था। जब वह अलेक्जेण्डर से अरफुर्ट (अक्टूबर, 1806 ई०) में फिर मिला, तब बँटवारे के विषय में उसने बातचीत स्थगित कर दी; किन्तु प्रदेशों के बारे में अलेक्जेण्डर की बात मान गया। चार वर्ष के बाद उसने इसका बदला लिया। विशाल सेना के डर से अलेक्जेण्डर को सहसा प्रदेशों से भागना पड़ा और बेसराबिया को ही लेकर (जून, 1812 ई०) सन्तोष करना पड़ा।

सन् 1812 ई० के लिए पूर्वी प्रश्न प्रत्यक्ष कारण न था, किन्तु रूसी-फ्रांसीसी दुर्भावना का एक प्रमुख अंग था। अट्ठारहवीं शती में कुंस्तुन्तुनिया में फ्रांस की स्पर्द्धा से खाई बन गई थी। प्रथम साम्राज्य के काल में यह खाई बढ़ गई। द्वितीय

साम्राज्य में इसी के कारण महायुद्ध हो गया। किन्तु, महान् नेपोलियन के लिए सम्भवत: नेपोलियन तृतीय के लिए भी, शत्रुता का प्रधान कारण था पोल-प्रश्न।

रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया में तृतीय बँटवारा हुआ। इसका फल यह हुआ कि सन् 1795 ई० के बाद पोलैण्ड का नाम राज्य के रूप में नक्शे पर से मिट गया। बारह वर्ष के बाद वारसा की महान् जागीर के नाम से यह बीज-रूप में उत्पन्न हुआ। प्रारम्भ में इसमें वे ही भाग थे, जो बँटवारे में प्रशिया के हिस्से में पड़ा था। तिलसित में नेपोलियन विजयी हुआ। यह महान् जागीर पोल राष्ट्रीयता का मानदण्ड बनने में सफल रही। यह नेपोलियन के साम्राज्य की नोक बन गई। अलेक्जेण्डर हृदय से चाहता था कि पोलों का भविष्य उज्ज्वल हो, किन्तु इसके निर्माण का श्रेय उसी को मिले। यदि फ्रांस पोल-प्रश्न का समझौता करे, तो बुरा होगा; क्योंकि पश्चिमी प्रदेशों को बार-बार विजय करना होगा और पोलैण्ड का द्वार खुला रहेगा, तथा रूस की पश्चिमी सीमा पर फ्रांस की सेना का भय सदा बना रहेगा।

वाग्रम के बाद सन् 1809 ई० में अलेक्जेण्डर और भी व्याकुल हो गया; क्योंकि नेपोलियन ने महाजागीर में आस्ट्रिया का हिस्सा भी शामिल कर दिया, जो तृतीय बँटवारे में आस्ट्रिया को मिला था। अथच, नेपोलियन ने साफ इन्कार कर दिया और कोई वादा न किया कि पोलैण्ड का नाम प्रयोग में न आयगा तथा महाजागीर का पुन: विस्तार न होगा। इस विफलता से जार उत्तेजित हो गया। नेपोलियन ने इसकी बहन अन्ना से विवाह न कर सम्राट् फ्रांसिस की कन्या मेरी लुईस से करना पसन्द किया, इससे अलेक्जेण्डर रुष्ट हो गया। अब इसने जारतोरस्की और उसकी योजना की ओर पुन: ध्यान दिया, जिसमें पोलैण्ड को फिर जिन्दा करके वह उसका राजा बन सके। पोलों से सम्पर्क बढ़ने लगा और सैनिक काररवाई बढ़ने लगी। यह समझकर कि अब नेपोलियन से कलह होनेवाला है, सन् 1811 ई० में वह आगे बढ़ने में हिचकिचाने लगा। यदि अलेक्जेण्डर को 50,000 पोल-सैनिक महाजागीर से मिल जाते, तो ओडर नदी से ही वह युद्ध छेड़ देता। किन्तु, वारसा से कुछ ठोस आश्वासन न मिला। अत:, वह बहुत ही घबड़ा गया। यद्यपि फ्रांसीसी अब उतने लोकप्रिय न थे, तब भी पोलों को विश्वास था कि नेपोलियन से उन्हें, अधिक लाभ पहुँचेगा। जब रूस और फ्रांस में पुन: संघर्ष छिड़ा, तब यह युद्ध नीमेन-नदीतट से आरम्भ हुआ, न कि ओडर नदी से।

24 जून, 1812 ई० की ब्रह्मवेला में विशाल सेना ने नीमेन नदी को पार करना शुरू कर दिया। कुल सेना पाँच लाख से अधिक थी। बारह सप्ताह के बाद

नेपोलियन ने मास्को में प्रवेश किया। दिसम्बर को सन्ध्या के समय नेपोलियन ने नीमेन नदी को पुनः पार किया। उसके पीछे कुछ हजार शेष सेना थी। एक मास बाद रूसी सेना ने नदी पार की। 31 मार्च, 1814 ई०, को अलेक्जेण्डर ने मित्र-राष्ट्रों की सेना का प्रधान बनकर पेरिस में प्रवेश किया। आर्क के जोन के बाद किसी भी विदेशी सेना ने अभी तक पेरिस में प्रवेश न किया था।

सन् 1812 ई० का साल पितृभूमि का युद्ध-वर्ष था। प्राचीन काल में मंगोलों ने रूस पर आक्रमण किया था तथा अर्वाचीन काल में दो बार मृत्यु से हाथापाई करनी पड़ी। किन्तु, सन् 1812 ई० का युद्ध इतना तीव्र और नाटकीय पैमाने पर था और इसका नतीजा इतना बुरा हुआ कि रूसी इतिहास में इसका अद्वितीय स्थान बन गया है। अब, फिर राष्ट्रभक्ति के साथ देशरक्षा का प्रश्न अन्तिम और पूर्ण विजय के लिए उपस्थित हो गया।

सन् 1812 ई० की प्रमुख विलक्षणताओं और विशेष व्यक्तियों के कार्यों के विषय में रूसियों में विभिन्न मत हैं, किन्तु अब यह सामान्यतः सभी लोग स्वीकार करते हैं कि यह जनता का संग्राम था। सभी वर्गों में राष्ट्रीयता की भावना (सन्त पीटर्सबर्ग को छोड़कर) उच्च थी। कुछ पाखण्डी, दुर्बलहृदय या लम्बी-चौड़ी बातें बनानेवाले भले ही दब्बू थे। किसान पहले रूसी थे, दास बाद में। सबने मिलकर लोहा लिया।

सरकारी तथा दासस्वामियों के क्षेत्र में लोगों को भय था कि फ्रांसीसा उन्हें मुक्ति दे दें। किन्तु, रूसी किसान उन्हें ऐसा नहीं समझते थे। कोई भी सेना यदि दूसरे देश में चिरकाल तक रहे, तो दुश्मनी हो ही जाती है। रूसी किसानों की शत्रुता यदि उखड़ जाती है, तो वे निर्दय हो जाते हैं। जहाँ भी फ्रांसीसी घुसे, रूसी किसानों की छापामार सेना ने उन्हें तबाह कर दिया। पश्चिमी प्रदेशों में किसानों ने अपने स्वामियों के विरुद्ध विद्रोह किया था। वहाँ फ्रांसीसियों ने इन विद्रोहियों को कुचलने में मदद की। नेपोलियन चाहता था कि उच्चवर्ग उसके पक्ष में हो जाय और अलेक्जेण्डर को लाचारी सन्धि करनी पड़े। वह चाहता था कि वर्तमान शासन न उलटने पाये; क्योंकि ऐसा करने से सम्भवतः तहलका मच जायगा।

रूसी, सीमा से हटकर अपनी पुरानी राजधानी तथा उससे और भी पीछे चले गये। यह किसी योजना के अनुसार न था, किन्तु इसके कारण थे—सलाहकारों मे मतभेद, रणक्षेत्र में रूसी सेना की अल्पसंख्या तथा नेपोलियन को रोकने में असमर्थता। न तो स्मोलेंस्क में और न मास्को में ही उसे कोई रोक सका। बोरोदिनो का युद्ध इयलाउ से भी अधिक खूँखार था। वहाँ रक्त की नदी वह

चली थी। सेना के विदेशी या अर्द्ध-विदेशी जेनरलों के विरुद्ध जनता में घोर चिल्लाहट थी। अलेक्जेण्डर को लाचारी बार्कले-डि-टॉली के स्थान पर कुतुजोव को सेनापति बनाना पड़ा, जिसे वह नहीं चाहता था। सच्ची बात यह है कि रूस में जितने विदेशी थे, खासकर जर्मन, वे सभी लड़ाके थे। जर्मनों में स्टेन प्रमुख था। जर्मन चाहते थे कि नेपोलियन को केवल रूस से ही नहीं, बल्कि सभी विजित देशों से निकाल बाहर किया जाय। कुतुजोव और बोरोदिन के बावजूद मास्को का त्याग करना पड़ा। आश्वासन की केवल आशा यही थी कि वह विशाल सेना के लिए था, किन्तु यह मास्को ऐसा स्पंज था, जो विशाल सेना को ही सोख ले।

जब फ्रांसीसी उनके घरों में घुसे, तब यह आधा उजाड़ हो गया था। यह टॉल्सटाय के मधुमक्खी के छत्ते के समान था, जिसमें से मक्खीरानी गायब थी। मास्को धधक रहा था। प्रारम्भ में अगलगी की शुरुआत रोस्तोपचीन के आदेश से हुआ। यह भड़कीला महाशासक (गवर्नर जनरल) सदा गिरगिट के समान रंग बदला करता था। वह चाहता था कि जनता में देशभक्ति की उमंग पैदा कर दे और जब वे स्वतन्त्ररूपेण कार्यशील हो जायँ, तब डर के मारे पीछे हट जाय। किन्तु, संहारक अग्नि का प्रसार आकस्मिक था। नगर में लापरवाही और व्यक्तिगत ईर्ष्या थी। सारा नगर प्राय: काष्ठनिर्मित था। भीड़भाड़ कब्जे से बाहर थी और शराबी फ्रांसीसी सिपाही नगर को लूट रहे थे। पाँच दिनों में तीन-चौथाई नगर खाक हो गया। फ्रांसीसियों के लिए अग्नि का भौतिक प्रभाव उतना प्रचण्ड न था, जितना इसका नैतिक प्रभाव। उनको विश्वास हो गया कि जान-बूझकर रूस ने यह चाल चली है। सिथियनों के निर्णय से वे हक्का-बक्का हो गये। उनकी अभिलाषा मिट्टी में मिल गई। वे समझते थे कि मास्को में उन्हें दूसरी विजयश्री मिलेगी। उस समय रूसी समझते थे कि मास्को-दहन आधुनिक 'अटिला' का काम है, जिसके साथ सन्धि की चर्चा ही नहीं हो सकती।

मास्को से नेपोलियन ने सन्धि की शर्त्तें पेश की। रूसी जनता, कुतुजोव तथा अलेक्जेण्डर ने इसे ठुकरा दिया। अत:, फ्रांसीसियों को वापस लौटाना पड़ा। सन्त पीटर्सबर्ग में भले ही निराशा थी। कुतुजोव (सन् 1745–1853 ई०) ने आक्रामकों का घोर प्रतिरोध किया। वह राष्ट्रीय भावना की प्रतिमूर्त्ति था। वह बड़ा चालाक, धूर्त्त और दुर्बोध था। सेना इस काने पर टकटकी लगाये रहती थी। मास्को की वह रक्षा न कर सका। इसका उसे बहुत सदमा था। वह चाहता था कि किसी प्रकार फ्रांसीसियों को रूस से खदेड़े, किन्तु सेना की रक्षा अवश्य हो। बोरोदिनो के युद्ध-क्षेत्र में महान् क्षति हुई थी। 1,10,000 सैनिकों में 43,000 खेत रहे। अत:, जब फ्रांसीसी वापस जा रहे थे, तब उसने जान-बूझकर समान चाल चली।

इस चाल की खूब आलोचना भी हुई। दो बार, क्रासनोई तथा बेरेजिना की घाटी पर रूसी सांघातिक आक्रमण करने में असफल रहे। कुतुजोव ताड़ गया कि ऐसा करने से संश्लिष्ट सेना में विश्लेषण हो जायगा। सेना वापस जा ही रही थी। इसमें अशान्ति का वेग बढ़ सकता था। यह सेना उस मार्ग से जा रही थी, जो काफी बरबाद हो चुका था। छेड़ने से यह सेना और लूट-खसोट करने लगती। कजाक, छापामार तथा शीतसेना ने उसकी एकता को नष्ट कर दिया था। बिना घमासान युद्ध के ही रूस मुक्त हो जाता और लोग भी कम ही मरते। तब भी भागती सेना का पीछा करने में रूस को बहुत नुकसान उठाना पड़ा। हाल के लिए कुतुजोव को अपने दो-तिहाई आदमियों से हाथ धोना पड़ा। इसमें रुग्ण और लापता लोग भी सम्मिलित हैं।

किन्तु, फ्रांसीसियों के लिए यह वापसी दुर्गति थी। उस वर्ष महाशती का प्रारम्भ छह सप्ताह पहले ही शुरू हुआ। गत चालीस वर्षों से ऐसा न हुआ था। अतः, नेपोलियन के विशेषज्ञों की सारी गणना बेकार हुई। घोड़े सबसे पहले मर गये। बन्दूक और परिवहन जहाँ-के-तहाँ रह गये। अब शीत का प्रचण्ड कोप शुरू हुआ। रसद का अभाव था। रूसियों के तंग करने से उनका मानसिक पतन हो गया। विशाल सेना दिन-प्रतिदिन क्षीण होती गई। अन्ततः, वे केवल कुचले हुए भगेड़ू प्रतीत होने लगे। समस्त यूरोप के लिए जादू गायब हो गया। रूस ने उस विशालतम सेना का नाश कर दिया, जिसे नेपोलियन युद्ध-क्षेत्र में खड़ा कर सका था।

कुतुजोव तथा अन्य उच्चपदस्थ अपनी सीमा पर ही रहना चाहते थे। रूस बच गया था। वह एकदम थककर परेशान हो चुका था। यूरोप की रक्षा करना उसका काम न था। अलेक्जेण्डर ने समझा कि यूरोप की रक्षा करना रूस का कर्त्तव्य है या कम-से-कम उसका ही कर्त्तव्य है। सम्भव है कि रूसी जनता भी कुछ समय के लिए उसका साथ देती। किन्तु, बाद में इसकी कटु आलोचना होने लगी; क्योंकि वह बहुत दिनों तक पश्चिमी यूरोप में रह गया और वहीं के मामलों में जी-जान से लग गया। पोलों के प्रति उसकी नीति से लोगों में खासकर अश्रद्धा हो गई। लोग कहने लगे कि रूस के स्वार्थों को किसी धूमिल अज्ञात वस्तु के लिए बलि किया जा रहा है। वह था राष्ट्रयोग या अलेक्जेण्डर का मानव-प्रेम या मानव-कल्पना, जैसी एक रूसी आलोचक ने शिकायत की।

कम-से-कम इस बात की कोई शिकायत नहीं कर सकता था कि रूस अब एक महान् राष्ट्र नहीं है। महान् मैत्री में चार राष्ट्र प्रधान थे— रूस, आस्ट्रिया ग्रेट-ब्रिटेन तथा प्रशिया। इसी महान् मैत्री के कारण नेपोलियन का पतन हुआ। वह

फ्रांस में दो बार बारबन-राजवंश की गद्दी पर बैठा तथा यूरोप का पुनर्निर्माण हुआ। सारे यूरोप में रूस का जितना प्रभाव सन् 1813–15 ई० में था, उतना कभी पहले न था। रूस की शक्ति को मेटरनिक तथा कैसलेरच ने खूब समझा। वियाना-कांग्रेस में जब पोल-सैक्सन का संघर्ष चला, तब वे अलेक्जेण्डर और फ्रेडरिक विलियम से संघर्ष करने पर उतारू हो गये।

जैसे ही नेपोलियन एलबा से बचकर निकला, चारों राष्ट्र पुनः मिलकर युद्ध की तैयारी करने लगे। वाटरलू ने सदा के लिए नेपोलियन के भाग्य का निर्णय कर दिया और फ्रांस के भाग्य का पन्द्रह वर्ष के लिए। चतुःसदस्यीय मैत्री को (नवम्बर, 1815 ई०) बीस वर्ष के लिए पुनः नतन कर दिया गया, जिसमें क्रान्तिकारी या नेपोलियन का फ्रांस कभी सर ऊँचा करके उत्पात न मचाये। इस मैत्री में चारों राष्ट्रों ने यह भी तय किया कि वे कभी-कभी मिला करें, जिसमें यूरोप की शान्ति और विश्वास बनी रहे। यूरोपीय संघ का यही मूल तथा कूटनीतिक आधार था। वियाना के अन्तिम कार्यों को भी इसमें पूर्ण रूप से सम्मिलित कर लिया गया। सन् 1818 ई० में फ्रांस इस यूरोपीय संघ का सदस्य बना। इसके सम्मेलन सन् 1818 तथा 1822 ई० के मध्य एक्स-ला-चापेले, त्रोपाऊ, लाइबाच तथा वेरोना में हुए।

अलेक्जेण्डर शुरू से ही यूरोपीय संघ को विशेष दृष्टि से देखता था। वह इसे अपना शिशु धार्मिक संश्रय (सितम्बर, 1815 ई०) समझता था। प्रायः इसे उदारतावाद संवैधानिकतावाद और राष्ट्रीयता के विरुद्ध प्रतिक्रिया का अधार्मिक संश्रय माना जाता है। किन्तु, प्रारम्भ में इसका तात्पर्य यह न था कि यह प्राचीन शासन की ओर ले जायगा या ज्ञानविरोधी तन्त्र हो जायगा। सन् 1815 ई० में पेरिस में अलेक्जेण्डर को यह विचार नहीं सूझा था। बहुत वर्ष पहले ही जब तृतीय मैत्री की बात चल रही थी, तब उसने पिट (सन् 1804 ई०) को राय दी थी कि युद्ध का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए यूरोप में नूतन अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था। जो देश नेपोलियन के चंगुल से मुक्त हुए हैं, उन्हें ठोस आधार पर स्वतन्त्रता का आश्वासन मिलना चाहिए। विश्व-विधि की एक नूतन संहिता बने, जिसमें यह विधान रहे कि कोई भी राष्ट्र युद्ध न छेड़े, जबतक कोई तृतीय राष्ट्र द्वारा समझौते के सभी प्रयास समाप्त न हो जायँ। यूरोप में शान्ति की सुरक्षा के लिए एक संघ बने, जिसमें खासकर रूस और ग्रेटब्रिटेन गारण्टी दें।

अभ्यन्तर वर्षों में ये सिद्धान्त अलेक्जेण्डर के धार्मिक विचारों में रूपान्तरित हो गये। रहस्यवाद, लूयर की पुण्यशीलता तथा बाइबिल-समाज की धर्मशिक्षा का प्रभाव उसके विचारों पर बहुत पड़ा। उसे पूर्ण विश्वास हो गया, भले ही यह

भ्रम हो, कि समाज का अन्ततः आधार धर्म ही है और यूरोप एक है, यह रईसों का भ्रातृत्व है, तथा सार्वजनिक और विश्वबन्धुत्व का सन्तोषपूर्ण कार्य केवल उन्हीं नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर हो सकता है, जिन्हें वैयक्तिक जीवन में लागू किया जाता है।

अतः, धार्मिक संश्रय में राजाओं को धर्म के उपदेश को ही अपना मुख्य मार्गदर्शक मानना पड़ता था। ये उपदेश थे—न्याय, मानवता का दान तथा शान्ति। ये केवल व्यक्तिगत मार्गदर्शन के लिए ही न थे, बल्कि ये ही उनके समस्त जीवन के ध्येय थे तथा इसी से सभी मानव-संस्थाएँ दृढ होतीं तथा उनकी अपूर्णता दूर होती। तदनुसार, अलेक्जेण्डर या उसके अभिकर्त्ता कुछ काल के लिए पोलैण्ड, फ्रांस तथा अन्यत्र बहुत ही उदार चित्रित किये गये।

किन्तु धार्मिक संश्रय में यह भी विधान था कि सभी राजा एक दूसरे को स्वदेशवासी समझेंगे। सदैव सर्वत्र एक दूसरे को मदद देंगे तथा धर्म, शान्ति और न्याय की रक्षा के लिए सहायता करेंगे। सन् 1815 ई० में एक्स-ला-चापेले-सम्मेलन में अलेक्जेण्डर ने प्रयास किया था कि धार्मिक संश्रय एक प्रकार से सामूहिक सुरक्षा-पद्धति बन जाय। अब सब कुछ इसी पर निर्भर था कि किस प्रकार इनकी परिभाषा हो; यथा शान्ति, न्याय तथा अपूर्णता का सुधार। सन् 1820 ई० में अनेक क्रान्तियाँ हुईं; यथा स्पेन, नेपुल्स, पीडमॉण्ट। स्वयं अलेक्जेण्डर की रक्षा-सेना ने विद्रोह कर दिया। अतः, वह प्रतिक्रियावादी दल में पूर्ण रूप से चला गया। रूस में इस प्रतिक्रियावादी दल का प्रतिनिधित्व करते थे—अरकचेयेव[1] तथा फोटियस[2] तथा विदेश में मेटरनिक। अब शान्ति और न्याय का केवल यही अर्थ होता था कि राज्य, गद्दी तथा पूर्वस्थिति बनी रहे और सभी मिलकर इसकी जिम्मेदारी लें। निरंकुशता वे नहीं सह सकते थे तथा स्वच्छन्दता आने नहीं देना

1. अरकचेयेव (सन् 1769–1834 ई०) अलेक्जेण्डर के अन्तिम वर्षों में बड़ा ही विश्वस्त वजीर था। यह पक्का रूसी अनपढ़ रईस था और अलेक्जेण्डर का अनन्य भक्त। इसने भरसक क्रूर प्रतिक्रिया-पद्धति को आगे बढ़ाया। सैनिक उपनिवेशों को बसाने का श्रेय इसी को है। अलेक्जेण्डर का इन सैनिक उपनिवेशों पर बड़ा भरोसा था। पाल और अलेक्जेण्डर दोनों के राज्यों में अरकचेयेव उच्च सैनिक पद पर था। इसने सेना-संगठन, खासकर तोपखाने के निर्माण में बहुत काम किया।

2. आर्किमनड्राइट फोटियस (सन् 1792–1838 ई०) का अरकचेयेव से घनिष्ठ सम्बन्ध था। पादरी-जगत् में वह गैर-विदेशी, अतिरूढिवादी जनता का महाधूर्त्त प्रतिनिधि था। अलेक्जेण्डर के अन्तिम काल में यही असहनशील और प्रतिक्रियावादी दल विजयी हुआ। वह अपने धार्मिक भाषणों से सबका खून खौला देता था, भले ही वह प्रचण्ड पाखण्डी, तप में विश्वास रखता था।

चाहते थे। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में अलेक्जेण्डर समझता था कि अराजकता के विरुद्ध वही सभ्यता का रक्षक है; क्योंकि उसने नेपोलियन की निरंकुशता से यूरोप की सभ्यता की रक्षा की थी।

सन् 1820 ई० के बाद धार्मिक संश्रय एक प्रकार से क्रूर हस्तक्षेप का सिद्धान्त समझा जाने लगा, भले ही क्रान्ति की शंका वास्तविक हो या काल्पनिक। कैसलरीघ ने इस सिद्धान्त और इसके प्रयोग की जोरदार भर्त्सना की। कैनिंग ने यूरोपीय संघ से ग्रेटब्रिटेन को एकदम विलग कर लिया। अब शीघ्र ही रूस अन्य महादेशीय राष्ट्रों से एकदम अलग हो गया और चिन्ता में पड़ गया कि मध्यस्थता नीति का प्रयोग कैसे हो, खासकर ग्रीस में, जहां सन् 1821 ई० में विप्लव मच गया।

साधारणत:, यही शंका की जाती थी कि रूस ही इस विप्लव का पृष्ठपोषण कर रहा है। इसका विशेष कारण यह था कि कपोदिस्तरियस, जो ग्रीस-देशभक्त था, अलेक्जेण्डर का वैदेशिक मन्त्री था। अलेक्जेण्डर ने इस बात को अच्छी तरह नहीं समझा कि ईसाई-सम्प्रभु सम्राट् के विरुद्ध ईसाई-प्रजा की क्रान्ति उस क्रान्ति से एकदम विभिन्न है, जो ईसाई-प्रजा मुसलमान-सम्प्रभु के विरुद्ध करती थी। उसने कपोदिस्तरियस को पदमुक्त कर दिया और स्वयं स्वतन्त्र कारखाई करने से इनकार कर दिया, जो उसे रूस में जनप्रिय बना देता। धीरे-धीरे उसे विश्वास हो गया कि अन्य राष्ट्रों से चिरकाल तक बातचीत करना बेकार है। उसने पहले इंगलैण्ड से नाता तोड़ा, फिर आस्ट्रिया से। मृत्यु (सन् 1825 ई०) से कुछ ही पहले उसने निर्णय किया कि यदि आवश्यकता पड़ी, तो तुर्की के विरुद्ध अकेला ही वह क्रूर काररवाई करेगा। ग्रीस का प्रश्न ही केवल तुर्कों से सम्बद्ध न था। अन्य भी अनेक गुत्थियां थीं।

निकोलस प्रथम ने शीघ्र ही अपने भ्राता के इरादे को कार्य-परिणत किया। वह कैनिंग के साथ ग्रीस के बारे में बातें करने को तैयार था, किन्तु शर्त्त यह थी कि जरूरत हुई, तो बलप्रयोग भी किया जायगा। नवारिनो (सन् 1827 ई०) में बातें हुई। इसमें ब्रिटेन तथा फ्रांस ने भी भाग लिया। तुर्कों के साथ युद्ध भी हुआ (सन् 1828–29 ई०)। तुर्की अकेला था। अद्रियानोपुल की सन्धि के द्वारा निकोलस ने अपनी सभी शर्त्तें तुर्कों के मत्थे मढ़ दीं। केवल ग्रीस का प्रश्न अछूता रहा। ग्रीस की समस्या के विषय में वह अब भी इंगलैण्ड और फ्रांस से सहयोग करने को तैयार था। किन्तु, मेटरनिक के साथ उसका सम्बन्ध सदा मन्द रहा। समीपवर्ती पूर्व की समस्या पर रूस और आस्ट्रिया की विभिन्नता से धार्मिक संश्रय नष्ट हो गया। रूस और आस्ट्रिया सन् ई० मे एक दूसरे से इतना

विलग हो गये, जितना पहले कभी न थे। इसी समय क्रान्ति ने यूरोप को फिर थरथरा दिया।

सन् 1830 ई० की क्रान्ति का यह फल हुआ कि रूस, आस्ट्रिया तथा प्रशिया पुनः मिल गये, जिसे हम धार्मिक संश्रय का नूतन संस्करण कह सकते हैं। निकोलस प्रारम्भ से ही आगबबूला था और क्रान्ति को प्रारम्भ में ही कुचल देना चाहता था। बेल्जियम की क्रान्ति से उसे शीघ्र ही पक्का विश्वास हो गया और फ्रांस से उसे पूर्ण घृणा हो गई; क्योंकि वही सभी लड़ाई और खतरे की जड़ था। वह सदा लूई फिलिप और उसके शासन को गाली देता था तथा उसकी निन्दा करता था। किन्तु, देश उसका साथ देने को तैयार न था; क्योंकि वह प्रारम्भ से ही हालैण्ड के राजा विलियम की सहायता के लिए लड़ने का जाल रच रहा था। निकोलस की बहन अन्ना का विवाह विलियम के पुत्र और उत्तराधिकारी से हुआ था। नवम्बर, 1830 ई० में पोलैण्ड में विप्लव हुआ। अब रूस के लिए पश्चिमी यूरोप में किसी प्रकार की सफल मध्यस्थता टेढ़ी खीर थी। इंगलैण्ड और फ्रांस ने बेल्जियम के प्रश्न को सुलझाया और निकोलस चिरकाल तक कूटनीति की गुत्थी में ही उलझा रहा।

पोलैण्ड ने निकोलस और रूस को फ्रांस और इंगलैण्ड का पक्का शत्रु बना दिया। फ्रांस और इंगलैण्ड में पोलैण्ड की स्वतन्त्रता के लिए कोलाहल मचा था। किन्तु, इधर पोलैण्ड ने तीन पूर्वी राष्ट्रों को मिला दिया। आस्ट्रिया और खासकर प्रशिया ने पोलों की हार के लिए सभी तरह से रूस की सहायता की। तीनों राष्ट्रों ने मिलकर प्रतिज्ञा की (सन् 1833 ई०) कि वे पोलों के मामले में मिल-जुलकर भविष्य में कार्य करेंगे। लोगों ने निश्चय किया (सन् 1835 ई०) कि क्रैकाऊ को कुचल देना चाहिए और सन् 1846 ई० में क्रैकाऊ आस्ट्रिया में मिला दिया गया।

इधर जर्मनी में गड़बड़ी हुई तथा इटली में विद्रोह हो गया। इटली में फ्रांस मध्यस्थता कर रहा था। यह आस्ट्रिया के लिए चुनौती थी। अब मेटरनिक निकोलस का मित्र बन गया। मुनचेनग्रात्ज़ तथा चार अन्य सम्मेलनों में (सन् 1833–35 ई०) तीनों पूर्वी राष्ट्रों ने प्रतिज्ञा की कि न्यायिकता और सन् 1815 ई० के सन्धि-समझौते की रक्षा के लिए वे एक दूसरे की सहायता करेंगे। इसके सिवा निकोलस तथा मेटरनिक ने सामान्य रूप में यह भी समझौता किया कि उसमन-साम्राज्य के साथ सामूहिक नीति का अवलम्बन करके कार्य करेंगे। सन् 1832–33 ई० में जब मेहमेत अली ने विप्लव खड़ा किया था तब रूस ने मेटरनिक को कोई खबर न दी और वह एकदम अन्धकार में था। अब मेटरनिक ने अपने को शाबाशी दी कि

अब वे रूसी पंजे में आ गये। निकोलस भी खुश था। वह सोचता था कि अब आस्ट्रियावासी उसके साथ युद्ध करने तुर्की आयेंगे। आस्ट्रिया और प्रशिया पश्चिम दिशा की रक्षा करेंगे। उनके लिए वह सुरक्षित सेना का काम करेगा और दक्षिण दिशा की रक्षा करता रहेगा।

मुनचेनग्रात्ज़ (सन् 1833 ई०) के बाद पन्द्रह वर्ष तक निकोलस धार्मिक संश्रय के नूतन संस्करण का नेता बना रहा। उदारता, राष्ट्रीयता तथा समाजवाद के विरुद्ध यह धार्मिक संश्रय था। कालान्तर में रूसी आलोचकों ने उसकी सारी वैदेशिक नीति की भर्त्सना की; क्योंकि आस्ट्रिया या प्रशिया से रूस का वास्तविक सम्बन्ध नहीं था। अच्छा यही होता कि तुर्की के मामलों को रूस स्वयं निबटाता। इसके विपरीत निकोलस तथा उसका वैदेशिक कार्यालय, सैद्धान्तिक स्वार्थ को ही नीति का मूल आधार समझते थे। यदि रूस ने अलगाववाद की नीति को अपनाया तो, जो प्राचीर अब (सन् 1838 ई०) आस्ट्रिया और प्रशिया ने क्रान्तिकारी सिद्धान्तों के प्रतिकूल तैयार किया है, वह ढह जायगा। ये सिद्धान्त सीन नदी पार करके राइन नदी पहुँचेंगे और वहाँ से डैन्यूब तथा ओडर नदी के पार उमड़ पड़ेंगे। सन् 1812 ई० की तरह रूस को फ्रांस से पुनः हाथापाई करनी पड़ेगी। रूस का सच्चा और स्थायी स्वार्थ इसी में है कि हमारे और फ्रांस के मध्य यह नैतिक रोक बनी रहे, जैसी मित्रराष्ट्रों तथा सम्राटों ने बना रखी है। यह रोक उन ठोस सिद्धान्तों पर आधृत है, जो हमारे सिद्धान्तों से मिलते-जुलते हैं।

वियेना-कांगरेस से क्रिमिया-युद्ध के समय तक रूस की वैदेशिक नीति का एक ही मूलस्रोत था कि रूढिवादी सम्राट् की शक्ति दृढ हो और यही भावना सदा काम करती रही। फिर भी, यह भावना कभी प्रभुत्वशाली न हुई। अलेक्जेण्डर द्वितीय इसे खूब चाहता था। सन् 1870 ई० के बाद कुछ वर्षों तक उसने इस भावना को पुनर्जीवित भी किया। अब यह भार बहुत अधिक हो गया था। किन्तु, यह भावना समाप्त न हुई थी। नूतन राष्ट्रीयता की लहर सर्वत्र उमड़ रही थी और बालकन-प्रायद्वीप में आस्ट्रिया-हंगरी के साथ स्पर्धा भी थी।

सन् 1848 ई० में मुनचेनग्रात्ज़ का प्राचीर ढह गया। आस्ट्रिया, जर्मनी और इटली ने फ्रांस की क्रान्ति का अनुसरण किया। निकोलस ने प्रतिज्ञा की कि चाहे जैसे हो, वह इस प्राचीर का पुनर्निर्माण करेगा। जर्मन-भूमि को पूर्वसीमा तक पहुँचायगा। आस्ट्रिया राज्य-मण्डल की देखभाल करेगा तथा यथासम्भव सन् 1815 ई० के यूरोपीय समझौते को कायम रखा जायगा। चाहे जो हो, पोलैण्ड को कब्जे में रखेगा। रूस ने पश्चिमी यूरोप से सब तरह से नाता तोड़ लिया, जिसमें

वहाँ का संक्रामक रोग रूस में घुसने न पाये। किन्तु, देश की आन्तरिक परिस्थिति खराब थी, जिससे शीघ्र ही सक्रिय मध्यस्थता करना कठिन था। रूस के लोग साधारणत: नहीं चाहते थे कि आस्ट्रिया या प्रशिया को आग की भट्ठी से निकाला जाय। निकोलस के अन्तिम वर्षों में ऐसा प्रचण्ड पुलिस-राज्य और जोर-जुल्म चला कि रूस ने उससे मुख मोड़ लिया। क्रिमिया-युद्धकाल में ही उसकी मृत्यु हो गई (सन् 1855 ई०)। लोगों ने इस गम का खुलेआम स्वागत किया।

अब तीन शत्रुओं से युद्ध करना था। ये शत्रु थे संविधानवाद, राष्ट्रवाद तथा समाजवाद। निकोलस भले ही फ्रांसीसी गणतन्त्र को घृणा की दृष्टि से देखता था, किन्तु यह उतना घृणास्पद न था, जितना लूई फिलिप का बारबन-राजवंश। निकोलस लुई नेपोलियन को पहले बहुत चाहता था, पर नेसेलरोद नहीं चाहता था। इसे श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। किन्तु, बाद में नहीं; क्योंकि यही समाज-संरक्षक फ्रांस का सम्राट् भी बन गया (सन् 1852 ई०) और इसी ने लेवन्त में कैथोलिकों के अधिकार-रक्षण के लिए पुनः फ्रांस पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। खैर, फ्रांस तो दूर था, किन्तु क्रान्ति मध्य यूरोप में समीप थी।

जार का ध्यान सर्वप्रथम पोलैण्ड में राष्ट्रवाद की ओर गया। सेना और पुलिस भेजकर रूसी पोलैण्ड को कब्जे में रखा गया। प्रशियाई पोलैण्ड में विद्रोह को कुचल दिया गया। पोल-प्रश्न पर पुनः सन्त पीटर्सबर्ग और बर्लिन में खूब तनातनी हो गई। इसके बाद हंगरी में राष्ट्रवाद की ओर निकोलस ने ध्यान दिया। यह हैब्स-बर्ग के शासन को चुनौती देता था तथा कोस्सुथ के साथ वहाँ पर एक सहस्र से अधिक पोल-शरणार्थी थे। "हम पोलैण्ड की सीमा पर एक स्वतन्त्र पोल-हंगरी का निर्माण नहीं होने देंगे" (नेस्सेलरोद)। युवा-सम्राट् फ्रांसिस जोसेफ ने सहायता के लिए प्रार्थना की। रूसी सेना ने कारपेथियन पर्वत पार किया और हैब्सबर्ग-वंश की रक्षा की (सन् 1849 ई०)।

हंगरी में हस्तक्षेप करने के कारण पश्चिमी यूरोपीय देश रूस को और भी बुरी दृष्टि से देखने लगे। कुस्तुन्तुनिया में इसी पर झंझट पैदा हो गया कि हंगरी से जो पाँच सहस्र शरणार्थी आये हैं, उन्हें कैसे वापस किया जाय। पामर्शटन ने इस झगड़े में सफलतापूर्वक पोर्टे की रक्षा के लिए लूई नेपोलियन का साथ दिया। इस हस्तक्षेप से मग्यारों में रूसी-विरोधी भावना का विकास हुआ। शत्रुता के अन्य भी बहुत-से कारण थे। अतः, यह भावना और भी दृढ होती गई, जिसका आगे चलकर बहुत प्रभाव पड़ा। अथन्, इस हस्तक्षेप के कारण आस्ट्रिया से मैत्रीभाव न हो सका। दोनों देशों की सेना में मनमुटाव था। रूसी सैनिक मर्शान के कमजोर

पहलू को नग्नरूप में उपस्थित किया गया। हयनौ के असंयम से निकोलस के हृदय और मान पर बड़ा धक्का लगा। आस्ट्रिया की नमकहलाली से उसका विश्वास एकदम उठ गया और उससे वह घृणा करने लगा।

जर्मनी में राष्ट्रवाद से लोहा लेना तीसरा काम था। वहाँ पर श्लेस्विग-होलस्तीन का प्रश्न बहुत उलझा हुआ था। बाल्टीक-सागर में डेनमार्क का स्थान प्रमुख था, अतः इसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता था। निकोलस इसपर दृढ़ था कि वह डेनमार्क का विनाश नहीं देख सकता। राज्य-मण्डल या प्रशिया ने जुलाई, 1849 ई० में युद्धविराम कर दिया तथा एक वर्ष के बाद सन्धि हो गई। अब कुछ काल के लिए प्रशिया या जर्मनी की आकांक्षा उत्तरसागर तथा बाल्टीक से क्षीण हो गई।

फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ क्रान्ति की चापलूसी में लगा था। इसे निकोलस बहुत ही घृणित समझता था। स्वयं उसके अपने देश में तथा जर्मन-प्रदेशों में लोग संविधान की माँग कर रहे थे। इनकी तुलना में प्रशिया का डेनमार्क के विरुद्ध डट जाना कुछ ही कम निन्दनीय था। उसने फ्रेडरिक विलियम को सहायता करने का वचन दिया, जिस प्रकार हंगरी में फ्रांसिस जोसेफ की सहायता कर रहा था। किन्तु, शर्त्त यह थी कि डेनमार्क के साथ वह युद्ध रोक दे, फ्रांकफर्ट से विलग हो जाय और दृढ़ता से काम करे, जिससे राज्य में शासन और रूढ़िवाद के आधार पर कोई व्यवस्था पुनः स्थापित हो जाय। इसका अभिप्राय मुनचेनग्रात्ज़ को वापस पहुँचना था और राज्यमण्डल में आस्ट्रिया का प्रभुत्व बनाये रखना था। जर्मनी में और आस्ट्रिया में कुछ ऐसे व्यक्ति थे और कुछ ऐसी घटनाएँ हुई, जिनके कारण निकोलस की नीति सफल प्रतीत होने लगी। रूस की कूटनीति तथा सैनिक दबाव का भी कुछ प्रभाव था। सन् 1850 ई० में आलमुत्ज़ के मैदान में प्रशिया ने आस्ट्रिया के सामने माथा टेक दिया।

किन्तु, बात असल यह है कि मुनचेनग्रात्ज़ को वापस लौटने का अवसर ही न आया। प्रशिया की आस्ट्रिया को चुनौती ऐसे ही नहीं रही। आलमुत्ज़ के चार वर्ष बाद क्रिमिया-युद्ध हुआ। वहाँ निकोलस के धार्मिक संश्रय-संस्करण में क्या-क्या दोष थे, वे साफ झलकने लगे। यह सत्य है कि तीनों राष्ट्रों की सामाजिक बनावट और शासन-पद्धति में कुछ ऐसी प्रमुख शक्ति थी, जिससे ये सूत्र में बँध सकते थे। किन्तु, इन शक्तियों ने उन शक्तियों को दृढ़ता से विलग कर दिया, जब क्रान्ति से सभी भयभीत हो गये थे, भले ही यह क्रान्ति वास्तविक हो या केवल भयमात्र। आस्ट्रिया-सरकार सन् 1848 ई० में झोंका सह चुकी थी, जिससे पूर्वप्रदेशों में

स्वार्थ के कारण रूस के विरुद्ध आस्ट्रिया अवश्य ही विपरीत जाता। निकोलस को क्रिमिया-युद्ध में दण्ड भुगतना पड़ा।

क्रिमिया-युद्ध के प्रमुख कारण थे, तुर्की की राष्ट्रीय भावना तथा रूस की चाल के प्रति शंका। रूस चाहता था कि तुर्क इस बात की गारण्टी दे कि वे अपना वादा पूरा करेंगे। तुर्कों को विश्वास हो गया था कि अन्ततः ग्रेटब्रिटेन तथा फ्रांस भी उनकी सहायता के लिए सेना देंगे। ब्रिटिश-राजदूत स्ट्राटफोर्ड कैनिंग बड़ा ही चलता-पुरजा था। उसीने तुर्कों को प्रोत्साहित किया था। धार्मिक स्थानों के विषय में पहले केवल दो ईसाई-राज्यों—रूस और फ्रांस में संघर्ष था। फिलस्तीन मुसलमानों के अधिकार में था। बहुत पीछा करने पर उसने दोनों की अलग-अलग असंगत प्रतिज्ञा कर दी। स्ट्राटफोर्ड कैनिंग के अनुसार यह उलझन दूर हो सकती था और यह सुलझ भी जाती, किन्तु रूस की माँग बढ़ती गई, अतः यह न सुलझ सकी। तुर्की-सरकार को यह प्रतीत हो गया और इसमें पर्याप्त कारण भी था कि रूस चाहता है कि सुलतान के सभी सनातनी ईसाइयों का प्रतिनिधित्व रूस ही करे और उनकी ओर से रूस को हस्तक्षेप करने का अधिकार है।

रूस की माँगों को तुर्की ने स्वीकार नहीं किया। अतः, बदला चुकाने के लिए रूस ने जुलाई, 1853 ई० में प्रदेशों को हथिया लिया। अब रूस के विरुद्ध और भी उत्तेजना फैली। अब यह निश्चित हो गया कि तुर्क बिना लड़े न मानेंगे, राष्ट्रों के समझौते के चाहे जो फल हों। जब शरद्-ऋतु का अन्त आया, तब युद्ध आरम्भ हो गया। कृष्णसागर में तुर्की बेड़ा नष्ट कर दिया गया। यह सिनोपे-हत्याकाण्डके नाम से विख्यात है। ब्रिटेन के महामन्त्री अबेरडीन ने अब समझौते का सब उपाय त्याग दिया। मार्च, 1854 ई० में ग्रेटब्रिटेन और फ्रांस भी युद्ध-क्षेत्र में कूद पड़े।

आधी शती से ब्रिटेन और रूस में स्वार्थ के लिए संघर्ष था। दोनों के दृष्टिकोण में विरोध था। सर्वप्रथम पिट ने सन् 1791 ई०में कहा था कि रूस का दक्षिण की ओर बढ़ना अँगरेजों के लिए खतरनाक है। नेपोलियन के साथ युद्धों से इस बात का अनुभव हो गया था कि तुर्की का सबल होना आवश्यक है। रूस तुर्की और फारस को हड़पते हुए बढ़ रहा था। इससे ब्रिटिश-सरकार और सैनिक क्षेत्र में यह विश्वास हो गया कि मध्यपूर्व तथा भारतवर्ष के स्थलमार्ग के लिए रूस खतरनाक है। अतः, यह जरूरी है कि तुर्की को मजबूत बनाया जाय।

सन् 1830 ई० में पामर्शटन वैदेशिक सचिव हुआ। वह इससे पूर्ण सहमत था। उसने इस बात को छिपाकर नहीं रखा। सन् 1830 ई० से आंग्ल-रूसी सम्बन्ध

बहुत ही बुरा न रहा। मामूली बातों से तिल का ताड़ हो जाता था। अब फारस आँखों में गड़ने लगा। रूस ने अफगानिस्तान को उकसाना शुरू किया। मध्य एशिया में रूस को धक्का लगा। मेहमेत अली के द्वितीय संकट में रूस ने नीति बदल दी। इससे मामला कुछ ठण्डा पड़ गया। भारत के मार्ग का खतरा तथा मध्यपूर्व के खतरे अब न रहे।

सन् 1830 ई० से तुर्की और फारस में रूस का व्यापार बढ़ने लगा। इससे घोर चिन्ता हो गई। सन् 1838 ई० में पामर्शटन ने तुर्की के साथ सफल व्यापारिक सन्धि कर ली। इससे सन्तुलन ठीक हो गया। क्रिमिया-युद्ध के समय उत्तमन-साम्राज्य रूस की अपेक्षा इंगलैण्ड के लिए बहुत अच्छा बाजार था। अतः, इंगलैण्ड को तुर्की की मदद करना आवश्यक था। यदि तुर्की को रूसी भालू की मरजी पर छोड़ दिया जाता, तो उस भालू की छींक से ही अँगरेजों का व्यापार स्वाहा हो जाता। अनेक लोग समझते थे कि तुर्की सुधार के मार्ग पर अग्रसर होने का यत्न कर रहा है। रूस में चुंगी की बहुत बड़ी दीवार थी। इसमें प्रवेश का रास्ता बन्द था। इसे लोग पशुवत् निरंकुश शासन का मूल समझते थे।

सन् 1848 ई० के बाद जनमत रूस की ओर बुरी दृष्टि से देखने लगा। रूस सुधार-विरोधी गिना जाने लगा, जहाँ दास-प्रथाधारी अल्पज्ञों का राज्य है। रूस कोड़े और कजाकों से शासन करता है। निर्दोषों को देश से निकालकर साइबेरिया में बसाता है। पोल और सिरकासियन को यातना देता है। वह सारे यूरोप में स्वतन्त्रता का शत्रु है। सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक मामलों में सदा अड़ंगा लगाता है। इंगलैण्ड इसके ठीक विपरीत दूसरी छोर पर है। क्रिमिया-युद्ध में इंगलैण्ड तुर्की के लिए नहीं लड़ रहा था। वह जार के विरुद्ध युद्ध करता था। जार को यूरोप का जल्लाद और फांसीसी सशस्त्र सैनिक के रूप में चित्रित किया गया था। यदि इंगलैण्ड न पड़ता, तो रूस तुर्की को निगल जाता या कम-से-कम इस तरह बँटवारा होता कि रूस को अधिक लाभ पहुँचता। यदि उत्तमन-राज्य के बदले में जार-राज्य हो जाय, तो कोई सुधार न हो सकेगा। यदि जलडमरूमध्य और कुस्तुन्तुनिया रूस के अधिकार में हो जायँ, तब तो निर्दय प्रजापीडक से और भी आतंक बढ़ जायगा।

इस प्रकार का दृढ़, अज्ञानी तथा अदम्य लड़ाका केवल मिथ्या नहीं हो सकता। इसमें बहुत सचाई थी। भले ही, इस दृढ़ता को अतिशयोक्ति कहें। मोटे तौर पर इसे जारशाही रूस का कलुषित रूप कहा जा सकता है। स्वयं निकोलस की करतूतों से इस बात का विश्वास होता है कि रूस तुर्की को समाप्त करना चाहता था।

स्लाव और जलडमरूमध्य के सम्बन्ध में निकोलस की नीति का वर्णन गत अध्यायों में किया जा चुका है। वह दो मुख से बोलता था। अपने राज्य के पूर्वार्द्ध में उसने तुर्की को सजीव, किन्तु निर्बल बनाये रखने की नीति का अनुसरण किया। वह चाहता था कि कुस्तुन्तुनिया में उसका प्रभुत्व बना रहे। इसमें उसे सफलता मिली, जबतक सन् 1839–40 ई० का संकट उपस्थित न हुआ। इसके बाद धीरे-धीरे अंगरेजों का प्रभाव बढ़ने लगा। इसका श्रेय स्टाटफोर्ड कैनिंग को है। कैनिंग तथा पामर्शटन दोनों निकोलस के लिए महान् हौआ थे।

फलतः, जार उन्हीं लोगों की ओर अधिक झुकता गया, जिससे रूसी-वर्ग सदा यही समझता था कि उस्तमन-साम्राज्य के दिन अब इने-गिने हैं। रूस को ही यह फसल काटनी चाहिए, अन्यथा दूसरे आकार न टपक पड़े। निकोलस नहीं चाहता था कि सड़ता-गलता तुर्की पुनः जीवित हो जाय, जैसा इंगलैण्ड चाहता था। रूस तुर्की को एक हिस्सेदार वारिस की दृष्टि से देखता था, न कि चिकित्सक की दृष्टि से। जब कभी वह इस पेचीदे प्रश्न को आस्ट्रिया, इंगलैण्ड या फ्रांस के सामने उघारता, तब उसका सिद्धान्त रहता — रोगी जल्दी-जल्दी मर रहा है। हम पहले ही निर्णय कर लें कि हमें क्या करना चाहिए और खासकर हमें क्या नहीं करना होगा। सन् 1844 ई० में वह इंगलैण्ड गया। उसे विश्वास हो गया कि वैदेशिक मन्त्री अबेरदीन ने उसकी बात मान ली है। दिसम्बर, सन् 1852 ई० में अबेरदीन प्रधान मन्त्री हो गया। इससे निकोलस को परम सन्तोष हुआ। उसने शीघ्र ही अपने प्रस्तावों को नये रूप में उपस्थित किया। ये प्रस्ताव ठुकरा दिये गये। इंगलैण्ड का ध्येय था तुर्की को सत्यानाश से बचाना। रूस का ध्येय था कि किसी प्रकार शीघ्र तुर्की का पतन हो। अतः, पामर्शटन ने निष्कर्ष निकाला कि तुर्की के पतन के लिए निकोलस घोर प्रयत्न कर रहा है।

निकोलस के बारे में ऐसा कहना ठीक न होगा और नेसेलरोद के विषय में यह बिलकुल सत्य नहीं होगा। किन्तु, यह सत्य है कि अनेक रूसी राजनयज्ञ और एजेण्ट, जो बालकन-प्रायद्वीप में थे, ऐसा नहीं चाहते थे। इनकी करतूतों से खासकर वियाना डर गया। उस गत सौ वर्षों से सदा भय बना रहता आया था कि कहीं प्रदेश और सर्विया रूस के प्रभाव में न आ जाय। फ्रांसिस जोसेफ ने निकोलस से लम्बा-चौड़ा पत्राचार किया और यह पत्राचार तब प्रकट हुआ, (जनवरी, 1854 ई०) जब पता चला कि रूस चाहता है कि बालकन में ईसाइयों को उकसाना कम कर दिया जाय, यूरोपीय तुर्की की राजनीतिक परिस्थिति में कोई परिवर्त्तन न हो तथा प्रदेशों को खाली कर दिया जाय।

रूस और आस्ट्रिया में मतभेद अब प्रत्यक्ष संघर्ष बन गया। यह घाव कभी न भरा। वैदेशिक मन्त्री बुअल ने सतत यत्न किया कि रूस के विरुद्ध आस्ट्रिया के स्वार्थों की वृद्धि सब प्रकार से हो। कोई खास युद्ध न हुआ। आस्ट्रिया के लड़ाकू-दल की संख्या को रूसी बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बताते थे। किन्तु, यह भूलना नहीं चाहिए कि रूस को क्रिमिया-युद्ध में चार मोर्चों पर लड़ना था—क्रिमिया, दक्षिणी लिटोरल काकेशश, बाल्टीक तथा आस्ट्रिया : इस आखिरी मोर्चे पर विशाल रूसी सेना पड़ाव डाले थी और यह सेना युद्ध की अन्तिम घड़ी तक बनी रही। यह भी न भूलें कि आस्ट्रिया की ही धमकी या अन्तिमेत्थं से रूस ने पेरिस की सन्धि (सन् 1856 ई०) में भाग लिया। इसके बाद आधी शती तक रूस और आस्ट्रिया में तीन बार युद्ध होते-होते बचा। चौथी बार सन् 1914 ई० में दोनों खाई में कूद ही पड़े। प्रत्येक बार बालकन-प्रायद्वीप का ही भविष्य संकट में रहता था।

क्रिमिया-युद्ध के कारण विकोलस की देश और विदेशनिति दोनों असफल हो गईं। आगामी बीस वर्षों तक आन्तरिक मामले ही प्रधान रहे। अब रूस यूरोप के मामलों में प्रमुख भाग न ले सका। इसकी प्रधानता नहीं मिटी थी, किन्तु दो महान् घटनाएँ—इटली और जर्मनी की एकता से रूस पृष्ठभाग में ही रहा।

इन दोनों ने यूरोप के मानचित्र को पुनः बनाया, किन्तु कोई यूरोपीय सम्मेलन न हुआ। इससे तुलना में रूस को बहुत आश्चर्य हुआ; क्योंकि रूस में अभी तक एकता न आई थी। रूस को दो बार (सन् 1856 ई० और सन् 1878 ई० में) पूर्वी प्रश्न को राष्ट्रों के सम्मुख रखना पड़ा, भले ही उन्होंने युद्ध में भाग लिया हो या नहीं। सन् 1878 ई० में केवल रूस ने ही युद्ध में भाग लिया था। सन् 1876–78 ई० की संकटावस्था में इग्नेत्येव तथा सर्वस्लावों ने भरसक चेष्टा की कि रूसी हल ही तुर्की पर लादा जाय और तुर्की को रूस में मिलाकर पश्चिमी यूरोप का सामना किया जाय। किन्तु, वे असफल रहे। अलक्जेण्डर द्वितीय तथा उसके वैदेशिक मन्त्री गोर्चाकोव को हिम्मत न पड़ी कि यूरोप का अनादर करें; क्योंकि यह निश्चित था कि ऐसा करने से ग्रेटब्रिटेन तथा आस्ट्रिया-हंगरी से अवश्य युद्ध छिड़ जाता। अतः, पूर्वी प्रश्नों का निबटारा फिर राष्ट्रों ने ही मिलकर किया, न कि केवल रूस ने ही। किन्तु, कांगरेस का अधिवेशन बर्लिन में हुआ, न कि पेरिस में, जैसा बीस वर्ष पहले हुआ था। प्रशिया अब जर्मनी हो गया। यूरोप में नेपोलियन तृतीय के स्थान पर अब बिस्मार्क प्रधान व्यक्ति बन गया।

आगामी पीढ़ी में इस परिवर्तन से पूर्वी प्रश्न का कायापलट होनेवाला था। एक द्वितीय मौलिक परिवर्तन भी हो रहा था। राष्ट्रीयता का विकास तथा अन्य यूरोपीय

प्रभाव, बालकन-प्रायद्वीप के ईसाइयों पर इतना गहरा पड़ा कि बर्लिन-कांगरेस में रूमानिया, सर्बिया तथा मोण्टेनग्रो को स्वतन्त्र राष्ट्र मान लिया गया। बलगेरिया का अंगभंग हो गया और बँटवारा भी हो गया, किन्तु इसे भी विशिष्ट स्थान मिला, जिसे बलगरों ने शीघ्र ही ठुकरा दिया। सन् 1887 ई० से बलगेरिया को सुलतान से वस्तुत: स्वतन्त्रता मिल गई, यद्यपि औपचारिक रूप से सन् 1908 ई० के पहले नहीं मिली।

बालकन-राज्यों के स्वतन्त्र होने का श्रेय अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा रूस को ही अधिक है। किन्तु, रूस को इसका फल वैसा न मिल सका, जैसा वह चाहता था। इसके अनेक कारण थे। क्रिमिया-युद्ध और सन् 1878 ई० में डिसरेली तथा अन्द्रासी द्वारा रूस के विरुद्ध आचरण से यह निश्चय हो गया कि बालकन-राज्य रूसी परिरक्षी नहीं बनेगा। रूस जारशाही रूस था, अतः बालकन-जनों में रूस अप्रिय था। पश्चिमी देशों का दबदबा रूमानिया और ग्रीस में जबरदस्त था। तथा सर्बिया में भी पर्याप्त था। बलगेरिया में सन् 1879 ई० और खासकर सन् 1886 ई० के बाद पश्चिमी देशों का दबदबा बना रहा। ये नये राष्ट्र रूस या आस्ट्रिया-हंगरी या किसी का उपांग नहीं बनना चाहते थे। वे चाहते थे कि बालकन-राज्य में बालकन के लोगों का राज्य हो। किन्तु, अपनी दुर्बलता के कारण उन्हें कभी इस इस राष्ट्र से और कभी उस राष्ट्र से मैत्री करनी पड़ी।

किन्तु, महान् राष्ट्रों के षड्यन्त्र के कारण ही बालकन-जन यूरोप के तोपखाना न बने। 'बालकन में बालकन लोगों के राज्य' की मांग न तो कोई संकेतसूचक शब्द था, न कोई नारा, जिसका कोई स्पष्ट अर्थ होता हो। इस संकेतसूचक शब्द से शान्ति और समृद्धि टपकने का आशा न थी तथा अन्य राष्ट्र इन राष्ट्रों में सतत हस्तक्षेप भी नहीं करते थे। उनमें परस्पर घोर वैमनस्य था। प्रत्येक का दूसरे के विरुद्ध अपना अमुक प्रदेश, अधिकार तथा प्रति-अधिकार था। मेसेदोनिया तथा अलबेनिया में राष्ट्रीयता के प्रारम्भ से ईर्ष्या और भी बढ़ती गई। बालकन-जन का क्या अर्थ था ? क्या कुस्तुन्तुनिया भी इसमें शामिल था ? क्या बोसनियां-तथा हरजेगोविना इनमें शामिल थे ? डालमतिया, क्रोसिया, स्लोवेनिया, दक्षिणी हंगरी ? ट्रान्सिलवेनिया, बेसरबिया ? इजियन द्वीपपुंज, स्मीरना तथा अनातोलिया ? इन सभी देशों में अधिकांश बालकन लोग बसते थे ? यदि हाँ, तो इसका यह अर्थ होता है कि केवल उत्तमन-साम्राज्य का ही पूर्ण विघटन न होता। यही पर्याप्त था; किन्तु आस्ट्रिया-हंगरी के द्वैतराज्य को भी नूतन क्रान्तिकारी ढंग से ढाहने का प्रयत्न होता, जो सन् 1867 ई० से चला आ रहा था।

सन् 1878 ई० के बाद तीस वर्षों के भीतर ये दोनों समस्याएँ परिपक्व थीं। आस्ट्रिया-हंगरी के लिए सर्बिया आवश्यक था; क्योंकि युगोस्लाव की भावना और

अधिकार बढ़ते जाते थे। द्वैवराज्य-तन्त्र के अन्दर किसी भी अन्य देश में इस प्रकार की राष्ट्रीय समस्या न थी। इससे सर्बिया का आस्ट्रिया-हंगरी में रहना खतरनाक हो गया था। सन् 1878 ई० में आस्ट्रिया-हंगरी ने रूस से पहले ही समझौता कर लिया और तुर्की से बोसनिया-हरजेगोविना का प्रशासन अपने हाथ में कर लिया। यह स्लाव देश था। यहाँ पर मुसलमान, सनातनी तथा कैथोलिक ईसाई थे, 'जो सर्बिया के महत्त्वाकांक्षा की मिश्रित रूप थे। सन् 1908 ई० में उसने सहसा मिला लिया और इस प्रकार जान-बूझकर सर्व-सर्बिया की आशा को धूल में मिला दिया गया।

सर्बिया की राष्ट्रभावना भड़क उठी और उसे दबाना असम्भव हो गया, अब रूस और सर्बिया का सम्पर्क फिर बहुत समीप हो गया। रूसी जनता अपने छोटे स्लाव भाई की सहायता की माँग करने लगी। किन्तु, रूस की परिस्थिति दुर्बल थी, अतः सर्बिया के लिए वह कुछ भी मुआवजा दिलाने में असमर्थ था। वैदेशिक मन्त्री इजवोलस्की ने परिस्थिति को ठीक से नहीं समझा था। उसने गुप्त रूप में जल-डमरूमध्य के बदले में बोसनिया-हरजेगोविना का सौदा कर लिया था। रूस ने अपनी कूटनीति के शस्त्र का प्रयोग किया; क्योंकि वह अभी तक जापान युद्ध और सन् 1905 ई० की क्रान्ति के प्रभावों से उठकर खड़ा न हुआ था। सेना समझती थी कि रूस अभी युद्ध करने की स्थिति में नहीं है और डूमा के गुप्त अधिवेशन में यह स्पष्ट भी कर दिया गया था।

जर्मनी यह जानता था, अतः उसने संकट को और भी बढ़ाया। जर्मनी ने माँग की कि रूस सर्बिया का त्याग कर दे (मार्च, 1909 ई०)। जर्मनी का पत्र अन्तिमेत्थं नहीं कहा जा सकता, किन्तु इसके प्रारूपकार किडेरलेनवाचटेर ने इसे इस प्रकार उपस्थित किया कि उसका प्रभाव ऐसा ही हो और इजवोलस्की अपने देश में वापस आ जाय। रूस में जर्मनी के इस अपमान की घोर प्रतिक्रिया हुई। यदि जर्मनी अन्तिमेत्थं न भी देता, तब भी रूस को धक्का खाना ही पड़ता; क्योंकि आस्ट्रिया-हंगरी ने इच्छानुसार सर्बिया से निबटने का दृढ निश्चय किया था और रूस दुर्बल होने के कारण उसे रोक नहीं सकता था। अब रूस और आस्ट्रिया-हंगरी के मध्य बालकन-क्षेत्र में संहारात्मक द्वन्द्वयुद्ध छिड़ गया।

रूस ने अपनी देखरेख में बालकन-लीग की स्थापना और प्रोत्साहन प्रारम्भ कर दिया। प्रारम्भ में तो यह तुर्की के विरुद्ध कार्य करता, किन्तु अन्तिम उद्देश्य था आस्ट्रिया-हंगरी के प्रतिकूल। प्रथम बालकन-युद्ध में तुर्की के विरुद्ध इसे शीघ्र ही आशातीत सफलता मिली (सन् 1912–13 ई०)। किन्तु, जार अपने मित्रों

(सर्बिया, मौन्तेनिग्रो, बलगेरिया तथा ग्रीस) को पंचायती करके नियन्त्रित नहीं रख सकता था। वे लूट का माल बाँटने में लड़ पड़े। खासकर मेसेदोनिया के रणक्षेत्र 'कोमितदजी' में। रूस द्वितीय बालकन-युद्ध (सन् 1013 ई०) को नहीं रोक सका। इस युद्ध में सर्बिया, ग्रीस और रूमानिया ने मिलकर बलगेरिया पर धावा बोल दिया। तुर्कों ने मौका पाकर अद्रियानोपल हथिया लिया। बलगरों को भारी क्षति पहुँची। सर्बिया और ग्रीस ने मेसेदोनिया को आपस में बाँट लिया। रूमानिया ने दक्षिणी दोब्रुदजा ले लिया। पश्चिमी बालकन में राष्ट्रों ने एक स्वतन्त्र नूतन अलबानिया-राज्य खड़ा किया सर्बिया ने अद्रियाटिक सागर तक पहुँचने की व्यर्थ चेष्टा की। रूस इसके पक्ष में था किन्तु, आस्ट्रिया-हंगरी ने इसका घोर विरोध किया।

बालकन-युद्ध के चार प्रमुख फल थे :

(क) तुर्की दिन-पर-दिन रूस के प्रति शंकालु होता गया और धीरे-धीरे जर्मनी की ओर मैत्री के लिए बढ़ता गया और अगस्त, ई० में जर्मनी से मैत्री कर ली।

(ख) बलगेरिया से रूस का प्रभाव जाता रहा। अतः, उसने आस्ट्रिया-हंगरी से मिलकर सर्बिया और ग्रीस से बदला लेना चाहा। सन् 1915 ई० में उसने इसे ले लिया; क्योंकि वह सर्बिया के पृष्ठभाग में पड़ गया था।

(ग) रूमानिया अब बलगेरिया से शत्रुता करने लगा। इसे अपने स्वकुल्यों के हक का अधिक-से-अधिक खयाल होता गया। यह ट्रान्सिलवेनिया को मग्यार की दासता से मुक्त करना चाहता था। रूमानिया के सम्बन्ध में जर्मनी और आस्ट्रिया-हंगरी के मध्य नीति में मतभेद था, अतः रूस को चतुरता से अपनी कूटनीतिक चाल चलने का अच्छा मौका मिल गया। रूमानिया के अमुक प्रदेश हंगरी में वेसरबिया की अपेक्षा बहुत अधिक थे, अतः रूमानिया ने हंगरी में अपने स्वकुल्यों की ओर अधिक ध्यान देना शुरू किया। सन् 1914 ई० के अगस्त में यूरोपीय युद्ध छिड़ गया, तब होहेनजोलेर्न का राजा चार्ल्स ने तटस्थता की नीति घोषित कर दी। वह कुछ भी करने में असमर्थ था। दो वर्ष बाद रूमानिया ने युद्ध में प्रवेश किया तथा रूस और उसके मित्रों का साथ दिया।

(घ) आस्ट्रिया-हंगरी से आत्मरक्षा के लिए सर्बिया तथा मौन्तेनिग्रो अब और भी रूस के समीप आ गये। रूस की दृष्टि में, "सर्बिया को राजनीतिक और आर्थिक मुक्ति को गारण्टी देना ही हमारा मुख्य उद्देश्य है" (सज़ोनोव)।

अगस्त, 1914 ई० में युद्ध छिड़ जाने का मौलिक कारण था कि आस्ट्रिया तथा मग्यार अपनी राष्ट्रीयता के प्रश्न को न सुलझा सके या उसे अस्वीकार कर दिया। सबसे बड़ी समस्या थी युगोस्लाव-प्रश्न। द्वैतराज्य-तन्त्र का आन्तरिक ढाँचा एकदम नाजुक था। आगे भी यह शासक बना रहेगा, यह विवादग्रस्त था, जब फ्रांसिस जोसेफ (जन्मः सन् 1830 ई०; राज्यकाल : सन् 1848–1916 ई०) मर जायगा। वालप्लात्ज़ तथा विलहेल्मस्त्रास्से सन् 1912–14 ई० में मिल-जुलकर काम नहीं करते थे। किन्तु, ये दोनों सामान्य रूप से इस बात पर सहमत थे कि वे स्वतः एक दूसरे की सहायता करेंगे। सम्राट् विलियम द्वितीय ने वियाना को सर्विया के प्रति अपना रुख स्पष्ट कर दिया था। "स्लाव शासन करने के लिए नहीं पैदा हुए हैं, बल्कि सेना के लिए। यह बात उन्हें सिखानी होगा....मैं तुम्हारे पीठ पर हूँ और खींचने को तैयार हूँ, यदि तुम्हें इसकी आवश्यकता पड़े" (सन् 1913 ई०)।

ये लाक्षणिक कठोर शब्द थे। तब भी जर्मनी का यह फर्ज था कि वह अन्ततः उसकी सैनिक सहायता करता; क्योंकि वह जर्मनी का पक्का मित्र था और सभी प्रकार से उसकी सुरक्षा करना इसके लिए आवश्यक था। वियाना और बुडापेस्ट, सर्विया को द्वैत-राजतन्त्र की रक्षा के लिए खतरनाक समझते थे। युगोस्लाव-आन्दोलन का पीडमाण्ट सर्विया माना जाता था, वियाना और बुडापेस्ट में भले ही मतभेद हो कि किस प्रकार सर्विया को सीधा किया जाय। सन् 1914 ई० की जुलाई में सर्विया की गणना समाप्त होती जा रही थी। एक आस्ट्रियाई सर्ब ने वोसनिया की राजधानी सरजेवो में युवराज फ्रांसिस फर्डिनैण्ड आर्क ड्यूक की हत्या कर दी। यह हत्या सर्विया में सीमा के पास गुप्त दल के मेल से हुई थी।

सन् 1909 ई० के कटु स्मरण से प्रभावित होकर रूसी जनभावना उद्विग्न थी। रूस खड़ा होकर तमाशा नहीं देखेगा कि आस्ट्रिया-हंगरी सर्विया को कुचल दें। अकेला आस्ट्रिया-हंगरी रूस और सर्विया के सामने ठहर भी नहीं सकता था। अतः, जर्मनी को शीघ्र ही कार्यशील होना पड़ेगा। तब फ्रांस भी पीछे न रहेगा और अपने मित्र का साथ इस जीवन-संघर्ष में न छोड़ेगा। ग्रेटब्रिटेन दुविधा में था कि वह शीघ्र ही युद्ध में भाग ले या नहीं। फ्रांस के साथ उसका समहित अनिश्चित था और आयरलैण्ड में गृहयुद्ध छिड़ने ही वाला था, किन्तु, जर्मनी ने बेलजियम की तटस्थता को भंग कर दिया, अतः इंगलैण्ड को शीघ्र ही युद्ध की घोषणा करनी पड़ी और यह रूस के पक्ष में था।

इसका क्या कारण है कि जर्मनी रूस के विपक्ष में हो गया तथा आस्ट्रिया-हंगरी से मैत्री कर ली एवं फ्रांस की रूस से मैत्री हो गई और रूस की सहायता उसका पुराना शत्रु इंगलैण्ड करने लगा।

गत चौआलीस वर्षों से रूस और जर्मनी एक दूसरे से दूर हटते गये। किन्तु, यह चाल अस्थिर थी, न कि सतत। सन् 1870 ई० में फ्रांस की और सन् 1866 ई० में आस्ट्रिया की पराजय सहसा और पूर्णरूपेण हुई। रूस ने इस पराजय को पसन्द किया; क्योंकि क्रिमिया-युद्ध में आस्ट्रिया ने धोखा दिया था, अतः रूस चाहता था कि आस्ट्रिया का मान चूर हो जाय और वह निर्बल हो जाय। सन् 1870 ई० में रूस ने सूचित कर दिया कि हमारी तटस्थता इस शर्त पर है कि आस्ट्रिया-हंगरी फ्रांस का साथ न दे।

रूस प्रशिया का साथ इस आधार पर देता था कि दोनों में चिरकाल से मैत्री की परम्परा थी। केवल एक वार सप्तवर्षीय युद्ध में दोनों में सम्बन्ध-विच्छेद हो गया था। तब से स्यात् ही कभी मैत्री में दरार पड़ी। सन् 1854 ई० और सन् 1870 ई० के मध्य यथासम्भव प्रशिया रूस का एक स्थायी मित्र था। पोल-प्रश्न पर दोनों समान मित्र थे। यह सन् 1863 ई० में पुनः स्पष्ट हो गया था। अलेक्जेण्डर प्रथम के काल से ही दोनों देशों में वैवाहिक सम्बन्ध होने से मैत्री दृढ हो गई थी। वैयक्तिक परिवार-सम्बन्ध की महत्ता के कारण आलोचना भी खूब होती थी कि सन्त पीटर्सबर्ग की वैदेशिक नीति वंश पर निर्भर है। यह रूस की नीति नहीं है। राजनयिक सेवा में गैर-रूसी बहुत भारी संख्या में थे, अतः इस आलोचना में कुछ और भी बल आ जाता था। रूस का पारिवारिक सम्बन्ध जर्मनी के अनेक वंशों से था, हैप्सबर्ग से भले न हो।

सन् 1870 ई० के बाद इस लांछन में कुछ तथ्य नहीं रह गया था; क्योंकि प्रशिया जर्मनी के समान भयावह हो गया और अब बिस्मार्क का मंच पर उदय हुआ। अलेक्जेण्डर द्वितीय के राज्य के समाप्त होते-होते रूढिवादी प्रशिया के राजवंश से सम्बन्ध क्षीण हो गया। निकोलस द्वितीय के समय ये सम्पर्क बहुत बड़े समझे जाते थे, किन्तु ये सम्बन्ध कभी प्रभुत्वशाली न हुए।

तीन पूर्वी राष्ट्रों की रूढिवादी मैत्री को सन् 1973 ई० में पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया। किन्तु, पाँच वर्ष के बाद ही यह मैत्री भंग हो गई। बालकन के लिए रूस और आस्ट्रिया-हंगरी झगड़ पड़े। यह और भी ध्यान देने योग्य है कि रूस नूतन जर्मनी से झगड़ पड़ा। बर्लिन, कांगरेस का ईमानदार दलाल था। रूस को आशा थी कि आवश्यकता पड़ने पर आस्ट्रिया-हंगरी के विरुद्ध जर्मनी अवश्य ही सहायता करेगा, किन्तु बिस्मार्क ने किसी का भी पक्ष न किया। उसने भरसक चेष्टा की कि दोनों बालकन-प्रदेश का मित्रता के साथ बंटवारा कर लें।

रूस की राष्ट्रीयता को ठस पहुंची। सनस्तेफेनो की सन्धि रूस की विजय थी। इसके बदले बर्लिन की सन्धि उसपर लाद दी गई। इस ठेस से सारा रूस जर्मनी और बिस्मार्क के एकदम विरुद्ध हो गया। लोग कहने लगे कि रूस की पराजय का कारण बिस्मार्क ही है। दो कुलपतियों का युद्ध (स्वयं तथा गोर्चाकोव) तथा रूस की अस्त-व्यस्त परिस्थिति से बिस्मार्क को विश्वास हो गया कि रूसी सरकारके साथ पुन: मैत्री होना दुर्लभ है तथा यह मैत्री टिक नहीं सकती; अत: मुझे अपनी रक्षा करनी चाहिए तथा आस्ट्रिया-हंगरी को भी बचाना चाहिए, जिससे समय पर वह काम दे। रूस किधर करवट बदलेगा, यह कहना कठिन था। अक्टूबर, 1879 ई० में आस्ट्रिया-जर्मनी-मैत्री पर हस्ताक्षर हो गया। यदि रूस इन दोनों में किसी पर आक्रमण करे या रूस की सहायता से फ्रांस जर्मनी पर आक्रमण करे, तो मित्र एक दूसरे की रक्षा करेंगे। यह मैत्री त्रिराष्ट्र-संश्रय (जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी तथा इटली : सन् 1882 ई० में सन्धि हुई) की अपेक्षा सन् 1914 ई० तक अक्षुण्ण बनी रही। दो मध्य राष्ट्रों के बीच एकता की जड़ यही मैत्री थी। त्रिराष्ट्र-संश्रय की ठीक-ठीक शर्तों का सन् 1919 ई० तक किसी को पता न चल सका। किन्तु, आस्ट्रिया-जर्मनी-मैत्री के बारे में सरकारी तौर पर रूस, ग्रेटब्रिटेन और इटली को सन् 1887 ई० में सूचित कर दिया गया तथा अगले वर्ष यह विश्व में प्रकाशित हो गया।

बिस्मार्क नहीं चाहता था कि बर्लिन-कांगरेस के बाद रूस पृथक् हो जाय। उसे भय था कि रूस कहीं फ्रांस के पंजे में न चला जाय। रूस का प्रभुत्वशाली वर्ग चाहता था कि जर्मनी से पुन: सम्बन्ध स्थापित हो जाय। आन्तरिक संकट ने इतना जोर पकड़ा कि अलेक्जेण्डर द्वितीय की हत्या हो गई। अत:, सर्वस्लाव राष्ट्रीयता की शक्ति मन्द पड़ गई। अत:, सन् 1881 ई० में तीन सम्राटों का संघ पुन: स्थापित हुआ। पुन: ऐसा प्रतीत होने लगा कि बिस्मार्क की वांछित भावना पूरी न हो जाय और रूस तथा हंगरी आपस में समझौता कर लें। पूर्वी बालकन और जलडमरूमध्य रूस को मिले तथा पश्चिमी बालकन आस्ट्रिया-हंगरी को। किन्तु, उनके परस्पर विद्वेष इतने गहरे और उलझे हुए थे कि किसी प्रकार भी साफ समझौता कर लेना टेढ़ी खीर था। पांच वर्ष के अन्दर ही बलगेरिया-संकट ने संघ को छिन्न-भिन्न कर दिया।

सन् 1885 ई० में बलगेरिया-राज्य ने पूर्वी रूमेलिया-प्रान्त के अपने स्वकुलों को मिलाना शुरू किया। इसमें उसने रूस से समझौता नहीं किया। सन् 1878 ई० में बर्लिन की सन्धि के अनुसार रूमेलिया सुलतान के अधीन था, किन्तु इसे विशेष स्वाधीन शासन का अधिकार प्राप्त था। यह पग उठाते ही युद्ध छिड़ गया; क्योंकि

रूस चाहता था कि बलगेरिया में उसका प्रभुत्व बना रहे। अलेक्जेण्डर तृतीय (सन् 1881–94) सर्वस्लाव-नीति के पक्ष में हो गया, जिससे बलगेरिया में प्रति क्रान्ति की भावना फैले। अलेक्जेण्डर इसे शान्ति-व्यवस्था के नाम से पुकारता था। बलगरों ने हठ किया तथा ग्रेटब्रिटेन, आस्ट्रिया-हंगरी और इटली ने सहायता की, जिससे विश्वसंकट उत्पन्न हो गया। ठीक इसी समय फ्रांस-जर्मनी-सम्बन्ध भी (सन् 1886-87) बोलनगेर-संकट के कारण और उलझ गया। रूस की महाभूल से बलगेरिया और तुर्की की रक्षा के लिए अंगरेज-आस्ट्रिया-इटली-दल की विजय हुई। अलेक्जेण्डर तृतीय अपने शेष राज्य-पर्यन्त बलगेरिया के नूतन राजकुमार से सदा ऐंठा रहा। यह राजकुमार सन् 1908 ई० में राजा हुआ। यह कोबुर्ग का फर्डिनैण्ड, आस्ट्रिया का उम्मीदवार था। इसे लोमड़ी की उपाधि से पुकारना उचित होगा।

बलगेरिया-संकट के अन्य प्रमुख फल निम्नांकित हैं :

१. बिस्मार्क अपने दो मित्रों को बालकन के लिए पुनः लड़ने-भिड़ने से न रोक सका। भले ही एक ऐसा अवसर आया था (सन् 1897–1906 ई०), जब दोनों सरकार ने मिलकर कार्य किया, किन्तु यह एक नाट्य-अभिनय था। इससे उन दोनों की शत्रुता का मूल कारण दूर न हो सका।

२. आस्ट्रिया-हंगरी के वैदेशिक मन्त्री ने ठीक ही समझा था कि जब संकट चरम सीमा पर था, तब बलगेरिया तथा जलडमरूमध्य ही रूस के लिए शत्रुता के कारण न थे, बल्कि जर्मनी का प्रभुत्व-स्थान और आस्ट्रिया-जर्मन-मैत्री भी कारण थी। युद्ध छिड़ने ही वाला था। सन् 1876 ई० से रूस की भावना सतत बढ़ती जा रही थी कि बालकन-राज्य में पुरानी शत्रुता नया रूप धारण कर रही है। जर्मन स्लावों के विरुद्ध संघर्ष करते थे। इसमें उसे नये मित्रों की आवश्यकता थी।

३. अतः, रूस फ्रांस की तरफ मुड़ गया। कत्कोव उस समय प्रेस में अपना बहुत धाक रखता था। जार से इसकी वैयक्तिक मैत्री थी। यह तीन सम्राट्-संघ के विरुद्ध उग्र भाषण दे रहा था। रूस को स्वतन्त्र कार्य करने का अधिकार होना चाहिए। बिस्मार्क के पास हमारी यात्रा उसी प्रकार हो, जैसा स्वर्णदल के पास प्राचीन काल में होता था। फ्रांस के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हो, भले ही खुली मैत्री न हो। इस संकटकाल के मध्य में ही (अगस्त, 1887 ई०) कत्कोव चल बसा। किन्तु, फ्रांस के साथ सम्बन्ध विच्छिन्न न हुआ। बिस्मार्क ने रूस को कर्ज देने के विरुद्ध आर्थिक नीति अपनाई। इसका बुरा फल हुआ और रूसी-फ्रांसीसी मैत्री घनिष्ठ हो ही गई। कत्कोव जर्मनों के विरुद्ध आगबबूला था और अलेक्जेण्डर तृतीय ने उससे

नाता तोड़ लिया। अपने लेख में वह कहता है : 'कत्कोव अपने को भूल जाता है और तानाशाह का अभिनय करता है। वह भूल जाता है कि वैदेशिक नीति मुझपर निर्भर करती है।' सन् 1882–1895 ई० में गियर्स वैदेशिक मन्त्री था। यह सदा संयमशाली प्रभाव डालता था। अब पुनः उसने अपना स्थान प्राप्त कर लिया और जर्मनी के साथ (जून, 1387 ई०) पुनः आश्वासन-सन्धि हो गई।

४. विस्मार्क ने रूस की इस प्रस्तावना का स्वागत किया। यद्यपि तीन सम्राटों का संघ मर चुका था, तथापि वह नहीं चाहता था कि रूस पृथक् रहे और स्यात् फ्रांस से मिल जाय। पुनः आश्वासन की सन्धि गियर्स तथा नरम दलवालों की सफलता थी, किन्तु इसे विजय नहीं कहा जा सकता। सब कुछ जार पर निर्भर था और इसे सब प्रकार से गुप्त रखना आवश्यक था, अन्यथा फल बहुत बुरा होता। यदि यह रहस्य मालूम हो जाता, तो रूस में इससे घोर तहलका मचता। इस सन्धि ने जर्मनी को पुनः आश्वस्त इस अर्थ में किया कि रूस हितप्रेरित तटस्थ रहता, यदि फ्रांस और जर्मनी में युद्ध छिड़ जाय, जैसा कि रूस सन् 1881 ई० में था, भले ही जर्मनी आक्रमण न करे। आस्ट्रिया-रूसी युद्ध छिड़ने पर भी ऐसी ही शर्त्त थी। इसके अतिरिक्त, इस सन्धि से जर्मनी पर नूतन प्रतिबन्ध हो गया कि बलगेरिया और जलडमरूमध्य में जर्मनी रूस का समर्थन करेगा, भले ही यह उसकी नूतन नीति न हो। विस्मार्क की यह कूटनीति तीव्र आलोचना का एक प्रधान कारण है। उसे एकदम विश्वास न था कि रूसी सरकार देश में लड़ाका राष्ट्रीयता का दमन कर सकेगी। अतः, उसने बहुत गुप्त रीति से इंगलैण्ड और इटली को प्रोत्साहित किया कि वे आस्ट्रिया-हंगरी से मिल जायँ, जिससे बलगेरिया और जलडमरूमध्य में रूस की आकांक्षा पूरी न हो सके, यद्यपि पुनः आश्वासन-सन्धि में विस्मार्क ने वादा किया था कि वह कूटनीति से रूस का समर्थन करेगा।

५. रूस की इंगलैण्ड से चिरकाल से शत्रुता चली आ रही थी। अफगानिस्तान की सीमा पर पन्दजेह-संकट से यह आग भड़की थी (सन् 1885 ई०)। सेलिसबरी की भूमध्यसागर-सन्धि की नीति से यह शत्रुता और भी बढ़ गई (सन् 1887 ई०)। बालकन-क्षेत्र में रूस की बढ़ती को रोकने के लिए यह सन्धि की गई थी। त्रिराष्ट्र-संश्रय के दो राष्ट्रों के मिल जाने से रूस को भय हो गया कि कहीं ग्रेटब्रिटेन भी उसी संघ का साथ देकर उनके राजनीतिक लक्ष्यों का अनुसरण न करने लगे गियर्स: सन् 1891 ई०)।

इस भय का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। रूस ने फ्रांस के साथ ठोस मैत्री कर ली (सन् 1893 ई०)। युवक सम्राट् विलियम द्वितीय (सन् 1888–1918 ई०) ने

सन् 1890 ई० में बिस्मार्क को पदच्युत कर दिया। बिस्मार्क ने घोर यत्न किया था कि किसी प्रकार सन्तपीटर्सबर्ग से मैत्री बनी रहे। रूस भी चाहता था कि मैत्री हो, किन्तु उसी वर्ष पुनः आश्वासन-सन्धि समाप्त होने जा रही थी और उसके बदले जर्मनी ने कुछ भी नहीं किया। अतः, अलेक्जेण्डर तृतीय, अनिच्छा से इस नतीजे पर पहुँचा कि मार्सेलीज-संगीत में भाग लेकर तृतीय गणतन्त्र की शुभ-कामना करनी पड़ेगी।

त्रिराष्ट्र-संश्रय के प्रति-सन्तुलन के लिए फ्रांस से भी मैत्री की गई थी, किन्तु यह सत्य के प्रतिकूल था कि यूरोप एक प्रकार से दो स्पष्ट विरोधी दलों में विभक्त हो जाय। रूस की समस्त शक्ति सुदूरपूर्व तथा मध्यपूर्व की ओर लग रही थी तथा यथाशीघ्र ही केन्द्रीय राष्ट्र यूरोप में खलबली नहीं मचा रहे थे। वस्तुतः, एक युग (12 वर्ष) तक फ्रांस-रूस-मैत्री सामान्य शत्रु इंगलैण्ड के विरुद्ध थी, न कि सामान्य शत्रु जर्मनी के विरुद्ध। आस्ट्रिया-हंगरी के प्रति तो विरोध का प्रश्न ही न उठता था; क्योंकि फ्रांस से उसे कोई झगड़ा ही न था तथा इटली से भी रूस को कोई झंझट न था।

एक युग तक (सन् 1893–1905 ई०) रूस और जर्मनी के सरकारी सम्पर्क प्रायः अच्छे ही रहे, भले ही चुंगी के बारे में दो बार घोर विवाद हो चुका था। सन् 1897 और 1903 ई० में आस्ट्रिया-हंगरी के साथ सन्धि हो गई थी कि मेसेदोनिया तथा बालकन-क्षेत्र में दोनों मिलकर कार्य करेंगे और यह सिलसिला चलता रहा। रूस, जर्मनी और फ्रांस सन् 1895 ई० में मिल गये कि जापान के साथ जो शिमोनोसेकी की सन्धि हुई है, उसे रद्दी के टोकरे में डाल दिया जाय। जर्मनी रूस को प्रायः प्रोत्साहित करता रहा कि रूस सुदूरपूर्व में जम जाय। सन् 1903 ई० में सन्त पीटर्सबर्ग में सुदूरपूर्व महत्त्वाकांक्षियों की विजय हुई। यह जर्मन-प्रेमियों की भी विजय कही जा सकती है; क्योंकि वे खुलकर जर्मनी के साथ मैत्री के समर्थक थे। जापान के साथ युद्ध छिड़ जाने पर सरकारी रूस जर्मनी के और भी समीप हो गया।

अप्रैल 1904 ई० में अँगरेज-फ्रांसीसी समझौते की घोषणा हुई। डोगर बैंक की घटना से अंगरेजों के प्रति और भी शंका हो गई। अतः, अक्टूबर, 1904 ई० में निकोलस द्वितीय ने भयभीत होकर कैसर के सुझाव का स्वागत किया कि इंगलैण्ड के विरुद्ध रूस, फ्रांस और जर्मनी मिल जायें। रूसी और जर्मनी के वैदेशिक कार्यालयों से बातचीत चलती रही, किन्तु शीतकाल में कुछ भी फल न निकला। किन्तु, जुलाई, 1905 ई० में निकोलस को देश में क्रान्ति और जापान

द्वारा पूर्ण पराजय का सामना करना पड़ा। अब वह एकदम अकेला पड़कर हताश हो गया। वह फिनलैण्ड के तट पर कैसर के जहाज पर मिला और सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिया, जो 'ब्जोरको की सन्धि' कहलाती है।

इस सन्धि द्वारा प्रत्येक देश ने प्रतिज्ञा की कि यदि यूरोप में कोई यूरोपीय राष्ट्र उनपर आक्रमण करेगा, तो वे एक दूसरे की सशस्त्र सहायता करेंगे। रूस इसके लिए प्रयत्न करेगा कि उसका मित्र फ्रांस भी इस नूतन सन्धि में मिल जाय। लाम्सडोर्फ (सन् 1901–6 ई०) निकोलस का वैदेशिक मन्त्री था। उससे परामर्श न किया गया था। इस सन्धि से वह हक्का-बक्का हो गया, यद्यपि वह चाहता था कि जर्मनी से सद्भावना बनी रहे। इसका यह अर्थ था कि फ्रांस-रूसी-मैत्री भंग हो जाय तथा फ्रांस की आशा धूल में मिल जाय कि उसे अलसेस-लोरेन फिर मिल जायगा। इसी समय मोरक्को-संकट के कारण फ्रांस-जर्मनी का सम्बन्ध विच्छिन्न ही होनेवाला था। अतः, फ्रांस का जनमत स्यात् ही जर्मनी के साथ मैत्री पसन्द करता। इसका एक ही चारा था कि फ्रांस इंगलैण्ड की शरण ले और रूस को अकेला छोड़ दे कि वह जर्मनी पर ही आश्रित रहे। जार ने जिद्द की कि फ्रांस को अवश्य ही निमन्त्रित किया जाय। फ्रांस-सरकार ने इसे अस्वीकार कर दिया तथा रूस के साथ उसकी मैत्री कहाँतक टिकाऊ होगी, इसपर फ्रांस उलझन में पड़ गया। जार को किसी तरह समझा-बुझाकर वे ब्जोरको की सन्धि से मुख मोड़वा दिया गया और ब्जोरको-सन्धि का त्याग कर दिया गया। इसके दो वर्ष के भीतर ही इंगलैण्ड के विरुद्ध जर्मनी से मैत्री न करके रूस ने इंगलैण्ड से समझौता करके (सन् 1901 ई०) त्रिराष्ट्र-समहित कर लिया।

इसके बाद भी तथा बोसनिया-संकट (सन् 1908–9 ई०) के बावजूद सरकारी नीति जर्मनी के प्रतिकूल न थी, भले ही जनमत धीरे-धीरे शत्रुवत् होता जा था। दरबार तथा अन्य रूढिवादी क्षेत्रों में सद्भावना ही नहीं, बल्कि जर्मनी के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध की माँग की जा रही थी। ये लोग समझते थे कि जर्मनी की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था जारशाही के स्वार्थ से अधिक मिलती-जुलती है, न कि फ्रांस या इंगलैण्ड से। जर्मनी के आर्थिक प्रवेश से रूस में भले ही विरोधी भावना फैली, किन्तु इस बात के अस्वीकार नहीं किया जा सकता था कि जर्मनी ही रूस का सबसे बड़ा ग्राहक था। रूसी निर्यात का लगभग एक-तिहाई जर्मनी लेता था तथा रूस का चौआलीस प्रतिशत आयात जर्मनी से ही होता था। नया वैदेशिक मन्त्री सजोनोव (सन् 1910–16 ई०) शान्त प्रकृति का था। इसे कोई वैयक्तिक महत्त्वाकांक्षा न थी और न इसे अपने पूर्वाधिकारी इजवोलस्की के समान कुछ बकाया हिसाब-किताब चुकाना था।

सन् 1910–11 ई० में सजोनोव ने सम्बन्ध सुधारने की चेष्टा की। कुछ क्षणिक सुधार भी हुआ। रूस ने मान लिया कि वह बगदाद-रेलमार्ग का विरोध करना छोड़ देगा तथा फारस में कुछ सुविधा देगा। किन्तु, मोरक्को के कारण (सन् 1911 ई०) अगदीर-संकट उपस्थित हो गया। इधर अँगरेजों और जर्मनों में नौशक्ति की होड़ लगी थी तथा तुर्की और बालकन-क्षेत्र की हालत दिन-दिन खराब होती जा रही थी। जर्मनी की नौसेना, स्थलसेना तथा महान् उद्योगपतियों के त्रिदल-संघटन होने के कारण विभिन्न प्रकार से एक ही समय रूस, फ्रांस और ग्रेट-ब्रिटेन शत्रु बन गये और जर्मन-कूटनीति की उत्तेजित पद्धति से, जर्मन-समाचार-पत्रों के सर्व जर्मन-भावना से तथा कैसर के चंचल गर्वित वाक्यों से, ये तीनों और भी एक दूसरे के मित्र बन गये।

जर्मनवाद का भय रूस को सबसे अधिक हो गया; क्योंकि तुर्की में जर्मनी की शक्ति बढ़ जाने से यूरोप में अब जर्मनी की शक्ति बहुत बढ़ गई। बगदाद-रेलमार्ग से बहुत ही भय उत्पन्न हो गया था। कुंस्तुन्तुनिया में मार्शल वॉन विबेरस्तीन जर्मनी का सुनिपुण राजदूत (सन् 1897–1912 ई०) था। यह द्वितीय स्ट्राटफोर्ड कैनिंग प्रतीत होता था। रूस में जनमत अब यह खूब समझने लगा कि जर्मन और स्लाव में अब मुठभेड़ होने ही वाला है। अब कुंस्तुन्तुनिया और जलडमरूमध्य में एक प्रकार से जर्मनों का राज्य हो जायगा। अतः, रूस को भय हो जाना स्वाभाविक था और यह भय बढ़ता ही गया। स्यात् जर्मन वही स्थान ले लेगा, जो काहिरा में अँगरेजों का था। सन् 1913 ई० में तुर्की ने जर्मन-सैनिक-संघ को निमन्त्रण दिया कि उसकी सेना का पुनः संगठन कर दे। जनरल लिमन वॉन सैण्डर्स कुंस्तुन्तुनिया में ही सेना का स्वामी बन बैठा। अब तो रूस की जो पुरानी धारणा और शंका थी वह और भी दृढ हो गई तथा बर्लिन से खुल्लमखुला संघर्ष चलने लगा। रूस को कुछ भी भौतिक सन्तोष न मिला। रूस का भविष्य अन्धकारमय हो गया और वे कहने लगे कि अब जर्मनी और रूस में चिरकाल तक संघर्ष चलता रहेगा।

विनम्र परामर्शदाताओं का प्रभाव कम हो गया। सजोनोव भी आला कमान के सामान्य मत से सहमत हो गया कि जर्मनी और आस्ट्रिया-हंगरी सब प्रकार से रूस को दबाकर अपना मतलब गाँठना चाहते हैं और वे बिना युद्ध किये न मानेंगे। रूस की दृष्टि से ये दोनों देश एक ही थे। जर्मनी की युद्ध-संचालन-योजना इस प्रकार की थी कि यदि आवश्यकता पड़े, तो दोनों पर एक साथ ही आक्रमण कर दिया जाय। जून, 1914 ई० में आर्क ड्यूक फ्रांसिस फर्डिनैण्ड की हत्या हो गई। चार सप्ताह के बाद आस्ट्रिया-हंगरी ने सर्बिया पर युद्ध घोषित कर दिया। अब रूस को किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह गया और रूस ने ठीक ही समझा कि

जर्मनी अपने मित्र की पीठ पर तैयार है। रूस ने भी इसका उत्तर दिया। सारी जनता युद्धभूमि में उतर पड़ी। अगस्त 6 तक उसने दोनों केन्द्रीय राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। फ्रांस और ब्रिटिश-साम्राज्य ससैन्य उसकी तरफ से तैयार थे।

फ्रांस रूस का मित्र इसलिए हो गया कि दोनों को जर्मनी से भय था। फ्रांस को आशा थी कि अलसस-लौरेन हाथ लग जायगा तथा ऐसा अन्य कोई मित्र था ही नहीं। इंगलैण्ड की नौसेना विशाल थी, किन्तु स्थलसेना एकदम न्यून थी। फ्रांस को एक ऐसे मित्र की आवश्यकता थी जिसके पास विशाल सेना हो। रूस के लिए गणतन्त्र फ्रांस से मैत्री करना सरल था; क्योंकि तीन कारणों के विलोप से दोनों देश सन् 1870 ई० के पहले डेढ़ सौ वर्ष तक लगातार एकदम विलग रहे थे। अट्ठारहवीं शती में रूस के विरुद्ध फ्रांस ने स्वीडेन की सहायता की थी। अब यह स्मरण-मात्र था, भले ही क्रिमिया-युद्ध में यह पुनः स्मरण हो गया था। तुर्की में फ्रांस रूस का विरोध कर रहा था तथा पोलों का समर्थन करता था। द्वितीय साम्राज्य-काल में ये बातें और भी दृष्टिगोचर हो रही थीं, किन्तु तृतीय गणतन्त्र-काल में अब इनसे कोई अन्तर नहीं पड़नेवाला था।

क्रिमिया-युद्ध से कोई गहरा मतभेद उत्पन्न नहीं हो सका। दोनों सरकार उत्सुक थी कि किसी प्रकार आपस में सद्भावना हो और शीघ्र ही समहित हो जाय। अपने रेलमार्ग के निर्माण के लिए फ्रांसीसी धन का रूस ने स्वागत किया। आस्ट्रिया को हड़पना नेपोलियन की चाल थी, रूस ने इसका भी स्वागत किया। किन्तु, पोलैण्ड ने दोनों सम्राटों के समहित पर पानी फेर दिया। सन् 1863 ई० में पोलों ने विद्रोह किया। सभी मतों के लोगों ने फ्रांस में इसका घोर समर्थन किया। नेपोलियन तृतीय ने रूस के विरुद्ध अपनी कूटनीतिक चालों से मामले को और भी बिगाड़ दिया। इस कूटनीति का अभिप्राय तो बहुत व्यापक था, किन्तु विशिष्टांश धूमिल अथवा गड़बड़ था। इंगलैण्ड ने सोच-समझकर इसमें भाग लिया। आस्ट्रिया को लोग दुतकारने लगे। अन्ततः, पोलों को कोई लाभ न पहुँचा। रूस में पश्चिमी यूरोप के प्रति सन् 1830 ई० से भी अधिक दुर्भावना उत्पन्न होने लगी।

नेपोलियन को अब केवल एक ही चारा था कि समीपस्थ पूर्व में अपनी धाक जमावे। कुंस्तुन्तुनिया में उसका प्रभाव विशेष था, किन्तु उसने अपने इस प्रभाव को किसी प्रकार सन्तोष देने का प्रयत्न न किया। रूमानिया में राष्ट्रीयता का फ्रांस द्वारा समर्थन एक प्रकार से बाधक था। क्रीट-प्रश्न (सन् 1967–68 ई०) में या पेरिस-सन्धि में कृष्णसागर के विषय में जो धारणा थी, उसे रद्द करने के लिए फ्रांसीसी

कूटनीति ने कुछ भी सहायता न की। अतः, सन्तपीटर्सबर्ग को सन्तोष न था। अलेक्जेण्डर द्वितीय को अपने विश्वस्त मामा प्रशिया के राजा विलियम से प्रगाढ़ मैत्री थी। अतः, सन् 1870 ई० में फ्रांस को रूस से किसी प्रकार की सहायता की आशा करना बेकार था।

फ्रांस के पतन से यूरोप का शक्ति-सन्तुलन खराब हो गया। दोनों देश धीरे-धीरे एक दूसरे के समीप होते गये और अन्ततः इनमें मैत्री हो गई। प्रारम्भ में फ्रांस बहुत दुर्बल था और अस्थित होने के कारण इसकी कोई गणना नहीं थी। रूस चाहता था कि फ्रांस सुदृढ़ और राजतान्त्रिक हो। गोर्चाकोव ने बहुत दिखावे के साथ जर्मनी के विरुद्ध विघ्न डाला, जिससे सन् 1875 ई० का युद्ध-भय जाता रहे। किन्तु, जैसे-जैसे गणतन्त्र की जड़ जमती गई, इसके राजनीतिक सिद्धान्त तथा रूसी राजनीतिक शरणार्थियों को आश्रय देने के कारण जारशाही रूस से दूर होती गई।

किन्तु, फ्रांस की दुर्बलता और नये विकास के कारण वैदेशिक सम्बन्ध में दृष्टिकोण परिवर्त्तित हो गये। प्रथमतः, रूस के विरुद्ध तुर्की की सहायता करने की जो परम्परागत नीति थी, उसका अन्त हो गया। तुर्की में वित्त और आर्थिक दृष्टि से फ्रांस का बहुत महत्त्व था, किन्तु कुंस्तुन्तुनिया में अब उसका राजनीतिक स्थान जाता रहा तथा रूस को हानि पहुँचाकर उसने अपने राजनीतिक स्थान को पुनः पाने की चेष्टा न की। दूसरी बात यह है कि फ्रांस के उपनिवेशों का जो विस्तार सन् 1880 और 1890 ई० से हो रहा था, वह अँगरेजों के अफ्रिका, दक्षिणपूर्व एशिया तथा प्रशान्त सागर में विस्तार के विरुद्ध था। सन् 1878 ई० के बाद अँगरेज रूसी शत्रुता समीप और मध्यपूर्व से बढ़ते-बढ़ते सुदूरपूर्व तक पहुँच गई। इंगलैण्ड का समान विरोध ही एक ऐसा आधार था, जिसपर रूस और फ्रांस मिलकर काम कर सकते थे। उनका पारस्परिक स्वार्थ कहीं नहीं टकराता था। तीसरी बात यह थी कि पोल-समस्या धीरे-धीरे समाप्त हो गई। अब पूर्वकाल के समान यह बाधक न रही। पोलैण्ड के प्रति फ्रांस में विशेषतः वामपक्ष की अब भी सहानुभूति थी, किन्तु यह भावना क्रमशः दूर होती गई। जब फ्रांस शक्तिशाली था, रूस अपेक्षाकृत निर्बल था तथा प्रशिया अभी जर्मनी न बना था, तब भी व्यवहार में पोलों की सहायया करना कितना कठिन था, इसके कटु अनुभव थे। किन्तु, तृतीय गणतन्त्र के सौभाग्य से सन् 1870 ई० और सन् 1914 ई० के मध्य पोलैण्ड में कोई विद्रोह न हुआ और पोल-प्रश्न को कभी भी विश्वराष्ट्र ने न उठाया।

सन् 1880 ई० से रूस फ्रांस के और भी निकट हो गया। सर्वस्लाव राष्ट्रवाद ने फ्रांस के नये वर्गों का साथ दिया, जो फ्रांस में अग्रगामी थे और वोसगेज की नील

पंक्ति पर आँख गड़ाये हुए थे तथा रूस को अपना सहायक मित्र समझते थे। सन् 1882 ई० में दृढ जेनरल स्कोवेलेव पेरिस पहुँचा। यह पक्का राष्ट्रवादी तथा रूस का जनप्रिय नेता था। फ्रांस के समाचारपत्रों ने इसका खूब अभिनन्दन किया। इसे ट्यूटन तथा स्लाव के मध्य अपरिहार्य संघर्ष तथा फ्रांस और स्लावों के मध्य मैत्री का धर्मदूत कहा गया। जर्मनी को ही शत्रु समझा गया। देशभक्त संघ का प्रधान देरोलेद आग भड़काता था। बालनगेर से इसकी गाढ़ी दोस्ती थी। रूस की राष्ट्रवादी भावना खूब भड़क पड़ी। ये लोग बलगेरिया-संकट के समय (सन् 1886–87 ई०) कतकोव से खासकर घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये हुए थे।

इस समझौते का सामान्य कारण था जर्मनी और इंगलैण्ड से शत्रुता। हम देख चुके हैं कि कतकोव रूस में जर्मन-विरोधी प्रचार का नेता था और वह इसे फ्रांसीसी रूप दे रहा था। फ्रांस के धनीवर्ग से उसका सम्पर्क था। यह धनीवर्ग चाहता था कि रूस से पुराना सम्पर्क नूतन हो जाय, जिससे पेरिस का धन रूस के बाजार में खपे, जिस प्रकार द्वितीय साम्राज्य के समय होता था। फ्रांस-सरकार ने बालनगेर-संकटकाल में सरकारी तौर पर प्रस्ताव उपस्थित किया। अलेक्जेण्डर तृतीय चाहता था कि फ्रांस शक्तिशाली हो। 'हमने सब अभिलाषा त्याग दी है। अब तुम्हीं पर आशा लगी है।' किन्तु, बोलांगीवाद तथा तृतीय गणतन्त्र के सिद्धान्त और व्यवहार से वह क्रुद्ध हो गया। कतकोव का लक्ष्य बहुत उँचा था। गियर्स ने बर्लिन से पुनः सम्बन्ध स्थापित कर लिया।

तब भी पाँच वर्ष बाद तक जर्मनी से कोई सन्धि न हुई और फ्रांस से मैत्री थी। इसके कारण बताये जा चुके हैं। त्रिराष्ट्र-संश्रय तथा आस्ट्रिया-जर्मन-मैत्री कभी सुविस्तीर्ण सैनिक-सन्धि द्वारा कार्य-परिणत न हुए थे। किन्तु, रूस और फ्रांस के मध्य कोई औपचारिक सन्धि न थी। इसके अन्तःकरण में प्रारम्भ से ही सैनिक-अभिसमय था। सन् 1900–1 और 1906 और 1914 ई० के मध्य इसका संशोधन और विस्तार किया गया।

इस अभिसमय की मुख्य बातें थीं : (क) रूस और फ्रांस एक होकर युद्ध करेंगे, यदि जर्मनी ने इन दोनों में किसी के ऊपर आक्रमण किया अथवा जर्मनी की सहायता से आस्ट्रिया-हंगरी या इटली आक्रमण करें। (ख) दोनों सेना के मुख्य अधिकारी प्रतिवर्ष मिलकर संयुक्त उपाय की चिन्ता करेंगे। (ग) दोनों सरकारें आपस में मिलकर परामर्श करेंगी। यदि किसी प्रश्न पर सामान्य शान्ति-भंग होने की शंका हो, तो वे एक निर्णय पर पहुँचेंगी। यदि कभी आक्रमण का भय हो,

तो इसके लिए आवश्यक काररवाई करने के लिए वे एक समझौते पर पहुँचने का प्रयास करेंगी। (घ) प्रारम्भ में इस मैत्री का उद्देश्य था शान्ति बनाये रखना, किन्तु सन् 1899 ई०. में इसे बढ़ाकर यूरोपीय राष्ट्रों में सन्तुलन बनाये रखना इसका उद्देश्य कर दिया गया। (ङ) इस मैत्री की शर्तों को (भले ही इसका अस्तित्व प्रकट हो जाय) एकदम गुप्त रखा जायगा और वे गुप्त रहे।

इस मैत्री की कूटनीतिक शर्तें धूमिल थीं, अत: विभिन्न प्रकार से इनकी व्याख्या होने लगी। सन् 1812 ई० तक बालकन-क्षेत्र में विद्रोह के मूलकारणों के सम्बन्ध में फ्रांसीसी बहुत सतर्क थे। इसी प्रकार मोरक्को के विषय में रूसी भी सशंक थे। अत:, सन् 1908–9 ई० के मध्य जब बोसनिया-संकट उपस्थित हुआ, तब फ्रांस ने समझा कि फ्रांस और रूस के स्वार्थ में धक्का नहीं लगेगा। इजवोलस्की ने घोर शिकायत की कि फ्रांस बोरिया-बिस्तर बाँधकर आस्ट्रिया का साथ दे रहा है। मूल सैनिक-अभिसमय में यह विधान था कि प्रतिवर्ष जेनरलों का सम्मेलन होगा, किन्तु सन् 1900 और 1901 ई० के सिवा ये सम्मेलन कभी नहीं हुए। केवल सन् 1906 ई० से ये सम्मेलन प्रतिवर्ष होने लगे। रूसी सेना फ्रांस की अलंघनीय भावना का विरोध करती थी; क्योंकि फ्रांसीसी रूसियों को हीन समझते थे। दोनों सेना में झगड़ा और गड़बड़ी भी होती थी। तब भी संयुक्त सैनिक-योजना ही इस मैत्री का प्राण थी, जिसे अगस्त, 1914 ई० में पूर्णरूपेण काम में लाया गया। फ्रांसीसी-रूसी मैत्री तथा सन् 1935 ई० की सोवियत-फ्रेंच-मैत्री में यही महान् अन्तर था कि सन् 1935 ई० की मैत्री को भी जेनरलों की मैत्री से कार्य-परिणत न किया गया।

जनमत में विभेद था। रूस में यह मैत्री प्राय: जनप्रिय थी, किन्तु अनेक रूढ़िवादी वर्ग इस मैत्री को नापसन्द करता था और संसद्वाद तथा समाजवाद से उन्हें भय था। रूस का स्वार्थ कहीं भी फ्रांस के साथ टकराता न था। फ्रांस रूस को धन देता था। इससे मैत्री दृढ होती गई और दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। रूस में फ्रांसीसी संस्कृति का स्थान सदा से उच्च रहा है। जर्मन-सांस्कृतिक प्रभाव उदीयमान जर्मन-विरोधी भावना के कारण ओझल हो रहा था। अधिकांश रूसी फ्रेंच-भाषा एकदम नहीं जानते थे, अत: उनके विरोधी होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था।

फ्रांस के वामपक्षियों में जारशाही निरंकुशता के साथ मैत्री सदा अप्रिय थी। सन् 1905 ई० की क्रान्ति के समय तो यह मैत्री स्पष्टरूपेण घोर अप्रिय थी। रूस का जो धन अखबारों के लिए खर्च होता था, उससे सहायकों को भले ही खरीदा जा सकता था, किन्तु विरोधियों को खरीदना टेढ़ी खीर था। तुच्छ धन लगानेवाले

सन् 1906 ई० में अलजेसिरास-सम्मेलन अपवाद था। यह भी सत्य नहीं है कि ऋणी महाजन के बताये रास्ते पर चलता हो। इसका विपरीत ही सत्य के अधिक समीप होगा।

रूस अपने मार्ग का अनुसरण करता था। वह फ्रांस की परवाह कदापि करता था। बालकन-संघ के विषय में जब पता चला कि उसे अन्धकार में रखा गया था, तब पोयनकेर ने सन् 1912 ई० में क्रोध में आकर विरोध किया। किन्तु, वह अपने मित्र के स्वतन्त्र कर्म से सदा व्यग्र रहता था। किन्तु, पोयनकेर ने समझ लिया कि अब फ्रांस के साथ तर्क करना उचित न होगा कि बालकन के मामले से सामान्य शान्ति-स्थिति या यूरोपीय राष्ट्रों का सन्तुलन भंग न होगा। सन् 1912 ई० के बाद फ्रांस ने मान लिया कि युद्ध का कारण केवल रूस के खास प्रदेश पर ही आक्रमण नहीं हो सकता, बल्कि उन स्थानों पर भी आक्रमण युद्ध का कारण हो सकता है, जहाँ पर रूस का स्वार्थ है और जिन्हें रूस आवश्यक समझता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि रूस सर्बिया और जलडमरूमध्य को आवश्यक समझता था।

सच्ची बात यह है कि फ्रांस-रूसी मैत्री के प्रारम्भिक वर्षों के बाद से तथा बिस्मार्क के काल से परिस्थिति एकदम बदल गई थी। जर्मनी ने आस्ट्रिया-हंगरी के साथ गाढ़ी मैत्री कर ली थी, अतः फ्रांस को भी रूस के साथ वैसा ही करना आवश्यक था। फ्रांस किनारे खड़ा होकर तमाशा नहीं देख सकता था कि केन्द्रीय राष्ट्रों का वरीय शक्ति-संयोग रूस को पराजित करे। उस दशा में उसे अकेला ही जर्मनी का सामना करना पड़ता। फ्रांस-जर्मन या आंग्ल-जर्मन-सम्बन्ध नहीं, बल्कि युद्ध के तात्कालिक कारण थे बालकन-राज्य। अतः, इस मैत्री में रूस को ही अन्ततः निर्णय करना था। जुलाई, 1914 ई० में मामला बहुत ही पेचीदा हो गया था। अब लेशमात्र भी सन्देह न था कि रूस को निर्णय करना होगा, उसे अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए लड़नी ही पड़ेगी और तब फ्रांस को भी लड़ना होगा।

ग्रेटब्रिटेन ने साथ दिया। एक सौ वर्ष पहले जैसा उसने साथ दिया, वैसे ही उसने साथ दिया और पुनः द्वितीय विश्वयुद्ध में भी उसने सशस्त्र रूस का साथ दिया, जिसमें उनकी रक्षा हो तथा तानाशाही से विश्व की रक्षा हो।

अभ्यन्तर शती में इंगलैण्ड और रूस के सिद्धान्त विभिन्न थे। दोनों के साम्राज्य के स्वार्थ में एशिया और लेवन्त में विरोध था। तब भी ये दोनों अपने इतिहास में केवल एक ही बार गम्भीरता से क्रिमिया-युद्ध में लड़े।

उसके बाद सन् 1950 ई० तक, पचास वर्षों में दोनों देशों में शत्रुता का वही आधार था, जो उसके पहले अर्द्धशती में। किन्तु, अब सुदूर पूर्व की प्रतिस्पर्द्धा ने भी

योग दिया। रूस ने मध्य एशिया जीत लिया। अतः, भारतवर्ष पर आक्रमण का भय समीप हो गया। इसके पहले अधिक और लगातार भय की शंका न थी।

उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में अँगरेजों ने भारत में अपना साम्राज्य हिमालय पर्वत, सिन्धु नदी तथा उसके बाहर तक फैलाया। किन्तु, काकेशश-पर्वतारोहियों को पराजित करने में रूस बाधक रहा। ये पर्वतारोही रूस के लिए वैसे ही थे, जैसा पठान तथा सीमान्त-पश्चिमोत्तरप्रदेश। जब यह विजय समाप्त हुई, तब रूसी कॉस्पियन सागर के पूर्व की ओर मुड़े। बीस वर्षों में (सन् 1864–85 ई०) उन्होंने मध्य एशिया के स्वतन्त्र मरूद्यान को रौंद डाला और खानाबदोशों को वशीभूत किया। यूरोपीय दृष्टि में जो सीमा होती है, वह सीमा रूस में न थी। किन्तु, सन् 1880 ई० से रूसी शक्ति लगातार निर्बल फारस और अस्थित अफगानिस्तान का स्पर्श करने लगी।

अँगरेज शीघ्र ही सशंक हो गये। नेपोलियन के बाद यह प्रथम अवसर था कि दक्षिणी एशिया में एक अन्य यूरोपीय राष्ट्र उनके प्रभुत्व तथा महत्ता को चुनौती दे सकता था। रूसी समझते थे कि वे भारत में अँगरेजों का केवल अनुकरण कर रहे हैं। अतः, यदि रूस दूसरों को सभ्य बनाने का ठेका ले और साथ ही उसे आर्थिक लाभ भी हो, तब तो अँगरेजों को किसी भी दशा में आपत्ति न होनी चाहिए। रूस ने आस्वीकार कर दिया कि मध्य एशिया में उनकी विजय भारतवर्ष पर आक्रमण के लिए नहीं हो रही है। यदि रूसी उराल पर्वत और साइबेरिया के पार हो जाय तथा वालगा नदी के निम्नतट पर फैल जाय, तब उनकी सुगठित शक्ति का खानावदोश या मरूद्यान-जीवन पर गहरा प्रभाव पड़े बिना न रहेगा। रूस के पास पाश्चात्य तकनीकी ढंग का शास्त्र रहेगा तथा इन दीन-हीन बासिन्दों के पास कुछ नहीं केवल भ्रान्त खनैत, दूरी या मरुस्थल।

यह सत्य है कि मध्य एशिया ने रूसियों को सैन्य-संचालन की आधार-भूमि दी, जहाँ से आवश्यकता पड़ने पर वे धावा बोल सकते थे (गियर्स : सन् 1883 ई०)। यह देखा जा चुका है कि सन् 1900 ई० में फ्रांस से मिलकर ये धावा बोलनेवाले थे। कम-से-कम एक बार इंगलैण्ड से (सन् 1878ई०) युद्ध होने ही वाला था। तुर्किस्तान में रूसी सेना आगे बढ़ रही थी। अँगरेज ठीक ही समझते थे कि इसी समय जो द्वितीय अफगान-युद्ध हुआ, इसका कारण कुछ अंश तक रूस का उसकानी भी था। अँगरेजों का यह मत भी ठीक ही था कि फारस की उत्तरी सीमा के किनारे जो ट्रान्स-कॉस्पियन-रेलमार्ग (सन् 1881–88 ई०) बना, उसका युद्धनीतिक महत्त्व है। अँगरेजों ने बार-बार शिकायत की कि सन्तपीटर्सबर्ग के अधिकारी, साम्राज्य की सुदूर सीमा पर अपने सहायकों को नियन्त्रण में नहीं रखते

और न रख पायेंगे। मध्य एशिया में वैदेशिक कार्यालय का कुछ भी प्रभाव न था। वहाँ पर युद्ध-मन्त्रालय तथा महाशासक ही सर्व-सर्वा थे। और, रूसी यहाँ पर सदा आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे। यही मुख्य कारण था कि पामीर के लिए इंगलैण्ड के साथ चिरकाल तक (सन् 1891–95 ई०) संघर्ष चलता रहा।

अँगरेजों के लिए भारत का भय होआ सिद्ध हुआ। स्वेज नहर (सन् 1869 ई०) तथा भारतवर्ष में रेलमार्ग का विस्तार हो जाने से अँगरेजों की हालत बहुत सुधर चुकी थी। किन्तु, भारतीय स्वतन्त्रता-युद्ध (सन् 1857 ई०) की स्मृति अभी हरी थी। यदि रूस अफगानों को भड़कायें, तो सम्भव था कि भारत में भी विद्रोह की आग सुलग जाय या भभक उठे।

रूस को बर्बर, कपटी, लम्बी-चौड़ी योजना बनानेवाला तथा निरंकुश बताकर तथा 'भारत के लिए भय' कहकर इंगलैण्ड ने अपनी पुरानी शत्रुता और भी बढ़ा दी। अँगरेजों ने अलेक्जेण्डर द्वितीय के सुधारों पर एकदम ध्यान नहीं दिया। रूस को अब भी मुख्य रूप में प्रतिक्रियावादी पुलिस-सरकार बताया जाता था। यह पोलों और यहूदियों को यातना देती थी, सर्वस्लाववाद को उकसाती थी। इसी प्रकार रूस में भी भयंकर चित्रण किया जाता था कि किस प्रकार अँगरेज करोड़ों भारतीयों पर अत्याचार करते हैं। भारत मृत्यु-शय्या पर लेटा है .... उत्तर से किसी चिकित्सक की प्रतीक्षा कर रहा है। अँगरेज नमकहराम होते हैं और यथा—सम्भव रूस से अपनी सतत भूख मिटाने की चेष्टा करते हैं—अँगरेजों ने सन् 1878 ई० में साइप्रस तथा सन् 1882 ई० में मिश्र हड़प लिया।

रूस और इंगलैण्ड से तीन बार युद्ध होते-होते बचा। सन् 1878 ई० में रूसी सेना कुंस्तुन्तुनिया के द्वार पर थी और अँगरेजों का एक जहाजी बेड़ा स्वर्णशृंग (गोल्डेन हॉर्न) से गुजर रहा था। सन् 1885 ई० में रूस-अफगान-सीमा बन्द हो रही थी, जिसके कारण पन्दजेह-संकट उपस्थित हुआ। रूसी और अफगान लड़ पड़े। इससे अँगरेज व्याकुल हो गये। सन 1904 ई० में बाल्टीक-नौसेना को शंका हो गई कि कहीं जापानी पनडुब्बी जहाज रात में हमला न बोल दें। अतः, उन्होंने उत्तरी सागर में डोगर-तट से, हल में मछुओं के जहाजों पर गोलाबारी कर दी। यह बाल्टीक-नौसेना तुसिमा की ओर युद्धयात्रा कर रही थी। दोनों देशों में प्रथम दो अवसरों पर सम्भवतः अधिकांश जनमत युद्ध का स्वागत करता। किन्तु, सन् 1904 ई० में रूसी नहीं, भले ही इंगलैण्ड का जनमत युद्ध के पक्ष में रहा हो।

रूस में मतभेद के कारण सन् 1878 ई० में युद्ध टल गया। उस समय लन्दन में रूसी राजदूत शुवालोव था। वह बहुत चालाक था। वह नरम दल की सहायता से, कूटनीतिक चाल से सानस्तेफनो की सन्धि से वर्लिन की सन्धि पर पहुँच गया। सन् 1885 ई० में ग्लाडस्टोन और सेलिसबरी के धीरज और समझदारी से युद्ध टला। ग्लाडस्टोन ने भी युद्ध के लिए संसद् से 1, 10, 00, 000 पौण्ड की स्वीकृति ले ली थी। रूसी सेना भी उस समय नहीं चाहती थी कि हेरात या अफगनिस्तान को हथियायें। सन् 1904 ई० में बालफोर-सरकार ने प्रतिबन्ध लगा दिया। सबसे बड़ी बात यह थी कि निकोलस द्वितीय भले ही इंगलैण्ड के दुष्ट चरित्र पर और घृणित शत्रुओं पर क्रोध करे, किन्तु जापान के साथ युद्ध में असफल होने के कारण वह देश को युद्ध में नहीं झोंक सकता था।

रूस की वैदेशिक नीति उसी प्रकार अँगरेजों का विरोध करती थी, जिस प्रकार फ्रांस की नीति। अतः, रूस को बल मिल गया। सन् 1887 ई० में रूस और फ्रांस दोनों ने मिलकर मिस्र-अँगरेजों की योजना के विरुद्ध कूटनीतिक चाल चली। फ्रांस-रूस-मैत्री प्रारम्भिक काल में (सन् 1893–1904 ई०) खासकर ग्रटब्रिटेन के विरुद्ध हुई। फलतः, भूमध्यसागर में शक्ति-सन्तुलन में परिवर्त्तन आ गया।

अब रूस ने कृष्णसागर-नौसेना तैयार कर ली थी। सन् 1894 ई० से एक लघु रूसी बेड़ा भूमध्यसागर में उतर पड़ा। फ्रांस की नौसेना का स्थान ब्रिटिश-नौसेना के बाद ही था। जलडमरूमध्य में चक्कर काटता हुआ रूसी नौसेना यदि फ्रांस का साथ न दे, तो भी फ्रांस भूमध्यसागर में बरीय होने का दावा कर सकता था। अँगरेजी सागर-शक्ति की निर्बलता से सरकार और जनता दोनों चिन्तित थी। सन् 1895 ई० में सलिसबरी ने पुनः अधिकार प्राप्त किया। इसने नौसेना को खूब बढ़ाया तथा धीरे-धीरे सागर-सेवा की विशिष्टता को पुनः स्थापित किया। तब भी सन् 1890 ई० से रूस और तुर्की के प्रति अँगरेजों की भावना में दो महान् परिवर्त्तन हुए।

आरमिनिया-हत्याकाण्ड (सन् 1895–96 ई०) से राज्यविप्लव हो गया। इंगलैण्ड के तुर्क-प्रेमी जनमत को शक्ति मिली। ग्लाडस्टोन का अनुयायी उदार दल बीस वर्षों से तुर्क-प्रेमभावना का घोर विरोध कर रहा था। अब तुर्क मूक तुर्क हो गये तथा सुलतान अब्दुल हमीद घृणित बन गया। उनका सबसे बड़ा दुराचार यह था कि उन्होंने डार्डनेल्स के दुर्गीकरण में सारा धन लगा दिया और बासफोरस को दृढ किया और कुंस्तुन्तुनिया में वे रूस की महत्ता स्वीकार करने को तैयार थे। सेलिसबरी विदेशी मामलों में सदा जनमत का खयाल करता था। इसने उत्तमन-साम्राज्य के एकीकरण का सिद्धान्त एकदम त्याग दिया तथा बँटवारा करने को

सोचने लगा। कुस्तुन्तुनिया को अब रूस से बचा रखना असम्भव था तथा बचाने का यत्न भी विवादग्रस्त था। रूस के प्रति अँगरेजों की नीति का मूल भी सदा यही था कि तुर्की में रूस का पैर न जमने पाये। अतः, सेलिसबरी को जान-बूझाये कर बँटवारा सोचना पड़ गया। नौसेना-विशेषज्ञों ने अन्ततः उसे पूर्ण इत्मीनान करा दिया कि रूस को जलडमरूमध्य से बाहर निकाल भगाने का कोई तरीका नहीं है, जबतक फ्रांस शस्त्र के साथ रूस का साथ दे। तुर्कों के विरोध से ही रूस स्ट्रेट्स (जलडमरूमध्य) से हट सकता है। किन्तु, यह एकदम असम्भव बात थी। डार्डिनेल्स की अक्षुण्णता को इर्ष्यापूर्वक रक्षा करने का समय बीतता जा रहा है। अन्तिम मोर्चा (सन् 1896ई०) मिस्र और अलेक्जेण्ड्रिया में ही लेना होगा, न कि जलडमरूमध्य में। इसके बाद परिस्थिति बदल गई। नौसेना-विशेषज्ञों ने पुनः इन पुराने सिद्धान्त को न दुहराया कि रूस को कुस्तुन्तुनिया और जलडमरूमध्य से वंचित रखने की आवश्यकता है। सन् 1907 ई० में रूस से समहित हो गया। आगामी वर्ष इजवोलस्की ने ग्रे से जलडमरूमध्य का प्रश्न उठा दिया। इंगलैण्ड को नौसेना की सहमति मिलने में कठिनाई न थी, किन्तु जनमत इस बात के लिए तैयार न था कि शीघ्र ही मुँह पर तमाचा लगे।

सन् 1897 ई० में सेलिसबरी ने राजसभा में अपना उद्गार प्रकट किया: "सन् 1853 ई० में ही अपना रास्ता देखना चाहिए था, जब हमने सम्राट् निकोलस के प्रस्तावों को ठुकरा दिया। हम गलत घोड़े पर अपने धन की बाजी लगाते हैं।" सेलिसबरी इस मुहावरे को बार-बार दुहराता था। किन्तु, इस नीति को व्यावहारिक सहयोग में लाना कठिन था; क्योंकि समीप पूर्व में रूसी सरकार के प्रति शंका बढ़ती जा रही थी तथा मध्य और सुदूरपूर्व में रूस का लक्ष्य अँगरेजों के लिए शंकास्पद था। सेलिसबरी के कथन के कुछ मास पूर्व ही रूसी सरकार ने गुप्त रूप से निश्चय कर लिया कि यदि आरमिनिया-हत्याकाण्ड के कारण राष्ट्रों की नौसेना डार्डिनेल्स के मार्ग से प्रवेश कर प्रदर्शन करे, तो बासफोरस पहुँचने का कृष्णसागर-मार्ग सदा के लिये हथिया लिया जाय।

सन् 1899 ई० के समाप्त होते-होते समीप पूर्व की अपेक्षा फारस और सबसे अधिक सुदूरपूर्व में आंग्ल-रूसी प्रतिद्वन्द्विता बहुत बढ़ गई। रूस सुदूरपूर्व में बढ़कर अपने प्रशान्तसागर-सेना को दुगुना कर दिया तथा फ्रांसीसी बेड़ा भी पहुँचा (सन् 1895ई०)। सन् 1898 ई० में सेलिसबरी ने रूस से समझौता कर लेने को कहा ताकि चीन या तुर्की में प्रभुत्व का बँटवारा हो जाय, किन्तु प्रदेश का बँटवारा न हो। फोर्ट आर्थर को कब्जे में कर लेना था। इससे अँगरेजों की नूतन नौसेना-योजना संकट में पड़ गई।

अँगरेजी-सरकार ने भी पूरक बजट पास किया और खुल्लमखुल्ला धमकी दी कि रूस और फ्रांस दोनों मिलकर जितने जहाज बनायेंगे, उतने ही जहाज अँगरेज भी तैयार करेंगे।

रूस ने मंचूरिया पर अधिकार कर लिया और चीन में 'खुला द्वार' की नीति का सदा विरोध करता रहा। अतः, सन् 1900 ई० के बाद ग्रेटब्रिटेन ने अपनी परम्परागत नीति में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन किया कि वह खास युद्धकाल के सिवा किसी के साथ मैत्री के बन्धन में न पड़ेगा। सन् 1902 ई० में ब्रिटेन ने जापान से मैत्री कर ली। यह सन्धि खुलेआम थी। अब रूस जान गया कि यदि जापान से युद्ध हुआ, तो ग्रेटब्रिटेन हित-प्रेरित तटस्थता के साथ जापान का साथ देगा। यदि कोई तृतीय शक्ति (फ्रांस) ने युद्ध में भाग लिया, तो ब्रिटेन सशस्त्र जापान का साथ देगा।

इसी समय फारस में रूसी साम्राज्यवाद सफलता की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। सन् 1878 ई० से ही अँगरेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध फारस में रूस का स्वार्थ और प्रभाव दिन-पर-दिन अधिक बढ़ता जा रहा था। ऋण एवं डिसकाउण्ट बैंक (वित्ते के रूसी-चीनी बैंक के एकदम अनुरूप), फारस-कजाक-सैन्यदल (इसके अफसर रूसी थे तथा फारस का बड़ा विश्वस्त सेनादल था), अनेक वाणिज्य-दूतावास, फारस की खाड़ी में नूतन जहाजी बेड़े इत्यादि तथा इसी प्रकार के प्रवेश के अन्य आधुनिक साधनों से उत्तरी फारस में रूस का प्रभुत्व बहुत बढ़ गया। अंगरेजों की दृष्टि में दक्षिण में तथा फारस की खाड़ी में इससे बहुत बड़े खतरे का डर था।

अफगानिस्तान में, अँगरेज चाहते थे कि सदा उनका ही प्रभुत्व बना रहना आवश्यक है। रूस चाहता था कि उसे भी काम करने की कुछ स्वतन्त्रता हो। होशियार और शान्तचित्त वैदेशिक मन्त्री लाम्सडोर्फ ने भी इस बात को स्वीकार किया। रूस के उग्र अखबारों ने माँग की कि हिन्द महासागर में रूस का स्वच्छन्द प्रवेश हो। फारस में तथा फारस-तट के समुद्र में प्रभुत्व का बँटवारा न हो। रूस की भौतिक और नैतिक सुरक्षा के यही आधार होंगे। सन् 1904 ई० तक रूसी सरकार इसी नीति पर डटी रही कि फारस का बँटवारा प्रभुत्व के क्षेत्र में न होने पाये तथा फारस की पूर्वी सीमा पर और फारस की खाड़ी में दूसरों को काम करने की छूट न मिलने पाये।

इसी समय फारस [1] में आधुनिक राष्ट्रवादी और संवैधानिक आन्दोलन तेजी से बढ़ रहा था। शाह के निरंकुश, मनमौजी और बेहद खर्चीलेपन तथा पाश्चात्य

1. अब फारस का नाम बदलकर ईरान हो गया है।

साम्राज्यवाद दोनों के विरुद्ध यह आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। रूस-जापान-युद्ध में एक एशियाई राष्ट्र ने यूरोपीय राष्ट्र पर विजय पाई। इसका प्रभाव विद्युत् के समान सर्वत्र फैल गया। सन् 1905 ई० में रूस में क्रान्ति के फलस्वरूप सन् 1906 ई० में फारस में भी क्रान्ति मच गई। नूतन स्थापित राष्ट्रीय सभा ने शाह तथा प्रतिक्रिया के विरुद्ध चिरकाल तक संघर्ष किया। जारशाही रूस शाह का तथा प्रतिक्रियावादियों का पृष्ठपोषण करता था। ग्रेटब्रिटेन तथा रूस अब भी आमने-सामने थे, किन्तु अब परिस्थिति एकदम बदल चुकी थी।

रूस-जापान-युद्ध तथा सन् 1905 ई० की क्रान्ति से रूस की नीति में घोर परिवर्त्तन हुआ। सन् 1907 ई० में इंगलैण्ड से समहित हो गया।

दोनों सरकार के मध्य चिरस्थायी शत्रुता में शीघ्र परिवर्त्तन के कई कारण थे। एशिया के शोषण के विरुद्ध रूस में प्रतिक्रिया हुई। रूसी समझते थे कि ग्रेटब्रिटेन से मतभेद को सुलझा लेना आवश्यक है, जिससे यूरोप में विकास की स्वतन्त्रता हो। इजवोलस्की नया वैदेशिक मन्त्री (सन् 1906–10 ई०) था। यह सदा पश्चिम की ओर दृष्टि रखता था। इसका दृढ़ मत था कि "हमें अपने स्वार्थों को एशिया में न्यायसंगत आधार पर रखना होगा अन्यथा हम केवल एशियाई राष्ट्र रह जायेंगे और यह सबसे बड़ा आफत होगी।" अतः, इंगलैण्ड के साथ समझौता में वही अग्रसर था। फारस में अपने ही सहयोगियों से उसे घोर संघर्ष करना पड़ा। अपने सामान्य अधिकारियों से भी उसे संघर्ष करना पड़ा। कुछ बातों में उनकी जीत हुई। किन्तु, इजवोलस्की को वित्तमन्त्री कोकोवत्सोव से उपयोगी सहायता मिली। वह एकदम सच्चा और समनीतिवाला व्यक्ति था, किन्तु उसमें कोई प्रेरणाशक्ति न थी। आगे चलकर वह प्रधानमन्त्री (सन् 1911–14 ई०) हुआ।

ब्रिटेन में सबसे बड़ी चिन्ता जर्मनी से थी। जर्मनी के पुराने शत्रु फ्रांस से सफल समहित होने के कारण लोग सोचने लगे कि जर्मनी के अन्य पुराने शत्रुओं से भी इसी प्रकार मैत्री करनी चाहिए। फ्रांस की कूटनीति ने यथासम्भव रास्ता साफ कर दिया फ्रांस-रूस-मैत्री तथा त्रिराष्ट्र-संश्रय के विरुद्ध। किन्तु, सन् 1904 ई० की फ्रांस मैत्री के समान सन् 1907 ई० में खुलेआम सन्धि हुई। कुछ प्रदेशों में झगड़ों के निबटारे का रूप इस सन्धि ने ले लिया। यह सन्धि न तो मैत्री थी और, संयुक्त नीति की घोषणा। इस सन्धि से कोई सैनिक या नौसेना योजना नहीं बनी जैसा फ्रान्स के साथ मैत्री से हुआ था।

इस सन्धि में तिब्बत, अफगानिस्तान और फारस का ही जिक्र था, किन्तु बगदाद-रेलमार्ग या जलडमरूमध्य का नहीं। इजवोलस्की ठीक ही समझता था कि यदि

एशियाई कठिनाइयों का निबटारा हो जाय, तो ब्रिटिश-सरकार जलडमरूमध्य के विषय में सुविधा देने को तैयार हो जायगी और इसपर विचार करेगी। रूस ने मान लिया कि अफगानिस्तान में अँगरेजों का प्रभुत्व रहे। सन्धि का सबसे महान् फल यही था। किसी प्रकार के वास्तविक समहित के लिए भारत-भय का हट जाना आवश्यक था। फारस में रूस और अँगरेजों के प्रभुत्व का क्षेत्र बँट गया और बीच में एक तटस्थ क्षेत्र रहा। उस समय तेल-क्षेत्रों के कारण न तो तब और न कालान्तर में ही रूस को कोई कठिनाई हुई।

इंगलैण्ड के अनेक भागों में फारस-सन्धि की कड़ी आलोचना हुई। स्वयं फारस में इसे लोग बँटवारा-सन्धि समझने लगे। अतः, अनेक फारसवासी इसे अभिशाप समझने लगे। आगामी दस वर्षों में अँगरजों के संयत प्रयत्न करने पर भी रूस ने राष्ट्रवादी संविधानिक आन्दोलन को कुचलने का भरसक यत्न किया। वे अपने को उत्तरी फारस का मालिक कहकर खुल्लमखुला प्रचार और व्यवहार करते थे। स्वयं जार के शब्द थे : 'उत्तरी फारस का मालिक।' रूस के साथ इससे अच्छी शर्तों पर सन्धि हो ही नहीं सकती थी। और, उत्तरी फारस में रूस का खूब दबदबा था। सच्ची बात यह है कि जर्मनी के भय से ग्रे को जारशाही साम्राज्यवाद की चापलूसी करनी पड़ी।

रूस जारशाही रूस था। अतः, इंगलैण्ड को रूस से समहित इतना वास्तविक न हो सका, जितना फ्रांस से। ब्रिटेन के जनमत ने सामान्यतः सन् 1905 ई० की क्रान्ति का अभिनन्दन किया था। उन्हें आशा थी कि डूमा एक नूतन युग का उद्घाटन करेगा, जहाँ संविधानिक राजतन्त्र के अन्दर कुछ स्वतन्त्रता और सहिष्णुता होगी। किन्तु, सन् 1907 ई० के बाद जो प्रतिक्रिया हुई, उससे सब आशा धूल में मिल गई। जारशाही की खूब छीछालेदार होती थी, किन्तु फारस में इसकी करतूतों की चर्चा भी न थी। जारशाही रूस के साथ समझौता होना असम्भव होता। समहित होना तो और भी कठिन होता। सेलिसबरी ने एक बार पामर्शटन की नीति का खण्डन किया; क्योंकि इसका आधार था सामान्य स्वार्थ। यदि इस विभेद को मान लिया जाय, तो कहा जा सकता है कि ब्रिटेन की उदार सरकार ने, प्रायः अन्न के विरुद्ध, सलिसबरी का अनुसरण किया, न कि पामर्शटन का, और रूसी सरकार ने भी ऐसा ही किया।

सामान्य भय के कारण दोनों मिल गये। भले ही यह मिलन ढीला था। यह मिलन जर्मनी की महाशक्ति के विरुद्ध था।

किन्तु, तब भी यह नहीं कहा जा सकता कि आंग्ल-रूसी समहित केवल कूटनीति था। दोनों देशों के मध्य, गत पचास वर्ष की तुलना में, किसी तरह सम्बन्ध बहुत बदल गया था। नूतन उदार आन्दोलन तथा कुछ वामपक्षी भी अँगरेजों के राजनीतिक और सामाजिक सिद्धान्तों और व्यवहारों से बहुत प्रभावित हुए। इंगलैण्ड साम्राज्य को हड़प जाता है, यह पुरानी भावना चली आ रही थी, अतः वह रूस और स्लावों का निश्चय शत्रु है, यह भावना धीरे-धीरे कम हो गई; क्योंकि राजनीतिक परिस्थितियाँ बदलती जा रहा थीं और दोनों देशों के मध्य खूब विनिमय हुआ। सदा से सामान्यतः अँगरेज रूस को पसन्द करते थे और रूसी इन्हें चाहते थे। जर्मनी की अपेक्षा अँगरेजों ने एकदम दूसरा ही प्रभाव डाला। गत तीस वर्षों में रूस के अतीत और वर्तमान के सहानुभूतिपूर्वक गहरे अध्ययन का फल यह हुआ कि इंगलैण्ड में लोग पहले की अपेक्षा रूस को बहुत अच्छी तरह समझ गये। सहानुभूति-पूर्वक समझदारी के लिए धार्मिक सम्पर्क अधिक फलदायक हुए। रूसी साहित्य का पश्चिम में खूब प्रचार हुआ। टॉलस्टॉय और तुर्गेनेव के साथ दोस्तोवस्की और चेखोव का भी नाम जुड़ गया और इन साहित्यिकों का खूब प्रभाव पड़ा। रूसी गेय नाटक और रासमण्डल का पश्चिमी दुनिया में अभी-अभी अवतरण हुआ था। इंगलैण्ड समझ रहा था कि जारशाही के कलुषित पाप समस्त रूस के प्रतीक नहीं हैं तथा रूस की अनेक महत्त्वपूर्ण निष्पत्तियाँ हैं। इंगलैण्ड समझ गया कि ये महान् और उदात्त व्यक्ति हैं। अभी तक ये जर्जर शासन के चंगुल में फँसे थे। ये रूस को एक नई दुनिया में परिवर्त्तित करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। ये विस्फोटक शक्ति के साथ आगे बढ़ रहे हैं। भले ही इनकी गति मन्थर हो। ये अतीत से भिन्न एक अभिनव भविष्य का निर्माण कर रहे हैं।

दूसरा संघर्ष पुनः छिड़ गया। अब फिर इंगलैण्ड और रूस मिल गये, जैसा एक शती पूर्व मिल गये थे। वे अपनी रक्षा और तानाशाही से विश्व की रक्षा करने के लिए सशस्त्र मिल गये। तीन शत्रुवत् साम्राज्य स्वाहा हो गये और रूस में विस्फोट हुआ। नूतन यूरोप की रचना हुई। इसमें रूस न था और रूस को तिरस्कृत किया गया था। उसके स्थान में तीन वर्षों तक गृहयुद्ध और अपने पूर्वमित्रों के साथ संघर्ष के बाद सोवियतों का नया क्रान्तिकारी गणतन्त्र पैदा हुआ। इसे कुचला नहीं जा सका था, फिर भी यह क्षीण हो गया था।

अक्तूबर-क्रान्ति विश्वक्रान्ति का जन्मदाता न हो सकी, किन्तु इसका आकर्षण प्रबल था। सोवियत संघ को इसने पृथक रखा। किन्तु, वह शक्तिशाली होता जा रहा था। इसने विभिन्न प्रकार से सम्पर्क स्थापित करना शुरू किया और महान् राष्ट्रों में उच्च पद पा गया। तब भी सभी देशों में इसके विषय में इतना मतभेद था

कि न तो इसने और न अन्य राष्ट्रों ने ही विभिन्न सन्धि-जाल या सम्मिलनों, जो विश्व में फैले हुए थे, की परवाह की।

जब नात्सी-क्रान्ति ने जर्मनी-विजय कर ली और धुरी बनाई, तब तीन राष्ट्र चार राष्ट्रों से भिड़ रहे थे। किन्तु, इन चारों राष्ट्रों में एकता नहीं थी। सोवियत-संघ इतना शंकालु रहा कि उसे विश्वास न होता था और समझता था कि कहीं अन्त में उसे धुरी-भेड़ियों की मरजी पर न छोड़ दिया जाय। उसने भेड़ियों से सन्धि-वार्त्ता की। युद्ध का बादल फट पड़ा। पोलैण्ड हार गया। नारवे जीत लिया गया। निम्न देशों को रौंद दिया गया। फ्रांस कुचल दिया गया। ब्रिटेन लड़ता रहा, अकेला, जी जान से; किन्तु अभग्न अवज्ञापूर्वक। ग्रीस का पतन हुआ। बालकन-राज्य नष्ट हो गये। तब पूर्व में लाल सेना करोड़ों की संख्या में डट गई। इस सेना के पास महान् अस्त्र थे, किन्तु गुण में अनिश्चित थे। इन्होंने हिटलर को तितर-बितर करके बदला लेने के लिए घसीटा।

एक ही पीढ़ी में, दूसरी बार रूस और इंगलैण्ड दोनों जर्मनी के साथ जीवन-मृत्यु के समरांगण में कूद पड़े। यह सबसे महान् समरांगण है, जो उत्तरी ध्रुव से इयुक्सीन तक फैला है। "हम लोगों का भाग्य त्रिशंकु के समान आकाश में लटका हुआ है। किन्तु, इस अँधेरे में भी जब मास्को का पतन हो सकता था, लाल सेना को किसी प्रकार का सन्देह न था कि भविष्य तथा अतीत के हमी उत्तराधिकारी हैं। यह अतीत, रूसी जनता का था। हमारे पुरखों के देश के अनेक आक्रांमक दलों को निगलकर पचा लिया, जो हमें जीतने का प्रयत्न कर रहे थे। पश्चिम में साम्राज्यों का उत्थान और पतन हुआ। बड़े-बड़े साम्राज्य मिट्टी में मिल गये। धनी दरिद्र हो गये। हमारी मातृभूमि बढ़ती गई और शक्तिशाली होती गई। कोई इसे हिला न सका। हमारा देश जर्मन-आक्रामकों को निगल जायगा। ऐसा ही यह था और ऐसा ही यह रहेगा।" (अलेक्सिस टॉलस्टॉय, नवम्बर, सन् 1941 ई०)।

कालक्रम-सारणी

खृष्टाब्द	
860	कीव रूस का काल सन् 1240 ई० तक ।
	कुंतुन्तुनिया के विरुद्ध प्रथम वरांगी-आक्रमण ।
862	रूरिक के आह्वान की परम्परा-तिथि, वरांगी का नवगोरद में शासन ।
907	कुंस्तुन्तुनिया के विरुद्ध ओलेग की युद्धयात्रा ।
944	इगोर का कुंस्तुन्तुनिया पर आक्रमण ।
945	विजयन्त-साम्राज्य से इगोर की सन्धि ।
957	स्वयतोस्लाव, की माता ओलगा (ईसाई) की कुंस्तुन्तुनिया-यात्रा ।
957	स्वयतोस्लाव, कीव रूस का महाराजकुमार ।
961	महान् ओटो ने कीव में धर्मदूत भेजा ।
965	स्वयतोस्लाव का वॉलगा और काश्यप-विजय, खजरों का विनाश ।
969–71	स्वयतोस्लाव का बलगेरिया तथा विजयन्त-साम्राज्य पर धावा ।
972	पेचेनेगों द्वारा स्वयतोस्लाव की हत्या ।
978–1015	व्लादिमीर, कीव रूस का महाराजकुमार ।
988	व्लादिमीर का बपतिस्मा तथा रूस का ईसाई-धर्म में प्रवेश ।
1019–54	चतुर यारोस्लाव, कीव रूस का महाराजकुमार ।
1025–36	यारोस्लावल की नींव ।

खृष्टाब्द

1037	सन्त सोफिया, कीव, का आरम्भ।
1045–57	नवगोरद में सन्त सोफिया का निर्माण।
1051	कीव में गुहामठ की स्थापना।
1067	पोलोव्त्सी का प्रथम भयंकर लूट।
1113–25	व्लाडिमीर मोनोमख, कीव रूस का महाराजकुमार।
1147	मास्को का प्रथम लिखित उल्लेख।
1157–74	एण्ड्रू बोगोल्युबस्की, व्लाडिमीर—सुजदल-कुमार।
1158	व्लाडिमीर में उपेन्स्की-गिरजाघर का आरम्भ।
1169	एण्ड्रू बोगोल्युबस्की द्वारा कीव का घेरा।
1176–1212	व्सेवेलोद तृतीय महा-घोंसला, व्लाडिमीर, सुजदल का महाराजकुमार।
1188	जर्मनों द्वारा लिवोनिया एवं एस्तोनिया-विजय का आरम्भ; कृपाणवीर (सन् 1202 ई०), तूतन वीर, पूर्वी प्रसिया, सन् 1230 ई० से।
1193	व्लाडिमीर में सन्त दमित्री का निर्माण।
1204	चतुर्थ क्रूसेड द्वारा कुंस्तुन्तुनिया का घेरा। लातिन-साम्राज्य का आरम्भ (सन् 1261 ई० तक)।
1221	निझनी-नवगोरद (गोर्की) की नींव।
1223	प्रथम मंगोल-आक्रमण। कलका नदी-तट पर रूसी और पोलोव्त्सी की पराजय।
1227	जेंगिज खाँ का निधन।
1237–42	मंगोलों का रूस-विजय तथा पोलैण्ड और हंगरी पर आक्रमण।
1240	मंगोल-काल (सन् 1240–1480 ई०)
1240–55	स्वीडेन के ऊपर अलेक्जेण्डर नेव्स्की की विजय।

ख्रृष्टाब्द

1242 वातू शमनिस्त खाँ।

1249 अलेक्जेण्डर नेव्स्की की जर्मन-शासन पर विजय।

1252–63 स्वीडेन–विजय तथा फिनलैण्ड का ईसाई-धर्म में परिवर्त्तन।

1258 अलेक्जेण्डर नेव्स्की, व्लाडिमीर का महाराजकुमार।

1256 स्वर्णदल की राजधानी सराय (प्रथम) की नींव।

1257–66 सरतक (नेस्तोरियन) खाँ।

1261 बरके खाँ (मुसलमान)।

1266 लातिन-साम्राज्य का अन्त; पैलियालॉगी ने कुस्तुन्तुनिया में विजयन्त-साम्राज्य की पुनः स्थापना की।

1266–80 क्रिमिया में गेनोइज को तातारों द्वारा प्रथम दान।

1280–87 मंगु-तिमूर खाँ।

1287–90 तुदा मंगु खाँ।

1260–1312 तुला बुग खाँ।

तीख्ता खाँ।

1299 नोगाई का प्रभुत्व।

1304 कीव का महापादरी व्लाडिमीर में बस गया।

1304–27 महाराजकुमार-जागीर के लिए कलह में त्वेर (कलिनिन) का प्रभुत्व।

1342–40 उजबेक खाँ।

1316–41 गेदिमिन, लिथुनिया का महाराजकुमार।

1318–22 यूरि दानिलोविच।

1325–41 इवन खलिता।

1326 मास्को में महापादरी की अन्तिम नियुक्ति।

खृष्टाब्द

1337	ट्रायटत्स्को-सेर्गिव्स्की-मठ की स्थापना, सन्त सेरगियस ।
1340–57	जानिवेक खाँ ।
1341–53	सिमन अहंकारी ।
1345–77	लिथुनिया का महाराजकुमार ओलगेर्द ।
1348	पेस्कव ने नवगोरद की स्वतन्त्रता की रक्षा की ।
1353–59	इवन इवनोविच ।
1354–68	महापादरी अलेक्सिस ।
1357–56	बर्दिबेक खाँ ।
1359–89	दमित्री दोनस्कोय ।
1362	ओलगेर्द ने तातारों को पराजित किया ।
1367–68	मास्को क्रेमलिन का प्रथम प्रस्तर-दुर्गीकरण ।
1368, 1370, 1372	लिथुनिया के ओलगेर्द का मास्को पर आक्रमण ।
1375	दमित्री दोनस्कोय द्वारा त्वेर (कलिनिन) की अन्तिम पराजय ।
1377	जगेल्लन, लिथुनिया का महाराजकुमार ।
1378	वोजह्रा-तट पर तातारों की पराजय ।
1380	दमित्री दोनस्कोव ने तातारों को (मामाई) कुलिकोवो में हराया ।
1380–95	तोख्ततम्यश खाँ ।
1382	तोख्ततम्यश खाँ का मास्को का दहन ।
1385–86	लिथुनिया-पोलैण्ड-योग ।
1386	जगेल्लन ने कैथोलिक धर्म स्वीकार किया और लदिस्लस प्रथम के नाम से पोलैण्ड का राजा हुआ ।
1389–1425	वसिली प्रथम ।

खृष्टाब्द

1392–143 वितोव्त, लिथुवियां का महाराज।

1393 निम्नी नवगोरद (गोर्की) का मास्को-जागीर में सम्मिलन।

1395 तिमूरलंग द्वारा स्वर्णशृंग (तोख्तमिश) की पराजय।

1397 बाइलोजेरो-मठ की स्थापना।

1399 वोस्कला-तट पर तातारों ने वितोव्त को हराया।

1404 वितोव्त ने स्मोलेंस्क हथियाया।

1406–8 वितोव्त ने मास्को पर चढ़ाई की।

1408 स्वर्णशृंग (इदिगेई) ने मास्को घेर लिया।

7410 पोलैण्ड-लिथुनिया का ग्रुनवल्ड (तनेनबर्ग) क्षेत्र में तूतनिक सरदारों पर विजय।

वसिली द्वितीय अन्ध : सन् 1425-62 ई०

1430–60 स्वर्णशृंग का भंगीकरण, क्रिमिया तातार, कजन तातार तथा अस्त्रखान के खनैतों का निर्माण।

1432–50 मास्को-जागीर के लिए गृहकलह।

1436 सोलोवेत्स्की-मठ की स्थापना।

1439 फ्लोरेंस परिषद्, पूर्वी-पश्चिम गिरजाघरों का सम्मेलन।

1441 महापादरी इसिडोर को फ्लोरेंस परिषद् स्वीकार करने के कारण गद्दी से उतारा गया।

1453 उस्तमनों ने कुस्तुन्तुनिया हथियाया; महान् इवन तृतीय : सन् 1462–1505 ई०।

1463 मस्कोवी में यारोस्लावल का सम्मेलन।

1471 इवन तृतीय ने नवगोरद पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की।

खृष्टाब्द

1472 इवन तृतीय ने (सोफिया) पेलियोलोगस का पाणिपीडन किया; स्वर्णश्रृंग का मास्को के विरुद्ध असफल आक्रमण।

1474–1507 इवन तृतीय का क्रिमिया तातारों से मैत्री।

1478 नवगोरद का मास्को में सम्मेलन।

1480 स्वर्णश्रृंग का इवन तृतीय के प्रति असफल आक्रमण, मास्कोवी-जागीर का अन्त।

1482 क्रिमिया तातारों का लिथुनिया पर धावा और कीव की पराजय।

1485–1516 मास्को में नूतन क्रेमलिन का निर्माण।

1485 त्वेर (कलिनिन) का मास्कोवी में सम्मेलन।

1489 व्यतक (किरोव) का मास्कोवी में सम्मेलन।

1494 नवगोरद में हंसे का अन्त।

1497 इवन तृतीय की संहिता।

1500–1503 लिथुनिया तथा लिवोनिया-संघ से युद्ध; इवन तृतीय ने उत्तरी ओका और चेर्नीगोव पुन: प्राप्त किया।

1501 इवन तृतीय ने लिवोनिया-संघ को हराया।

1502 क्रिमिया तातारों ने स्वर्णश्रृंग का नाश किया।

1503 गिरजा-परिषद्, जोसेफ के अनुयायियों का अधन-वर्ग पर विजय।

वसिली तृतीय : सन् 1505–33 ई०

1507–8 लिथुनिया से युद्ध।

1510 मस्कोवी में प्सकोव का सम्मेलन।

1512–22 लिथुनिया से युद्ध।

1514 मस्कोवी ने स्मोलेंस्क हथियाया।

1521 क्रिमिया और कज़ान तातारों ने मास्को घेर लिया।

भयानक इवन : सन् 1533–84 ई०

खृष्टाब्द

1533–39	भयानक इवन की माता एलेना ग्लिनस्काया अभिभाविका।
1547	भयानक इवन सत्तारूढ हुआ; जार का अभिषेक।
1547–56	आन्तरिक सुधार, भूमि से नियमित सैनिक सेवा।
1550	विधि-संहिता।
1551	गिरजा-परिषद् (स्तोग्लव) के सुधार।
1552	कजान का अपहरण।
1553	चान्सेलर ने क्षीरसागर-मार्ग खोला।
1554	स्वीडेन से युद्ध।
1556	अस्त्रखान का अपहरण।
1558--83	पोलैण्ड के विरुद्ध लिवोनिया का युद्ध।
1561	स्वीडेन के विरुद्ध युद्ध।
1564	मास्को में प्रथम पुस्तक का मुद्रण।
1565--72	भयामक इवन का आतंक-राज्य, ओपरिच्छिना।
1569	पोलैण्ड और लिथुविया का लुवानिन में सम्मिलन।
1571	क्रिमिया तातारों द्वारा मास्को-दहन।
1571–1600	जंगली स्टेप में तथा वॉलगा-तट पर दक्षिण सीमा का विस्तार तथा दुर्गीकरण; दोन, जपोरोझियन और उराल कजाकों का आरम्भ।
1581	येरमक तथा साइबेरिया-विजय का आरम्भ।
1582	पोलैण्ड से विराम-सन्धि।
1583	स्वीडेन से विराम-सन्धि।

फिओदोर इवनोविच-सन्धि : सन् 1584–98 ई०

1587–98	वोरिस गुदोनोव 'लॉर्ड संरक्षक' बना।
1589	मास्को-कुलपति की सृष्टि।

खृष्टाब्द

1590--93 स्वीडेन स युद्ध ।

1595 त्यवजिनों की सन्धि (स्वीडेन से) ।

1596 ब्रेस्ट-लितोवस्क-सम्मिलन, पोलैण्ड में उनियात-गिरजा ।

बोरिस गुदोनोव : सन् 1598–1605 ई०

1598 पश्चिम साइबेरिया-विजय की समाप्ति ।

देशसभा ने बोरिस गुदोनोव को जार चुना ।

1601–3 दुर्भिक्ष।

1604--13 आपत्काल, गृहकलह का आरम्भ ।

1605–06 पोलों की सहायता से प्रथम कपटी दमित्री जार बना ।

1606–7 बोलोत्निकोव का विद्रोह ।

1606–10 शुइस्की जार हुआ ।

1607–10 द्वितीय कपटी दमित्र प्रतिद्वन्द्वी जार हुआ । कजाकों की सहायता से पोलों का हस्तक्षेप बढ़ा; मध्य वॉलगा में विद्रोह ।

1610 मास्को में पोल, व्लाडिस्लाव एवं जार निर्वाचित हुआ; शुइस्की गद्दी से उतारा गया ।

1611 स्वीडों ने नवगोरद हथियाया, पोलों द्वारा स्मोलेंस्क-अपहरण ।

1611–12 मिनिन और पोझरस्की ने राष्ट्रीय प्रतिरोध का संगठन किया; पोलों से मास्को को पुनः जीता गया ।

1613 देशसभा ने माइकेल रोमानव को जार चुना ।

माइकेल रोमानव : सन् 1613–45 ई०

1618 पोलैण्ड के साथ द्युलिनो की विराम-सन्धि; पोलैण्ड के पास स्मोलेंस्क रहा, स्वीडेन के साथ स्तोलबोवो की सन्धि, बाल्टिक के सभी निकास बन्द ।

1619–33 कुलपति फिलारेट ।

खृष्टाब्द

1632–34 पोलैण्ड से युद्ध; स्मोलेंस्क हाथ न लगा; पोल्यनोवो की सन्धि।

1636–52 दक्षिणी सीमा पर विस्तार एवं दुर्गीकरण; वायलगोरद सुरक्षा-पंक्ति।

1645 उक्रेणियों का स्लोवोदस्कय-उक्रेण में स्थानान्तरण।

अलेक्सिस मिखैलोविच : 1645—76

1648–49 मास्को तथा अन्य नगरों में विप्लव; देशसभा; जार अलेक्सिस संहित।

1648–59 वोह्दन खमेलनित्स्की, उक्रेण का हेटमान; पोलों से संघर्ष।

1649 अँगरेजों को व्यापार की सुविधा का अन्त।

1650 नवगोरद और प्सकोव में विप्लव।

1652 निकन कुलपति हुआ।

1653 देशसभा की अन्तिम पूर्ण बैठक।

1654 पेरेयस्लाव की सन्धि; उक्रेण का मस्कोवी में सम्मेलन।

1654–67 उक्रेण के लिए पोलैण्ड से युद्ध; अन्द्रसेवो की विराम-सन्धि।

1654–81 'विनाशकाल' उक्रेण में।

1656 खरकोव की स्थापना।

1656–58 स्वीडेन से युद्ध, वलिसरी की विराम-सन्धि।

1661 करदीस की सन्धि।

1662 मास्को में ताम्र-बलवा।

1666 गिरजा-परिषद् ने निकन कुलपति को गद्दी से उतारा।

1667 नूतन व्यापार-नियम; पोलैण्ड के साथ अन्द्रसेवों की विराम-सन्धि; कीव का मस्कोवी में मिलन; लघुरूस और स्मोलेंस्क; गिरजा-परिषद् ने पुरातन धर्मानुयायियों और सम्प्रदायों के विरुद्ध उपायों की पुष्टि की।

1667–76 सोलोवेत्स्की-मठ ने गिरजा-सुधार के विरुद्ध विद्रोह किया।

खृष्टाब्द	
1670–71	स्तेंका रेजिन का विद्रोह; दोन-कजाकों की स्वाधीनता; काट-छाँट आरम्भ।
1676–81	तुर्की और क्रिमिया से युद्ध, बक्चो सराय की सन्धि

फेओदोर अलेक्सेयेबिच : 1670–82

1682	पूर्वनिर्देश-संहिता का अन्त।
	पीटर और इवन पंचम संयुक्त जार तथा सोफिया अभिभाविका घोषित।
	महान् पीटर प्रथम (सन् 1682–1725 ई०)।
	इवन पंचम (सन् 1682–96 ई०)।
1686	पोलैण्ड के साथ स्थायी सन्धि।
1687–1689	क्रिमिया से युद्ध।
1689	अभिभाविका सोफिया और गोलित्स्याँ का पतन; चीन के साथ नेरचिंस्क की सन्धि।
1694	पीटर ने शासन की बागडोर सँभाली।
1695–1700	तुर्की से युद्ध।
1696	तुर्कों से अजोवा-अपहरण।
1697–98	पीटर की प्रथम यूरोप-यात्रा।
1698	स्त्रेलत्सी-विद्रोह का दमन।
1700–21	स्वीडेन के विरुद्ध महान् उत्तरी युद्ध; न्यस्ताद की सन्धि।
1700	कुलपतित्व-निलम्बन।
	दिनपत्री का सुधार।
	चार्ल्स द्वादश का नरवा में विजय।
1701–04	इंगरिया का विजय।
1703	सन्त पीटर्सबर्ग की स्थापना।
1705–06	अस्त्रखान-विद्रोह।

खृष्टाब्द	
1705–11	बश्कीर-विद्रोह ।
1707–08	दोन-तट पर बुलविन-विद्रोह ।
1709	पोलतवा, लघुरूस की स्वाधीनता का अन्त ।
1710	लिवोनिया, एस्तोनिया तथा विबोर्ग-विजय ।
1711	सिनेट की स्थापना; तुर्की से युद्ध; प्रथ नदी पर सत्यानाश ।
1713	युट्रेक्ट की सन्धि, स्पेन में उत्तराधिकार का अन्त ।
1713–14	फिनलैण्ड की विजय ।
1714	ज्येष्ठाधिकार की घोषणा ।
1718	मथौती-कर तथा 'कॉलेजों' का आरम्भ; जारेविल अलेक्सिस को मृत्युदण्ड तथा हत्या; चार्ल्स द्वादश का निधन ।
1721	कुलपतित्व की समाप्ति तथा पूतसंघ की सृष्टि; स्वीडेन से न्यस्ताद की सन्धि; लिवोनिया, एस्तोनिया, इंगरिया तथा करेलिया की प्राप्ति; सम्राट् की उपाधि धारण ।
1722	पद-सारणी, पीटर के उत्तराधिकार की घोषणा ।
1722–23	फारस से युद्ध ।
1725	विज्ञान-अकादमी की स्थापना ।
1725–27	कैथरीन प्रथम ।
1727–30	पीटर द्वितीय ।
1730–40	अन्ना ।
1730	अन्ना के उत्तराधिकार-नियम पर संघर्ष; पीटर की ज्येष्ठाधिकार-विधि का अन्त ।
1730–40	बीरन का प्रभुत्व ।
1733–35	पोल-उत्तराधिकार-युद्ध ।
1735–39	तुर्की से युद्ध; बेलग्रेड की सन्धि ।

खृष्टाब्द	
1740	बीरन का पतन।
1740–41	इवन षष्ठ।
1741	इवन षष्ठ को गद्दी से उतारा गया और उसकी माता अभिभाविका बनी।
1741–62	एलिजाबेथ।
1741–43	स्वीडेन से युद्ध, आबो की सन्धि।
1754	आन्तरिक चुंगी का अन्त।
1755	मास्को-विश्वविद्यालय की स्थापना।
1756–63	सप्तवर्षीय युद्ध।
1762	पीटर तृतीय।
	प्रशिया से सन्धि।
	अमीरों और रईसों को सेना-सेवा से मुक्ति की घोषणा।
	पीटर तृतीय को गद्दी से उतारना और उसकी हत्या।

महती कैथरीन द्वितीय : 1752-96

1764	इवन षष्ठ को गोली मार दी गई।
	गिरजा-भूमि का अन्तिम लौकिकीकरण।
1767–68	विधायिका-आयोग।
1768–72	रूस की पोलैण्ड-माँग के विरुद्ध बार-संघ का सशस्त्र प्रतिरोध।
1768–74	तुर्की से युद्ध; कुचुक-कैनर्दजी की सन्धि।
1772	पोलैण्ड का प्रथम बँटवारा।
1773–75	पुगाचोव का विद्रोह।
1774	कुचुक-कैनर्दजी की सन्धि; कृष्णसागर-स्टेप की प्राप्ति।

खृष्टाब्द	
1775	जपोरोझियन कजाकों का परिसमापन।
	स्थानीय शासन-सुधार।
1780	आस्ट्रिया के साथ मैत्री का नूतनीकरण।
	इंगलैण्ड के साथ प्रथम सशस्त्र तटस्थता।
1781–86	लघुरूस का साम्राज्य में पूर्ण विलयन।
1782	कैथरीन की ग्रीक-योजना।
1783	क्रिमिया-सम्मेल।
1785	रईसों एवं अमीरों की जागीरदारी का घोषणा-पत्र।
1785–1864	काकेशश पार्वतीयों पर विजय।
1787–92	तुर्की से युद्ध; जस्सी की सन्धि।
1788–90	स्वीडेन से युद्ध; वेरेला की सन्धि।
1789	फ्रान्स-क्रान्ति का आरम्भ।
1793	पोलैण्ड का द्वितीय बँटवारा।
1795	पोलैण्ड का तृतीय बँटवारा।

पाल : 1796–1801

1791	राजगद्दी-उत्तराधिकार की विधि।
1799	फ्रान्स के विरुद्ध द्वितीय संघ; उत्तरी इटली तथा स्विटजरलैण्ड में सुवोरोव की युद्ध-यात्रा।
1800–01	पाल-नेपोलियन-मैत्री; इंगलैण्ड के विरुद्ध द्वितीय सशस्त्र तटस्थता।
1801	पाल को गद्दी से हटाकर हत्या की गई।

अलेक्जेण्डर प्रथम : 1801–25

खृष्टाब्द	
1801–04	आन्तरिक सुधार।
1801–29	पूर्वी जार्जिया की प्राप्ति (सन् 1801 ई०) तथा ट्रान्स-काकेशिया-विजय।
1805	फ्रान्स के विरुद्ध तृतीय संघ; ऑस्टेरलिट्ज।
1806	जेना।
1806–12	तुर्की से युद्ध, बुकारेस्ट की सन्धि।
1806–13	फारस से युद्ध, गुलिस्ताँ की सन्धि।
1807	इयलाउ तथा फ्रीडलैण्ड।
	जुलाई : नेपोलियन के साथ तिलसित-सन्धि; इंगलैण्ड से विच्छेद; पोलैण्ड की महान् जागीरदारी।
1807–11	स्पेरेंस्की के सुधार।
1808–09	स्वीडेन से युद्ध; फ्रेडरिकशमन की सन्धि; फिनलैण्ड की प्राप्ति।
1810	दिसम्बर : रूस ने महादेशीय पद्धति का परित्याग किया।
1812	जून : तुर्की के साथ बुकारेस्ट की सन्धि; बेसरबिया की प्राप्ति।
	जून—दिसम्बर : जनकभूमि का युद्ध; बोरोदिनो; मास्को-दहन।
1813–15	नेपोलियन के विरुद्ध महामैत्री।
1814–15	वियाना-काँगरेस।
1815	पोलैण्ड के 'काँगरेस-राज्य' का संविधान।
1815–25	आरकचेयेव का प्रभुत्व।
1821	ग्रीक-विद्रोह का आरम्भ।
1822	उच्च सुरक्षा-शुल्क (चुंगी) का पुनःस्थापन।

निकोलस प्रथम : 1825–55

खृष्टाब्द

1826 दिसम्बर : दिसम्बरियों का विप्लव।

1826–28 फारस से युद्ध, तुर्कमंचाई की सन्धि।

1827 नवारिनो।

1828–29 तुर्की से युद्ध; अद्रियानोपुल की सन्धि।

1830 फ्रान्स और बेलजियम में क्रान्ति।

1830–31 पोल-विद्रोह।

1832 ग्रीक-स्वतन्त्रता का अन्तिम निबटारा।

1832–33 मेहमेत अली का प्रथम संकट; उनकियार-स्केलेस्सी की सन्धि।

1833 विधि-संहिता।

मुंचेनग्रात्ज्-समझौता--रूस, आस्ट्रिया-रूस और आस्ट्रिया-प्रशिया में।

1839–41 मेहमेत अली का द्वितीय संकट, जलडमरूमध्य के विषय में लन्दन-संगमन।

1846 आस्ट्रिया ने क्रैकाऊ मिला लिया।

1848–49 फ्रान्स, आस्ट्रिया, जर्मनी एवं इटली में क्रान्ति।

1849 हंगरी में हस्तक्षेप।

1853–56 क्रिमिया-युद्ध।

अलेक्जेण्डर द्वितीय : 1855–81

1856 पेरिस-कांगरेस।

1867 विनम्र सुरक्षा शुल्क-(चुंगी)।

1858–60 चीन से आमूर तथा सामुद्रिक प्रान्तों की प्राप्ति।

खृष्टाब्द	
1859	शमील का आत्मसमर्पण; काकेशश-विजय पूर्ण (सिराकेशियम को छोड़कर, सन् 1864 ई०) ।
1860–73	प्रथम रेलमार्ग की धूम ।
1861	दास-मुक्ति ।
1863	पोल-विद्रोह ।
1863–64	विधि तथा शिक्षा-सुधार ।
1864	स्थानीय सुधार (जेमस्तवा) ।
1864–85	मध्य एशिया-विजय ।
1865	प्रेस-प्रतिबन्ध-सुधार ।
1867	संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का अलास्का-विजय ।
1870	नगरपालिका-सुधार ।
1871	जलडमरूमध्य की विजय में लन्दन-संगमन ।
1874	अनिवार्य सैनिक-सेवा ।
1877	उच्च सुरक्षा-शुल्क का पुनः प्रारम्भ ।
1877–78	उच्च सुरक्षा-शुल्क का पुनः प्रारम्भ ।
	तुर्की से युद्ध, सनस्तेफनों की सन्धि, बर्लिन-कांगरेस ।
1881	अलेक्जेण्डर की गुप्त हत्या ।

अलेक्जेण्डर तृतीय : 1881–94

1885	पन्दजेह-संकट ।
1885–87	बलगेरिया-संकट ।
1891	ट्रान्स-साइबेरिया-रेलमार्ग ।
	दुर्भिक्ष ।

खृष्टाब्द

1891–93 फ्रान्स-रूस मैत्री।

1892-1903 विते, यातायात-वित्त-वाणिज्य-मन्त्री।

निकोलस द्वितीय : 1894–1917

1896 रूस-चीन-सन्धि तथा चीनी पूर्वी रेलमार्ग में रियायत।

1896–97 आरमेनिया-हत्याकाण्ड।

1897 वित्ते का मणि-सुधार, स्वर्ण-मानदण्ड स्वीकृत।

1898 पोर्ट आर्थर अधिकृत।

1900 बॉक्सर-विद्रोह, रूस ने मंचूरिया पर अधिकार किया।

1904-05 रूस-जापान-युद्ध।

सितम्बर : पोर्ट्समाउथ की सन्धि।

1905 क्रान्ति (सन् 1905 ई०); अक्तूबर-घोषणापत्र; मास्को-विद्रोह (दिसम्बर)।

1906 प्रथम डूमा।

1906–11 महामन्त्री स्तोलिपिन, कृषि-विधान।

1807 आंग्ल-रूसी मैत्री।

1908–09 बोसनिया-हरजेगोविना-संकट।

1912–13 बालकन-युद्ध।

अगस्त : प्रथम विश्वयुद्ध का आरम्भ।

1917 मार्च-क्रान्ति।

निकोलस द्वितीय का पदत्याग; अस्थायी सरकार।

अक्तूबर-क्रान्ति।

नवम्बर : बालशेविक-क्रान्ति।

खृष्टाब्द	
1918	मार्च : ब्रेस्ट-लितोवस्क की सन्धि—जर्मनी तथा उसके मित्रों के साथ।
	नवम्बर : मित्रराष्ट्रों की जर्मनी पर विजय।
1918–20	गृहयुद्ध; जर्मनी तथा मित्रराष्ट्रों का हस्तक्षेप।
	सोवियत-पोल-युद्ध (सन् 1920 ई०)।
1919	साम्यवादी अन्तरराष्ट्रीय की स्थापना (मई, 1943 ई० में भंग):
1921	नूतन आर्थिक नीति का अवलम्बन।
1921–22	दुर्भिक्ष।
1922	रैपेलो की सोवियत-जर्मनी-सन्धि।
1923	जर्मनी साम्यवादी विद्रोह की असफलता; सो० सा० ग० संघ के संविधान की स्वीकृति।
1924	लेनिन-निधन।
1925	लोकर्णो की सन्धियाँ; राष्ट्रसंघ में जर्मनी का प्रवेश।
1927	चीन में साम्यवाद-विरोधी चाल।
	स्तालिन की विजय; लातस्की तथा इतर साम्यवादी दल से निष्कासित।
1928	प्रथम पंचवर्षीय योजना का आरम्भ तथा कृषि का सामूहिकीकरण।
1929	विश्व आर्थिक संकट का आरम्भ।
1931	जापान ने मंचूरिया हथियाया।
1933	जनवरी : द्वितीय पंचवर्षीय योजना।
	जनवरी-मार्च : जर्मनी में नात्सी-क्रान्ति।
	नवम्बर : संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने सो० सा० ग० संघ की मान्यता दी।
1934	सितम्बर : सो० सा० ग० संघ ने राष्ट्रसंघ में प्रवेश किया।

खृष्टाब्द	
1935	मार्च : जर्मनी ने पुनः शस्त्रीकरण की घोषणा की।
	मई : सोवियत-फ्रान्स तथा सोवियत-जेकोस्लोवाक की मैत्री-सन्धि।
1935–36	अबिसीनिया-संकट तथा युद्ध।
1936	मार्च : जर्मनी ने राइनलैण्ड को पुनः अधिकृत किया।
	जुलाई : जलडमरूमध्य के लिए मौण्ट्रेक्स-संगमन।
	नवम्बर : जर्मनी-जापान में कौमिण्टर्न-विरोधी समझौता।
	दिसम्बर : नूतन सो० सा० ग० सं० संविधान की स्वीकृति।
1936–38	मास्को में मुकदमे (परीक्षण)।
1936–39	स्पेन से गृहयुद्ध।
1937	चीन-जापान-युद्ध का आरम्भ।
1938	जनवरी : तृतीय पंचवर्षीय योजना।
	मार्च : वियाना।
	सितम्बर : म्यूनिख।
1939	मार्च : प्राग।
	अगस्त : सोवियत-जर्मन-सन्धि।
	सितम्बर : जर्मनी का पोलैण्ड पर आक्रमण।
	द्वितीय विश्व-युद्ध।
	सोवियत ने पूर्व पोलैण्ड अधिकृत किया और उसे सो० सा० ग० संघ में मिला लिया।
	सितम्बर-अक्तूबर : सोवियत ने एस्तोनिया, लतविया और लिथुनिया से आधारभूमि-हेतु सन्धि की।

खृष्टाब्द	
1939–40	दिसम्बर-मार्च : सोवियत-फिनलैण्ड-युद्ध । राष्ट्रसंघ से सो० सा० ग० संघ निष्कासित ।
1940	जून : फ्रान्स का पतन । जून-जुलाई : लिथुनिया, लतविया, एस्तोनिया, बेसरबिया तथा उत्तरी बुकोविना का सो० सा० ग० संघ में सम्मिलन ।
1941	अप्रैल : सोवियत-जापान-तटस्थता-समझौता । जून : जर्मनी ने सो० सा० ग० संघ पर आक्रमण किया; फिनलैण्ड, रूमानिया, हंगरी तथा इटली ने भी अनुसरण किया ।

शब्दानुक्रमणी

आ

व

ह

★

विशिष्ट शब्दावली

अधिराट् : Sovereign

अनीश्वरवादी योद्धा-संघ : League of Militant Godless

अर्द्ध-दैवीकरण : Semi-deification

अर्द्ध-पुजारी : Half high-priest

आपत्तिकाल : Time of Troubles

इस्लाम-सर्वस्व : Panislamism

उत्तर की अर्द्धरम्भा : The Semiramis of the North

एकतन्त्रवाद : Autocracy

कमानी-फलक : Springboard

कृष्णमृत्तिका-प्रान्त : Black-earth Provinces

खूनी रविवार : Bloody Sunday

चर्च-प्रधानतावाद : Scholasticism

जनरसद-परिषद् : The council of People's commissars

जागीर-ए-रूस : Appanage Russia

जिला-परिषद् : Zemstva

त्रिमूर्ति : Trimity

त्रिराष्ट्र-संश्रय : Triple Alliance

दास : Serfs

दास-स्वामी : Serfs-owners

दुहिता-संस्था : Daughter concerns

देशसभा : The Assembly of the land

धर्मसभा : Synod

धुरी-राष्ट्र : Axis states

धुरी-शक्ति : Axis command

नृसिंहिनी : Sphinx

पादरी-परिषद् : Churuch council

'पितृभूमि का पिता' : 'Father of the Fatherland'

पुनर्वितरण-प्रथा : Practice redistribution

पूर्वदृष्टान्त-संहिता : The code of precedence

प्रान्तयोद्धा (सरदार) : Knight

प्रासाद-क्रान्ति : Palace revolution

भ्रातृ-परिषद् :Council of blood relatives

मथोती-शुल्क : Poll tax

महादेशीय पद्धति : Continental System

रईस-परिषद् : The Old council of magnates

लाल रक्षक : Red Guards

लाल रविवार : Red Sunday

लाल सेना : Red Army

लोहपुरुष : Man of Steel

विज्ञान-अकादमी : Académie des Sciences

शीत-प्रासाद : Winter Palace

शिष्ट-परिषद् : The council of magnates

शून्यवादी : Nihilist

श्वेत धर्म : The Whites

षड्यन्त्र : Court conspiracies
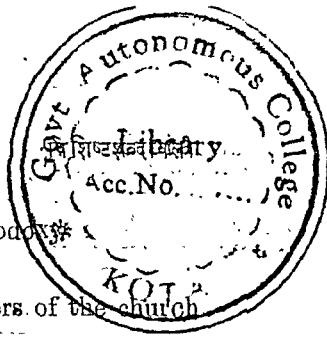
सनातन धर्मवाद : Orthodoxy

सनातनी पादरी : Leaders of the church

सर्वस्लाववाद : Panslavism

सामूहिकीकरण : Collectivization

सेना-संहिता : Code for the army

स्वर्णदल : Golden hord

स्वर्णवंश : Golden family